CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

यिका 82

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

श्रीः

# काव्यदीपिका

[ विद्यारत्नकान्तिचन्द्रभट्टाचार्येण सं·

लवपुरस्थसनातनधर्मसंस्कृतमहाविद्यालयप्रधानाध्यापकेन ऋषि-
कुलस्नातक–विद्याभास्कर–श्रीपरमेश्वरानन्दशर्मसाहित्या-
चार्येण स्वरचितया बालबोधिनीत्याख्यया व्याख्यया
स्वरचितेन हिन्दीभाषानुवादेन च
संयोज्य संपादिता ।

मोतीलाल बनारसीदास
दिल्ली : वाराणसी : पटना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

© मोतीलाल बनारसीदास
प्रधान कार्यालय : बंगलोरोड, जवाहरनगर, दिल्ली-७
शाखाएँ : १. चौक, वाराणसी ( उ० प्र० )
२. अशोक राजपथ, पटना ( बिहार )

चतुर्थ संस्करण १९७४
मूल्य रु० ६·००

श्रीसुन्दरलाल जैन, अध्यक्ष मोतीलाल बनारसीदास, चौक, वाराणसी द्वारा प्रकाशित तथा गौरीशंकर प्रेस, मध्यमेश्वर, वाराणसी द्वारा मुद्रित।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

* श्रीः *

# भूमिका

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम् ।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा ॥

इति नीतिवचनानुसारेण काव्यानुशीलनं धीमतां चित्तविनोदनं मतम् । तत्र रमणीयमर्थं प्रतिपादयन् शब्दः काव्यमित्युच्यते । तत्र कोऽर्थः ? कतिविधश्च सः ? का च तस्य रमणीयता ? कथं च सा ? कः शब्दः ? कति च तस्य विधाः ? कथं च तस्य तत्तदर्थप्रतिपादकत्वम् ? इत्यादि काव्याङ्गभूतं वस्तुजातं यत्र निरूप्यते तच्छास्त्रं काव्यसामग्रीसंधानात् (संयोजनात्) कविकर्मणः शासनाच्च साहित्यशास्त्रमित्युच्यते । अत एवेदं काव्यानुशासनमित्यपि व्यपदिशन्ति विद्वांसः । इदमेव साहित्यविद्येत्यप्यभिलप्यते । तदुक्तं कविकुलशेखरेण श्रीराजशेखरेण काव्यमीमांसायाम्—

'आन्वीक्षिकी-त्रयी-वार्ता-दण्डनीतयश्चतस्रो विद्या इति कौटिल्यः । पञ्चमी साहित्यविद्येति यायावरीयः । सा हि चतसृणामपि विद्यानां निष्यन्दः ।' इति ।

इयं च साहित्यविद्या दण्डि-भामह-भट्टोद्भट-रुद्रटानन्दवर्धन-कुन्तक-महिमभट्टाभिनवगुप्त-मम्मट-जयदेव-विश्वनाथाप्पय्यदीक्षित-पण्डितराजजगन्नाथप्रभृतिभिरनेकैर्विद्वत्तल्लजैर्व्याख्याता परिष्कृता च ।

इत्थमतिगहनविस्तृतायां संस्कृत-प्रौढमति-संवेद्यायामस्यां साहित्यविद्यायामिदंप्रथमतया प्रवेष्टुकामानां छात्राणां कृते वङ्गीयेन केनचिद् विदुषा श्रीकान्तिचन्द्रभट्टाचार्येण संपादितः 'काव्यदीपका' नामैष संक्षिप्तः संग्रहग्रन्थश्चिराद्ध्ययनाध्यापनयोः प्रचरति । वङ्गविहारप्रान्तयोरस्य भूयान् प्रचारः । परन्तु पञ्चनदविश्वविद्यालयशिक्षासमितिसदस्या अपीमां छात्रजनानध्येयशृङ्गारोदाहरणविवर्जितामतिसंक्षिप्तां चाकलय्य प्राज्ञपरीक्षार्थिपाठ्यत्वेन न्ययूयुजन् । इतः प्रागपीयमस्मिन् विश्वविद्यालये कतिचिद् वर्षाणि पाठ्यक्रमसन्निवेशिताऽभवत् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



तदस्याः स्वल्पमूल्यसुलभं छात्रजनोपयोगिसंस्कृतव्याख्यया हिन्दीभाषानुवादेन च सनाथितं संस्करणं प्रकाशयितुकामेन *मोतीलाल बनारसीदास* संस्कृतपुस्तकालयाध्यक्षेण *श्रीसुन्दरलाल*महोदयेन साग्रहमरुध्यमान इमामतिसरलया संस्कृतव्याख्यया हिन्दीभाषानुवादेन च संयोज्य समपादयम् ।

परीक्षार्थिविद्यार्थिलाभाय ग्रन्थान्ते सोत्तरसंकेतं प्राचीनानि पञ्चनदविश्वविद्यालयप्रश्नपत्राणि, ग्रन्थोद्धृतानां लक्षणोदाहरणपद्यानामकरादिक्रमेण सूचीं च संन्यवेशयम् ।

आशासे संस्करणमिदं दीपिकाया विद्यार्थिनां महदुपकरिष्यति । अन्ते चेदमेव संप्रार्थ्यते—

मानुष्यसुलभान् दोषान् संशोध्य समुपेक्ष्य वा ।
गुणान् गृह्णन्तु कृतिनो वृत्तिं माधुकरीं श्रिताः ॥

१।२।३९ ]

संपादकः
श्रीपरमेश्वरानन्दः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

# विषय-सूची


| विषयाः | पृष्ठसंख्या |
|---|---|
| **प्रथमशिखायाम्—** | |
| मङ्गलाचरणम् | १ |
| काव्यप्रयोजनम् | २ |
| काव्यलक्षणम् | ५ |
| **द्वितीयशिखायाम्—** | |
| वाक्यस्वरूपम् | १० |
| पदस्वरूपम् | ११ |
| शब्दविभागः | ११ |
| अर्थविभागः | १२ |
| वाचकादीनां स्वरूपम् | १२ |
| अभिधाकथनम् | १३ |
| लक्षणास्वरूपम् | १६ |
| लक्षणाविभागः | १८ |
| उपादानलक्षणा | १९ |
| लक्षणलक्षणा | २० |
| व्यञ्जनास्वरूपम् | २१ |
| व्यञ्जनाविभागः | २२ |
| शाब्दी व्यञ्जना | २२ |
| अभिधामूला व्यञ्जना | २२ |
| लक्षणामूला व्यञ्जना | २९ |
| आर्थी व्यञ्जना | ३० |
| **तृतीयशिखायाम्—** | |
| काव्यभेदाः | ३२ |
| ध्वनिः | ३२ |
| ध्वनिभेदौ | ३२ |
| लक्षणामूलध्वनिः ( अविवक्षितवाच्यः ) | ३३ |
| अभिधामूलध्वनिः ( विवक्षितान्यपरवाच्यः ) | ३३ |
| अविवक्षितवाच्यभेदौ | ३३ |
| तत्र अर्थान्तरसङ्क्रमितवाच्यः | ३४ |
| अत्यन्ततिरस्कृतवाच्यः | ३५ |
| विवक्षितान्यपरवाच्यः | ३५ |
| तद्विभागः | ३६ |
| तत्र असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यः | ३६ |
| अथ रसनिरूपणम् | ३७ |
| रसभेदाः | ३९ |
| स्थायिभावाः | ४८ |
| व्यभिचारिभावाः | ४८ |
| शान्तरसः | ४९ |
| वत्सलरसः | ५१ |
| संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यः | ५१ |
| गुणीभूतव्यङ्ग्यम् | ५२ |
| चित्रकाव्यम् | ५४ |
| तद्भेदौ | ५४ |
| **चतुर्थशिखायाम्—** | |
| दृश्यश्रव्यभेदेन ( काव्यविभागः ) | ५८ |
| दृश्यकाव्यलक्षणम् | ५८ |
| प्रकरणलक्षणम् ( टीकायाम् ) | ५८ |
| अभिनयस्वरूपं तद्भेदाश्च | ५८ |
| धीरललितलक्षणम् | ५९ |
| धीरप्रशान्तलक्षणम् ( टीकायाम् ) | ५९ |
| प्रहसनलक्षणम् ,, | ५९ |
| नाटिकालक्षणम् ,, | ५९ |
| त्रोटकलक्षणम् ,, | ५९ |
| नाटकलक्षणम् | ५९ |
| नायकलक्षणम् ( टीकायाम् ) | ६१ |
| तत्र—धीरोदात्तलक्षणम् ,, | ६१ |
| अङ्कलक्षणम् | ६२ |
| बीजलक्षणम् ( टीकायाम् ) | ६३ |


Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri




| विषयाः | पृष्ठसंख्या |
|---|---|
| नाटकीयपूर्वकृत्यम् | ६४ |
| पूर्वरङ्गलक्षणम् | ६४ |
| नान्दीस्वरूपम् | ६४ |
| प्रस्तावनास्वरूपम् | ६५ |
| प्रस्तावनाभेदाः | ६६ |
| उद्घात्यकलक्षणम् | ६६ |
| कथोद्घातलक्षणम् | ६८ |
| प्रयोगातिशयलक्षणम् | ६९ |
| प्रवृत्तकलक्षणम् | ७० |
| अवलगितलक्षणम् | ७१ |
| पताकास्थानकप्रयोगलक्षणम् | ७२ |
| पताकास्थानकलक्षणम् | ७२ |
| अर्थोपक्षेपकाः | ७४ |
| विष्कम्भकलक्षणम् | ७४ |
| प्रवेशकलक्षणम् | ७५ |
| अङ्कावतारलक्षणम् | ७६ |
| सन्धिलक्षणम् | ७७ |
| तद्भेदाः | ७७ |
| मुखलक्षणम् ( टीकायाम् ) | ७७ |
| प्रतिमुखलक्षणम् ,, | ७७ |
| गर्भलक्षणम् ,, | ७७ |
| विमर्शलक्षणम् ,, | ७७ |
| निर्वहणलक्षणम् ,, | ७७ |
| नाट्योक्तयः | ७८ |
| श्रव्यंकाव्यलक्षणम् ( तद्भेदाश्च ) | ८२ |
| पद्यमहाकाव्यलक्षणम् | ८३ |
| खण्डकाव्यलक्षणम् | ८४ |
| गद्यलक्षणम् | ८५ |
| चम्पूलक्षणम् | ८५ |
| **पञ्चमशिखायाम्—** | |
| दोषस्वरूपं तद्भेदाश्च | ८६ |
| पदमात्रगतदोषाः | ८७ |
| पदवाक्यगतदोषाः | ८९ |
| वाक्यमात्रगतदोषाः | १०२ |
| अर्थदोषाः | १११ |
| कविसमयख्यातानि ( टीकायाम् ) | ११८ |
| रसदोषाः | ११९ |
| दोषाणामदोषगुणत्वे | १२४ |
| अनुकरणस्य अदोषता | १२४ |
| **षष्ठशिखायाम्—** | |
| गुणस्वरूपम् | १२५ |
| गुणविभागः | १२६ |
| माधुर्यलक्षणम् | १२६ |
| रसविशेषे द्रुतेरातिशय्यम् | १२६ |
| माधुर्य्यव्यक्तौ हेतवः | १२६ |
| ओजःस्वरूपं तद्व्यञ्जकवर्णादीनि च | १२७ |
| प्रसादस्वरूपं तद्व्यञ्जकवर्णाश्च | १२९ |
| माधुर्यादीनां शब्दगुणत्वम् | १३० |
| **सप्तमशिखायाम्—** | |
| रीतिस्वरूपं तद्भेदाश्च | १३१ |
| रीतिलक्षणम् | १३१ |
| वैदर्भीस्वरूपम् | १३२ |
| गौडीस्वरूपम् | १३२ |
| **अष्टमशिखायाम्—** | |
| अलङ्कारस्वरूपम् | १३४ |
| अलङ्कारविभागः | १३४ |
| शब्दालङ्काराः | १३४ |
| अनुप्रासः | १३४ |
| यमकम् | १३६ |
| श्लेषः ( शाब्दः ) | १३८ |
| अर्थालङ्काराः | १४० |
| स्वभावोक्तिः | १४१ |
| उपमा | १४२ |
| मालोपमा | १४५ |


Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



| विषयाः | पृष्ठसंख्या |
|---|---|
| रूपकम् | १४६ |
| उत्प्रेक्षा | १४७ |
| निगीर्णलक्षणम् | १४७ |
| उत्प्रेक्षाबोधकशब्दाः | १४९ |
| अतिशयोक्तिः | १४९ |
| अन्यरूपा अतिशयोक्तिः | १५१ |
| व्यतिरेकः | १५४ |
| प्रतिवस्तूपमा | १५६ |
| निदर्शना | १५७ |
| दृष्टान्तः | १५९ |
| अर्थान्तरन्यासः | १६० |
| तुल्ययोगिता | १६२ |
| दीपकम् | १६४ |
| अन्यरूपं दीपकम् | १६५ |
| सन्देहः | १६६ |
| भ्रान्तिमान् | १६८ |
| अपह्नुतिः | १६९ |
| समासोक्तिः | १७१ |
| अप्रस्तुतप्रशंसा | १७३ |
| व्याजस्तुतिः | १७४ |
| प्रतीपम् | १७७ |
| श्लेषः ( आर्थः ) | १७९ |
| सहोक्तिः | १८० |
| काव्यलिङ्गम् | १८० |
| विभावना | १८२ |

| विषयाः | पृष्ठसंख्या |
|---|---|
| विशेषोक्तिः | १८३ |
| विरोधः | १८४ |
| विषमम् | १८६ |
| असङ्गतिः | १८९ |
| कारणमाला | १९० |
| सारः | १९१ |
| एकावली | १९२ |
| अर्थापत्तिः | १९३ |
| **अष्टमशिखाऽऽलोके—** | |
| स्मरणम् | १९५ |
| परिकरः | १९६ |
| अधिकम् | १९७ |
| विशेषः | १९९ |
| परिवृत्तिः | २०१ |
| पर्य्यायः | २०३ |
| परिसङ्ख्या | २०६ |
| तद्गुणः | २०९ |
| उदात्तम् | २१० |
| सूक्ष्मम् | २१२ |
| भाविकम् | २१३ |
| विनोक्तिः | २१५ |
| पर्य्यायोक्तम् | २१५ |
| व्याजोक्तिः | २१६ |
| वक्रोक्तिः | २१७ |
| आक्षेपः | २१८ |


Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

# टीकाकर्त्तुः परिचयः

दैवज्ञागमपारीणाद्द्रोणाश्रमनिवासिनः ।
क्षीराब्धेरिव शुभ्रांशुरच्युतादजनिष्ट यः ॥
पार्वती यस्य जननी पार्वतीव पतिप्रिया ।
दया दानमलोभश्च यस्या नैसर्गिका गुणाः ॥
ज्येष्ठो यस्य गुणग्रामैरभिरामैरलङ्कृतः ।
विष्णुः श्रियेव सत्पत्न्या *श्रीधर्या* समुपाश्रितः ॥
सन्मतः करुणाचान्तचित्तः परहितव्रतः ।
आख्यया सच्चिदानन्दो भ्रातॄणामतिवत्सलः ॥
चतुर्वेदगुरोः पादमूलाद् विद्यास्वधीतिनः ।
परमेश्वरस्य तस्येयं कृतिनः कृतिरेधताम् ॥
बाणनन्दाङ्कचन्द्राब्दे वैक्रमे मासि फाल्गुने ।
कृष्णपक्षचतुर्दश्यां पूर्णेयं 'बालबोधिनी' ॥
प्रीयतामनया देवी सतां सेव्या सरस्वती ।
स्वरव्यञ्जनसंतत्या वर्षन्ती रसमुत्तमम् ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

# काव्यदीपिका

## प्रथमशिखा

मङ्गलाचरणम् ।

मातरं हृदये ध्यात्वा विशदाम्बुजवासिनीम् ।
बालानां सुखबोधाय क्रियते काव्यदीपिका ॥ १ ॥

---

श्रीः

यत्पादाब्जरजःस्पर्शपवित्रितधियां नृणाम् ।
वागर्थावुपतिष्ठेते सरसौ तां श्रयेऽम्बिकाम् ॥ १ ॥
विघ्नेशं वरदं नत्वा ध्यात्वा हृदि गुरूनपि ।
व्याख्यामि सुगमैर्वाक्यकदम्बैः काव्यदीपिकाम् ॥ २ ॥
काहमप्रौढवागर्थः क्वतिगम्या क्व साहिती ।
भूमिष्ठः स्प्रष्टुमिच्छामि दिविष्ठं चन्द्रमण्डलम् ॥ ३ ॥
तथापि बहुधा पूर्वैः सूरिभिः सुपरिष्कृते ।
विचरन् पथि संप्राप्स्ये प्राप्तव्यं नेत्रहीनवत् ॥ ४ ॥

अथ विद्वच्छिरोमणिः श्रीकान्तिचन्द्रभट्टाचार्यो ग्रन्थादौ निर्विघ्नतासिद्धये वाङ्मयाधिष्ठातृतया समुचितां देवीं सरस्वतीं ध्यात्वा अध्येतृजनप्रवृत्तिसिद्धये करिष्यमाणग्रन्थस्य विषयप्रयोजनाधिकारिणो निर्दिशति—मातरमिति विशदाम्बुजवासिनीम्—विशदे शुभ्रे, अम्बुजे कमले, वसति, तच्छीला, ताम्, श्वेतपद्मासनस्थाम् इति यावत् । [ सुप्यजाताविति णिनिः, अम्बुजशब्दस्य जातिवाचित्वाद् अजाताविति पर्युदासस्तु न शङ्क्यः, प्राणिजातेरेव तेन पर्युदासात् । वसतीति वासिनीत्येवं ग्रह्यादिणिनिं विधाय सप्तमीति योगविभागात् सप्तम्यन्तेन समासो बोध्यः। ] मातरम्—जननीम्, वाङ्मयाधिष्ठात्रीं सरस्वतीम् । हृदये—मनसि । ध्यात्वा—एकाग्रतया विचिन्त्य । बालानाम्—बालत्वमिह न स्तनन्धयत्वम्, नापि सुकुमारमतित्वम्,

---

### हिन्दी टीका

श्वेत कमल पर निवास करने वाली सरस्वती माता का हृदय में ध्यान करके मैं बालकों के सुखपूर्वक ज्ञान के लिए 'काव्यदीपिका' नामक ग्रन्थ बनाता हूँ ॥ १ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



### काव्यप्रयोजनम्—

"काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे" ॥ २ ॥ [ मम्मटः ]

---

अपि तु अधीतव्याकरणकाव्यकोशत्वे सति, अनधीतकाव्यलक्षणशास्त्रत्वम्। तथा च व्युत्पन्नानामपि इदंप्रथमतया काव्यलक्षणशास्त्रे प्रवेशमिच्छतामित्यर्थः। **सुखबोधाय**—सुखेन अनायासेन, ग्रन्थस्यानतिविस्तृतत्वादिति भावः, बोधाय ज्ञानाय, काव्यलक्षणस्येति शेषः। **काव्यदीपिका**–काव्यदीपिकाख्यो ग्रन्थः। **क्रियते**—विरच्यते, मयेति शेषः।

काव्यदीपिकेति चेयमन्वर्थास्य ग्रन्थस्य संज्ञा। काव्यस्य रमणीयार्थप्रतिपादकशब्दकदम्बस्य, दीपिकेव दीपिका प्रकाशयित्रीति तद्योगार्थः। यथा दीपिका तमसा च्छन्नं वस्तु तमोनिरसनेन प्रकाशयति, तथैवेयमपि काव्यलक्षणं साङ्गोपाङ्गं संदेहादिनिरसनेन प्रकाशयतीति हृदयम्। दीपयतीति दीपकः, णिजन्तात् कर्तरि ण्वुल्, ततः स्त्रीत्वविवक्षायां 'प्रत्ययस्थात्' इत्यादिनेत्वम्। अथवा दीपयतीति दीपः, णिजन्तात् पचाद्यच्। अल्पो दीपो दीपकः, 'अल्पे' इत्यनेन अल्पार्थे प्रागिवीयः कन्, ततः स्त्रीत्वविवक्षायां दीपिका।

अत्र काव्यदीपिकेत्यन्वर्थसंज्ञया काव्यमस्य ग्रन्थस्य विषय इत्युक्तं भवति। सुखबोधायेत्यनेन च अनायासेन तदवगमः प्रयोजनमिति प्रतिपादितम्। बालानामित्यनेन च व्याकृत्यादौ व्युत्पन्नमतिः काव्यलक्षणजिज्ञासुरेवात्राधिकारीत्युच्यते। विषयग्रन्थयोः प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावसम्बन्धश्च स्पष्टत्वान्नोक्तः। इत्थमस्य ग्रन्थस्यानुबन्धचतुष्टयमुक्तं वेदितव्यम्।

यदर्थोऽयमारम्भस्तत्काव्यं क्रियमाणं ज्ञायमानं वा कस्मै प्रयोजनायेति जिज्ञासायामाह **काव्यमिति**।

**काव्यम्**–रमणीयार्थप्रतिपादकपदकदम्बम्, **यशसे**–कीर्तये, भवतीति शेषः। भवतीति पदमितरत्रापि वाक्यपूर्तयेऽध्याहरणीयम्। इह सर्वाश्चतुर्थ्यस्तादर्थ्ये विज्ञेयाः। काव्यं स्वकर्तृविज्ञात्रोः कविसहृदययोर्यशो जनयतीति भावः। **अर्थकृते**—अर्थस्य, कृते उत्पादनाय, अर्जनाय। [ करणं कृत्, करोतेः भावे क्विप्, तुगागमः, तस्यै, इति विग्रहः ] कविसहृदययोः सम्पदप्युपतिष्ठत इति भावः। **व्यवहारविदे**—व्यवहारस्य लोकाचारादेः, विदे विज्ञानाय। [ वेदनं विद् वेत्तेर्भावे क्विप्, तस्यै इति विग्रहः ] लोके केन सह कथं व्यवहरणीयम् इत्यादिज्ञानं काव्यात् सुखमुत्पद्यते इति भावः। **शिवेतरक्षतये**—शिवाद् मङ्गलाद्, इतरद् अमङ्गलम्, कुष्ठरोगादि, तस्य क्षतये विनाशाय। कविस्तदितरस्य देवस्तुत्यात्मकेन वा काव्येन स्वेन परकीयेन वा काव्येन तत्तदधिष्ठातृदेवताः प्रसाद्य दुष्टान् कुष्ठादिरोगान् दुर्ग्रहाद्युपद्रवांश्च शमयितुं प्रभवति। यथा मयूरकविः सूर्यस्तुत्यात्मकेन स्वकाव्येन भगवन्तं सूर्यं प्रसाद्य स्वकुष्ठमशमयदिति भावः। **सद्यः**—झटिति, काव्य-पठन-श्रवणसमनन्तरमेवेत्यर्थः। **परनिर्वृतये**—परा अत्युत्कृष्टा, लोकोत्तरा, ब्रह्मास्वादसहोदरेति भावः, निर्वृतिः आनन्दः, तस्यै। [ सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भाव इति परशब्दस्य वृत्तौ पुंवत्त्वम् ] काव्यात् कविसहृदययोरुभयोरपि रसापरपर्यायो ब्रह्मानन्दकल्पो लोकोत्तरानन्द उदेतीति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


भावः। **कान्तासम्मिततया**—कान्तया लावण्यादिना मनोहरया स्त्रिया, सम्मितं तुल्यम्, तस्य भावस्तत्ता, तया, सुन्दरीवदिति भावः। **उपदेशयुजे**—उपदेशस्य कर्तव्याकर्तव्यनिर्देशस्य, युजे योजनाय, करणाय। [ योजनं युक् युजेर्भावे क्विप्, तस्यै, इति विग्रहः ] यथा काचिदपि सुन्दरी स्वस्य सौन्दर्येण मधुरिमनिर्झरेण वचोनिचयेन च रसमुत्पाद्य जनमनायासमात्माभिमुखीकृत्य यथेच्छं प्रवर्तयति निवर्तयति वा। तथैवेयं काव्यापरपर्याया सूक्तिसुन्दरी माधुर्यादिसमन्विता सरसतापादनेन स्वाभिमुखीकृत्य श्रोतारं कृत्ये प्रवर्तयति अकृत्याच्च निवारयतीति भावः। एतेन प्रभुसम्मितसुहृत्सम्मितशब्दाभ्यां कान्तासम्मितस्य काव्यशब्दस्य व्यतिरेकोऽपि सूचितः। अयमभिसन्धिः—शब्दः खलु त्रिधा भवति—प्रभुसम्मितः, सुहृत्सम्मितः, कान्तासम्मितश्चेति। तत्र विधिनिषेधात्मको वेदादिशास्त्रशब्दः प्रभुणा सम्मितत्वात् प्रभुसम्मित इत्युच्यते। प्रभुतुल्यता चास्यानुशासनसामान्येन। तथाहि—यथा प्रभुर्लोकान् इदं करणीयमित्यनुशास्ति। लोकाश्च राजानुशासनमित्येव कारणनिरपेक्षं यथाक्षरं करणीये प्रवर्तन्ते, अकरणीयाच्च निवर्तन्ते। एवमेव 'अहरहः संध्यामुपासीत' 'न कलञ्जं भक्षयेत्' इत्यादिवेदादिशास्त्रशब्दोऽपि लोकाननुशास्ति। लोकाश्च शास्त्रानुशासनमित्येव कारणनिरपेक्षं यथाक्षरं विहिते प्रवर्तन्ते निषिद्धाच्च—निवर्तन्ते—इति।

विधिनिषेधफलकः पुराणेतिहासशब्दश्च सुहृदा सम्मितत्वात् सुहृत्सम्मित इत्युच्यते। सुहृत्तुल्यता चास्य अनुशासनाभावसामान्येन। तथाहि—यथा सुहृत् साध्वसाधुपरिणामनिदर्शनेन इष्टमनिष्टं चोपन्यस्यति, न त्वनुशास्ति। श्रोता च तदुपश्रुत्य सत्फल इष्टे स्वयमेव प्रवर्तते, असत्फलाच्चानिष्टाद् निवर्तते। तथैव—

'परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।'

इत्यादयः पुराणेतिहासशब्दा अपि सदसत्परिणामनिदर्शनेन इष्टमनिष्टं चोपदिशन्ति, न त्वनुशासति। लोकाश्च यथेच्छमिष्टे प्रवर्तन्ते, अनिष्टाच्च निवर्तन्त इति।

अनयोः प्रभुसम्मितः शब्दप्रधानः। शब्दप्रधानता चास्य शब्दस्य मुख्यार्थमात्रग्रहणात्। 'न विधौ परः शब्दार्थः' इति मीमांसकसिद्धान्तात्। केचित्तु नियतानुपूर्वीकतया पर्यायपरिवृत्त्यसहतया च शब्दप्रधानत्वं वेदशब्दस्याहुः। सुहृत्सम्मितस्त्वर्थप्रधानः। अर्थप्रधानता चास्य तत्र वक्तृतात्पर्यानुरोधेन लक्षणादिना शक्यार्थस्यान्यथापि नयनाद्। यथा 'विषं भुङ्क्ष्व' इति सुहृद्वाक्यस्य विषभोजनविधिरूपं मुख्यार्थं परित्यज्य लक्षणया विषभोजनादप्यनिष्टकरमेतद्गृहे भोजनमित्येवमर्थः कल्प्यते।

कान्तासम्मितस्त्वाभ्यामुभाभ्यामपि विशिष्यते। तत्र न शब्दो न वार्थः प्रधानम्। अपि तु रसः प्रधानम्। शब्दार्थौ तु तत्र रसाङ्गभूतव्यञ्जनाव्यापारप्रवणतया गुणीभूताविति।

---

**काव्य के प्रयोजन**

काव्य—यश-धनप्राप्ति, व्यवहारज्ञान, अमङ्गलनाश, तत्काल ( सुनते पढ़ते ही ) अलौकिक आनन्दानुभव तथा कान्ता के सदृश उपदेश प्रदान के लिये उपयोगी है॥ २॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



काव्यं हि पाठादिसमनन्तरमेव अनिर्वचनीयविलक्षणाऽऽनन्दाय, कालिदासादीनामिव यशःसम्पत्तये, श्रीहर्षादेर्धावकादीनामिव धनाधिगमाय, लोकाऽऽचारादिपरिज्ञानाय, सुधामयेनोपदेशवचनेन रामादिवत् प्रवर्त्तितव्यम्, न रावणादिवद् इति सत्पथप्रवर्त्तनाय, साधुविगर्हितवर्त्मानुवर्त्तनाय च, तत्तद्भाषासु व्युत्पत्तिलाभाय च यथायोगं कवेः

---

अथ कारिकां व्याख्याति काव्यमित्यादिना। यद्यपि कारिकोक्ते काव्यप्रयोजनक्रमे यश एव प्रथमतया निर्दिष्टम्, तथापि काव्यप्रयोजनेषु परनिर्वृतेरेव सकलप्रयोजनमौलिभूतत्वे सकलालङ्कारिकसम्मततया पाठकानन्दनादृत्य तामेव पूर्वं विवृणुते पाठादीति। अनिर्वचनीयेति, अनिर्वचनीय इत्थंभूततया निर्वक्तुमशक्यः, विलक्षणः, लोकमतिक्रान्तः, अलौकिक इति यावत्। आनन्दः रसास्वादसमुद्भूतं सुखम्, तस्मै। कारिकोक्तं प्रथमं प्रयोजनमुदाहरणेन समर्थयते कालिदासेति। यथा रघुवंशादिकाव्यकलापस्तत्कर्तॄन् कवीन् जगति यशस्विनो व्यदधात्, तथैवेदानीमपि क्रियमाणं काव्यं तत्कर्तारं यशस्विनं विधास्यतीति यशस्कामैः काव्ये यत्न आस्थेय इति भावः। कालिदासशब्दे 'ङ्यापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुलम्' इति कालीशब्दस्य ह्रस्वान्तत्वम्। द्वितीयं प्रयोजनं विवृणुते श्रीहर्षादेरिति। धावकनामा कश्चित् प्राचीनः कवी रत्नावलीं नाम नाटिकां निर्माय तां च श्रीहर्षराजकृतां प्रख्याप्य ततः (श्रीहर्षाद् राज्ञः) बहु धनं लेभे इत्यैतिह्यमत्रानुसंधेयम्। काव्यप्रकाशीयसाहित्यसारटीकायां तु 'धावकनामा कश्चित् पण्डितः चिन्तामणिमन्त्रजपमहिम्ना प्राप्ताद्भुतवैदुष्योऽपि निर्धनतयातिमात्रं क्लिश्यमानः सन् नैषधीयचरिताख्यं विचित्रं महाकाव्यं विरचय्य गुणज्ञशिरोमणये श्रीहर्षनाम्ने राज्ञे प्रदर्श्य ततोऽतितुष्टाच्च तस्मात् प्रतिवर्षं शतसहस्रपरिमितरौप्यमुद्रोत्पत्तियोग्यां भूमिं प्रतिगृह्य स्वकाव्यं प्रतिसर्गान्तिमश्लोके तत्कृतत्वेन प्रख्यापितवान्' इत्यच्युतरायेणोक्तम्। आदिपदात् शिशुपालवधकर्त्रा माघनाम्नः श्रेष्ठिनो बहुधनं प्राप्तमित्यायैतिह्यमूह्यम्। तृतीयं प्रयोजनं व्याचष्टे लोकाचारेति। आदिपदेन राजादिगत उचिताचारो बोध्यः। चतुर्थं प्रयोजनं स्पष्टत्वादुपेक्ष्य पञ्चमस्य च प्रधानतया पूर्वमेव व्याख्यातत्वेन षष्ठं विवृणोति सुधामयेनेति। सुधामयेन—सुधा सुधासदृशो रसः, तन्मयेन प्राचुर्ये मयट्। सुधामयेनेत्यादिना कान्तासादृश्यं काव्यशब्दस्य दर्शितम्। साध्विति। साधुभिर्विगर्हितस्य वर्त्मनः अननुवर्तनाय अननुसरणाय। कारिकायामनुक्तं सप्तमं काव्यस्य प्रयोजनं प्रतिपादयति तत्तदिति। तत्तद्भाषासु तासु तासु भाषासु। यद्भाषोपनिबद्धं काव्यं तस्यां भाषायामित्यर्थः। प्राकृतभाषामयेन काव्येन प्राकृतभाषायां व्युत्पत्तिर्जायते, संस्कृतभाषामयेन संस्कृते इति भावः। नन्विमानि प्रयोजनानि काव्यकर्तुः कवेरेव उत तत्पाठकानामपीति जिज्ञासायामाह यथायोगमिति।

---

काव्यं होति। क्योंकि काव्य से यथासंभव कवि और पाठकों को पाठादि के अनन्तर ही अवर्णनीय अलौकिक आनन्द का अनुभव होता है, कालिदास आदि कवियों की तरह यश प्राप्त होता है, श्रीहर्षादि राजाओं से धावक आदि कवियों की तरह धन मिलता है, लौकिक व्यवहार आदि का ज्ञान होता है, रामादि के समान कार्य करना चाहिए, रावण आदि के समान नहीं—इस प्रकार अमृतमय उपदेश द्वारा सन्मार्ग में प्रवृत्ति होती है, और साधुजनों से निन्दित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


पाठकानाञ्च भवतीति बहुफलतया काव्यस्य तल्लक्षणादिकमवश्यमवगन्तव्यं धीमताम्, इति प्रथमतः काव्यस्य लक्षणमाह—

**कथ्यते काव्यम् "इष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदाऽऽवली।" [ दण्डी ]**

**इष्टाः—अलौकिकचमत्कारित्वेन सहृदयमनोरमाः, अर्थाः, तैर्व्यवच्छिन्ना—विलक्ष-**

---

योगमनतिक्रम्येति यथायोगम्, यथासंभवमित्यर्थः। यस्य यत्र संभवः स तत्र मन्तव्य इति भावः। तत्र यशोर्थावनर्थनिवृत्तिश्च कवेर्भवन्ति। व्यवहारज्ञानोपदेशयोगौ च पाठकानामेव। कवेः तयोः पूर्वमेव सिद्धत्वात्। परनिर्वृतिरपि सहृदयपाठकानामेव। कवेरपि सा नासंगता, रसास्वादकाले तस्यापि सहृदयपाठकान्तःपातित्वात्। एवं सप्तमं भाषाव्युत्पत्तिलक्षणं प्रयोजनमपि काव्याध्येतृणामेव विज्ञेयम्। यद्यपि काव्यज्ञपण्डितस्यापि यशः प्रसरति, द्रव्यं लभ्यते, स्तोत्रपाठेन शिवेतरक्षतिश्च भवति, तथापि कवेरेतत्त्रयमेव नान्यत्त्रयमित्याशयः।

अथ काव्यं लक्षयति **कथ्यत** इति। इष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली काव्यमित्यन्वयः। इष्टाः प्रिया रमणीया लोकोत्तराह्लादजनकाः, अर्थाः, तैः व्यवच्छिन्ना विशेषिता, **पदावली**—पदानां सुप्तिङन्तरूपाणाम्, आवली पङ्क्तिः, समूहः, वाक्यमिति यावत्, **काव्यम्**—काव्यमिति नाम्ना, **कथ्यते** व्यपदिश्यते।

इदमत्र बोध्यम्–इष्टार्था व्यवच्छेदकत्वाद् विशेषणम्, पदावली च व्यवच्छेद्यत्वाद् विशेष्यम्। विशेष्यविशेषणभावश्च सम्बद्धयोरेव भवति, नासम्बद्धयोः। दण्डी पुरुष इत्यत्र संयोगसम्बन्धेनैव दण्डः पुरुषं विशिनष्टि। तथैवात्रापि इष्टार्थपदावल्योर्विशेष्यविशेषणभावप्रयोजकः कश्चन सम्बन्ध एष्टव्यः। स चात्र प्रतिपाद्यप्रतिपादकभाव एव योग्यतया पर्यवस्यति। इष्टार्थाः प्रतिपाद्याः, पदावली च प्रतिपादिका। तथा च 'इष्टार्थप्रतिपादकपदावली काव्यम्' इति काव्यलक्षणं फलितम्। एतदेव लक्षणं पण्डितराजस्याप्यभिमतम्। तथा हि 'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्' इति रसगङ्गाधरे तेन काव्यलक्षणं प्रोक्तम्। तच्च मात्रया शब्दतो भिन्नमपि अर्थतः समानमेव।

अन्वयक्रमेण व्याचष्टे **इष्टा** इति। **अलौकिकचमत्कारित्वेन**–लोके भवो लौकिकः, न लौकिकोऽलौकिकः, तादृशश्चमत्कारो येषामस्ति ते अलौकिकचमत्कारिणः, तेषां भावस्तत्त्वम्, तेन। हेतौ तृतीया। अलौकिकाह्लादजनकतयेत्यर्थः। अलौकिकचमत्कारशब्दयोः कर्मधारयं कृत्वा मत्वार्थीय इनिः, ततो भावे त्वः। 'न कर्मधारयान्मत्वर्थीयो बहुव्रीहिश्चेत्तदर्थप्रतिपत्तिकरः' इति तु प्रायिकम्।

---

मार्ग में प्रवृत्ति नहीं होती, उन उन भाषाओं का (जिनमें काव्य बने हुए हैं) अच्छा ज्ञान हो जाता है, इसलिए अनेक प्रयोजनों का साधन होने से समझदार पुरुषों को काव्य का लक्षण आदि अवश्य जानना चाहिए। अतः ग्रन्थकार पहले काव्य-लक्षण बताता है।

**कथ्यते इति**। रमणीय (अलौकिक आनन्दजनक) अर्थ से विशेषित पदसमूह (वाक्य) को काव्य कहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



णीकृता, पदाऽऽवली–पदसमूहः काव्यम्। 'रिपुस्ते मृतः" "पुत्रस्ते जातः" इत्यादिवाक्येन जनितस्य आनन्दस्य न लोकोत्तरत्वमिति न तत्र काव्यत्वप्रसक्तिः। तथा च लोकोत्तरचमत्कारितया सहृदयहृदयाऽऽकर्षि वाक्यं काव्यमिति फलितम्। तन्नाम वाक्यं काव्यम्—यत् खलु विलक्षणचमत्कारितया बलादिव वशमानीय सामाजिकजनमनांसि रञ्जयति। यथा—

'मानुषीभ्यः कथं नु स्यादस्य रूपस्य सम्भवः?।

---

यद्यपि अलौकिकाह्लाद एव चमत्कार इत्युच्यते–इत्यलौकिकपदमिह पुनरुक्तमिव भवति। तथापि 'विशिष्टवाचकानां पदानां विशेषणसमभिव्याहारे विशेष्यमात्रपरत्वम्' इत्यभियुक्तोक्त्येह चमत्कारपदमाह्लादमात्रपरम्। **सहृदयमनोरमाः**–सहृदयाः काव्यतत्त्वावगाहनक्षमहृदयाः, तेषां मनो रमयन्ति आनन्दयन्ति, तादृशाः। **विलक्षणीकृताः**–वैलक्षण्यमापादिताः, व्यावर्तिताः, अतादृशार्थप्रतिपादकपदावलीत इति शेषः। तथा च 'अलौकिकाह्लादजनकार्थप्रतिपादकपदसमूहः काव्यम्' इति दण्डिनतेन काव्यस्य निष्कृष्टं लक्षणम्। अलौकिकपदस्य व्यावर्त्यं दर्शयति **'रिपुस्ते मृतः'** इति। यद्यपि रिपुमरण-पुत्रजननश्रवणेनापि जायते आनन्दः, परं स सहृदयासहृदयसाधारणो लौकिक आनन्दः, नालौकिकः। तथा च तद्बोधकवाक्यस्य न काव्यत्वमिति भावः। लक्षणघटकपदव्याख्यानेन फलितं निष्कृष्टं लक्षणमाह **लोकोत्तरेत्यादि**। सहृदयहृदयाकर्षीति पदं फलितार्थकथनपरम्। सहृदयहृदयाकर्षणं विना लोकोत्तरचमत्कारित्वस्याप्रामाणिकत्वात्।

"रिपुस्ते मृतः, पुत्रस्ते जातः" इत्यादिवाक्येभ्यो विलक्षणं लोकोत्तरचमत्कारयुक्तं काव्यपदव्यपदेश्यं वाक्यमुदाहरति **मानुषीभ्य** इति। अभिज्ञानशाकुन्तलस्थं पद्यमिदम्। शकुन्तलाया अप्सरःसंभवत्वमुपपादयितुमिदं दुष्यन्तोक्तिः।

**अस्य** प्रत्यक्षमनुभूयमानस्य त्रिजगत्युपमानतां प्राप्तस्य, **रूपस्य** [ रूपशब्द इह—'यौवनं रूपलावण्ये सौन्दर्यमभिरूपता। मार्दवं सौकुमार्यं चेत्यालम्बनगुणा मताः।' इत्यत्रोक्तानां लावण्यादीनामप्युपलक्षकः ] शकुन्तलासम्बन्धिनो रूपलावण्यादेरित्यर्थः। **मानुषीभ्यः**–मनुष्यजातिस्त्रीभ्यः [ मनोरपत्यानि स्त्रियो मानुष्यः, ताभ्य इति विग्रहः। 'मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च' ततो ङीप् ] **कथं नु**–केन प्रकारेण, न कथमपीत्यर्थः। **सम्भवः**–उत्पत्तिः, **स्यात्** [ संभावनायां लिङ् ] संभाव्यत इति भावः। शाकुन्तलं रूपलावण्यादि मानुषीषु स्त्रीषु सर्वथा न संभवतीति भावः। इममेवार्थं

---

**रिपुरिति**। 'तेरा शत्रु मर गया' 'तेरे घर पुत्र उत्पन्न हुआ' इत्यादि वाक्यों से होनेवाला आनन्द अलौकिक नहीं है, इसीलिये वहाँ ( उपर्युक्त वाक्यों में ) कविता के लक्षण की अतिव्याप्ति नहीं होती। इसलिये–अलौकिक आनन्दजनक होने के कारण सहृदय पुरुषों के हृदय को आकृष्ट करने वाला ( वाक्य ) काव्य है यह फलित हुआ। वह वाक्य काव्य है जो अद्भुत चमत्कारोत्पादक होने के कारण सामाजिकों ( काव्य के पढ़ने, सुनने और अभिनय देखने वाले सहृदय जनों ) के मन को मानो जबर्दस्ती अपनी ओर आकृष्ट करके अनुरञ्जित करता है। जैसे—

**मानुषीभ्य** इति। इस रूप की उत्पत्ति मानुषी स्त्रियों से कैसे संभावित हो सकती है? प्रभासे भरा हुआ तेज ( चन्द्र, सूर्य आदि ) भूतल से उदित नहीं होता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri


न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात्" ॥ ४ ॥ [ अभि० शा० ]
"उग्गिणदब्भकवला मई परिच्चत्तणत्तणा मोरी।
ओसरिअपांडुपत्ता मुअंति अस्सुं विअ लदाओ" ॥ ५ ॥ [ अभि० शा० ]

उद्गीर्णदर्भकवला मृगी परित्यक्तनर्त्तना मयूरी।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्ति अश्रु इव लताः ॥ [ इति सं० ]

प्रतिवस्तूपमया पुष्णाति **न प्रभेति। प्रभातरलम्**–प्रभाभिर्दीप्तिभिः, तरलं भासुरम् [ 'तरलश्चञ्चले पिङ्गे हारमध्यमणावपि। भासुरे च' इति विश्वः ] **ज्योतिः**—चन्द्रादि तेजः, **वसुधातलाद्**–भूतलात्, **न उदेति**–नाविर्भवति।

चन्द्रादिज्योतिरुपमया शकुन्तलाया दिव्यत्वमभिव्यज्यते। दिव्यायाश्च तस्या दिव्यैव योनिरुचिता। अतो नेयं मानुषी भवितुमर्हतीति भावः। अत्र मानुषीभ्य इति विशेष्यं मानुषशरीराणां पार्थिवप्रायत्वं निवेदयत् तत्र दिव्योचितरूपाद्यसंभवे साभिप्रायम् इति परिकरांकुरः। तदुक्तं चन्द्रालोके—'साभिप्राये विशेष्ये तु भवेत् परिकरांकुरः' इति। उपमेयोपमानवाक्ययोः 'संभवः कथं नु स्यात्' 'नोदेति' इत्याभ्यां शब्दाभ्यामेकस्यैव समानधर्मस्य प्रतिपादनात् प्रतिवस्तूपमा। तदुक्तं काव्यप्रकाशे–'प्रतिवस्तूपमा तु सा सामान्यस्य द्विरेकस्य यत्र वाक्यद्वये स्थितिः'। प्रभातरलमिति विशेषणं च 'यद्यपि वसुधाया अपि नैकविधानि रजत-सुवर्ण-हीरक-पद्मराग-गारुत्मतादीनि प्रभावन्ति वसूनि समुत्पद्यन्ते, तथापि न तानि तादृग्भासुराणि यथा चन्द्रादीनीत्येवं रजतादिभ्यश्चन्द्रादेर्व्यतिरेकं व्यञ्जयचन्द्रादिसदृश्याः शकुन्तलाया अपि ततो व्यतिरेकं व्यनक्ति। श्रुतिवृत्त्यनुप्रासौ चात्र शब्दालङ्कारौ। शकुन्तलाविषयको दुष्यन्तनिष्ठः पूर्वरागश्चात्र प्राधान्येनाभिव्यज्यते। तदेवं रसालङ्कारादिमत्त्वेन सहृदयहृदयान्यावर्जयदिदं वाक्यं काव्यपदेन व्यपदिश्यते।

द्वितीयमुदाहरति। **उग्गिणेति**। अभिज्ञानशाकुन्तले चतुर्थाङ्के पतिगृहं प्रति प्रस्थितायाः शकुन्तलाया वियोगेन दुःखमनुभवत इव तपोवनस्य प्रियंवदाकृतं वर्णनमिदम्।

अत्र वने **मृगी**–कण्वाश्रमविहारिणी हरिणी, **उद्गीर्णदर्भकवला**–उद्गीर्णा मुखाद् बहिर्निष्कासिताः, दर्भकवलाः कुशग्रासा यया तादृशी, अस्तीति शेषः। **मयूरी परित्यक्तनर्तना**–परित्यक्तम्, नर्तनं गात्रविक्षेपः, यया तादृशी अस्ति। न केवलं चेतनानां तिरश्चामियं दशा, अपि तु **लताः**—वल्लर्यः, **अपसृतपाण्डुपत्राः**–अपसृतानि ऋतुवशाद् अधःपतितुं प्रवृत्तानि [ आदिकर्मणि क्तः ] पाण्डूनि–परिणतपीतानि, पत्राणि पर्णानि, याभ्यस्तथाभूताः सत्यः, **अश्रु**–नेत्रजलम्, **मुञ्चन्तीव**। शकुन्तलायाः पतिगृहप्रस्थानवृत्तान्तमनुनिशम्य तद्विरहकातरा मृगी चर्वितमपि कुशग्रासं न शशाक निगरितुम्। प्रत्युत तमुद्गीर्णवती। मयूर्यपि दुःखाकुला न नृत्यति। इमा लता अपि पीतपत्रापसरणव्याजेन दुःखादश्रूणि मुञ्चन्त्य इव लक्ष्यन्ते। इत्थं सकलमपि तपोवनं शकुन्तलाया वियोगेन नितान्तं दूयत इति भावः।

**उग्गिणेति**। हिरनी ने कुश का ग्रास उगल दिया। मोरनी ने नाचना छोड़ दिया। लताओं से पीले ( पके हुए ) पत्ते झड़ रहे हैं। मानो वे आँसू बहा रही हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



"अयि कठोर ! यशः किल ते प्रियं
किमयशो ननु घोरमतः परम् ? ।
किमभवद्विपिने हरिणीदृशः
कथय नाथ ! कथं बत मन्यसे ? ॥ ६ ॥" [ उत्तररामच० ]

---

यस्या वियोगेन तपोवनस्थास्तिर्यञ्चोऽप्येवं व्याकुलाः, जडप्राया लता अपि विषण्णाः, तस्या वियोगेन स्निग्धास्तपस्विनो निरतिशयं दुःखमनुभवन्तीत्यत्र किमु वक्तव्यमित्यर्थापत्तिरिह व्यज्यते।

'अनेन वध्वाः पतिगृहगमने पितृकुलजनस्य दुःखातिशयो ध्वन्यते। बन्धुव्यवहारसमारोपात् समासोक्तिरिति' राघवभट्टः। उत्तरार्धे उत्प्रेक्षा स्पष्टैव। इदमपि रमणीयव्यङ्ग्यालङ्कारादिभिः काव्यलक्षणं न जहाति। तृतीयमुदाहरणं पठति **अयि कठोरेति**। उत्तरचरिते तृतीयाङ्के सीतापरित्यागानन्तरं दण्डकावनं प्रविष्टं रामं प्रति वासन्त्या इयमुक्तिः।

**अयि** ! [ सम्बोधनार्थकमव्ययमिदम् ] **कठोर**–निर्दयहृदय ! [ निरपराधाया अन्तर्वत्न्याः पत्न्यास्त्यागेनेति भावः। अत एव नामाग्रहणमपि ]। **ते**–तव रामस्य, **यशः**–कीर्तिरेव, **प्रियम्**–[ अभीष्टम्, अस्ति, **किल**। किलेति प्रसिद्धौ। त्वं यशोगृध्नुरसीति लोके प्रसिद्धमस्तीति भावः। किन्तु **अतः**–अस्माद् निरपराधान्तर्वत्नीपत्नीत्यागजनितात्, **परम्**–अन्यद्, **घोरम्**–दारुणम्–**अयशः**–अपयशः, **किं ननु**–किमस्ति ?। नन्विति प्रश्ने। न किमपीति भावः। यशश्चिचीषुणा त्वया गर्भगुर्व्यपि प्रिया भार्या त्यक्ता। परं नैतेन तव यशो जातम्, प्रत्युत निरतिशयापकीर्तिरेवाजनि–इति भावः।

**हे नाथ विपिने**–हिंस्रजन्तुबहुले कानने, **हरिणीदृशः**–मृगलोचनायाः, स्वभावतो भीरोः भवन्निर्वासितायाः सीतायाः, **किम् अभवत्**–किं जातम्, इति जानासि किम्, **कथय**–ब्रूहि। **कथं मन्यसे**–तस्या विषये किं चिन्तयसि, अनुमिनोषि बतेति खेदे। हिंस्रपशुपरीते विपिने भीरुस्वभावां प्रियां भार्यां त्यजता त्वया तत्परिणतिरपि न विचारिता, हन्त अकरुणं दारुणमाचरितं त्वयेति भावः।

'यशोर्थं कृतात् कर्मणो यशसोऽनुत्पत्तेरनिष्टस्यापयशस उत्पत्तेश्च विषमालङ्कारः। श्रुत्यनुप्रासवृत्त्यनुप्रासौ शब्दालङ्कारौ। शङ्काख्यो व्यभिचारिभावः प्राधान्येन व्यज्यते। तदुक्तं दर्पणे–"परक्रौर्यात्मदोषाद्यैः शङ्कानर्थस्य तर्कणम्" इति। इदमपि रमणीयव्यङ्ग्यार्थालङ्कारयोगित्वात्काव्यमेव। उपर्युक्तानां पद्यानां काव्यत्वं समर्थयते–**एतानीति**। **कमपि**–वाचामगोचरम्। **आतन्वन्ति**–उत्पादयन्ति।

---

**अयि कठोरेति**। हे कठोरहृदय राम ! तुम्हें यश प्रिय है–ऐसी प्रसिद्धि है। इससे [ निरपराध गर्भवती पत्नी के त्याग से ] अधिक घोर अपयश क्या होगा ? जङ्गल में ( उस ) मृगनैनी का क्या बना। हे नाथ, कहो क्या सोचते हो ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


एतानि वाक्यानि पाठानन्तरमेव कमपि लोकोत्तरमानन्दं सहृदयानामातन्वन्तीति तेषां काव्यत्वम् ।

इति काव्यनिरूपणं नाम प्रथमशिखा ।

---

इति श्रीद्रोणाश्रमाभिजन–श्रीमदच्युतानन्दनन्दन–श्रीपरमेश्वरानन्दशर्मकृतायां बालबोधिन्यां काव्यदीपिकाव्याख्यायां काव्यनिरूपणनाम्नी प्रथमशिखा समाप्ता ।

---

एतानीति । ये वाक्य ( उपर्युक्त तीनों पद्य ) पढ़ते ही सहृदयों में किसी अलौकिक आनन्द को उत्पन्न करते हैं, इसलिए इन्हें काव्य माना जाता है ।

काव्यनिरूपणनामक प्रथम शिखा समाप्त।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

# द्वितीयशिखा

वाक्यस्वरूपमाह—

**अन्वितैकार्थबोधे तु वाक्यं पदसमुच्चयः।**

**पदानां सार्थकत्वेऽपि तेषामर्थो नान्वितः, वाक्यन्तु तदन्तर्गतपदार्थसमुदितमेकमर्थं बोधयति। यथा—"जननी सुताऽऽननं सस्नेहमीक्षते"।**

## द्वितीयशिखा

वाक्यार्थज्ञाने पदार्थज्ञानं कारणमिति न्यायेन काव्यस्वरूपप्रतिपादकवाक्यार्थज्ञानाय तद्घटकार्थपदावल्योः स्वरूपं परिचाययितुं द्वितीयां शिखामारभते। तत्र पदावली नाम वाक्यमिति पूर्वं व्याख्यातम्। अर्थवाक्ययोश्च वाक्यस्य श्रुतिगोचरत्वेन प्रथमोपस्थितत्वात् पूर्वं तदेव लक्षयति—**अन्वितैकेति**। **अन्वितैकार्थबोधे**—अन्वितस्य अन्वयविशिष्टस्य, एकस्य अखण्डस्य, समुदितस्य वा, अर्थस्य, बोधे बोधजनने, समर्थः, **पदसमुच्चयः**—पदानाम्, समुच्चयः समुदायः, **वाक्यम्** इति व्यपदिश्यते। यथा 'रामो ग्रामं गच्छति' इत वाक्यम्। अत्र हि रामः, ग्रामम्, गच्छति—इति त्रीणि पदानि सन्ति। राम इत्यस्य रामनामा कश्चन व्यक्तिविशेषोऽर्थः। ग्रामम् इत्यस्य ग्रामवृत्तिकर्मत्वमर्थः, गच्छतीत्यस्य एककर्तृकवर्तमानकालिकसंयोगानुकूलव्यापार इत्यर्थः। एतेषां पदार्थानाम् आकाङ्क्षा-योग्यता-सन्निधिवशात् परस्परमन्वयो भवति। तत्र रामपदार्थस्य गच्छतिपदार्थान्तर्गतकर्तृपदार्थेन सहाभेदेनान्वयः, ग्रामवृत्तिकर्मत्वरूपस्य ग्राममिति पदार्थस्य च गच्छतिपदार्थान्तर्गतव्यापारेण सह निरूपकत्वसम्बन्धेनान्वयः। तथा च रामाभिन्नैककर्तृक-वर्तमानकालिक-ग्रामवृत्तिकर्मत्वनिरूपकसंयोगानुकूलव्यापार इत्येको वाक्यार्थः फलति। स चोक्तरीत्या अभेद-निरूपकत्वान्वयविशिष्टः। तद्बोधकत्वाच्च "रामो ग्रामं गच्छति" इति पदसमुदायस्य वाक्यत्वम्।

वाक्यलक्षणे अन्वितेति विशेषणस्य व्यावर्त्यमाह **पदानामिति**। अयं भावः 'अर्थबोधकः पदसमुच्चयः वाक्यम्' इत्येवं वाक्यलक्षणे क्रियमाणे 'गौरश्वः पुरुषो हस्ती' इति पदसमुदायस्यापि वाक्यत्वं स्यात्। गौरित्यादिपदानां प्रत्येकं सार्थकत्वात्। अन्वितेति विशेषणोपादाने तु गौरित्यादिपदसमुदायस्य अन्वितार्थाबोधकत्वाद् न वाक्यत्वम्।

**तदन्तर्गतपदार्थसमुदितम्**—तस्य वाक्यस्य, अन्तर्गतानि पदानि, तेषामर्थाः समुदिताः परस्परान्विता यत्र तादृशम्, **एकम्**—अभिन्नम्।

## दूसरी शिखा

वाक्य का स्वरूप—

**अन्वितेति**। अन्वित—अन्वयविशिष्ट—एक अर्थ को बताने में समर्थ पदों के समूह को वाक्य कहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


पदस्वरूपम्—

"सुप्तिङन्तं पदं" प्राह पाणिनिर्मुनिसत्तमः ॥ १ ॥

सुवन्तः तिङन्तश्च शब्दः पदम् । यथा—"रामः" "भवति" इत्यादि ।

शब्दविभागः—

शब्दः पुनस्त्रिविधः, यथाऽऽह मम्मटभट्टः—

"स्याद्वाचको लाक्षणिकः शब्दोऽत्र व्यञ्जकस्त्रिधा" ।

---

अयं स्पष्टो भावः—वाक्यान्तर्गतानि पदानि पूर्वं पृथक् पृथक् स्वस्वान् अर्थान् प्रतिपादयन्ति, तदनु आकाङ्क्षादिवशात् तेषां परस्परमन्वयो जायते, तदन्वयविशिष्ट एवार्थो वाक्यार्थः । स चैकः, तद्बोधकं च वाक्यम् ।

केचित्तु पदार्थानां पदैः प्रतिपादितत्वात्, अन्वयस्य च पदाप्रतिपाद्यत्वात् स एव वाक्यार्थः । न त्वन्विताथों वाक्यार्थ इत्याहुः । वाक्यमुदाहरति यथेति । सस्नेहमितीक्षणक्रियाविशेषणम् । जनन्य-भिन्नैककर्तृक-वर्तमानकालिक-सुताननवृत्तिकर्मत्वनिरूपक - स्नेहविशिष्टचक्षुर्विषयीकरणानुकूलव्यापार इति वाक्यार्थः । पदसमुच्चयो वाक्यमित्युक्तम्, तत्र पदलक्षणमाह सुप्तिङन्तमिति । मुनिसत्तमः पाणिनिः सुवन्तं तिङन्तं च शब्दं पदमित्याह । इति वाक्ययोजना । अर्थो निगदव्याख्यातः ।

इष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली काव्यमित्यनेन शब्दार्थयोः काव्यशरीरत्वमुपक्षिप्तम् । तत्र शब्दं विभजते शब्दः पुनरिति । ननु विशेषजिज्ञासयेव विभागः क्रियते । विशेषजिज्ञासा च सामान्यज्ञाने जाते समुदेति । तथा च शब्दसामान्यलक्षणमकृत्वा तद्विभजनमनवसरग्रस्तम् इति चेदुच्यते । शब्दपदस्य योगार्थ एवेह शब्दसामान्यलक्षणं विज्ञेयम् । शब्द्यते आविष्क्रियते वक्तुरान्तराभिप्रायोऽनेनेति व्युत्पत्त्या शब्दपदमर्थबोधकपरम् । तथा च अर्थबोधनसामर्थ्यापरपर्यायशब्दनाव्यापारवत्त्वमेव शब्दसामान्यलक्षणमिह विज्ञेयम् । तच्च शब्दपदनिरुक्त्यैव स्पष्टं प्रतीयत इति न पृथगुक्तम् । मम्मटभट्टः काव्यप्रकाशकर्ता । स्यादिति । अत्र—काव्ये । वाचकः, लाक्षणिकः, व्यञ्जक इति त्रिधा शब्दः स्यादिति वाक्ययोजना । वाचकादीनां लक्षणान्यग्रे वक्ष्यन्ते । अर्थं विभक्तुं पूर्वं तस्य सामान्यलक्षण-

---

पदानामिति । पदों में प्रत्येक के सार्थक होने पर भी उनका अर्थ अन्वित नहीं होता । अर्थात् वे अन्वयविशिष्ट पदार्थ के बोधक नहीं होते, केवल ( अन्वय रहित ) पदार्थ के बोधक होते हैं । किन्तु वाक्य अपने अन्दर आए हुए पदों के अर्थों को मिलाकर ( परस्पर अन्वयविशिष्ट करके ) समुदाय रूप में एक अखण्ड अर्थ को बताता है । जैसे—'माता पुत्रके मुखको स्नेहपूर्वक देखती है ।

पद का स्वरूप— २

सुप्तिङन्तमिति । मुनियों में श्रेष्ठ पाणिनि सुबन्त और तिङन्त को पद कहते हैं ।

सुबन्त इति । सुबन्त और तिङन्त शब्द 'पद' है । जैसे 'रामः' 'भवति' आदि ।

शब्द-विभाग—

शब्द इति । शब्द तीन प्रकार का होता है । जैसा कि मम्मट भट्ट कहते हैं—

स्यादिति । काव्य में शब्द तीन प्रकार का होता है वाचक, लाक्षणिक और व्यञ्जक ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



**अर्थविभागः—**

**"वाच्यादयस्तदर्थाः स्युः' मम्मटेन यथोदिताः ॥ २ ॥**

**अर्थोऽपि शब्दप्रतिपाद्यस्त्रिविध एव,—वाच्यः, लक्ष्य, व्यङ्ग्यश्च ।**

**वाचकादीनां क्रमेण स्वरूपमाह**

**"साक्षात्सङ्केकितं योऽर्थमभिधत्ते स वाचकः" । [ मम्मटः ]**

---

माह **अर्थोऽपि शब्दप्रतिपाद्य** इति.। शब्दप्रतिपाद्यः–शब्दजन्यप्रतिपत्तिविषय इत्यर्थः। तथा च शब्दजन्यप्रतिपत्तिविषयत्वम् अर्थसामान्यलक्षणमिह विज्ञेयम्। विभजते **त्रिविध** इति। एवकारेण चतुर्थोऽर्थो व्यावर्त्यते। अयं भावः–शब्दनाव्यापारवतः शब्दत्वं प्रागुक्तम्। स च शब्दनाख्यः शब्द-व्यापारस्त्रिविधो भवति अभिधा, लक्षणा, व्यञ्जना चेति एभिस्त्रिभिः शब्दव्यापारैः प्रतिपाद्या अर्था अपि त्रय एव भवितुमर्हन्ति, न चत्वारस्ततोऽधिका वा त्रिविधमर्थं नामतो निर्दिशति वाच्य इत्यादि-भिः। तत्र अभिधया प्रतिपाद्योऽर्थो वाच्यः। लक्षणया प्रतिपाद्योऽर्थो लक्ष्यः। व्यञ्जनया प्रतिपा-द्योऽर्थो व्यङ्ग्यः।

परे तु शब्दस्य तात्पर्यार्थं नाम चतुर्थमप्यर्थमाहुः। अयं तेषामभिमानः—"रामो ग्रामं गच्छति" इत्यादिवाक्यप्रयोगस्थले राम इत्यादिपदानामर्थास्तदन्वयश्च प्रतीयन्ते। तत्र पदार्थास्तु पदैरभिधया प्रतिपादिताः। अन्वयार्थः पुनः केन व्यापारेण प्रतिपाद्यताम्? न च पदार्थं इव तदन्वयोऽप्यभिधयैव प्रतिपाद्यतामिति वाच्यम्; पदार्थमात्रं प्रतिपाद्य अभिधाया विरतत्वात्, शब्द-बुद्धिकर्मणां विरम्य व्यापाराभावात्। न चान्वयविशिष्ट एव पदार्थोऽभिधाया विषय इति स्वीकर-णीयम्। अनन्यलभ्यस्यैव अभिधाविषयत्वस्वीकारात्। अन्वयस्य तु आकाङ्क्षादिलभ्यत्वेन तदयोगात्। तथा च अभिधाद्यविषयं तमन्वयार्थं प्रतिपादयितुं वाक्यनिष्ठा तात्पर्यनाम्नी चतुर्थी वृत्तिरपि स्वीक्रियते। तद्बोधितत्वादेव च स तात्पर्यार्थं इत्युच्यते। वाक्यनिष्ठवृत्तिबोधितत्वाच्च तस्य वाक्यार्थत्वम्। तदित्थं चतस्रो वृत्तयः, तत्प्रतिपाद्याश्च चत्वार एवार्थाः। तदुक्तं मम्मटेन–'तात्पर्यार्थोऽपि केषुचित्' इति। 'त्रिविध एव इत्येवकारस्तु पदवृत्तिप्रतिपाद्यार्थाभिप्रायेण बोध्यः। अभिधाद्याः पदवृत्तयस्तिस्र एव। तत्प्रतिपाद्यार्था अपि वाच्यादयस्त्रय एव। तात्पर्यं तु न पदवृत्ति, अपि तु वाक्यवृत्ति। स्वोक्तार्थं मम्मटोक्त्या समर्थयते **वाच्यादय** इति। वाच्यादय इत्यादिपदेन लक्ष्यव्यङ्ग्यौ संग्राह्यौ। **तदर्थाः**—तेषां वाचकलाक्षणिकव्यञ्जकानां शब्दानाम्। अर्थाः प्रतिपाद्याः।

अथ वाचकं लक्षयति **साक्षादि**ति। यः–शब्दः **साक्षात्**–अव्यवधानेन, **संकेतितम्** 'अस्माच्छ-ब्दादयमर्थो बोद्धव्यः' इत्येवं कृतसंकेतम्, **अर्थम्**, **अभिधत्ते** प्रतिपादयति, **स** शब्दः, **वाचकः**-वाचक इत्युच्यते। तथा च 'साक्षात् संकेतितार्थप्रतिपादकशब्दत्वम्' इति वाचकलक्षणं फलितम्। साक्षात्प-

---

अर्थ विभाग—

**वाच्येति**। जैसा कि मम्मट ने कहा—वाच्यादि शब्द के अर्थ हैं।

**अर्थोऽपीति**। शब्द से बताया जाने वाला अर्थ भी तीन प्रकार का ही है—वाच्य, लक्ष्य और व्यङ्ग्य।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


साक्षात्सङ्केतितस्तु "अस्मात् शब्दादयमर्थो बोद्धव्यः" इति शब्दस्य स्वाभाविक्या शक्त्या, व्याकरणादिना वा नियन्त्रितः। इयमेव शक्तिः 'अभिधा' इत्युच्यते। अनया

दानुपादाने व्यवधानेन परम्परया संकेतितानामपि वटादिपदानां वाचकत्वं स्यात्। अयं भावः—'यन्नामा यत्र चैत्यादिर्विपयोऽपि स तादृशः' इत्यभियुक्तोक्त्या वटवृक्षयोगित्वाद् ग्रामोऽपि वट (वड़गांव) इत्युच्यते। यद्यपि वटपदस्य साक्षात् संकेतो वृक्षविशेष एव विद्यते, न तु तद्योगिनि ग्रामेऽपि। तत्र तस्य (वटपदस्य) वटवृक्षसंबन्धेनैव परम्परया संकेतितत्वात्, तथापि तस्य ग्रामबोधार्थं प्रयुक्तस्य वटपदस्य संकेतितार्थप्रतिपादकत्वं न विहन्यते। तथा च तस्यापि वाचकत्वं स्यात्। साक्षादिति संकेतविशेषणे तु ग्रामे वटपदस्य वृक्षसम्बन्धेन परम्परया संकेतितत्वान्न वाचकत्वम्। वृक्षवाचकवटपदात् ग्रामप्रतीतिस्तु लक्षणयैव सूपपादा। संकेतितपदानुपादाने स्पर्शादिवर्णानामपि साक्षान्माधुर्यादि-प्रतिपादकत्वेन तद्वाचकत्वं स्यात्। तदुपादाने तु स्पर्शादिवर्णानां माधुर्यादिष्वसङ्केतितत्वान्न वाच-कत्वम्। असंकेतेति प्रतिपादनं तु व्यञ्जनया बोध्यम्। चेष्टायामतिव्याप्तिवारणाय शब्दपदोपा-दानम्, तस्या अपि साक्षात्संकेतितार्थप्रतिपादकत्वात्। साक्षात् सङ्केतितमर्थमाह **साक्षात्सङ्के-तितस्त्विति**। अस्माच्छब्दादयमर्थो बोद्धव्य इतीच्छारूपसंकेतद्योतितया **स्वाभाविक्या** निसर्गसिद्धया **शक्त्या** शक्त्याख्येन अर्थबोधनसामर्थ्येनेत्यर्थः। व्याकरणादिनेत्यस्य शक्तिबोधनद्वारेति शेषः। व्याकरणादीनि न वस्तुतोऽर्थं निर्धारयन्ति, प्रत्युत तत्तदर्थैस्तत्तत्प्रकृतिप्रत्ययादीनां शक्तिरूपं सम्बन्धमेव ग्राहयन्ति। तस्यैव चार्थनियामकत्वम्। **नियन्त्रितः**—नियमितः, निर्धारित इति यावत्। व्याकरणादिनेत्यत्रादिपदेन उपमानादीनां संग्रहः। तदुक्तमन्यत्र—

> शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानकोशाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च।
> वाक्यस्य शेषाद् विवृतेर्वदन्ति सान्निध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः॥

तत्र दाक्ष्यादिशब्दानां दक्षाद्यपत्येषु शक्तिग्रहो व्याकरणात्। दाक्षिशब्दो हि 'अत इञ्' इत्यपत्याधिकारस्थेञ्प्रत्ययान्तः। गोसदृशपिण्डदर्शनानन्तरं 'यथा गौस्तथा गवयः' इत्युपमानवाक्य-स्मरणे गोसदृशे गवयपदशक्तिग्रह उपमानाद् भवति। विनायके विघ्नराजादिपदानां शक्तिग्रहो 'विनायको विघ्नराजद्वैमातुरगणाधिपाः' इति कोशाद्भवति। 'अयमश्वपदवाच्यः' इत्याप्तवाक्याद् एकशफे पशुविशेषे अश्वशब्दसंकेतो गृह्यते। व्यवहारात् शक्तिग्रहो यथा—स्वामिना सेवकमुद्दिश्य 'गामानय' इत्युक्ते तं सेवकं गवानयनप्रवृत्तं दृष्ट्वा तटस्थो बालः 'गामानय' इति वाक्यस्य 'सास्नादिमत्पिण्डानयनमर्थः' इति प्रथमं प्रतिपद्यते। अनन्तरं च 'गां बधान' 'अश्वमानय' इति पदान्तर-प्रवेश-त्यागाभ्यां गोशब्दस्य सास्नादिमति, आनयपदस्य आहरणे शक्तिमवधारयति। एष च व्यवहारः शक्तिग्राहकशिरोमणिरुच्यते। व्युत्पन्नाव्युत्पन्नसाधारणत्वात्। व्याकरणादीनि तु व्युत्पन्नान्

---

क्रमशः वाचक आदि शब्दों का स्वरूप—

**साक्षादिति।** जो शब्द साक्षात् सङ्केतित अर्थ को बताता है वह वाचक शब्द है।

**साक्षादिति।** 'इस शब्द से इस अर्थ को समझना चाहिये' इस प्रकार शब्द की स्वाभा-विक शक्ति से अथवा व्याकरणादि के द्वारा नियन्त्रित—निर्धारित—अर्थ ही 'साक्षात्सङ्केतित' अर्थ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



बोध्योऽर्थः वाच्यः, स च साक्षात् बोध्यत्वेन प्रधानतया मुख्यार्थं इत्यपि अभिधीयते।

---

प्रत्येव शक्तिग्राहकाणि। वाक्यस्य शेषात् शक्तिग्रहो यथा "यवमयश्चरुर्भवति" इति वैदिकवाक्ये यवपदस्य क संकेत इति जिज्ञासायां म्लेच्छप्रसिद्धया कङ्गौ सा प्रतीयते, आर्यप्रसिद्धया च दीर्घशूके। इत्थं विप्रत्तिपत्तौ—

"वसन्ते सर्वसस्यानां जायते पत्रशातनम्।
मोदमानाश्च तिष्ठन्ति यवाः कणिशशालिनः॥" इति

तद्वाक्यशेषेण यवपदस्य दीर्घशूके सङ्केतो निर्धार्यते। विवृतिर्विवरणम्। ततः शक्तिग्रहो यथा–'विडौजाः' इत्यस्य इन्द्र इति विवरणम्। अनेन विवरणेन विडौजश्शब्दस्य इन्द्रे शक्तिग्रहः। सिद्धपदसान्निध्यम्–गृहीतशक्तिकपदसाहचर्य्यम्। ततः शक्तिग्रहो यथा "इह प्रभिन्नकमलोदरे मधूनि मधुकरः पिबति" अत्र वाक्ये विकसितकमलाभ्यन्तरे भ्रमर एव मधु पिबतीति जानता जनेन गृहीतशक्तिककमलपदसान्निध्याद् मधुकरपदस्य भ्रमरे शक्तिर्गृह्यते। इयमेवेति। इयमेव शक्तिः–शब्दस्य स्वाभाविकमर्थबोधनसामर्थ्यम्। इदमत्र बोध्यम्–तत्तत्पदैस्तत्तदर्थप्रतीत्यनुपपत्त्या तत्तत्पदस्य तत्तदर्थेन सह सम्बन्धः स्वीक्रियते। तदुक्तं हरिणा—

सति प्रत्ययहेतुत्वे संबन्ध उपपद्यते।
शब्दस्यार्थैर्यतोऽतस्तत्सम्बन्धोऽस्तीति गम्यते॥

स एव पदपदार्थयोः संबन्धः शक्तिरित्युच्यत इति सर्वतन्त्रसिद्धान्तः। तस्याः सम्बन्धरूपायाः शक्तेः कीदृशं स्वरूपम् इत्यत्रास्ति तैर्थिकानां विप्रतिपत्तिः। तत्र जरन्नैयायिकाः 'अस्माच्छब्दादयमर्थो बोद्धव्यः' इत्यनादिरीश्वरेच्छारूपः संकेत एव शक्तिरित्याहुः। 'अस्माच्छब्दादयमर्थो बोद्धव्यः' इतीच्छैव संकेतः, न त्वीश्वरेच्छेति नवीनाः। मीमांसकास्तु अर्थप्रतीतिजनने यच्छब्दस्य स्वतः सामर्थ्यम्, तदेव शक्तिः। सा च पदार्थान्तरम् इत्याहुः।

तदुक्तम्—

बोद्धव्योऽस्मात् पदादर्थोऽयमित्याकारिकेशितुः।
इच्छापि संकेताख्यात्र शक्तिरित्याहुरौहिकाः॥

औहिकाः–तार्किकाः।

अर्थप्रतीतिजनने स्वतःसामर्थ्यलक्षणम्।
शब्देनार्थस्य संबन्धं शक्तिं मीमांसका जगुः॥

शब्दानामनादिर्बोधजनकत्वलक्षणा या योग्यता सैव शक्तिः, पदपदार्थसम्बन्धश्चेति वैयाकरणाः॥
तदुक्तं हरिणा—

---

कहलाता। इसी स्वाभाविक शक्ति को 'अभिधा' कहते हैं। इस (अभिधा) के द्वारा बोधित अर्थ को 'वाच्य' कहते हैं। और वह वाच्य अर्थ ही शब्द से प्रथम उपस्थित होने के कारण प्रधान होने से 'मुख्यार्थ' भी कहलाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



यथा—गोशब्दोऽभिधया गलकम्बलादिमज्जीवविशेषरूपम्, पाचकशब्दश्च पाककर्तृरूपं चार्थं साक्षाद् बोधयति ॥

---

इन्द्रियाणां स्वविषयेष्वनादिर्योग्यता यथा।
अनादिरर्थैः शब्दानां सम्बन्धो योग्यता तथा॥

**योग्यता**—बोधजनकत्वरूपा। संकेतस्तु मीमांसकादिमते शक्तेर्ग्राहकः। न तु शक्त्यभिन्नः। ग्राह्यग्राहकयोर्भेदात्। तदुक्तं योगभाष्ये—

'संकेतस्तूक्तरूप ईश्वरस्य स्थितमेव संम्बन्धमभिनयति।
यथावस्थितः पितापुत्रयोः संम्बन्धः संकेतेनावद्योत्यते॥' इति

वाच्यं लक्षयति **अनयेति**। स एव वाच्यार्थोऽभिधाख्यशक्तिविषयत्वाच्छक्य इत्यप्युच्यते। वाच्यस्य मुख्यार्थत्वं प्रतिपादयति **स चेति**। **साक्षाद् बोध्यत्वेन**-शब्दात् प्रथममुपस्थितत्वेनेत्यर्थः। अयं भावः—चतुर्विधोऽर्थः—शक्यः ( वाच्यः ), लक्ष्यः, व्यङ्ग्यः, तात्पर्यार्थश्चेति पूर्वं व्याख्यातम्। तेष्वर्थेषु लक्ष्यव्यङ्ग्यतात्पर्यार्थेभ्यः प्राक् शक्यस्यैवोपस्थितिर्जायत इत्यन्तरङ्गत्वात् तस्यैव प्रधानत्वं मुखवन्मुख्यत्वं च। लक्ष्यार्थस्तु शक्यव्यवधानेन उपतिष्ठते। व्यङ्ग्यार्थोऽभिधामूलकव्यञ्जनास्थले शक्यव्यवधानेन, लक्षणामूलव्यञ्जनास्थले शक्यलक्ष्योभयव्यवधानेन। तात्पर्यार्थोऽपि शक्यार्थान्वयरूपः शक्यव्यवधानेनैव सर्वत्रोपतिष्ठत इति न तेषां मुख्यत्वम्। व्यङ्ग्यस्य रसादेर्मुख्यत्वव्यवहारस्तु काव्यात्मतया बोध्यः। साक्षात् संकेतितमुदाहरति **यथा गोशब्द इति**। यद्यपि गोशब्दस्य गलकम्बलादिमत्यां पाचकशब्दस्य पचिक्रियाकर्तृरूपायां व्यक्तौ संकेतप्रतिपादनेन व्यक्तिशक्तिवाद इहेष्टतया प्रतीयते, तथापि व्यक्तिशक्तिवादस्य भाष्यकाराद्यनभिमततया मम्मटाद्यालङ्कारिकानभ्युपगतत्वेन च ग्रन्थोऽयं शाब्दबोधे व्यक्तिभानमावश्यकम्, प्रवृत्तिनिवृत्त्यात्मकव्यवहारस्य व्यक्तिमात्रसाध्यत्वादित्येतत्प्रतिपादनपरतया कथंचिन्नेयः।

अयं भावः—चतुर्विधाः खलु शब्दा भवन्ति। जातिशब्दाः, गुणशब्दाः, क्रियाशब्दाः, द्रव्यशब्दाश्चेति। तत्र येषां शब्दानां गोत्व-घटत्वादिजातौ संकेतस्ते जातिशब्दाः। यथा गोघटादयः। येषां पचन-पठनादिक्रियायां संकेतस्ते क्रियाशब्दाः पाचकपाठकादयः। येषां शुक्लनीलादिगुणेषु संकेतस्ते गुणशब्दाः शुक्लनीलादयः। येषामेकव्यक्तौ संकेतस्ते द्रव्यशब्दा हरिहरडित्थडवित्थादयः। तदुक्तं भाष्यकृता—

'चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिर्जातिशब्दा गुणशब्दाः क्रियाशब्दा यदृच्छाशब्दाश्चतुर्थाः' इति। यदृच्छाशब्दा द्रव्यशब्दा इत्यनर्थान्तरम्।

ननु गौः शुक्लश्चल आनीयतामित्युक्ते गोत्वजाति-शुक्लगुण—चलनक्रियावती व्यक्तिरेव आनीयते, न पुनर्गोत्वादयः, तेषामानयनासंभवादिति व्यवहारनिर्वाहकतया गवादिव्यक्तावेव संकेत उचितः, न तु जात्याद्युपाधिषु। इति चेत् सत्यम्। आनन्त्याद् व्यभिचाराच्च व्यक्तिशक्ति-

---

जैसे-'गो' शब्द अभिधा से सास्नादियुक्त जीवविशेष को और 'पाचक' शब्द पाककर्ता रूप अर्थ को साक्षात् बताता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



लक्षणया अर्थबोधकः शब्दो लाक्षणिक, तया बोध्योऽर्थः लक्ष्यः।

लक्षणास्वरूपमाह विश्वनाथः—

"मुख्यार्थबाधे तद्युक्तो ययाऽन्योऽर्थः प्रतीयते।
रूढेः प्रयोजनाद्वाऽसौ लक्षणा शक्तिरर्पिता" ॥ ३ ॥

---

वादो न स्वीक्रियते। अयमभिसंधिः—व्यक्तिशक्तिवादे किं सर्वासु व्यक्तिषु युगपत् संकेतग्रहः, उतैकस्यां कस्याञ्चिद् व्यक्तौ? तत्र नाद्यः पक्षः, 'अनन्तानां व्यक्तीनां युगपदुपस्थानासंभवात्। नापि द्वितीयः पक्षः। यस्यां व्यक्तौ संकेतग्रहस्तदतिरिक्तायाः शब्देन भानासंभवात्। अगृहीत-संकेताया अपि भानस्वीकारे 'शब्दबोधे संकेतजन्यपदार्थोपस्थितिः कारणम्' इत्येतस्य नियमस्य व्यभिचारः स्यात्। गोपदादिव घटपदादपि तस्या व्यक्तेर्भानप्रसङ्गाच्च। संकेतग्रहाभावस्य उभयत्र तुल्यत्वात्।

किं च व्यक्तिशक्तिवादे गौः शुक्लश्चल इति त्रयाणामपि शब्दानामेकव्यक्तिवाचकत्वात् पर्यायत्वं स्यात्। तथा च घटः कलश इत्यादिवत् सहप्रयोगो न स्यात्। उपाधिशक्तिवादे तु जात्याद्युपाधीनां स्वरूपतो लक्षणतश्च भिन्नत्वात् तद्वाचकानां न पर्यायत्वम्। तथा च सहप्रयोग उपपद्यते। न चोपाधिशक्तिवादे व्यक्तिभानानुपपत्तिः, व्यक्त्यविनाभावित्वात्तु उपाधिना व्यक्तेराक्षेपात्। यथा क्रियतामित्यत्र कर्ता, कुर्वित्यत्र कर्म आक्षिप्यते। आक्षेपोऽत्रानुमानम्। केचित्तु व्याप्त्यादि-ज्ञानमन्तरेणापि व्यक्तेरनुभवाद् आक्षेपोऽत्र नानुमानम् अपि तु स्मरणम्। गोत्वादिप्रकारक-गवादिविशेष्यकस्मरणाभावेन गोत्वविशिष्टशब्दबोधानुपपत्तेरित्याहुः।

लाक्षणिकं शब्दं लक्षयति लक्षणयेति। लक्षणया-लक्षणानामकेन व्यापारेण। लक्ष्यं लक्षयति तयेति। लक्षणायाः स्वरूपमाह मुख्यार्थेति। मुख्यार्थबाधे—मुख्यस्य वाच्यस्य, अर्थस्य बाधे अन्वयानुपपत्तौ तात्पर्याविषयत्वे वा (सति सप्तमी) रूढेः—प्रसिद्धेः, अनादिप्रयोगप्रवाहात्, वा—अथवा प्रयोजनाद् विवक्षितार्थे यत्किञ्चिदतिशयप्रतिपादनरूपाद्, हेतोः तद्युक्तः—तेन मुख्यार्थेन, युक्तः सम्बद्धः, अन्यः—मुख्यार्थाद्भिन्नः, अर्थः, यया—शब्दस्य शक्त्या (व्यापारेण) प्रतीयते—अनुभूयते, असौ शक्तिः, लक्षणा—अर्थान्तरस्य लक्षणाद् बोधनाद् लक्षणेति नाम्ना व्यपदिश्यते। किं च सा शब्दशक्तिरभिधेव न स्वाभाविकी, अपितु अर्पिता—शब्दे आरोपिता। वस्तुतस्तु सा मुख्यार्थनिष्ठा। मुख्यार्थेनैव संयोग-सामीप्यादिसंबन्धेन इतरार्थस्य प्रत्यायनात्। तथा च मुख्यार्थबाध-रूढिप्रयोजनान्यतर-हेतुकमुख्यार्थसम्बन्ध्यर्थप्रतिपादकत्वमिति लक्षणाया

---

लक्षणावृत्ति के द्वारा अर्थ को बताने वाला शब्द 'लाक्षणिक' कहलाता है। उसके (लक्षणा के) द्वारा बोध्य अर्थ को 'लक्ष्य' कहते हैं।

विश्वनाथ ने लक्षणा का स्वरूप यों लिखा है—मुख्यार्थेति। मुख्यार्थ का बाध होने पर रूढि (प्रसिद्धि) के कारण अथवा किसी प्रयोजन विशेष को सूचित करने के लिये, मुख्यार्थ से सम्बद्ध दूसरा अर्थ जिस शक्ति से बताया जाता है, उसका नाम 'लक्षणा' है। यह शक्ति (लक्षणा) शब्द में अर्पित—आरोपित—अर्थात् कल्पित है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



**मुख्यार्थस्य अन्वयानुपपत्तिग्रहे तदर्थसम्बन्धी अन्योऽर्थः रूढिप्रयोजनयोरन्तरस्मिन् हेतौ सम्भवति यया प्रतीयते, सा वृत्तिर्लक्षणा नाम। रूढिः—प्रसिद्धिः; यथा "कलिङ्गः साहसिकः" इत्यत्र कलिङ्गशब्दो देशविशेषरूपे स्वाभिधेयेऽसम्भवन् तद्देशवासिनः पुरुषान् बोधयति। प्रसिद्धिश्च अत्र हेतुः। "गङ्गायां घोषः" इत्यत्र च गङ्गाशब्दः प्रवाहविशेषरूपं स्वाभिधेयमर्थं बोधयितुमसमर्थः सामीप्यसम्बन्धसम्बन्धिनं तटं बोधयति। हेतुश्चात्र शीतत्वपावनत्वातिशयबोधनरूपं प्रयोजनम्।**

---

लक्षणं फलितम्। मुख्यार्थसम्बन्ध्यर्थप्रतिपादिकायां व्यञ्जनायां मुख्यार्थबाधादिहेतुकत्वाभावान्नातिव्याप्तिः। 'रूपवान् घटः' इत्यत्र लक्षणया 'रूपं घटः' इति प्रयोगवारणाय रूढिप्रयोजनान्यतरहेतुकत्वमुक्तम्। तत्र रूढिप्रयोजनयोरेकतरस्याप्यभावाल्लक्षणैव न संभवतीति। अत एवैतादृशप्रयोगेषु नेयार्थत्वं दोषो मन्यते।

कारिकां व्याचष्टे **मुख्यार्थस्येति**। **अन्वयानुपपत्तिग्रहे**—अन्वयस्य पदार्थसंसर्गस्य, अनुपपत्तेः बाधस्य, ग्रहे ज्ञाने। एतेन मुख्यार्थबाध इत्युक्तम्। परमिदं प्राचामनुरोधेन। वस्तुतस्तु मुख्यार्थे तात्पर्यानुपपत्तिर्मुख्यार्थबाधः। अन्यथा काकेभ्यो दधि रक्ष्यतामित्यादौ लक्षणा न स्यात्। काकेषु दधिरक्षणापादानत्वान्वयस्य संभवाद् अन्वयानुपपत्तेरभावाद्। तात्पर्यानुपपत्तेर्मुख्यार्थबाधत्वे भवत्येव काकपदस्येह दध्युपघातके लक्षणा। न ह्यत्र काकत्वेन काकास्तात्पर्यविषयाः, अपि तु उपघातकत्वेन। किञ्चायं मुख्यार्थबाधो न स्वरूपेण हेतुः, अपि तु ज्ञायमानः, अत एव 'ग्रहे' इत्युक्तम्। अत एव गृहीतबाधस्य न लक्ष्यार्थबोधः। **तदर्थसम्बन्धी** मुख्यार्थसम्बन्धी, **वृत्तिः**—व्यापारः, वृत्तिः शक्तिः, व्यापार इत्यनर्थान्तरम्। **प्रसिद्धिः**—अनादिप्रयोगप्रवाहः। रूढिहेतुकां लक्षणामुदाहरति यथा **कलिङ्ग** इति। **स्वाभिधेये**—अभिधया प्रतिपाद्ये स्ववाच्येऽर्थे, **असम्भवन्**—अनुपपद्यमानः, साहसस्य चेतनधर्मस्य देशविशेषेऽसंभवादिति भावः। **तद्देशवासिनः**—कलिङ्गदेशसंयुक्तान्, एतेन देशतद्वासिनोः शक्यलक्ष्ययोः संयोगसम्बन्धोऽप्युक्तो वेदितव्यः। **बोधयति** लक्षणया प्रतिपादयति। रूढिमूला चेयं लक्षणेत्यत आह **प्रसिद्धिश्चेति** देशवाचिनः कलिङ्गशब्दस्य तद्देशवासिषु प्रयोगो रूढ इति भावः। प्रयोजनमूलां लक्षणामुदाहरति **गङ्गायामिति**। **असमर्थ** इति, असामर्थ्यं च तत्र घोषाधिकरणत्वान्वयानुपपत्तेः वक्तृतात्पर्यविषयत्वाभावाद्वा बोध्यम्। **सामीप्येति**—सामीप्यरूपेण सम्बन्धेन सम्बन्धिनमिति विग्रहः। **बोधयति** लक्षयति। प्रयोजनमूलत्वमस्याः समर्थयते **हेतुश्चात्रेति**। शीतत्वादेरित्यस्य आदौ 'लक्ष्ये तटे' इत्यध्याहरणीयम्।

---

**मुख्यार्थस्येति**। मुख्यार्थ के अन्वय की अनुपपत्ति—असङ्गति का ज्ञान होने पर रूढ़ि अथवा प्रयोजन में से किसी भी एक हेतु के रहने से, मुख्यार्थसम्बन्धी दूसरा अर्थ जिससे प्रतीत हो वह लक्षणा नाम की वृत्ति है।

रूढ़ि का अर्थ है प्रसिद्धि। जैसे 'कलिङ्ग साहसिक है' यहां 'कलिङ्ग' शब्द अपने वाच्य अर्थ देशविशेष में असङ्गत होकर कलिङ्गदेशवासी पुरुषों का बोधक होता है। यहाँ प्रसिद्धि—रूढि—हेतु है। और 'गङ्गायां घोषः' यहाँ गङ्गा शब्द अपने वाच्य अर्थ जल-प्रवाह के घोष का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



"उपकृतं बहु तत्र किमुच्यते ? सुजनता प्रथिता भवता परम्।
विदधदीदृशमेव सदा सखे ! सुखितमाऽऽस्स्व ततः शरदां शतम्" ॥ ५ ॥

इयं हि कञ्चिदपकारिणं प्रत्युक्तिरिति मुख्यार्थस्यान्वयानुपपत्तेः वैपरीत्यसम्बन्धेन अपकारादिरूपमर्थं ज्ञापयति, अपकाराद्यतिशयद्योतनञ्चात्र प्रयोजनम्।

लक्षणाविभागः—

इत्येवं सा द्विविधा रूढिमूला प्रयोजनमूला च।
सेयं पुनर्द्विधा स्यादुपादानं लक्षणञ्चेति ॥ ५ ॥

---

प्रयोजनवत्या उदाहरणान्तरं निदर्शयति उपकृतमिति। कस्य कवेः कुत्रत्यमिदं पद्यमिति विशिष्य न ज्ञायते। 'शब्दव्यापारविचारे' 'काव्यप्रकाशे' च श्रीमम्मटभट्टैरुदाहृतमिदं पद्यम्। बहुभिरपकारैस्तप्यमानस्य कस्यचित्स्वापकारिणं प्रतीयमुक्तिः। त्वया बहु—अत्यधिकम्, उपकृतम्—उपकारः कृतः, ममेति शेषः। तत्र—त्वत्कृतोपकारविषये, किम् उच्यते—किं वर्णनीयम्, अत्यधिकत्वान्न त उपकारा वर्णयितुं शक्यन्त इति भावः। भवता, परम्—निरतिशयं यथा स्यात् तथा, सुजनता—सौजन्यम्, प्रथिता प्रकाशिता। एतदुपकारकरणेन भवता स्वकीयः सौजन्यातिशय एव प्रकटित इति भावः। ततः—यस्मात् सुजनता प्रथिता तस्मात्कारणादित्यर्थः, हे सखे सदा, ईदृशमेव—एवंविधमेव, सौजन्यम्, विदधत् कुर्वन्, प्रकटयन्निति यावत्। शरदाम्—वर्षाणाम्, शतम्, (कालात्यन्तसंयोगे द्वितीया) चिरमिति यावत्। सुखितम्—सुखपूर्वकं यथा स्यात् तथा, आस्स्व—जीवेति भावः। इति पद्यस्य शब्दार्थः। अत्रापकारिणं प्रति तदुपकारित्वसौजन्यादि प्रतिपाद्यमानमसङ्गतं सद्विपरीतं लक्षयति। तद्यथा 'त्वया बह्वपकृतम्, हे शत्रो एवं कुर्वंस्त्वं चिरं दुःखितमास्स्व। उपकारादिमुख्यार्थैरपकारादिलक्ष्यार्थानां वैपरीत्यं सम्बन्धः। लक्ष्यमाणेषु अपकारादिषु सातिशयत्वबोधनं च प्रयोजनम्।

मुख्यार्थबाधोपपत्तये पद्यस्य प्रसङ्गं वर्णयति—इयं हीति। लक्षणामुपपादयति मुख्यार्थस्येति। प्रयोजनं दर्शयति—अपकाराद्यतिशयेति।

अथेदानीं लक्षणां विभजते—इत्येवमिति।

इत्येवम्—पूर्वोक्तेन प्रकारेण, सा—लक्षणा, रूढिमूला—रूढिहेतुका, प्रयोजनमूला च—प्रयोजनहेतुका च—इति द्विविधा—द्विप्रकारा भवति। सा—पूर्ववर्णिता, इयम्—लक्षणा, उपादानम्,

---

आधार होने में असमर्थ होने से, सामीप्य सम्बन्ध से, प्रवाह-सम्बन्धी तट को बताता है। तट में शीतत्व पावनत्व के अतिशय—अधिकता का ज्ञापनरूप प्रयोजन ही यहां हेतु है।

उपकृतमिति। आपने बहुत उपकार किया, इस विषय में क्या कहा जाय। आपने बड़ा ही सौजन्य दर्शाया। हे मित्र ! सदा ऐसा ही करते हुए सौ वर्ष तक सुखपूर्वक जीओ।

इयमिति। यह किसी अपकारी के प्रति उक्ति है, और मुख्यार्थ के अन्वय की अनुपपत्ति (मुख्यार्थबाध) के कारण वैपरीत्य सम्बन्ध से अपकारादि रूप अर्थ का बोधन करती है। अपकारादि के आधिक्य का द्योतन करना यहाँ प्रयोजन है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



उपादानलक्षणा, लक्षणलक्षणा चेति सा लक्षणा पुनर्द्विविधा।

उपादानलक्षणा—

स्वसिद्धये पराऽऽक्षेपेऽसावुपादानलक्षणा॥

वाच्यार्थस्य अन्वयसिद्ध्यर्थं लक्ष्यार्थस्य बोधने वाच्यार्थस्यापि उपादानादियमु-

---

लक्षणं च, इति—उपादानलक्षणा, लक्षणलक्षणा इत्येवं प्रकारान्तरेण, पुनः—भूयोऽपि, द्विधा स्यात्—द्वेधा विभक्तुं शक्यत इति भावः। कारिकां व्याख्याति—उपादानलक्षणेति।

उपादानलक्षणां लक्षयति—स्वसिद्धय इति। स्वसिद्धये—स्वस्य वाच्यार्थस्य सिद्धये समभिव्याहृतपदार्थान्वयसिद्धये, पराक्षेपे—परस्य अवाच्यस्यार्थस्य, आक्षेपे—बोधने, या लक्षणा उपयुज्यते असौ, उपादानलक्षणा, अस्ति। कारिकाशं व्याख्याति—वाच्यार्थस्येति। अस्या लक्षणाया 'उपादानम्' इति नामकरणे हेतुमाह—वाच्यार्थस्यापीति।

उपादानात्—ग्रहणात्, प्रत्यायनादिति भावः। अयं भावः—उपादानलक्षणायां यद्यपि परार्थो लक्ष्यते परं स्वार्थस्यैकान्ततस्त्यागो नास्ति। स्वार्थोपकारितयैव तत्र परार्थस्याक्षेपणात्, स्वार्थत्यागे हि परार्थः कस्योपकाराय स्यात्। उपादीयते—गृह्यते, प्रतिपाद्यते स्वार्थोऽप्यनेनेत्युपादानमित्युपादानशब्दार्थः।

तथा च वाच्यार्थापरित्यागेन लक्ष्यार्थबोधिका लक्षणा उपादानलक्षणेति फलितार्थः। उपादानलक्षणामुदाहरति—यथेति। अयं भावः—यष्टयः प्रविशन्तीत्यत्र यष्टयः प्रवेशनक्रियाकर्तृत्वेनोपात्ताः, न च जडानां तासां कर्तृत्वं घटते। अस्वतन्त्रत्वात्। 'स्वतन्त्रः कर्ता' इति स्वतन्त्रस्यैव कर्तृत्वाख्यानात्। तथा चात्र यष्टिशब्दवाच्यार्थभूतानां यष्टीनां समभिव्याहृतप्रवेशनक्रियायामन्वयसिद्धये तत्संयोगिनः पुरुषा लक्ष्यन्ते। न च यष्टिशब्दार्थस्त्यज्यते। पुरुषसहकारेण यष्टिप्रवेशस्यापि विवक्षितत्वात्। अत्र वाच्यलक्ष्यार्थयोर्यष्टिपुरुषयोः संयोगसम्बन्धः। यष्टिगतकाठोर्यस्य तद्गतबाहुल्यस्य वा लक्ष्यार्थेषु प्रतीतिः प्रयोजनम्। इदं प्रयोजनमूलाया उपादान-

---

लक्षण का विभाग—

**इत्येवमिति।** इस प्रकार यह लक्षणा दो प्रकार की हुई—रूढिमूला और प्रयोजनमूला। 'उपादानलक्षणा' और 'लक्षणलक्षणा' इस रूप से फिर इसके दो भेद होते हैं।

उपादानलक्षणा—

**स्वेति।** स्वसिद्धि के लिये दूसरे अर्थ का आक्षेप—बोध—कराने में जिस लक्षणा का उपयोग होता है वह उपादानलक्षणा है।

**वाच्येति।** वाच्य अर्थ के अन्वय की सिद्धि के लिये लक्ष्यार्थ का बोध कराने में वाच्य अर्थ का भी उपादान—ग्रहण—होने से यह लक्षणा उपादानलक्षणा कहाती है। जैसे "यष्टियां प्रवेश करती हैं" यहाँ यष्टियों का स्वतन्त्र रूप से प्रवेशन क्रिया के साथ अन्वय असम्भव है, अतः प्रवेशन क्रिया में उनका अन्वय कराने के लिये यष्टिसंयोगी—यष्टिधारी—पुरुषों का आक्षेप किया जाता है, स्वार्थ का त्याग न होने से इस लक्षणा को 'अजहत्स्वार्था' भी कहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



पादानलक्षणा। यथा—"यष्टयः प्रविशन्ति" इत्यत्र यष्टीनां स्वतः प्रवेशक्रियायाऽन्वयासम्भवात् प्रवेशान्वयार्थं स्वसंयोगिनः पुरुषा आक्षिप्यन्ते। अत्र च स्वार्थस्यापरित्यागात् इयम् "अजहत्स्वार्था" इति च कथ्यते।

लक्षणलक्षणा—

परार्थमात्रबोधे तु भवेल्लक्षणलक्षणा ॥ ६ ॥

सर्वथा स्वार्थपरित्यागेनान्यार्थमात्रबोधने इयं लक्षणलक्षणा। अत एवासौ "जहत्स्वार्था" इति च भण्यते। यथा पूर्वोदाहृते—"उपकृतं बहु तत्र" इत्यादौ।

व्यञ्जनयाऽर्थबोधकः शब्दः व्यञ्जकः, तया बोध्योऽर्थो व्यङ्ग्यः।

---

लक्षणाया उदाहरणमुदाहृतम्। रूढिमूलाप्येषा भवति। यथा 'श्वेतो धावति' इति। अत्र श्वेतस्य गुणस्याचेतनतया धावनक्रियायामन्वयायोग्यतया तेन समवायसंबन्धेन स्वसम्बन्धी अश्वार्थो लक्ष्यते। अनादिप्रयोगप्रवाहाद् रूढिरियम्।

आक्षिप्यन्ते—लक्ष्यन्ते। अस्या लक्षणायाः सहेतुकं संज्ञान्तरमाह—स्वार्थापरित्यागादिति। अजहत्स्वार्था—अजहत्—अत्यजम्, स्वार्थो मुख्यार्थो यां वृत्ति सा इति विग्रहः। इति तर्कवागीशः। न जहत् स्वं पदं यं स इति अजहत्स्वः। अजहत्स्वः अर्थो यस्यां सा अजहत्स्वार्था, इति श्रीज्ञानेन्द्रसरस्वती। भाष्यप्रयोगाद् राजदन्तादित्वाद् वा स्वशब्दस्य परनिपातः। परे तु अजहदिति कर्मकर्तरि लट्। न जहत् हीयमानः स्वार्थो यत्रेति विग्रहः। जहातेः कर्तृस्थक्रियत्वान्न यगादय इत्याहुः। लक्षणलक्षणां लक्षयति—परार्थमात्रेति। परार्थमात्रबोधे—परः अर्थ एवेति परार्थमात्रम्, तस्य केवलस्य अवाच्यार्थस्य, बोधे बोधने तु, लक्षणलक्षणा, भवेत्। यया लक्षणया केवलमन्यार्थ एव बोध्यते, न तु शक्यार्थोऽपि सा लक्षणलक्षणेति व्यपदिश्यत इति भावः। तथा च शक्यार्थ-परित्यागेन लक्ष्यार्थबोधिका लक्षणा लक्षणलक्षणेति फलितम्। लक्षणमिह स्वार्थत्यागः, लक्षणेन लक्षणा लक्षणलक्षणेति नामनिरुक्तिर्विज्ञेया। कारिकांशं व्याख्याति सर्वथेति। सर्वथा येन केनापि रूपेणेत्यर्थः। तेन काकेभ्यो दधि रक्ष्यतामित्यत्र यद्यपि काकत्वेन स्वार्थस्त्यज्यते, तथापि दध्युपघातकत्वेन तदुपादानान्न लक्षणलक्षणा, किन्तु उपादानलक्षणैव। अत एव स्वार्थपरित्यागादेव। जहत्स्वार्था—अजहत्स्वार्थापदवद् विग्रहः। उदाहरति यथेति। उपकृतमित्यादिपद्यं पूर्वं व्याख्यातम्। इयं प्रयोजनवत्या लक्षणलक्षणाया उदाहरणम्। रूढिमूलापीयं भवति यथा 'कलिङ्गः साहसिकः' इति। इदमपि व्याख्यातपूर्वम्।

व्यञ्जकशब्दं लक्षयति व्यञ्जनयेति। व्यङ्ग्यार्थमाह तया बोध्य इति।

---

लक्षणलक्षणा—

परार्थेति। शक्यार्थरहित केवल परार्थ का बोध कराने में जिस लक्षणा का उपयोग होता है वह 'लक्षणलक्षणा' है।

सवर्थेति। स्वार्थ का एकदम त्याग करके केवल अन्यार्थ का ज्ञान कराने में जो लक्षणा होती है, उसे 'लक्षणलक्षणा' कहते हैं। इसीलिये इसे 'जहत्स्वार्था' भी कहते हैं। पूर्वोदाहृत 'उपकृतं बहु' इत्यादि पद्य में लक्षणलक्षणा समझना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizaqtion by eGangotri


व्यञ्जनास्वरूपमाह—

"विरतास्वभिधाद्यासु ययाऽर्थो बोध्यतेऽपरः।
सा वृत्तिर्व्यञ्जना नाम शब्दस्यार्थादिकस्य च" ॥ ७॥

(विश्वनाथः)

अभिधायां लक्षणायाञ्च स्वं स्वमर्थं बोधयित्वा विरतायां ययाऽपरोऽर्थो बोध्यते, सा वृत्तिर्व्यञ्जना नाम।

---

व्यञ्जनां लक्षयति **विरतास्विति**। **अभिधाद्यासु**—अभिधा आद्या यासां ताः, तासु। आद्यपदेन लक्षणातात्पर्ययोर्ग्रहणम्। तथा च अभिधा-लक्षणातात्पर्याख्यासु तिसृषु वृत्तिषु इत्यर्थः, **विरतासु** वाच्य-लक्ष्य-वाक्यार्थरूपान् स्वस्वार्थान् प्रतिपाद्य क्षीणासु, **यया** वृत्त्या, **अपरः**—वाच्यादिभिन्नः, **अर्थः**, **बोध्यते**—व्यज्यते, **सा शब्दस्य**—पद-वाक्य-प्रबन्धरूपस्य शब्दस्य, **अर्थादिकस्य** च, आदिपदेन प्रकृतिप्रत्ययवर्ण-रचनानां चेत्यर्थः। **वृत्तिः**—व्यापारः **व्यञ्जना नाम**—व्यज्यतेऽनयेति व्युत्पत्त्या व्यञ्जनेति नाम्ना व्यपदिश्यत इति भावः। यद्यपि प्रकृतिप्रत्ययादयोऽपि शब्दत्वं नातिवर्तन्त इति शब्दस्येत्युक्त्यैव तत्संग्रहे सिद्धे अर्थादिकस्य चेत्यादिपदोपादानं नातीवोपयुक्तम्, तथापि प्रकृतिप्रत्यययोः पदादिवत् स्वातन्त्र्येण प्रयोगानर्हतया वर्णरचनयोश्च नितान्तमवाचकतया तत्संग्रहार्थमादिपदमुपात्तं वेदितव्यम्। श्रोत्रग्राह्यत्वे सति गुणत्वलक्षणं शब्दत्वं तु तेषामविशिष्टम्। शब्दस्य अर्थादिकस्य चेत्यनेन व्यञ्जनावृत्तिरभिधालक्षणावन्न शब्दमात्रस्य व्यापारः, अपि त्वर्थस्यापीति बोधितम्। तथा च वक्ष्यते व्यञ्जना द्विविधा शाब्दी आर्थी चेति।

कारिकां व्याख्याति **अभिधायामिति**। **विरतायामिति**, शब्दबुद्धिकर्मणां विरम्य व्यापाराभाव इति न्यायात्। अयं स्पष्टो भावः—'गङ्गायां घोषः' इत्यत्र अभिधा गङ्गापदवाच्यार्थं प्रवाहं घोषपदवाच्यार्थमाभीरपल्लीं च प्रतिपाद्य विरता, लक्षणा च गङ्गातीररूपं लक्ष्यार्थं बोधयित्वा क्षीणा, तात्पर्यवृत्तिश्च 'गङ्गातीराधिकरणको घोषः' इति वाक्यार्थं प्रत्याय्य उपरता। इत्थमासु स्वस्वार्थं प्रतिपाद्य विरतासु सतीषु योऽयं 'तटे शैत्यपावनत्वाद्यतिशयरूपः' सहृदयहृदयसाक्षिकश्चतुर्थोऽर्थः प्रतीयते, स शब्दस्य कया शक्त्या प्रतिपाद्यताम्? अभिधाद्यास्तु स्वस्वार्थान् प्रतिपाद्य पङ्गवः पुनरनुत्तिष्ठन्त्यो न तं प्रतिपादयितुमर्हन्ति। तथा च तत्प्रतिपादको यः शब्दस्य चतुर्थो व्यापारः स एव व्यञ्जनाशब्देनोच्यत इति दिक्।

---

**व्यञ्जनयेति**। व्यञ्जना वृत्ति से अर्थबोधन कराने वाला शब्द व्यञ्जक कहलाता है, और उससे (व्यञ्जना से) बोध्य अर्थ को व्यङ्ग्य कहते हैं। व्यञ्जना का स्वरूप बताते हैं—

**विरतेति**। अभिधा, लक्षणा और तात्पर्य नाम की वृत्तियों के विरत—अपना २ अर्थ बताकर क्षीण हो जाने पर जिससे अन्य अर्थ का बोधन होता है, वह शब्द में तथा अर्थादिक में रहने वाली वृत्ति व्यञ्जना कहाती है।

**अभिधायामिति**। इस पंक्ति का अर्थ उपर्युक्त कारिकार्थ के समान ही है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



### व्यञ्जनाविभागः—

शब्दवदर्थोऽपि अर्थान्तरव्यञ्जकः, इति प्रथमतो द्विविधा व्यञ्जना—शाब्दी आर्थी च।

### शाब्दी व्यञ्जना—

शाब्दी च द्विविधा,—अभिधामूला, लक्षणामूला च। यथाऽऽह विश्वनाथः—

"अभिधालक्षणामूला शब्दस्य व्यञ्जना द्विधा।"

अभिधामूलां व्यञ्जनामाह विश्वनाथः—

"अनेकार्थस्य शब्दस्य संयोगाद्यैर्नियन्त्रिते।

---

**शाब्दी आर्थी चेति।** शब्दस्य प्राधान्ये शाब्दी व्यञ्जना। अर्थस्य प्राधान्ये आर्थी सा। प्राधान्यं च पर्यायपरिवृत्तिसहत्वासहत्वाभ्यां निर्णेयम्। यत्र अर्थान्तरव्यञ्जने शब्दाः पर्यायपरिवृत्तिं न सहन्ते तत्र शब्दस्य प्राधान्यम्। यत्र तु पर्यायपरिवर्तनेऽपि अर्थान्तराभिव्यक्तिर्जायत एव, तत्र अर्थस्य प्राधान्यं न शब्दस्य। तथा च सर्वत्र काव्ये शब्दार्थयोरुभयोरेव व्यञ्जकत्वम्, नैकस्य। शाब्दादिव्यपदेशस्तु प्राधान्यकृतः। यत्र यस्य प्राधान्यं तत्र तदितरस्य तत्सहकारित्वं मन्तव्यम्। तदुक्तं मम्मटेन—

तद्युक्तो व्यञ्जकः शब्दो यत्सोऽर्थान्तरयुक् तथा।
अर्थोऽपि व्यञ्जकस्तत्र सहकारितया मतः॥
शब्दप्रमाणवेद्योऽर्थो व्यनक्त्यर्थान्तरं यतः।
अर्थस्य व्यञ्जकत्वे तच्छब्दस्य सहकारिता॥

शाब्दीं व्यञ्जनां विभजते **शाब्दीति चेति। अभिधामूला**—अभिधा मूलं प्रयोजकं यस्याः सा। **लक्षणामूला**—पूर्ववद्विग्रहः। अयं भावः—यत्र अभिधया शक्त्या वाच्यमर्थं प्रतिपाद्य शब्दोऽर्थान्तरं व्यनक्ति साभिधामूला व्यञ्जना। उदाहरणमग्रे स्फुटीभविष्यति। यत्र च अभिधेयार्थबाधेन लक्षणया लक्ष्यार्थं प्रतिपाद्य शब्दोऽर्थान्तरं व्यनक्ति, तत्र लक्षणामूला व्यञ्जना। यथा गङ्गायां घोष इत्यत्र लक्षणामूला व्यञ्जना। अत्र हि गङ्गाशब्दो मुख्यार्थप्रवाहबाधेन लक्षणया तीरं प्रतिपाद्यैव व्यञ्जनया तटे शैत्यपावनत्वाद्यतिशयरूपमर्थान्तरं व्यनक्ति। स्वोक्तं शब्दव्यञ्जनाया भेदद्वयं विश्वनाथोक्त्या समर्थयते **यथाहेति। अभिधेति। अभिधालक्षणामूला**—अभिधा च लक्षणा चेत्यभिधालक्षणे, ते मूले यस्याः सा इति विग्रहः।

**अनेकार्थस्येति। अनेकार्थस्य**—नानार्थवाचकस्य, **शब्दस्य, एकत्र**—एकस्मिन् **अर्थे, संयोगाद्यैः** वक्ष्यमाणैः संयोगादिभिर्हेतुभिः, **नियन्त्रिते**—अभिधानियन्त्रणाद् निर्धारिते सति,

---

### व्यञ्जनाविभाग—

शब्द की तरह अर्थ भी अर्थान्तर का व्यञ्जक होता है, इसलिये पहले व्यञ्जना के दो भेद होते हैं—शाब्दी और आर्थी।

### शाब्दी व्यञ्जना—

शाब्दी व्यञ्जना भी दो प्रकार की होती है—अभिधामूला और लक्षणामूला। जैसा कि विश्वनाथ ने लिखा है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri


एकत्रार्थेऽन्यधीहेतुर्व्यञ्जना साऽभिधाऽऽश्रया" ॥ ८ ॥

संयोगाऽऽद्याश्च—

"संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता ।
अर्थः प्रकरणं लिङ्गं शब्दस्यान्यस्य सन्निधिः ॥ ९ ॥
सामर्थ्यमौचिती देशः कालो व्यक्तिः स्वरादयः ।
शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतवः" ॥ १० ॥

---

**अन्यधीहेतुः**–अन्यस्य निर्धारितादर्थाद्भिन्नस्यार्थस्य, धीः ज्ञानम् तस्य हेतुः, या वृत्तिरस्ति **सा-अभिधाश्रया** अभिधा आश्रयो मूलं यस्यास्तादृशी **व्यञ्जना**। अस्तीति शेषः। यथा "सैन्धवमानय' इति केनचिदुक्तम्। तत्र सैन्धवशब्दः सिन्धुदेशोद्भवस्याश्वस्य लवणस्य च वाचकः, अतो नानार्थः। यदि भोजनावसरे उपर्युक्तं वाक्यमुच्यते, तदा नानार्थस्य सैन्धवशब्दस्य भोजनप्रसङ्गेन लवणरूपे एकस्मिन्नर्थे शक्तिर्नियम्यते, तथा च तत्र स लवणार्थस्यैव वाचकः स्याद्, न पुनरश्वस्यापि। प्रतीयते त्वश्वोऽपि, स च तत्र अभिधामूलया व्यञ्जनयैव प्रतीयते। न त्वभिधया। तस्या लवणेऽर्थे नियन्त्रणात्।

वाक्यार्थज्ञाने पदार्थज्ञानं कारणमिति न्यायेन कारिकामव्याख्याय पूर्वं संयोगादीनाह **संयोगो विप्रयोगश्चेति**। **संयोगः**–सम्यग्योगः, सम्बन्धः, प्रसिद्धसम्बन्ध इति यावत्। **विप्रयोगः**–विश्लेषः। **साहचर्यम्**–एककालदेशावस्थायित्वम्, एकस्मिन् कार्ये परस्परापेक्षित्वं वा। **विरोधिता**–वैरम्, सहानवस्थानं च। **अर्थः**—प्रयोजनम्। **प्रकरणम्**–प्रस्तावः प्रसङ्गः। **लिङ्गम्**–प्रयुक्तनानार्थपदवाच्यान्तराऽवृत्तिरेकवाच्यगतः साक्षाच्छब्दवेद्यो धर्मः। **शब्दस्यान्यस्य संनिधिः**–[ अन्यशब्दसंनिधिः ] नानार्थपदैकवाच्यसंसर्ग्यर्थान्तरवाचिपदसमभिव्याहारः [ नानार्थ-पदस्य एकेन केनचिद्वाच्यार्थेन संसर्गो यस्य तादृशार्थान्तरस्य वाचकं यत् पदं तस्य समभि-व्याहारः सहोच्चारणम् इत्यर्थः ] **सामर्थ्यम्**–कारणत्वम्। **औचिती**–योग्यता। **देशः**–स्थानम्। **कालः**–समयः। **व्यक्तिः**–लिङ्गम्। पुंस्त्वस्त्रीत्वादि। **स्वरादयः**–स्वर उदात्तादिः, आदिपदेन अभिनयापदेशौ गृह्येते। इमे संयोगादयः, **शब्दार्थस्य, अनवच्छेदे**–कतमोऽर्थोऽत्र वक्तुर्विवक्षित इत्यनिश्चये, **विशेषस्मृतिहेतवः**–विशेषस्य विवक्षितार्थस्य स्मृतौ उपस्थितौ, निर्णये वा, हेतवः,

---

**अभिधेति**। इस आधी कारिका का वही अर्थ है जो ऊपर लिखा गया है। अभिधामूला व्यञ्जना का स्वरूप विश्वनाथ ने यों लिखा है—**अनेकार्थस्येति**। संयोग आदि की सहायता से अनेकार्थक शब्द के किसी एक ( प्रासङ्गिक ) अर्थ का निर्णय हो जाने पर भी जिसके द्वारा अन्य ( अप्रासङ्गिक ) अर्थ का ज्ञान होता है वह अभिधाश्रया—अभिधा-शक्ति के आश्रित अभिधा-मूला व्यञ्जना कहलाती है। संयोगादि का निरूपण करते हैं—**संयोगाद्याश्चेति**। संयोग, विप्रयोग, साहचर्य, विरोधिता, अर्थ, प्रकरण, लिङ्ग, अन्य शब्द की संनिधि, सामर्थ्य, औचिती ( औचित्य ), देश, काल, व्यक्ति और स्वरादिक ये सब शब्दार्थ का अनिश्चय होने पर विशेष ज्ञान के कारण होते हैं। अर्थात् जब कभी किसी अनेकार्थक शब्द के तात्पर्य में संदेह होता है तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



यथा—"सशङ्खचक्रो हरिः" इति शङ्खचक्रसंयोगेन हरिः—विष्णुः। "फणहीनो नागः" इति फणवियोगेन नागः सर्पः। "रामलक्ष्मणौ" इति लक्ष्मणसाहचर्य्येण रामः—दाशरथिः। "रामार्जुनौ" इत्यत्र विरोधितया रामः—भार्गवः, अर्जुनः—कार्त्तवीर्य्यः।

---

भवन्तीति शेषः। क्रमशः उदाहरति यथेति। संयोगमुदाहरति सशङ्ख इति। 'सशङ्खचक्रो हरिः' इत्यत्र हरिपदम्—

यमानिलेन्द्रचन्द्रार्कविष्णुसिंहांशुवाजिषु।
शुकाहिकपिभेकेषु हरिर्ना कपिले त्रिषु॥

इत्यमरकोशाद् नानार्थम्। सशङ्खचक्र इत्यनेन विशेषणेन हरिपदार्थस्य शङ्खचक्रसंयोगः प्रतिपादितः, स च हरिपदार्थेषु विष्णोरेव प्रसिद्धः, न यमादेः। तथा च प्रसिद्धसंवन्धादिह नानार्थस्यापि हरिशब्दस्य एक एव विष्णुरूपोऽर्थो निर्णीयते। विप्रयोगमुदाहरति। फणहीन इति। अत्र नागपदम् 'नागस्तु सर्पहस्तिनोः' इति कोशान्नानार्थम्। फणहीन इत्यनेन नागपदार्थस्य फणविप्रयोगः प्रतिपादितः। फणविप्रयोगश्च तस्यैव संभवति यस्य कदाचित् फणसंयोगः स्यात्। संयोगपूर्वकत्वाद् विप्रयोगस्य। नहि गर्दभशृङ्गनिपतनं केनचिदुच्यते, गर्दभस्य कदापि शृङ्गसम्बन्धादर्शनात्। फणसंयोगश्च सर्पस्यैव दृष्टचर इति तद्वियोगोऽपि तस्यैव संभवति, नान्यस्य। तथा च फणविप्रयोगेण नागपदस्य सर्प एवात्रार्थो निश्चीयते, न पुनर्हस्ती। साहचर्यमुदाहरति रामलक्ष्मणौ इति। अत्र रामपदम्—

रामः पशुविशेषे स्याज्जामदग्न्ये हलायुधे।
राघवे चासिते श्वेते मनोज्ञेऽपि च वाच्यवद्॥

इति विश्वकोशाद् नानार्थम्। तत्र लक्ष्मणसाहचर्यं दशरथापत्यस्यैव रामस्य, न जामदग्न्यादेः। तथा च साहचर्येण नानार्थरामपदस्येह दशरथसुतो राम एवार्थः, नान्यः। दाशरथिः—दशरथापत्यम् [ अपत्यार्थे 'अत इञ्' ]। विरोधितामुदाहरति रामार्जुनाविति। अत्रोभावपि रामार्जुनशब्दौ नानार्थौ। रामशब्दस्य नानार्थत्वं पूर्वमुक्तम्। अर्जुनशब्दस्तु—

'अर्जुनो धवले वृक्षे तथा मध्यमपाण्डवे' इति कोशान्नानार्थः। तेन कतमो ग्राह्य इत्यनिश्चये विरोधितया निर्णयः क्रियते—रामपदेन जमदग्निसुतो रामः, अर्जुनपदेन च कीर्तवीर्योऽर्थः ग्राह्यः।

---

संयोगादि ही तात्पर्य के निर्णायक होते हैं। जैसे—'शङ्ख चक्र सहित हरि' यहाँ पर शङ्खचक्र के संयोग से 'हरि' पद विष्णु का ही बोधक है। 'फणरहित नाग' यहाँ पर फण के वियोग से नागपद सर्प का ही बोधक है, ( हाथी आदि का नहीं )। 'रामलक्ष्मणौ' यहाँ पर लक्ष्मण का साहचर्य होने से 'राम' शब्द दशरथपुत्र राम का बोधक है, ( वलराम, परशुराम आदि का नहीं )। 'रामार्जुनौ' यहाँ पर परस्पर वैर होने के कारण राम पद से 'परशुराम' और अर्जुन पद से 'कार्तवीर्य' लिया जाता है, ( वलराम आदि तथा पाण्डुपुत्र अर्जुन आदि नहीं)। 'अर्थ' शब्द का अर्थ है प्रयोजन। जैसे 'संसार से छुटकारा ( मुक्ति ) पाने के लिये स्थाणु का भजन करो' यहाँ स्थाणु पद भवच्छेद ( मुक्ति ) रूप प्रयोजन का सम्बन्ध होने से 'शिव' जी का ही बोधक है, शाखारहित वृक्ष का नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अर्थः–प्रयोजनम्; यथा—"स्थाणुं भज भवच्छिदे" इति भवच्छेदरूपप्रयोजनसम्बन्धेन स्थाणुः—शिवः, न तु शाखाविहीनो वृक्षः। प्रकरणं प्रस्तावः, यथा—"यथा आज्ञापयति देवः" इति देवः—भवान्, राजा वा। लिङ्गम्—विशेषकं चिह्नम्; यथा–"कपर्दी भीमः" इति कपर्देन विशेषकेण भीमः–शिवः। अन्यस्य–प्रसिद्धार्थकस्य शब्दस्य सन्निधिः

---

तयोरेव परस्परविरोधात्। इदं वैरलक्षणाया विरोधिताया उदाहरणम्। सहानवस्थानलक्षणायास्तु तस्याः 'छायातपौ' इत्युदाहरणम्। अत्र च्छायाशब्दः—

'छाया सूर्यप्रिया कान्तिः प्रतिबिम्बमनातपः।'

इत्यमरकोशान्नानार्थः। तत्र आतपेन सहानवस्थानम् अनातपस्यैव न सूर्यप्रियादीनाम्, इति च्छायाशब्दस्येह विरोधितया अनातप एवार्थो निर्धार्यते। अर्थमुदाहरति **स्थाणुं भजेति**। अत्र स्थाणुशब्दः 'स्थाणुर्वा ना ध्रुवः शङ्कुः स्थाणू रुद्र उमापतिः' इत्यमरकोशाद् अनेकार्थः। भवच्छिद इति तादर्थ्यचतुर्थ्या च भवच्छेदस्य स्थाणुभजनप्रयोजनत्वमुच्यते। भवच्छेदो नामापवर्गः। तथा चात्रापवर्गरूपप्रयोजनसाधकतया स्थाणुशब्दस्योमापतिः शिव एवार्थो निश्चीयते, न पुनः शाखाविहीनो वृक्षः। तस्यापवर्गासाधकत्वात्। प्रकरणमुदाहरति **यथाज्ञापयति देव इति**। अत्र देवशब्दः।

'देवो मेघे सुरे राज्ञि' इति विश्वकोपादनेकार्थः। भृत्यस्य राजानं प्रतीयमुक्तिः। तथा चात्र प्रकरणेन देवशब्दस्य राजरूपार्थ एव निर्धार्यते। ननु मूले 'भवान् राजा वा' इत्युक्तम्। तथा च देवशब्दस्य भवदर्थकत्वं राजार्थकत्वं भवति। तत्र देवशब्दस्य राजार्थकत्वे उपर्युक्तकोशः प्रमाणम्, भवदर्थकत्वे तु न किमपि प्रमाणम् इति चेदुच्यते। भवच्छब्दस्याप्यत्र प्रक्रान्तराजार्थ एव तात्पर्यम्। भवच्छब्दः सर्वनामसु पठ्यते। सर्वनाम्नां च बुद्धिस्थे शक्तिः। प्रकरणवशाच्चात्र राजैव बुद्धिस्थः। लिङ्गं विवृणोति विशेषकमिति। **विशेषकम्**–भेदकम्, असाधारणम्–अन्यत्र अवर्तमानम् इति यावत्। लिङ्गमुदाहरति **कपर्दी भीम** इति। तत्र भीमशब्दः 'भीमो भयानके रुद्रे पाण्डुपुत्रे' इति कोशवचनान्नानार्थः। परं कपर्दीतिविशेषणघटककपर्दचिह्नेन भीमशब्दस्य महादेव एवार्थोऽवध्रियते। 'कपर्दोऽस्य जटाजूटः' इति कोशवचनात् कपर्दो महादेवादन्यत्र न भवति।

---

'प्रकरण' प्रस्ताव या प्रसङ्ग को कहते हैं। जैसे—'जो देव ( आप या महाराज ) की आज्ञा' यहाँ पर 'देव' पद से प्रकरण द्वारा आप या राजा लिया जाता है। ( अन्य देवता आदि नहीं )। 'लिङ्ग' शब्द का अर्थ है विशेषता प्रकट करने वाला चिह्न। जैसे 'कपर्दधारी भीम' पद से कपर्द ( जूटाजूट ) रूप चिह्न की सहायता से शिव जी ही लिये जाते हैं, ( मध्यम पाण्डव नहीं )। 'अन्यस्य शब्दस्य सन्निधिः' का अर्थ है प्रसिद्धार्थक शब्द का प्रयोग। जैसे—'स्थल कमल की श्री को' यहां प्रसिद्धार्थक 'स्थलारविन्द' शब्द के प्रयोग से श्री-शब्द से शोभा ही ली जाती है, ( लक्ष्मी नहीं )। सामर्थ्य का अर्थ है शक्ति। जैसे 'मधु से मत्त कोयल' यहां पर मधु शब्द से 'बसन्त' ही लिया जाता है, ( सुरा आदि नहीं )। क्योंकि कोयल को मत्त करने की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



**समभिव्याहारः यथा—"स्थलारविन्दश्रियम्" इत्यत्र स्थलारविन्दसन्निधानेन श्रीः—शोभा। सामर्थ्यं—शक्तिः, यथा—'मधुना मत्तः कोकिलः" इति मधुः—वसन्तः, तस्यैव कोकिलमादने सामर्थ्यात्। औचिती—युक्तता, यथा—"गौरेका तु मनस्विनः" इत्यत्र औचित्येन गौः—वाक्। "भाति गगने चन्द्रः" इति गगनरूपेण देशेन चन्द्रः—शशाङ्कः। "रात्रौ विभावसुः" इति विभावसुः—वह्निः; दिवसे तु सूर्य्यः। व्यक्तिः—स्त्रीपुंस्त्वादिकम्; यथा—"मित्रं भाति" इति नपुंसकलिङ्गे मित्रं बन्धुः; "मित्रो भाति" इति मित्रः—सूर्य्यः।**

---

अन्यशब्दसन्निधिमुदाहरति—**स्थलारविन्दश्रियमिति**। अत्र श्रीपदम् 'शोभा-सम्पत्ति-पद्मासु लक्ष्मीश्च श्रीरिवेष्यते' इति कोशवचनात् श्रीशब्दोऽनेकार्थः। तत्र स्थलारविन्दशब्दसान्निध्यात् श्रीशब्देन सम्पत्तिः पद्मा विष्णुपत्नी वा न गृह्यते, किन्तु शोभैव। न हि स्थलारविन्दे सम्पत्तेः पद्मायाः वा संभवः। स्थलारविन्दं 'गुलाब' इति लोकप्रसिद्धः पुष्पविशेष इति केचित्। सामर्थ्यमुदाहरति **मधुनेति**। अत्र मधुशब्दः—

'मधु पुष्परसे क्षौद्रे मद्ये ना तु मधुद्रुमे।
वसन्तदैत्यभिच्चैत्रे स्याज्जीवन्त्यां तु योषिति॥

इति मेदिनीकोशादनेकार्थः। तत्र कोकिलमादनसामर्थ्यं वसन्तादन्यस्य नास्ति, अतः सामर्थ्याद् मधुशब्दस्य वसन्त एवार्थो निश्चीयते। औचितीमुदाहरति **गौरेकेति**। अत्र गोशब्दः 'स्वर्गेषुपशुवाग्वज्रदिङ्नेत्रघृणिभूजले' इत्यमरवचनाद् नानार्थः। तत्रौचित्याद् गोशब्देन वागित्येवार्थो निर्णीयते। मनस्विनः सकृदेव जल्पन्ति। न तेषां वाक् कदाचिदप्यन्यथा भवतीति वाक्यतात्पर्यम्। देशमुदाहरति **भातीति**। अत्र चन्द्रशब्दः 'चन्द्रः कर्पूरकाम्पिल्लसुधांशुस्वर्णवारिषु' इति मेदिनीवचनात्कर्पूराद्यनेकार्थः। तत्र 'गगने' इति देशविशेषाच्चन्द्रशब्दस्य सुधांशुरेवार्थो गृह्यते। गगने चन्द्रशब्दवाच्यस्य तस्यैव संभवात्। कालमुदाहरति **रात्राविति**। विभावसुरित्यस्य भातीति शेषः। अत्र विभावसुशब्दः 'सूर्यवह्नी विभावसू' इत्यमरवचनादनेकार्थः। तत्र यदि रात्रौ विभावसुशब्दप्रयोगः क्रियते तर्हि रात्रिरूपकालविशेषात् तस्य वह्निरेवार्थो निश्चीयते। रात्रौ सूर्यभानस्याभावात्। यदि दिने प्रयोगः क्रियते तर्हि विभावसुः सूर्यः। तदानीं सूर्यप्रकाशेनाभिभवाद् वह्नेरभावात्। व्यक्तिमुदाहरति **मित्रं भातीति**। अत्र मित्रशब्दः 'मित्रं सुहृदि मित्रोऽर्कः' इति कोशाल्लिङ्गभेदेन

---

शक्ति उसमें (वसन्त में) ही है। औचिती का अर्थ है युक्तता। जैसे 'मनस्वी पुरुष की एक ही गौ (वाणी)' होती है। यहां पर 'गौः' पद से वाणी लेना ही उचित है, (गाय नहीं)। क्योंकि मनस्वी पुरुष दो या अधिक भी गाय रख ले तो इसमें कोई बाधक नहीं।

'आकाश में चन्द्र शोभित हो रहा है' यहां आकाश रूप देश (स्थान) के कारण चन्द्र पद से चाँद ही लिया जाता है, 'कपूर' आदि नहीं। 'रात्रि में विभावसु' यहां पर रात्रिरूप काल के कारण विभावसु पद का अर्थ 'अग्नि' ही होता है, सूर्य नहीं। दिन में कहने पर विभावसु पद से सूर्य ही लिया जायगा, आग नहीं। (दिन में अग्नि की इतनी चमक दमक नहीं होती जितनी सूर्य की।) 'व्यक्ति' शब्द का अर्थ है स्त्रीत्व, पुंस्त्व आदि लिङ्ग है, जैसे—मित्रं भाति—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


स्वराः—उदात्तादयो वेद एव प्रसिद्धाः ।

इत्थं संयोगादिभिरेकस्मिन्नर्थे नियमिते—अर्थान्तरबोधनप्रतिरोधेन तन्मात्रे एव व्यवस्थापिते, यया अर्थान्तरं बोध्यते, सा अभिधामूला व्यञ्जना । यथा—

---

अनेकार्थः । तत्र यदि मित्रं भातीत्युच्यते तर्हि क्लीबलिङ्गवशात् मित्रशब्दस्य सुहृदित्येवार्थो निश्चीयते । यदि च मित्र इत्युच्यते तर्हि पुंस्त्ववशात् तस्यैव सूर्योऽर्थो भवति । ननु यथा संयोगादय उदाहरणैर्व्याख्यातास्तथा स्वरः कुतो न व्याख्यात इति जिज्ञासायामाह वेद एवेति । स्वराणामर्थविशेषनिश्चायकत्वं वेद एव, न काव्ये । अत्र तु काव्यदीपिकायां काव्यप्रसङ्गे तदुपयोगिनः संयोगादय एवेति त एव व्याख्याताः । वेदे स्वरस्यार्थनिश्चायकत्वं यथा—'तिस्र एव सायाह्नस्य उपसदः, द्वादशाहीनस्य' इति श्रुतौ अहीनपदस्य मध्योदात्तस्वरेण अहर्गणसाध्यसुत्याको द्वादशाहाख्यक्रतुविशेष एवार्थः 'अह्नः ख क्रतौ' इत्यनुशासनात् । न पुनर् हीनो न भवतीत्यर्थः । नञ्समासे अहीनपदस्य आद्युदात्तत्वप्रसङ्गात् । आदिपदसंगृहीतावभिनयोपदेशावप्युदाहरामः । तत्राभिनयो नाम विवक्षितार्थाकृतिप्रदर्शको हस्तादिव्यापारः । यथा—

परारिसंदर्शितसन्निवेशौ परुत्पराभूतसरोजकोशौ ।
इमावियन्तौ पुनरेपमस्ते कुचौ कियन्तौ परतो भवेताम् ॥

इत्यत्र तत्कालस्तनपरिमाणप्रदर्शकहस्तव्यापारेण 'इयन्तौ' इतीयत्पदस्य परिमाणविशेषोऽर्थो निश्चीयते । उपदेशो नाम विवक्षितार्थस्य श्रृङ्गग्राहिकया निर्देशः । यथा—

इतः स दैत्यः प्राप्तश्रीर्नेत एवार्हति क्षयम् ।
विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसांप्रतम् ॥

इत्यत्र 'इतः' इति श्रृङ्गग्राहिकया स्वात्मनिर्देशने तस्य वक्ता परमेष्ठ्येवार्थो निर्धार्यते । इत्थं संयोगादिपदार्थं व्याख्याय कारिकां व्याचष्टे इत्थमिति । **इत्थम्**—पूर्वोक्तेन प्रकारेण । **नियमिते** वाचकतया नियन्त्रिते । नानार्थशब्द इति शेषः । सति सप्तमीयम् । अर्थान्तरेत्यादिग्रन्थः 'नियमिते' इत्यन्तग्रन्थस्यैव विवरणम् । **अर्थान्तरबोधनप्रतिरोधेन**—अर्थान्तरस्य यत्रार्थे नियमनं तस्मादन्यस्य बोधनम्, तस्य प्रतिरोधेन प्रतिबन्धेन । अभिधाया नियन्त्रितत्वात्तया द्वितीयार्थबोधनासम्भवादिति भावः । **यया**—येन शब्दव्यापारेण, **अर्थान्तरम्**—यत्रार्थे नानार्थशब्दस्य नियमनं ततोऽन्योऽर्थः ।

---

मित्र शोभित हो रहा है । यहां पर नपुंसकलिङ्ग के कारण मित्र शब्द का अर्थ सुहृद् है, सूर्य नहीं । यदि 'मित्रो भाति' कहें तो पुल्लिङ्ग के कारण मित्र शब्द सूर्य का बोधक होता है । उदात्त आदि स्वर वेद में ही प्रसिद्ध हैं—अर्थात् वे वेद में ही अर्थ विशेष के निश्चायक होते हैं, लोक में नहीं ।

इत्थमिति । इस प्रकार संयोगादि के द्वारा एक विशेष अर्थ के निर्णीत हो जाने पर—अर्थात् दूसरे ( अप्रासङ्गिक ) अर्थ की उपस्थिति में रुकावट होने से विवक्षित अर्थ में ही शब्द के व्यवस्थित कर दिये जाने पर जिस वृत्ति से द्वितीय ( अप्रासङ्गिक ) अर्थ का बोध होता है उसको अभिधामूला व्यञ्जना कहते हैं । उदाहरण जैसे—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



"कुबेरगुप्तां दिशमुष्णरश्मौ गन्तुं प्रवृत्ते समयं विलङ्घ्य।
दिग्दक्षिणा गन्धवहं मुखेन व्यलीकनिश्वासमिवोत्ससर्ज" ॥ ११ ॥

"आच्छादितायतदिगम्बरमुच्चकैर्गा-
माक्रम्य संस्थितमुदग्रविशालशृङ्गम्।
मूर्ध्नि स्फुरत्तुहिनदीधितिकोटिमेन-
मुद्वीक्ष्य को भुवि न विस्मयते नगेशम् ?" ॥१२॥ [ शिशुपालवधम् ]

---

अभिधामूलां व्यंजनामुदाहरति—**कुबेरगुप्तामिति**। कुमारसंभवे तृतीयसर्गे अकालाविर्भूत-वसन्तधर्मवर्णनपरं पद्यमिदम्। **उष्णरश्मौ**—सूर्ये [साहसिके नायके च] **समयम्** दक्षिणायनकालम् [ संगमकालं च ] **विलङ्घ्य**—अकाण्डे व्यतिक्रम्य, **कुबेरगुप्ताम्**—कुबेरेण धनपतिना, गुप्तां पालिताम्, [ कुत्सितं वेरं शरीरं यस्य तेन कुत्सितशरीरेण केनचिद् गुप्तां रक्षितां च ] **दिशम्**—उदीचीमाशाम्, [ स्त्रीलिङ्गसामर्थ्यात् कांचिन्नायिकां च ] **गन्तुम्**—संक्रमितुम्, [ संगन्तुं च ] **प्रवृत्ते** सति, **दक्षिणा दिग्** दक्षिणदिशा, [ दाक्षिण्यवती नायिका च ] **मुखेन** अग्रभागेन [ वक्त्रेण च ] **गन्धवहम्** पवनम्, **व्यलीकनिश्वासमिव**—व्यलीकेन दुःखेन, निश्वासः तमिव; **उत्ससर्ज**—प्रवर्तयामास।

उत्तरायणे सति मलयानिलाः प्रवृत्ता इति वाक्यार्थः। अत्र प्रकरणवशात् दक्षिणादिपदानां दक्षिणदिगाद्यर्थे शक्तौ नियन्त्रितायां दाक्षिण्ययुक्तनायिकाद्यर्थोऽभिधामूलया व्यञ्जनया प्रतीयते। तथा च स्वभर्तरि समयोल्लङ्घनेन पराङ्गनासंगतौ प्रवृत्ते सति स्त्रियो दाक्षिण्यादकिञ्चद्वदाः केवलं दुःखान्निश्वन्तीति भावः।

द्वितीयमुदाहरति—**आच्छादितेति**। शिशुपालवधे चतुर्थे रैवतकवर्णनमिदम्। **आच्छादितायतदिगम्बरम्**—आच्छादितानि आवृतानि, आयतानि दीर्घाणि, दिशः, अम्बरमाकाशं च येन तादृशम्। [ अन्यत्र आच्छादितं वसितम्, आयतम्, दिगेव अम्बरं वासो येन तादृशम् ]। **उच्चकैः**—अत्युन्नतम्, **गाम्**—भुवम्, **आक्रम्य**—व्याप्य, **संस्थितम्**। [ अन्यत्र उच्चकैः उन्नतम्, गाम्—वृषभम्, आक्रम्य-आरुह्य, संस्थितम् ] **उदग्रविशालशृङ्गम्**—उदग्राणि उन्नतानि, विशालानि, शृङ्गाणि शिखराणि, यस्य तादृशम् [ अन्यत्र उदग्राणि, विशालानि, शृङ्गाणि विषाणानि यस्य तमिति गोविशेषणम् ]. **मूर्ध्नि**—शिखरे [ अन्यत्र शिरसि ] **स्फुरत्तुहिनदीधितिकोटिम्**—स्फुरन्ती देदीप्यमाना, तुहिनदीधितेः चन्द्रमसः, कोटिः रश्मिः [ अन्यत्र कला ] यस्य तादृशम्। **एनम्**—पुरोवर्तिनम्। **नगेशम्**—नगानां पर्वतानामीशम्, पर्वतश्रेष्ठं रैवतकमिति भावः। [ अन्यत्र नगेशम्-नगस्य कैलासपर्वतस्य, ईशं स्वामिनम्, शङ्करमिति यावत् ] **उद्वीक्ष्य**—उद्ग्रीवमवलोक्य, **भुवि, कः** पुरुषः, **न विस्मयते**—विस्मयं नाप्नोति, सर्वोऽपि विस्मयत इति भावः। अत्रापि

---

**कुबेरगुप्तामिति**। असमय में ही सूर्य के कुबेर द्वारा रक्षित उत्तर दिशा में जाने के लिये प्रवृत्त होने पर (अर्थात् उत्तरायण होने पर) दक्षिण दिशा ने भी मानो दुःखजनित निःश्वास के रूप में सुगन्धित समीर बहा दिया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



प्रथमे दाक्षिणाशब्दस्य प्रकरणवशात् तदभिधानर्दिग्रूपेऽर्थे नियमिते, व्यञ्जनया दाक्षिण्यशीलनायिकारूपोऽर्थः, द्वितीये च—नगेशशब्दस्य प्रकरणेन रैवतकपर्वतरूपेऽर्थे नियमिते, व्यञ्जनया शिवरूपोऽर्थो बोध्यते।

लक्षणामूलां व्यञ्जनामाह विश्वनाथः—

"लक्षणोपास्यते यस्य कृते तत्तु प्रयोजनम्।
यया प्रत्याय्यते सा स्याद् व्यञ्जना लक्षणाश्रया" ॥ १३ ॥

उपास्यते—आश्रीयते, विधीयते इति यावत्, प्रत्याय्यते—बोध्यते। यथा—

---

प्रकरणवशाद् नगेशादिपदानां रैवतके तत्सम्बन्धिनि चार्थे शक्तौ नियन्त्रितायां शिवस्तत्सम्बन्धी चार्थो अभिधामूलया व्यञ्जनया बोध्यते।

पूर्वोदाहरणे व्यङ्ग्यार्थ उत्प्रेक्षानिर्वाहकत्वाद् वाच्यसिद्ध्यङ्गमिति गुणीभूतः। द्वितीये तु न कस्याप्यङ्गमिति प्रधानम्। उभयोरुदाहरणयोरभिधामूलां व्यञ्जनां संगमयति **प्रथम**–इत्यादिना।

अथ लक्षणामूलां प्रतिपादयति **लक्षणेति**। **यस्य कृते**—यत्प्रत्यायनार्थम्, **लक्षणा उपास्यते**—आश्रीयते, **तत्तु प्रयोजनम्**—लक्षणायाः फलम्, **यया** वृत्त्या, **प्रत्याय्यते**—बोध्यते, **सा** वृत्तिः, **लक्षणाश्रया**—लक्षणामूला, **व्यञ्जना स्यात्**। उदाहरति **गङ्गायामिति**। अयं भावः—'गङ्गायां घोषः' इत्यत्र तीरार्थप्रतिपिपादयिषया तद्वाचकं तटादिशब्दमप्रयुज्य तल्लक्षकं गङ्गाशब्दं प्रयुञ्जानस्य वक्तुः कोऽभिप्राय इति प्रश्ने क्रियमाणे 'अन्यत्र अन्यशब्दप्रयोगस्तद्धर्मप्राप्त्यर्थः' इति न्यायेन तीरे शैत्य-पावनत्वातिशयरूपस्य गङ्गाधर्मस्य प्रत्यायनमेव तदभिप्राय इति वक्तव्यम्।

न च व्यापारनिरपेक्षः शब्दः कमप्यर्थं प्रत्याययति। तथा च कतमेन व्यापारेण सोऽर्थः प्रत्याय्यतामिति विचारे, अभिधा प्रत्याययतीति न शक्यं वक्तुम्। तस्याः संकेतितमात्रार्थप्रतिपाद-कत्वात्, न च गङ्गाशब्दः शैत्यपावनत्वातिशये संकेतितः, अपि तु प्रवाहे। नापि लक्षणा, तस्यास्तीरं प्रतिपाद्य विरतत्वात्। न च शैत्यपावनत्वविशिष्टे तीरे सा (लक्षणा) इत्यपि शक्यं वक्तुम्।

---

**आच्छादितेति**। जिसने विस्तृत दिशाओं और आकाश को आच्छादित किया हुआ है, जो अत्यन्त ऊँचा और भूमि को आक्रान्त कर खड़ा है, जिसके शिखर ऊँचे और विशाल हैं, जिसकी चोटी पर चन्द्र किरणें छिटक रही हैं, ऐसे इस रैवतक पर्वत को देखकर किसको आश्चर्य नहीं होता।

**प्रथमे इति**। पहले पद्य में प्रकरण के अनुरोध से दक्षिणा शब्द का दिशा रूप अर्थ निश्चित हो जाने पर दाक्षिण्यशील नायिका रूप द्वितीय अर्थ व्यञ्जना से प्रतीत होता है। दूसरे पद्य में भी प्रकरण द्वारा नगेश शब्द का रैवतक पर्वत रूप अर्थ निर्णीत हो जाने पर शिवरूप द्वितीय अर्थ व्यञ्जना से प्रतीत होता है।

लक्षणामूला व्यञ्जना—

**लक्षणेति**। जिसके लिये लक्षणा का आश्रय (सहारा) लिया जाता है वह प्रयोजन जिस वृत्ति के द्वारा बोधित होता है वह लक्षणाश्रया–लक्षणामूला व्यञ्जना कहलाती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



"गङ्गायां घोषः" इत्यत्र प्रवाहविशेषरूपार्थबोधनादभिधायां, तटरूपार्थबोधनाल्लक्षणायाञ्च विरतायां यया शीतत्वपावनत्वातिशयरूपं प्रयोजनं बोध्यते, सा लक्षणामूला व्यञ्जना।

आर्थीं व्यञ्जनामाह—

"वक्तृबोद्धव्यवाक्यानां काकोश्चेष्टादिकस्य च।
वैशिष्ट्यादन्यमर्थं या बोधयेत् साऽर्थसम्भवा" ॥ १४ ॥ [ विश्वनाथः ]

सा अर्थसम्भवा—आर्थी, व्यञ्जनेति शेषः। यं पुरुषं बोधयितुं शब्द उच्चार्यते स बोद्धव्यः, काकुः—ध्वनेर्विकारः, वैशिष्ट्यात्—विशेषयोगात्।

यथा—'गतोऽस्तमर्कः' इति वाक्येन आस्तिके द्विजातौ वक्तरि प्रतिपाद्ये वा "सन्ध्यावन्दनस्यायमवसरः" इति; गोपालबालके वक्तरि प्रतिपाद्ये वा "संह्रियन्तां गावो गृहं प्रतिनिवर्त्तामहे" इत्यादिका अर्था वक्त्रादिवैशिष्ट्यात् प्रतीयन्ते। यथा वा—

"तथाभूतां दृष्ट्वा नृपसदसि पाञ्चालतनयां वने व्याधैः सार्द्धं सुचिरमुषितं वल्कलधरैः।

---

तादृशतीरस्याप्रसिद्धत्वाल्लक्षणाया अयोगात्। तदेवं तत्प्रत्यायनेऽभिधालक्षणयोरसामर्थ्ये सिद्धे व्यञ्जनाव्यापारेणैव सोऽर्थः प्रत्याय्यते इति सिध्यति। सा च व्यञ्जना लक्षणाश्रितत्वाल्लक्षणामूला। लक्षणामूलां व्यञ्जनामुदाहरणे संगमयति इत्यत्रेति। विरतायाम्—क्षीणसामर्थ्यायाम्। प्रयोजनमिति। तदर्थमेव लक्षणाया आश्रितत्वात् तस्य लक्षणाप्रयोजनत्वमिति भावः।

शाब्दीं व्यञ्जनां प्रतिपाद्येदानीमार्थीमाह **वक्तृबोद्धव्येति।**

**वक्तृबोद्धव्यवाक्यानाम्**—वक्ता, बोद्धव्यः प्रतिपादनीयो जनः, वाक्यं च, एतेषाम्, **काकोः**—शोकभीत्यादिजनितध्वनिविकारस्य· **चेष्टादिकस्य च**, आदिपदेन प्रकरणदेशकालादीनां ग्रहणं बोध्यम्। **वैशिष्ट्यात्**—विशेषयोगाद्, वैलक्षण्यात् वा, या वृत्तिः, **अन्यम्**—वाच्यार्थाद् भिन्नम् **अर्थं बोधयेत्, सा** वृत्तिः, **अर्थसम्भवा**—अर्थाश्रिता, आर्थी व्यञ्जनेति शेषः। तत्र शब्दानां परिवृत्तिसहत्वादर्थस्य प्राधान्यादिति भावः। बोद्धव्य इत्यत्र बुध्यतिरन्तर्भावितण्यर्थ इति बोधयितुमाह **यमिति। विशेषयोगाद्**—विशेषसम्बन्धाद् उदाहरति **गतोऽस्तमर्क** इति। **संह्रियन्ताम्**—

---

जैसे 'गङ्गा पर घोष' यहाँ पर प्रवाह-विशेष-रूप ( वाच्य ) अर्थ को बताकर अभिधा शक्ति के, और तट रूप ( लक्ष्य ) अर्थ को बताकर लक्षणा शक्ति के विरत ( क्षीण ) हो जाने पर जो शक्ति शीतत्व और पावनत्व का आधिक्यरूप प्रयोजन को बोधित करती है—वह लक्षणामूला व्यञ्जना है।

आर्थी व्यञ्जना—

**वक्तृ इति।** वक्ता ( कहने वाला ), बोद्धव्य ( जिससे बात कही जाय ), वाक्य, काकु ( गले की विशेष ध्वनि ) और चेष्टा आदि की विशेषता के कारण जो शब्दशक्ति अन्य अर्थ का बोधन करती है—वह आर्थी व्यञ्जना कहलाती है।

उदाहरण देते हैं **यथेति। गत इति।** जैसे 'सूर्य अस्त हो गया' इस वाक्य से, यदि बोलने वाला या जिसके प्रति उपर्युक्त वाक्य कहा जा रहा है, कोई आस्तिक ब्राह्मण है तो 'यह संध्योपासन का समय है' यह व्यङ्ग्य प्रतीत होगा। यदि इस वाक्य को बोलने वाला या यह वाक्य जिसके प्रति कहा गया है वह किसी ग्वाले का लड़का है तो 'गौवें इकट्ठी करो, घर लौटेंगे' यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



विराटस्यावासे स्थितमनुचितारम्भनिभृतं गुरुः खेदं खिन्ने मयि भजति नाद्यापि कुरुषु ॥ १५॥
( वेणी सं० )

अत्र "मयि न योग्यः खेदः, कुरुषु तु योग्यः" इति काक्वा प्रकाश्यते।

इति शब्दार्थनिरूपणं नाम द्वितीयशिखा।

---

एकत्र क्रियन्ताम्। **प्रतीयन्ते**–व्यज्यन्ते। काकुवैशिष्ट्याद् व्यञ्जनामुदाहरति **तथाभूतामिति**। वेणीसंहारे प्रथमाङ्के कुरुनिग्रहाद्यनुद्यमेन युधिष्ठिरमुपलभमानं भीमं प्रति सहदेवस्य 'आर्य कदाचित् खिद्यते गुरुः' इत्युपालम्भनिषेधपरवाक्यस्योत्तरे 'गुरुः किं खेदमपि जानाति!' इत्युपक्रम्य भीमसेनोक्तिरियम्। **पाञ्चालतनयाम्**–पाञ्चालस्य द्रुपदराजस्य, न तु यस्य कस्यचित् साधारणपुरुषस्य, तनयां पुत्रीम्, न तु साधारणीं कांचन स्त्रियम्। **नृपसदसि**–नृपाणां राज्ञाम्, सदसि सभायाम्, न तु यत्र कुत्रचित्। **तथाभूताम्**–ऋतुमतीमेकवस्त्रामपि दुःशासनेन केशाम्बरयोराकृष्यमाणाम्, **दृष्ट्वा**–साक्षादनुभूय, एवम्, **वल्कलधरैः**–वृक्षत्वग्धारिभिः, **व्याधैः**–वनेचरैः, न तु ऋषिमुनिभिः, **सार्धम्**–सह, **वने**, **सुचिरम्** बहुकालम्, **उषितम्**–वासम्, [ भावे क्तः ] आत्मनः इति शेषः, दृष्ट्वा, **विराटस्य**–विराटनृपतेः, **आवासे**–प्रासादे, **अनुचितारम्भनिभृतम्**–अनुचितः स्वस्वरूपायोग्य आरम्भः सूदादिकर्म, तेन निभृतं गुप्तं यथा स्यात्तथा, **स्थितम्**–आत्मनः अवस्थानम्, [ अत्रापि भावे क्तः ] दृष्ट्वा, **खिन्ने**–खेदयुक्ते, **मयि**–भीमे, **गुरुः**–ज्येष्ठो युधिष्ठिरः, **खेदम्**–मात्सर्यम्, **भजति**–अनुभवति, **कुरुषु**–जायापमानादिना खेदयोग्येषु दुर्योधनादिषु तु, **अद्यापि**–एवंविधदुरवस्थायामपि न खेदं भजतीति शेषः। अत्र 'नाद्यापि कुरुषु' इति काक्वा मयि खेदो नोचितः कुरुषु तूचित इति व्यज्यते। एवमन्येषामपि वाच्यवैशिष्ट्यादीनामुदाहरणान्यन्यत्र दर्पणादिषु द्रष्टव्यानि।

इति श्रीमदच्युतानन्दनन्दनश्रीपरमेश्वरानन्दशर्मकृतायां बालबोधिन्यां काव्यदीपिकाव्याख्यायां शब्दार्थनिरूपणनाम्नी द्वितीयशिखा समाप्ता।

---

व्यङ्ग्यार्थ प्रतीत होता है। इसी प्रकार और भी अर्थ वक्ता आदि की विशेषता से प्रतीत होते हैं। काकु का उदाहरण देते हैं।

**तथाभूतामिति**। भरी राजसभा में द्रौपदी की वह हालत देख कर, पेड़ की छाल धारण करने वाले व्याधों के साथ बहुत समय तक वन में निवास करके विराट के महल में गुपचुप अनुचित काम करते हुए ठहरने का अनुभव करके भी युधिष्ठिर मेरे खिन्न होने पर तो खेद करते हैं, परन्तु कौरवों पर आज भी उन्हें खेद नहीं होता।

यहाँ 'मेरे ऊपर खेद करना उचित नहीं है, किन्तु कौरवों पर उचित है'। यह काकु से व्यञ्जित होता है।

शब्दार्थनिरूपण नामक द्वितीय शिखा समाप्त।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

# तृतीयशिखा

ध्वन्यादिभेदेन काव्यस्य भेदत्रयमाह—

काव्यं ध्वनिर्गुणीभूतव्यङ्ग्यं चित्रमिति त्रिधा।

ध्वनिं लक्षयति विश्वनाथः—

"वाच्यातिशायिनि व्यङ्ग्ये ध्वनिस्तत्काव्यमुत्तमम्" ॥ १ ॥

यस्मिन् काव्ये व्यङ्ग्यार्थो वाच्यार्थादधिकचमत्कारी, तन्नाम ध्वनिः, तच्च उत्तमं काव्यम्।

ध्वनिभेदौ—

"भेदौ ध्वनेरपि द्वावुदीरितौ लक्षणाऽभिधामूलौ।
अविवक्षितवाच्योऽन्यो विवक्षितान्यपरवाच्यश्च" ॥ २ ॥ [ विश्वनाथः ]

---

इत्थं प्रथमद्वितीयशिखाभ्यां शब्दार्थौ निरूप्य इदानीं काव्यभेदान् निरूपयितुं तृतीयशिखामारभते काव्यमिति। ध्वनिः, गुणीभूतव्यङ्ग्यम्, चित्रम्, इति एवंरूपेण, त्रिधा काव्यम्, विभज्यत इति शेषः। काव्यस्येमे ध्वन्यादिभेदाः क्रमश उत्तम-मध्यमाधमनामभिरपि व्यवह्रियन्ते। पूर्वं ध्वनिं लक्षयति वाच्यातीति। व्यङ्ग्ये—व्यञ्जनावृत्तिबोध्येऽर्थे, वाच्यातिशायिनि—वाच्यमभिधावृत्तिबोध्यमर्थमतिशेत इति वाच्यातिशायी तस्मिन्—वाच्यार्थाद् अधिकचमत्कारिणि सति तत् काव्यम्, ध्वनिरिति, उत्तममिति च व्यपदिश्यते।

कारिकां व्याख्याति यस्मिन्निति। ध्वन्यते—व्यञ्जनावृत्त्या अर्थान्तरं प्रतिपाद्यतेऽनेनेति ध्वनत्यसाविति वा ध्वनिरिति ध्वनिशब्दव्युत्पत्तिरिह विज्ञेया। शब्दार्थौ निलित्वा अर्थान्तरं ध्वनत इति वाच्यातिशाय्यर्थान्तरव्यञ्जकस्य शब्दार्थयुगलस्य ध्वनिरिति संज्ञा। क्वचिद् ध्वन्यतेऽसाविति व्युत्पत्त्या व्यज्यमानो रसादिरपि ध्वनिशब्देन व्यपदिश्यते।

ध्वनिं विभजति भेदाविति। ध्वनेः—पूर्वोक्तस्य ध्वनिकाव्यस्य, अपि, लक्षणाऽभिधामूलौ—लक्षणा च अभिधा च लक्षणाभिधे, ते मूले हेतू, ययोस्तौ, 'द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसंबध्यते' इति न्यायेन मूलशब्दस्योभाभ्यामपि लक्षणाभिधाशब्दाभ्यां सम्बन्धः, तथा च लक्षणामूलोऽभिधा-

---

## तृतीयशिखा

काव्य के भेद—

काव्यमिति। ध्वनि, गुणीभूतव्यङ्ग्य और चित्र इस प्रकार काव्य तीन प्रकार का है।

ध्वनि का लक्षण—

वाच्येति। जिस काव्य में व्यङ्ग्य अर्थ वाच्य अर्थ की अपेक्षा अधिक चमत्कारक हो उसे ध्वनि कहते हैं, और वह उत्तम काव्य है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


लक्षणामूलाभिधामूलौ ( अविवक्षितवाच्यविवक्षितान्यपरवाच्यौ ) ।

लक्षणामूलः अभिधामूलश्चेति ध्वनेर्द्वौ भेदौ, तौ च क्रमेण अविवक्षितवाच्यः, विवक्षितान्यपरवाच्यश्चेति नामभ्यामपि व्यपदिश्येते। तत्र अविवक्षितं—बाधितस्वरूपं वाच्यं यत्र स अविवक्षितवाच्यो नाम लक्षणामूलो ध्वनिः, लक्षणामूलत्वादेवात्र वाच्यमविवक्षितम् ।

अविवक्षितवाच्यस्य भेदावाह—

स च द्विविधः—अर्थान्तरसङ्क्रमितवाच्यः, अत्यन्ततिरस्कृतवाच्यश्च ।
यदाह विश्वनाथः—

---

मूलश्चेत्यर्थः। **द्वौ भेदौ, उदीरितौ**—कथितौ। तयोः परिचायकं नामान्तरमाह **अविवक्षितेति**। तयोः **अन्यः**—एकः, पूर्वः, न विवक्षितं वाच्यं यत्र तथाभूततया **अविवक्षितवाच्य** इति नाम्नापि व्यपदिश्यते। अपरश्च विवक्षितमपि अन्यपरं व्यङ्ग्यनिष्ठं वाच्यं यत्र तथाभूतया **विवक्षितान्यपरवाच्य** इति व्यवह्रियते। अत्र हि वाच्योऽर्थः स्वरूपं प्रकाशयन्नेव व्यङ्ग्यार्थस्यापि प्रकाशको भवति, यथा प्रदीपो घटस्य। अत एव अस्य व्यङ्ग्यनिष्ठता। कारिकार्थमाह **लक्षणामूल** इति। **बाधितस्वरूपम्**—बाधितं स्वरूपं यस्य तादृशम्। बाधितत्वं च अनुपयोगाद् अनुपपन्नत्वाद् वा बोध्यम्। लक्षणामूलध्वनेरल्पविषयत्वात् सूचीकटाहन्यायेन प्रथमं निर्देशः। अविवक्षितवाच्यध्वनौ वाच्यार्थाविवक्षायां हेतुमाह **लक्षणामूलत्वादिति**। लक्षणास्थल एव वाच्यार्थस्याविवक्षा भवति। वाच्यार्थविवक्षायां लक्षणाया अप्रसरादिति भावः। अविवक्षितवाच्यध्वनेर्भेदमाह **स चेति**। **सः**—अविवक्षितवाच्यः। **अर्थान्तरसंक्रमितवाच्यः**—अर्थान्तरे अन्यस्मिन् लक्ष्येऽर्थे संक्रमितं प्रवेशितम्, वाच्यं यत्रेति विग्रहः। **अत्यन्ततिरस्कृतवाच्यः**—अत्यन्तं नितान्तम्, तिरस्कृतम्—त्यक्तम्, वाच्यं यत्र तादृश इति विग्रहः। इदमत्र बोध्यम्—यत्रानुपयोगाद् वाच्यार्थो न विवक्ष्यते, तत्रार्थान्तरसंक्रमितवाच्यध्वनिर्भवति। यत्र पुनरसंगत्या वाक्यार्थेऽविवक्षा, तत्र अत्यन्ततिरस्कृतवाच्यध्वनिः। स्वोक्तं विश्वनाथोक्त्या समर्थयितुमाह **यदाहेति**।

---

ध्वनि के दो भेद—

**भेदाविति, लक्षणामूल इति**। लक्षणामूलक ध्वनि और अभिधामूलक ध्वनि इस प्रकार ध्वनि के भी दो भेद कहे गए हैं। और ये दोनों क्रमशः—'अविवक्षितवाच्य' और 'विवक्षितान्यपरवाच्य' इन नामों से भी व्यवहृत होते हैं।

**तत्रेति**। जहाँ वाच्य अर्थ बाधित हो जाता है वहाँ अविवक्षितवाच्य नाम की लक्षणामूलक ध्वनि होती है। लक्षणामूलक होने के कारण ही यहाँ वाच्य अर्थ अविवक्षित—बाधित—होता है।

अविवक्षित वाच्य के भेद—

**स चेति, अर्थान्तरमिति**। अविवक्षितवाच्य ध्वनि भी दो प्रकार का है। पहला वाच्य अर्थ के अर्थान्तर में संक्रमित हो जाने के कारण 'अर्थान्तरसंक्रमितवाच्य' दूसरा वाच्य अर्थ के अत्यन्त तिरस्कृत ( त्यक्त ) होने पर 'अत्यन्ततिरस्कृतवाच्य'।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



"अर्थान्तरं संक्रमिते वाच्येऽत्यन्तं तिरस्कृते।
अविवक्षितवाच्योऽपि ध्वनिर्द्वैविध्यमृच्छति" ॥ ३ ॥

अर्थान्तरसंक्रमितवाच्यमाह—

यत्र स्वयमनुपयुज्यमानो मुख्योऽर्थः स्वविशेषरूपे अर्थान्तरे परिणमति, तत्र मुख्यार्थस्य स्वविशेषरूपेऽर्थान्तरे सङ्क्रमितत्वादर्थान्तरसङ्क्रमितवाच्यत्वम्। यथा—

"त्वामस्मि वच्मि विदुषां समवायोऽत्र तिष्ठति।
आत्मीयां मतिमास्थाय स्थितिमत्र विधेहि तत्" ॥ ४ ॥

अत्र वचनादि उपदेशादिरूपतया परिणमति, सम्बोध्ये आत्मीयभावाद्यतिशयश्च व्यङ्ग्यः।

---

**अर्थान्तरमिति**। **अविवक्षितवाच्यः, अपि, ध्वनिः, वाच्ये**—वाच्यार्थे, **अर्थान्तरम्**—अन्यमर्थं लक्ष्यरूपम्, **संक्रमिते**—प्रवेशिते सति, अथवा **अत्यन्तम्**—नितान्तं **तिरस्कृते**—त्यक्ते सति **द्वैविध्यम्**—द्विविधताम् **ऋच्छति**—प्राप्नोति। अर्थान्तरसंक्रमितवाच्यध्वनौ वाच्यार्थस्य नात्यन्तं तिरस्कारः, अपि तु तस्य अर्थान्तरे लक्ष्ये प्रवेशः। अत्यन्ततिरस्कृतवाच्यध्वनौ तु वाच्यस्य नितरां त्यागः। तदेतद् उदाहरणे स्फुटीभविष्यति। अर्थान्तरसंक्रमितवाच्यध्वनेः स्वरूपं विवृणोति **यत्रेति**। **स्वयम्**—स्वस्वरूपेण मुख्यार्थतावच्छेदकरूपेणेति यावत्। **अनुपयुज्यमानः**—प्रकृतान्वये तात्पर्याविषयीभूतः। **स्वविशेषरूपे**—यत्किञ्चिद्विशेषणविशिष्टे स्वस्वरूपे। उदाहरति **त्वामस्मीति**। विद्वत्सभां गच्छन्तं प्रति कस्यचिदाप्तस्योक्तिरियम्। **अस्मि**—अहम्। अस्मीत्यहमर्थेऽव्ययम्। **त्वाम्, वच्मि**—कथयामि; **अत्र**—सभायाम्, **विदुषाम्, समवायः**—समुदायः, **तिष्ठति, तत्**—तस्मात्कारणात्, त्वम्, **अत्र, आत्मीयाम्**—स्वकीयाम्, **मतिम्, आस्थाय**—अवलम्ब्य, **स्थितिम्, विधेहि**—कुरु। इति सरलो वाक्यार्थः। लक्ष्यार्थं दर्शयति **अत्रेति**। अयं भावः—संबोध्यमुद्दिश्य वक्तव्यविषयकथनेनैव सिद्धे पुनः 'त्वामस्मि वच्मि' इति कथनमनुपयुक्तम्—इति त्वामिति उपदेश्यत्वविशिष्टे युष्मदर्थे, अस्मीति आप्तत्वविशिष्टेऽस्मदर्थे वच्मीति उपदेशत्वविशिष्टे वचने संक्रान्तम्। तथा च त्वामस्मि वच्मीत्यस्य उपदेश्यं त्वाम् आप्तोऽहमुपदिशामीति लक्ष्यार्थः फलति। लक्षणायाः प्रयोजनमाह **सम्बोध्य इति**। **सम्बोध्ये**—उपदेश्ये। आत्मीयभावादीत्यत्रादिपदेन उपदेष्टरि अप्रतारकत्वातिशयः, उपदेशे च हितसाधनत्वातिशयश्च व्यङ्ग्यतया ग्राह्यः। एवम् आत्ममतेः सार्वकालिकत्वेऽपि

---

**यत्रेति**। जहाँ शब्द का मुख्य अर्थ स्वयम् अनुपयोगी होने के कारण अपने विशेष स्वरूप अर्थान्तर में परिणत हो जाता है, उसे 'अर्थान्तरसंक्रमितवाच्य' कहते हैं। यह संज्ञा अन्वर्थ है।

उदाहरण—**त्वामिति**। मैं तुम्हें कहता हूँ कि यहाँ विद्वानों का समुदाय उपस्थित है, इसलिये जरा यहाँ अपनी बुद्धि के सहारे रहना। यहाँ वचन ( वच्मि ) आदि उपदेश (उपदिशामि) आदि रूप अर्थान्तर में परिणत हो जाते हैं। सम्बोध्य व्यक्ति में आत्मीय भाव आदि का आधिक्य यहाँ व्यङ्ग्य है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


अत्यन्ततिरस्कृतवाच्यमाह—

यत्र पुनः स्वार्थं सर्वथा परित्यजन्नर्थान्तरं बोधयति, तत्र मुख्यार्थस्यात्यन्ततिरस्कृतत्वादत्यन्ततिरस्कृतवाच्यत्वम्। यथा—"उपकृतं बहु तत्र" इत्यादौ (२३ पृ०) पूर्वमुक्तम्। अत्राऽऽद्ये, मुख्यार्थस्यार्थान्तरे सङ्क्रमणं—प्रवेशः, न तु तिरोभावः, अत एवात्र अजहत्स्वार्था लक्षणा। द्वितीये—स्वार्थस्यात्यन्तं तिरस्कृतत्वाज्जहत्स्वार्था।

विवक्षितान्यपरवाच्यमाह—

"विवक्षितञ्चान्यपरं वाच्यं यत्रापरस्तु सः"। [ मम्मटः ]

यत्र वाच्यं विवक्षितं—प्रकाशितस्वरूपं सत्, अन्यपरं—व्यङ्ग्यनिष्ठम्, सोऽपरः

---

'आत्मीयाम्' इति प्रमाणपरतन्त्रपरतया परिणताम्। तेन च अन्यथाचरणे उपहसनीयत्वं व्यङ्ग्यम्। अत्र सर्वत्र सामान्यविशेषभावः शक्यलक्ष्यार्थयोः सम्बन्धो बोध्यः।

यद्यपि दीपिकाकृता विश्वनाथानुरोधेन यत्र मुख्यार्थः स्वविशेषरूपेऽर्थान्तरे परिणमति तत्रार्थान्तरसंक्रमितवाच्यध्वनिरित्युक्तम्। तथापि नेदं सार्वत्रिकम्। उपादानलक्षणास्थल एवार्थान्तरसंक्रमितवाच्यध्वनिर्भवति। न च तत्र सर्वत्र मुख्यार्थलक्ष्यार्थयोः सामान्यविशेषभावः। 'यष्टयः प्रविशन्ति' इत्यत्र वाच्यानां यष्टीनां तत्संयोगिनां पुरुषाणां च नास्ति सामान्यविशेषभावः। एवं काकेभ्यो दधि रक्ष्यतामित्यत्र काकत्वावच्छिन्नस्य शक्यार्थस्य न स्वविशेषरूपे परिणमनम्। नहि दध्युपघातकत्वं काकस्य विशेषरूपं भवति। तथा च मुख्यार्थस्य केनचिद् रूपेणार्थान्तरमात्रसंक्रान्तिरर्थान्तरसंक्रमितवाच्यत्वे हेतुः, न पुनरर्थान्तरस्य मुख्यार्थविशेषरूपत्वमपि। तद्व्यभिचारस्य पुरस्तादुपदर्शितत्वादिति।

अत्यन्ततिरस्कृतवाच्यं विवृणोति—यत्रेति। बोधयतीत्यस्य शब्द इति शेषः। उभयोर्ध्वन्योर्लक्षणे लक्ष्ये संगमयति अत्रेति। आद्ये—त्वामस्मीत्युदाहरणे। मुख्यार्थस्य—वचनादेः, अर्थान्तरे—उपदेशादिरूपे संक्रमणं प्रवेशो न तु तिरोभावः—त्यागः। अत एव स्वार्थात्यागादेव। अजहत्स्वार्था—उपादानलक्षणेत्यर्थः। द्वितीये—उपकृतमित्यादौ। स्वार्थस्य—उपकारादेः, तिरस्कृतत्वात्—त्यागात्। जहत्स्वार्था—लक्षणलक्षणेत्यर्थः। विवक्षितान्यपरवाच्यं लक्षयति—विवक्षितेति। यत्र—ध्वनौ, वाच्यम्—वाच्यार्थः, विवक्षितम्—स्वस्वरूपेण [ शक्यतावच्छेदकरूपेण ] अन्वय-

---

यत्रेति। और जहाँ शब्द अपने मुख्य अर्थ को सर्वथा छोड़कर दूसरे ही अर्थ का बोधक होता है, वहाँ मुख्यार्थ का अत्यन्ततिरस्कार होने के कारण 'अत्यन्ततिरस्कृतवाच्य' ध्वनि होती है। जैसे 'उपकृतं बहु तत्र' इत्यादि पूर्वोक्त उदाहरण में।

अत्रेति। यहाँ पहले पद्य में मुख्यार्थ का अर्थान्तर में संक्रमण—प्रवेश—हुवा है, तिरोभाव (त्याग) नहीं, इसलिये यहाँ 'अजहत्स्वार्था लक्षणा' है। दूसरे (उपकृतमित्यादि पद्य) में स्वार्थ (मुख्यार्थ) के अत्यन्त तिरस्कृत (त्यक्त) होने से 'जहत्स्वार्था' है।

विवक्षितान्यपरवाच्य का लक्षण

विवक्षितमिति। जहाँ वाच्य अर्थ विवक्षित तो है—अर्थात् उसने स्वरूप को प्रकाशित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



विवक्षितान्यपरवाच्यो ध्वनिः। अत्र हि वाच्योऽर्थः स्वरूपं प्रकाशयन्नेव व्यङ्ग्यार्थस्य प्रकाशकः। यथा—प्रदीपो घटस्य। तद्विभागः—स च द्विविधः—असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यः, संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यश्च। यदाह स एव—

"कोऽप्यलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यो लक्ष्यव्यङ्ग्यक्रमः परः" ॥ ५ ॥

असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यः—

न संलक्ष्यः—न सम्यगनुभूयमानः, क्रमः-प्रतीतिक्रमो यस्य तादृशं व्यङ्ग्यं

---

बोधविषयः, अन्यपरम्—[ अन्यद् व्यङ्ग्यम्, परम्-बोध्यतया तात्पर्यविषयीभूतं यस्य तत् ] व्यङ्ग्योपसर्जनीभूतमिति यावत्। सः, अपरः—द्वितीयो विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनिरिति यावद्। उच्यत इति शेषः। कारिकांशं व्याख्याति-अत्रेति। प्रकाशितस्वरूपम्-अन्वययोग्यतया अबाधितस्वरूपमिति यावत्। व्यङ्ग्यनिष्ठम्-व्यङ्ग्यार्थदीपकत्वे सति व्यङ्ग्योपसर्जनीभूतम्। एतेन अभिधामूले गुणीभूतव्यङ्ग्येऽतिव्याप्तिर्वारिता। तत्र वाच्यार्थो यद्यपि अन्यपरः—व्यङ्ग्यबोधप्रवणो भवति, तथापि न स व्यङ्ग्यार्थे उपसर्जनीभवति। प्रत्युत व्यङ्ग्यार्थस्तत्रोपसर्जनतां याति। विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनौ वाच्यस्यान्यपरत्वं दृष्टान्तेन समर्थयते—अत्र हीत्यादिना।

अभिधामूलं ध्वनिं विभजते-स चेति। एतद्विभागं मम्मटोक्त्या समर्थयते यदाहेति। स एव-मम्मट एव। कोऽपीति। कोऽपि-अनिर्वचनीयचमत्कारी, प्रथमः, अलक्ष्यक्रमव्यंग्यः—अलक्ष्यक्रमः विद्यमानोऽप्यननुभूयमानः क्रमः वाच्येन सह पौर्वापर्यम्, यस्य तादृशं व्यङ्ग्यं यत्र सः। यत्र वाच्यव्यङ्ग्ययोर्विद्यमानोऽपि क्रमो न लक्ष्यते सोऽलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यध्वनिरित्यर्थः। परः—द्वितीयः लक्ष्यव्यङ्ग्यक्रमः लक्ष्यः अनुभूयमानः, व्यङ्ग्यस्य क्रमो यत्र तादृशः। लक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य इति यावत्। अस्तीति शेषः। असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यं ध्वनिमवयवार्थविश्लकलनेन विवृणोति न संलक्ष्य इति। प्रतीतिक्रमः पूर्वं वाच्यार्थस्य प्रतीतिः, तदनु व्यङ्ग्यार्थस्य प्रतीतिरित्येवं

---

तो किया हो परन्तु 'अन्यपर' हो अर्थात् व्यङ्ग्यार्थ का बोधन कराने में ही उसका झुकाव हो, वह दूसरा–विवक्षितान्यपरवाच्य–ध्वनि है। यहाँ वाच्य अर्थ अपने स्वरूप को प्रकाशित करता हुआ ही व्यङ्ग्यार्थ को प्रकाशित करता है। जैसे प्रदीप ( अपने स्वरूप को प्रकाशित करता हुआ ही ) घट को ( प्रकाशित करता है )।

स चेति। वह 'विवक्षितान्यपरवाच्य' ध्वनि दो प्रकार का होता है–'असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य' और 'संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य'।

नेति। जहाँ व्यङ्ग्यार्थ की प्रतीति का क्रम ( पौर्वापर्य ) प्रतीत नहीं होता है, अर्थात् पहले वाच्यार्थ प्रतीत हुआ फिर व्यङ्ग्यार्थ प्रतीत हुआ इस प्रकार वाच्य और व्यङ्ग्य का क्रम लक्षित नहीं होता है, उसे असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य ध्वनि कहते हैं जैसे रस, भाव आदि। यहाँ क्रम तो अवश्य है, क्योंकि विभाव आदि की प्रतीति व्यङ्ग्यप्रतीति का कारण है। [ कारण पहले होता है कार्य पीछे ] तथापि वह शीघ्रता के कारण लक्षित नहीं होता। जैसे सौ कमल के पत्तों को नीचे ऊपर रखकर सुई से छेदें तो एकदम सुई सबके पार हुई प्रतीत होगी। यद्यपि सुई ने क्रम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri



यस्मिन् सः असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यः, स च रसभावादिः। अत्र व्यङ्ग्यप्रतीतेर्विभावादिप्रतीतिकारणकत्वात् क्रमोऽवश्यमस्त्येव, किन्तु उत्पलपत्रशतव्यतिभेदवल्लाघवान्न संलक्ष्यते।

## अथ रसनिरूपणम्—

अथ कोऽयं नाम रसः? के च विभावादयः? इत्याहुर्मम्मटभट्टपादाः—

"कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।
रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः ॥ ६ ॥
विभावा अनुभावाश्च कथ्यन्ते व्यभिचारिणः।

---

रूपः प्रतीतेः क्रमः। रसभावादिरित्यत्रादिपदेन रसाभास–भावाभास–भावशान्ति–भावोदय–भावसन्धि–भावशबलतानां संग्रहो बोध्यः। ननु अक्रमव्यङ्ग्य इत्येव किमिति नोच्यते, किमर्थमलक्ष्यासंलक्ष्यशब्दयोः प्रवेशः इति शङ्कां निराकर्तुमाह–अत्रेति।

अयं भावः–विभावादिप्रतीतिः रसादिप्रतीतेः कारणम् अस्ति। तदुक्तं भरतेन 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः' इति। अत्र पञ्चम्या रसनिष्पत्तिं प्रति विभावादीनां कारणत्वमुपक्षिप्तम्। कारणकार्ययोश्च पौर्वापर्यरूपः क्रमोऽस्त्येव। तथा च अक्रमव्यङ्ग्येति न शक्यं वक्तुम्। क्रमाभाव एव तथाकथनस्यौचित्यात्। किन्तु विद्यमानोऽपि स क्रमः शैघ्र्यातिशयादुत्पलपत्रशतभेदवन्न लक्ष्यते। अत एव असंलक्ष्यक्रमेत्यलक्ष्यक्रमेत्येव वा वक्तुं युक्तम्। अथ रस-विभावादीन् प्रतिपादयितुं तज्जिज्ञासामुत्थापयति—अथेति। रसादीन् निरूपयति—कारणानीति। लोके, रत्यादेः–रतिरादिर्यस्य तस्य, आदिपदेन हास-शोकादीनां वक्ष्यमाणस्वरूपणां ग्रहणं बोध्यम्, स्थायिनः–तिष्ठतीति स्थायी, तस्य, स्थायिपदेन व्यवह्रियमाणस्य, यानि, कारणानि–आलम्बनानि उद्दीपनानि च, कार्याणि–उत्पाद्यानि, सहकारीणि च–कार्योत्पत्तौ, झटिति तत्प्रत्यायने वा सहायभूतानि च, सन्ति। चेत्–यदि, तानि, नाट्यकाव्ययोः–नाट्ये दृश्यकाव्ये, काव्ये श्रव्यकाव्ये च निबध्येरन्, तर्हि क्रमशः विभावाः, अनुभावाः, व्यभिचारिणश्च, कथ्यन्ते–व्यपदिश्यन्ते। कारणानि विभावा इति, कार्याणि–अनुभावा इति, सह-

---

से ही [ एक २ करके ] पत्तों में छेद किया है, परन्तु छेद करने की क्रिया इतनी शीघ्रता से होती है कि उसमें होता हुवा भी क्रम लक्षित नहीं होता।

### रसनिरूपण—

अथेति। अब रस क्या वस्तु है? कौन उसके विभाव आदि हैं, यह सब श्रीमम्मट भट्ट यों लिखते हैं—

कारणानीति। लोक में रति आदि स्थायी–भावों के जो कारण, कार्य और सहकारी होते हैं, उनका यदि दृश्य काव्य ( नाट्य ) तथा श्रव्य काव्यमें वर्णन किया जाय तो वे क्रमशः विभाव, अनुभाव और संचारी भाव कहलाते हैं। उन विभाव आदि के द्वारा अभिव्यक्त हुवा स्थायी भाव 'रस' कहलाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः" ॥ ७ ॥

रत्यादेरित्यादिपदेन हासोत्साहादयो गृह्यन्ते। लौकिके उत्साहादीनां वक्ष्यमाणानां स्थायिभावानां कारणानि—उत्पादकरूपाणि नायकप्रतिनायकादीनि, उद्दीपनरूपाणि—

---

कारीणि व्यभिचारीणि इति कथ्यन्ते इति भावः। तैः—पूर्वोक्तैः, विभावाद्यैः—विभावादिशब्दव्यपदेश्यैः कारणकार्यसहकारिभिः, व्यक्तः—व्यञ्जनावृत्त्या व्यक्तिविषयीकृतः, सः—पूर्वोक्तो रत्यादिः स्थायी—स्थायिभावः, रसः—रस इति नाम्ना, स्मृतः—रसपण्डितैर्ध्वनिकारादिभिराम्नातः। द्वितीयकारिकायां 'सः' इति सर्वनाम्नैव स्थायिनः परामर्शे सिद्धे पुनः 'स्थायी' इति कथनं व्यभिचारिनिरासाय। विभावादिभिरभिव्यज्यमानस्य स्थायिन एव रसत्वम्, न तु व्यभिचारिणोऽपीति भावः। रत्यादयः सर्वे चित्तवृत्तिविशेषाः। आप्रबन्धं स्थिरत्वादेवैषां स्थायित्वं बोध्यम्। ननु चित्तवृत्तिरूपाणामेषां क्षणिकत्वेन स्थिरत्वं दुर्लभम्, वासनात्मतया सूक्ष्मरूपेण स्थिरत्वं तु निर्वेदादीनां व्यभिचारिणामपि समानम्, यतस्तेऽपि स्थायिन इव चित्तधर्मा एवेति चेदुच्यते—वासनारूपाणां रत्यादीनां मुहुर्मुहुरभिव्यक्तिरेव तेषां स्थिरत्वम्। व्यभिचारिणां तु वासनारूपाणामपि न मुहुर्मुहुरभिव्यक्तिर्भवति। तदभिव्यक्तेर्विद्युद्द्योतप्रायत्वात्। तैरित्यनेनैव विभावादीनां परामर्शे पुनर्विभावाद्यैरिति कथनं विभावादयो मिलिता एव रसव्यञ्जकाः, न प्रत्येकमिति प्रतिपादनाय। तथा च यत्रैकैकस्मिन्नेव सति रसः प्रतीयते, तत्रापीतरद्वयाक्षेपेण मिलितैरेव रसप्रतीतिर्बोध्या। विभावाद्यैरिति सहार्थे तृतीया, तथा च विभावाद्यैः सह तैर्व्यक्त इत्यर्थाद् रसानुभवे विभावादीनामपि समूहालम्बनात्मिका प्रतीतिर्बोध्या। 'व्यक्तः—व्यक्तिविषयीकृतः' इति कारिकाव्याख्यायां पूर्वमुक्तम्। तत्र व्यक्तिर्नाम भग्नावरणा चित् आत्मचैतन्यम्, तद्विषयीकृतो रत्यादिरेव रसः। अयं स्पष्टो भावः—काव्यसमर्पितैर्विभावानुभावव्यभिचारिभिः संभूय प्रादुर्भावितेन अलौकिकेन व्यञ्जनाख्येन व्यापारेण चिदानन्दरूपस्यात्मनः अज्ञानरूपे आनन्दांशावरणे भग्ने सति आत्मचैतन्यं स्वप्रकाशतया स्वयं प्रकाशमानं विभावादिसंवलितान् रत्यादीनपि प्रकाशयति। यथा शरावादिना पिहितो दीपस्तन्निवृत्तौ संनिहितान् पदार्थान् प्रकाशयति स्वयं च प्रकाशते। तथा च विभावादिभिर्भग्नावरणचिद्विशिष्टो रत्यादिरेव रस इति रसलक्षणं बोध्यम्। विस्तरस्त्वन्यत्र द्रष्टव्यः।

रसस्वरूपप्रतिपादकं मम्मटोक्तं कारिकाद्वयं स्वयं व्याचष्टे रत्यादेरिति। लौकिके—लोकव्यवहारे। उत्पादकरूपाणि—यान्यालम्ब्य उत्साहादिः स्थाय्युत्पद्यते। नायकप्रतिनायकादीनि—नायकनिष्ठ उत्साहे वर्ण्यमाने प्रतिनायक आलम्बनं भवति, एवं प्रतिनायकनिष्ठे तस्मिन् वर्ण्यमाने नायक आलम्बनम्। आदिपदेन हासादीनामालम्बनकारणानि विकृताकारादीनि संग्रहणीयानि। उद्दीपनानि—यैरुत्पन्न उत्साहादिरुद्दीप्यते। नायकप्रतिनायकचेष्टादीनि—नायकचेष्टा

---

रत्यादेरिति। 'रत्यादेः' यहाँ आदिपद से हास, उत्साह आदि लिये जाते हैं। लोकव्यवहार में उत्साह आदि स्थायिभावों के—जिनका वर्णन आगे किया जायगा जो नायक, प्रतिनायक आदि उत्पादक कारण होते हैं, तथा नायक प्रतिनायक की चेष्टा आदि जो उद्दीपन कारण हैं,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


नायकप्रतिनायकचेष्टाऽऽदीनि, यानि कार्य्याणि—विपक्षाभिमुखगमनादीनि, यानि च सहकारीणि—सहायभूतानि धृतिगर्वादीनि, तानि नाट्ये काव्ये च चेन्निबध्येरन्, क्रमेण विभावाः, अनुभावाः, व्यभिचारिणश्च कथ्यन्ते। तैर्विभावादिभिर्व्यक्तः—स्फुटीकृतः, विलक्षणप्रतीतिविषयीकृत इति यावत्, स्थायी भावः रसः कथितः।

रसभेदाः—

तद्विशेषानाह—

"आदिमो हास्य-करुण-रौद्र-वीर-भयानकाः।
बीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ काव्ये रसाः स्मृताः" ॥ ८ ॥ [-मम्मटः]

---

प्रतिनायकोत्साहस्य, प्रतिनायकस्य च ता नायकोत्साहस्य उद्दीपिकाः। आदिपदेन देशकालादीनां संग्रहो बोध्यः। **विपक्षाभिमुखगमनादीनि**—विपक्षाभिमुखगमनमुत्साहस्य कार्यम्। आदिपदेन अक्षिसंकोच-वदनस्मेरतादीनि हासादीनां कार्याणि संग्रहीतव्यानि। **निबध्येरन्** प्रतिपाद्येरन्। कारणादीनां विभावादिसंज्ञाश्च विभावनादिव्यापारयोगाद् बोध्याः। तद्यथा—वासनात्मतया चित्तस्थितान् रत्यादीन् स्थायिनो विशेषेण भावयन्ति आस्वादयोग्यतां नयन्तीति विभावाः। रत्यादीन् स्थायिनः अनुभावयन्ति प्रत्याययन्तीत्यनुभावाः। विशेषेणाभितः (सर्वाङ्गव्यापितया) रत्यादीन् चारयन्ति मुहुर्मुहुरभिव्यञ्जयन्तीति व्यभिचारिणः। अनियतत्वादप्येषां व्यभिचारित्वं बोध्यम्। तदुक्तम्—

विशेषादाभिमुख्येन चरन्तो व्यभिचारिणः।
स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्ना कल्लोला इव वारिधौ ॥

उन्मग्ननिर्मग्नाः—कदाचित् प्रादुर्भूताः, कदाचित्तिरोभूताः।

स्वस्वविभावादिभिर्व्यज्यमाना रत्यादयः स्थायिनो रसपदवीं गच्छन्तीति पूर्वमुक्तम्। अथ रसभेदान् प्रतिपादयति **आदिम** इति। **आदिमः**—श्रृङ्गारः। इतरत् स्पष्टम्। तत्र रतिस्थायिभावको रसः श्रृङ्गार इत्युच्यते। स्त्रीपुंसयोरन्योन्यालम्बनः प्रेमाख्यश्चित्तवृत्तिविशेषो रतिः। प्रतिरसं विभावानुभावव्यभिचारिणो भिद्यन्ते। तत्र श्रृंगारस्य विभावादयो यथा—

परोढां वर्जयित्वा तु वेश्यां चाननुरागिणीम्।
आलम्बनं नायिकाः स्युर्दक्षिणाद्याश्च नायकाः ॥

---

शत्रु के सामने डटना आदि जो कार्य हैं और धृति, गर्व आदि जो सहायक-सहकारी-कारण हैं, वे यदि नाट्य (दृश्य काव्य) तथा काव्य (श्रव्यकाव्य) में वर्णित किये जायें तो क्रमशः विभाव, अनुभाव और सञ्चारिभाव कहलायेंगे। उन विभाव आदि के द्वारा अभिव्यञ्जित-प्रस्फुटित अर्थात् विलक्षण प्रतीति का विषय किया गया स्थायी भाव 'रस' इस नाम से व्यवहृत होता है।

रस के भेद—

तदिति। अब रस के भेद बताते हैं। **आदिम** इति। काव्य में आदिम—श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स और अद्भुत ये आठ रस होते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



एषां क्रमेणोदाहरणानि।

आदिमस्य—

"विवृण्वती शैलसुताऽपि भावमङ्गैः स्फुरद्वालकदम्बकल्पैः।
साचीकृता चारुतरेण तस्थौ मुखेन पर्य्यस्तविलोचनेन" ॥ ९ ॥

[ कुमारसं० ]

हास्यस्य—

"भिक्षो ! मांसनिषेवणं प्रकुरुषे ? किं तेन मद्यं विना
मद्यञ्चापि तव प्रियम् ? प्रियमहो ! वाराङ्गनाभिः सह।

---

चन्द्र-चन्दन-रोलम्बरुताद्युद्दीपनं मतम्।
भ्रूविक्षेपकटाक्षादिरनुभावः प्रकीर्तितः ॥
व्रीडा-चपलता-हर्ष-धृत्याद्या व्यभिचारिणः।
स्थायिभावो रतिः श्यामवर्णोऽयं विष्णुदैवतः ॥

रोलम्बरुतम्—भ्रमरगुञ्जितम्।

तत्रादिमरसमुदाहरति। विवृण्वतीति। कुमारसंभव-पद्यमिदम्। **शैलसुता**—शैलस्य गिरिराजस्य, सुता तनया, पार्वती, **अपि**, **स्फुरद्वालकदम्बकल्पैः**—स्फुरन्ति विकसन्ति, यानि बालकदम्बानि अभिनवकदम्बपुष्पाणि, तत्सदृशैः, संजातरोमोद्गमैरिति यावत्, **अङ्गैः**—गात्रैः, **भावम्**—शिवविषयमनुरागम्, **विवृण्वती**—प्रकटयन्ती सती **पर्यस्तविलोचनेन**—पर्यस्ते इतस्ततः क्षिप्ते, लोचने—नेत्रे, यत्र तादृशेन, अत एव **चारुतरेण**—अतिमनोहरेण, **मुखेन**—आननेन, [ प्रकृत्यादित्वात् तृतीया ] **साचीकृता**—वक्रीकृता, लज्जावशात् परावृत्तमुखीति यावत्। **तस्थौ**—स्थितवती। अत्र पद्ये शृङ्गारो रसोऽभिव्यज्यते। तत्र पार्वतीनिष्ठा शिवविषयिणी रतिः स्थायिभावः, शिवः आलम्बनविभावः, रोमाञ्चादिरनुभावः, साचीकृतत्वादिनाभिव्यक्ता लज्जा व्यभिचारिभावः।

हासस्थायिभावको रसो हास्य इत्युच्यते। हासस्तु वागङ्गादिविकारजन्मा चेतसो विकासः। तत्र हास्यरसस्य विभावाद्या यथा—

विकृताकारवाक्चेष्टं यमालोक्य हसेज्जनः।
तदत्रालम्बनं प्राहुस्तच्चेष्टोद्दीपनं मतम् ॥
अनुभावोऽक्षिसंकोचवदनस्मेरतादयः।

---

**एषामिति**। इनके क्रमशः उदाहरण देते हैं, शृङ्गार का जैसे **विवृण्वती**। गिरिराजकुमारी पार्वती भी ताजे खिले हुए कदम्ब पुष्पों के सदृश—रोमाञ्चयुक्त-अङ्गों के द्वारा अपने भाव-शिवविषयक अनुराग—को प्रकट करती हुई इधर-उधर दृष्टिपात करती हुई [ लज्जावश ] अपना मनोहर मुख मोड़कर खड़ी रही।

हास्य का उदाहरण—**भिक्षो** इति। हे भिक्षो ! क्या तुम मांस का सेवन करते हो ? अजी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



तासामर्थरुचिः, कुतस्तव धनम्? द्यूतेन चौर्य्येण वा
चौर्य्यद्यूतपरिग्रहोऽपि भवतो नष्टस्य काऽन्या गतिः" ॥ १० ॥

---

निद्रालस्यावहित्थाद्या अत्र स्युर्व्यभिचारिणः ॥

अत्र—हास्ये रसे। वदनस्मेरता—मुखविकासः।

हास्योदाहरणं यथा—भिक्षो इति। विनोदप्रवणेन केनचिद्भिक्षुणा सह कस्यचित् पुरुषस्य प्रश्नोत्तररूपं पद्यमिदम्।

**भिक्षो!**—हे संन्यासिन्! त्वम्, **मांसनिषेवणम्**—मांसभक्षणम्, **प्रकुरुषे?** संन्यासिनस्ते तादृशं तामसं भोजनं नोचितमिति भावः। विनोदी—भिक्षुरुत्तरति—**मद्यं विना**—सुराया अभावे, **तेन**—मांसेन, **किम्?** सुरां विना मांसस्य क आस्वादः। मांसेन सह सुरामप्यहं वाञ्छामीति भावः। पुरुषः पृच्छति **किं मद्यम्, अपि, तव**—संन्यासिनः, **प्रियम्?** भिक्षुरुत्तरति—**वाराङ्गनाभिः**—वेश्याभिः, **सह, तद्, अहो**—अत्यधिकम्, **प्रियम्**। भवतीति शेषः। पुरुषः पृच्छति—**तासाम्**—वाराङ्गनानाम्, **अर्थरुचिः**—द्रव्याभिलाषो भवति, न हि ता द्रव्यहीनं पुरुषं रोचयन्ति, **तव**—संन्यासिनः **धनम्, कुतः** कस्माद् आयाति। भिक्षुरुत्तरति **द्यूतेन, चौर्येण वा**। द्यूतं चौर्यं वा कृत्वा धनं प्राप्नोमीति भावः। पुरुषः पृच्छति—**भवतः**—संन्यासिनः, **चौर्यद्यूतपरिग्रहोऽपि**—चौर्यद्यूतयोरपि परिग्रहः—स्वीकारोऽस्ति किम्? अपिशब्दात् मांस-मद्य-वाराङ्गनानां समुच्चयः भिक्षुराह—**नष्टस्य** पतितस्य, मांसादिसेवनरुचेः, **अन्या**—चौर्याद् द्यूताच्च भिन्ना, **का गतिः**—क उपायः, न कोऽपीत्यर्थः। अत्र हास्यो रसोऽभिव्यज्यते। तत्र श्रोतृनिष्ठो हासः स्थायिभावः। विनोदी भिक्षुस्तत्रालम्बनविभावः। उत्तरोत्तरस्वधर्मविरुद्ध-निकृष्टवस्तुस्वीकारोक्तिरुद्दीपनम्। श्रोतुर्मुखविकासादयोऽनुभावाः। अवहित्थाद्या व्यभिचारिणः।

हास्यस्यान्यदुदाहरणं साहित्यदर्पणे यथा—

गुरोर्गिरः पञ्चदिनान्यधीत्य वेदान्तशास्त्राणि दिनत्रयं च।
अमी समाघ्राय च तर्कवादान् समागताः कुक्कुटमिश्रपादाः ॥

पण्डितपरिषदि रुचिरवासांसि परिधाय समागच्छन्तं पण्डितमानिनं कञ्चन मूर्खमालोक्य कस्यचन परिहासचतुरस्योक्तिरियम्।

इमे कुक्कुटमिश्राः समायान्ति सभायाम्। एतैर्महानुभावैः पञ्चभिरेव दिनैः समस्तं प्राभाकरं मतमवलीढम्, वेदान्तशास्त्राणि च दिनत्रयेणैव अन्तर्निगीर्णानि, तार्किकाणां सिद्धान्ता अपि एतैः साधु समाघ्राताः। अत्रापि हास्यो रसोऽभिव्यज्यते।

शोकस्थायिको रसः करुण इत्युच्यते। पुत्रादिवियोगमरणादिजन्मा वैक्लव्याख्यश्चित्तवृत्ति-विशेषः शोकः। तद्विभावाद्या यथा—

---

मद्य के विना उससे क्या? क्या मद्य भी तुम्हें प्रिय लगता है, परन्तु वेश्या के साथ। वे (वेश्या) तो पैसा चाहती हैं, तुम्हारे पास पैसा कहाँ से आता है? जूए से या चोरी से। क्या तुम चोरी भी करते हो, जूआ भी खेलते हो? दुर्वृत्त पुरुष के लिये दूसरा रास्ता है ही क्या?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



करुणस्य—

"अदृष्टदुःखो धर्मात्मा सर्वभूतप्रियंवदः।
मयि जातो दशरथात् कथमुञ्छेन वर्त्तयेत् ॥ ११ ॥
यस्य भृत्याश्च दासाश्च स्वादून्यन्नानि भुञ्जते।
कथं स भोक्ष्यते रामो वने मूलफलान्ययम्" ॥ १२ ॥ (रामा०)

---

शोकोऽत्र स्थायिभावः स्याच्छोच्यमालम्बनं मतम्।
तस्य दाहादिकाऽवस्था भवेदुद्दीपनं पुनः ॥
अनुभावा दैवनिंन्दाभूपात-क्रन्दितादयः।
वैवर्ण्योच्छ्वासनिःश्वासस्तम्भप्रलपनानि च ॥
निर्वेदमोहापस्मारव्याधिग्लानिस्मृतिश्रमाः ।
विषादजडतोन्मादचिन्ताद्या व्यभिचारिणः ॥

करुणोदाहरणं यथा—**अदृष्टेति**। वाल्मीकीये रामवियोगदुःखितायाः कौशल्याया उक्तिरियम्। **अदृष्टदुःखः**—अदृष्टं कदाप्यननुभूतम् दुःखं येन तादृशः, **धर्मात्मा**—धर्मे, आत्मा मनो यस्य तादृशः, धर्मनिष्ठः, **सर्वभूतप्रियंवदः**—सर्वेषां भूतानां प्राणिनां, प्रियं वदति-तथाभूतः, रुचिरवागित्यर्थः। **मयि**—कौशल्यायां पट्टराज्ञ्याम्, **दशरथात्**—सम्राजः, **जातः**—प्रसूतः, रामः, **कथम्**—केन प्रकारेण, **उञ्छेन** [ उञ्छः कणश आदानम् ] तपस्विजनोचितया उञ्छवृत्त्या, **वर्तयेत्**—जीवनं निर्वहेत्।

**यस्य**—रामस्य, **भृत्याः**—भृतिमुपजीवन्तः कर्मकराः, पोष्यवर्गो वा। **दासाः** किङ्कराश्च, **स्वादूनि**—रसनीयानि, **अन्नानि**—भक्ष्य-भोज्य-लेह्य-चूष्याणि, **भुञ्जते**—आस्वादयन्ति, **सः, अयम्, रामः, वने, कथम्, मूलफलानि**—मूलानि फलानि च, **भोक्ष्यते ?**

अत्र पद्यद्वये करुणो रसोऽभिव्यज्यते। तत्र कौशल्यानिष्ठः शोकः स्थायी। तत्सुतो वनवासी राम आलम्बनम्। तस्य अदृष्टदुःखतादयो धर्मा उद्दीपनम्। 'स कथं वर्तयेत्, कथं भोक्ष्यते' इत्याद्यालपितानि, 'यस्य भृत्याश्च दासाश्च' इत्यादिना तदैश्वर्यकीर्तनं चानुभावः। स्मृति-चिन्ताद्या व्यभिचारिणः।

क्रोधस्थायिको रसो रौद्र इत्युच्यते। गुरु-बन्धु-वधादिपरमापराधजन्मा प्रज्वलनाख्यः चित्त-वृत्तिविक्षेपः क्रोधः। तस्य विभावादयो यथा—

आलम्बनमरिस्तत्र तच्चेष्टोद्दीपनं मतम्।
भ्रूविभङ्गोष्ठनिर्दंशबाहुस्फोटनतर्जनाः ॥

---

करुण रस का उदाहरण **अदृष्टेति** जिसने कभी दुःख नहीं देखा, जो धर्मात्मा है, जो सबके लिये प्रियभाषी है, जिसने मेरी ( कौसलराजपुत्री की ) कोख से जन्म लिया है, जो महाराज दशरथ का पुत्र है, वह किस प्रकार उञ्छवृत्ति से ( कण कण चुँनकर ) जीवन निर्वाह कर सकेगा। जिसके नौकर चाकर भी ( तरह तरह के स्वादिष्ट अन्न भोजन करते हैं, वह यह राम वन में फल मूल किस तरह खाएगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



रौद्रस्य—

"कृतमनुमतं दृष्टं वा यैरिदं गुरुपातकं
मनुजपशुभिर्निर्मर्यादैर्भवद्भिरुदायुधैः ।
नरकरिपुणा सार्द्धं तेषां सभीमकिरीटिना-
मयमहमसृङ्मेदोमांसैः करोमि दिशां बलिम्" ॥ १३ ॥ ( वेणी० )

वीरस्य—

"क्षुद्राः ! संत्रासमेते विजहित हरयः ! क्षुण्णशक्रेभकुम्भा
युष्मद्देहेषु लज्जां दधति परममी सायका निष्पतन्तः ।

---

आत्मावदानकथनमायुधोत्क्षेपणानि च ।
उग्रतावेगरोमाञ्चस्वेदवेपथवो मदः ॥
अनुभावास्तथाक्षेपक्रूरसंदर्शनादयः ।
मोहामर्षादयस्तत्र भावाः स्युर्व्यभिचारिणः ॥

तदुदाहरणं यथा—**कृतमनुमत**मिति । वेणीसंहारे पितृवधामर्षितस्य अश्वत्थाम्न उक्तिरियम् । **यैः**, **निर्मर्यादैः**—अशस्त्रे आचार्ये शस्त्रप्रहारेण त्यक्तमर्यादैः, अत एव **मनुजपशुभिः**—मनुजा एव पशवः, तैः, मनुजनामधारिभिः अविशेषदृष्टित्वात् पशुतुल्यैः, **उदायुधैः**—उद्यतानि गृहीतानि, आयुधानि शस्त्राणि, यैस्तादृशैः, **भवद्भिः**—पाण्डवैः, **इदम्**—इदानीं कृतम्, **गुरु** महत्, **पातकम्**—गुरुहत्यारूपकिल्बिषम्, **कृतम्**—अनुष्ठितम्, **अनुमतम्**—अनुज्ञातम्, **दृष्टम्**—तूष्णीम् अवलोकितं वा [ अनुमन्ता विशसितेत्यादिना अनुमन्त्रादीनामपि घातकत्वस्मरणात् ] **नरकरिपुणा**—नरकासुरवधकर्त्रा कृष्णेन, **सार्धम्**—सह **सभीमकिरीटिनाम्**—भीमार्जुनसहितानाम्, **तेषाम्**—भवताम्, **असृङ्मेदोमांसैः**—असृजा रुधिरेण, मेदसा वसया, मांसेन पिशितेन, **अयम्**—भवत्पुरोवर्ती, **अहम्**—अनन्यसहायोऽश्वत्थामा, **दिशाम्**—दिगधिष्ठात्रीणां देवतानाम्, **बलिम्**—उपहारम्, **करोमि**। अत्र रौद्रो रसोऽभिव्यज्यते । तत्र अश्वत्थामनिष्ठः क्रोधः स्थायी, गुरुवधमहापराधिनो धृष्टद्युम्नादय आलम्बनम् । अशस्त्रे शस्त्रोद्यमनादि उद्दीपनम् । निर्मर्यादैरित्याक्षेपः, बलिं करोमीति प्रतिज्ञा च अनुभावौ । गर्वामर्षादयो व्यभिचारिणः ।

उत्साहस्थायिभावको रसो वीर इत्युच्यते । परपराक्रमदानादिस्मृतिजन्मा औन्नत्याख्यश्चित्तवृत्तिविशेष उत्साहः । तस्य विभावादयो यथा—

आलम्बनविभावास्तु विजेतव्यादयो मताः । विजेतव्यादिचेष्टाद्यास्तस्योद्दीपनरूपिणः ॥
अनुभावास्तु तत्र स्युः सहायान्वेषणादयः । धृतिर्मतिः स्मृतिस्तर्कौ गर्वश्च व्यभिचारिणः ॥

तदुदाहरणं यथा—**क्षुद्रा** इति । हनुमन्नाटके एकादशेऽङ्के रावणपुत्रस्येन्द्रजित उक्तिरियम् ।

---

रौद्र का उदाहरण **कृतमिति** । जिन शस्त्रधारी मर्यादा का उल्लङ्घन करनेवाले नर-पशुओं ने यह महापाप किया है, इसमें अनुमति दी है, या इसे देखा है, उन सब के तथा नरकासुर के शत्रु कृष्ण, भीम और अर्जुन के रुधिर, चर्बी और मांस से मैं आज दिशाओं को बलि देता हूँ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



सौमित्रे ! तिष्ठ, पात्रं त्वमसि न हि रुषां, नन्वहं मेघनादः
किञ्चिद्भ्रूभङ्गलीलानियमितजलधिं राममन्वेषयामि" ॥ १४ ॥ ( महाना० )

---

एते–पुरोवर्तिनः, **क्षुद्राः**–जात्या पराक्रमेण च हीनाः, **हरयः**–हे वानराः, यूयम्, **संत्रासम्**–भयम्, **विजहित**–त्यजत। युष्माभिर्न भेतव्यमिति भावः। भयत्यागे हेतुमाह—**क्षुण्णेति**। **क्षुण्णशक्रेभकुम्भाः**–क्षुण्णौ चूर्णितौ, शक्रेभस्य [ शक्रस्येभस्तस्य] इन्द्रारूढस्य ऐरावतनाम्नो गजस्य कुम्भौ गण्डौ यैस्तादृशाः, **अमी**–इन्द्रादिमानमर्दनतया प्रसिद्धाः **सायकाः**–मम शराः, **युष्मद्देहेषु**, **निष्पतन्तः**–निपतन्तः, **परम्**–अत्यर्थम्, **लज्जाम्**, **दधति**—धारयन्ति, अनुभवन्तीति यावत्। केचित्तु निष्पतन्तः मच्चापान्निर्गच्छन्तः, युष्मद्देहेषु पतितुं परां लज्जां दधति इत्येवं व्याचक्षते। निष्पतनस्य निर्गमनार्थत्वाभावात्। जडानामपि बाणानां वानरैः सह युद्धे लज्जानुभववर्णनाद् मेघनादस्य गर्वोऽभिव्यज्यते।

**सौमित्रे** हे सुमित्रानन्दन, **तिष्ठ**–त्वं युद्धाद्विरम। **हि**–यतः **त्वम्**, **रुषाम्**–मम क्रोधानाम्, **पात्रम्**–विषयः, **नासि**–न भवसि। 'सौमित्रे' इति लक्ष्मणस्य मातृसम्बन्धोत्कीर्तनाद् निर्वीर्यत्वं ध्वनितम्। **अहम्**, **मेघनादः**–मेघस्य नाद इव नादो गर्जितं यस्य तादृशः, मेघनादनाम्ना प्रसिद्धः अस्मि, **ननु**–निश्चयेन। [ अर्थान्तरसंक्रमितवाच्यध्वनिरत्र ] अहं तु **किंचिद्भ्रूभङ्गलीलानियमितजलधिम्**–किंचिद् ईषत्, भ्रूभङ्गलीलया भ्रुवोर्भङ्गः कौटिल्यम्, स एव लीला, तया, ईषद् भ्रुकुटिमात्रप्रदर्शनेनैवेति भावः। नियमितः बद्धः, कृतसेतुरिति यावत्, जलधिः समुद्रो येन तादृशम्, **रामम्**, **अन्वेषयामि**–कीदृक्पराक्रमशीलोऽसाविति ज्ञातुमिच्छामीति भावः। केचित्तु किंचिदिति अन्वेषणक्रियाविशेषणं मत्वा किञ्चिदन्वेषयामि, सोऽपि न वस्तुतस्तादृगन्वेषणपात्रमिति भाव इत्येवं योजयन्ति। अत्र सहृदयसामाजिकस्य वीरो रसोऽभिव्यज्यते। मेघनादनिष्ठ उत्साहः स्थायी। रामोऽत्रालम्बनम्। तत्समुद्रबन्धनाद्युद्दीपनम्। क्षुद्रेषूपेक्षा पराक्रमशालिनि रामे प्रतिस्पर्धा चानुभावौ। ऐरावतकुम्भस्थलचूर्णनोत्कीर्तनेन गम्या स्वपराक्रमस्मृतिः गर्वश्च व्यभिचारिणौ।

भयस्थायिभावको रसो भयानक इत्युच्यते। व्याघ्रदर्शनादिजन्मा परमानर्थविषयको वैक्लव्याख्यश्चित्तवृत्तिविशेषो भयम्। तत्र विभावादयो यथा—

यस्मादुत्पद्यते भीतिस्तदत्रालम्बनं मतम्। चेष्टा घोरतरास्तस्य भवेदुद्दीपनं पुनः ॥
अनुभावोऽत्र वैवर्ण्यगद्गदस्वरभाषणम्। प्रलय-स्वेद-रोमाञ्च-कम्पदिक्प्रेक्षणादयः ॥
जुगुप्सा-वेग-संमोह–संत्रास-ग्लानि-दीनताः। शङ्कापस्मार-संभ्रान्ति-मृत्यवो व्यभिचारिणः ॥

---

वीर रस का उदाहरण **क्षुद्रा** इति। हे क्षुद्र वन्दरो ! तुम भय छोड़ दो। इन्द्र के हाथी-ऐरावत के कुम्भ स्थल को चूर-चूर करने वाले ( मेरे ) ये बाण तुम्हारे शरीरों पर पड़ते हुए अत्यन्त लज्जा का अनुभव करते हैं। सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण ! तुम [ मेरे ] क्रोध के योग्य नहीं हो मैं निश्चय ही मेघनाद हूँ, जिसने [ अपनी ] जरा सी भ्रुकुटि-लीला से ही समुद्र को बाँध दिया, उस राम को ढूँढ़ता हूँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



भयानकस्य—

"नष्टं वर्षवरैर्मनुष्यगणनाभावादपास्य त्रपा-
मन्तः कञ्चुकिकञ्चुकस्य विशति त्रासादयं वामनः।
पर्यन्ताश्रयिभिर्निजस्य सदृशं नाम्नः किरातैः कृतं
कुब्जा नीचतयैव यान्ति शनकैरात्मेक्षणाशङ्किनः" ॥ १५ ॥

( रत्नावली )

भयानकस्योदाहरणं यथा—नष्टमिति। रत्नावल्यां मर्कटवेषधारिणमन्तःपुरप्रविष्टं वसन्तकं वीक्ष्य भीतानां वर्षवरादीनां वर्णनमिदम्। **वर्षवरैः**—नपुंसकैः, **मनुष्यगणनाभावात्** स्वस्य मनुष्येषु गणनाया अभावात् [ न स्त्री पुमान् नपुंसक इत्युक्तेरिति भावः ] **त्रपाम्**—मनुष्योचितां लज्जाम्, **अपास्य**—परित्यज्य, **नष्टम्**—क्वापि निलीनम्। अल्पीयसो वानराद्भये मनुष्याणां लज्जा स्यात्, वर्षवरास्तु न वयं स्त्रियः पुरुषा वा इति सर्वथा मनुष्ययोनिबहिर्भूततया विश्रब्धं लज्जां परित्यज्य प्राणत्राणकामाः क्वापि तिरोहिता इति भावः। **अयम् वामनः**—खर्वशरीरः, **त्रासात्**—वानरभयात्, **कञ्चुकिकञ्चुकस्य** 'अंगरखा' इति लोके प्रसिद्धस्य, वस्त्रस्य, **अन्तः**—अभ्यन्तरे, **विशति**—निलीयत इति भावः। **पर्यन्ताश्रयिभिः**—पर्यन्तान् गृहकोणान्, आश्रयन्ति तथाभूतैः भयाद् अन्तःपुरकोणेषु निलीयमानैरिति भावः, **किरातैः**—व्याधैः, **निजस्य**—स्वस्य, **नाम्नः** अभिधानस्य, **सदृशम्**—योग्यम्, **कृतम्**—आचरितम्। किरं प्रान्तदेशम्, अतन्ति गच्छन्तीति किराता उच्यन्ते। अतो भयाद् गृहप्रान्तमाश्रयद्भिः किरातैः स्वनामैव चरितार्थितमिति भावः। **आत्मेक्षणाशङ्किनः**—आत्मनः स्वस्य, ईक्षणम् वानरकर्तृकमवलोकनम्, शङ्कन्ते—संदिहते तथाभूताः, कदाचिद्वानरोऽस्मानवलोकयेदिति शङ्कां कुर्वाणाः, **कुब्जाः**—पृष्ठास्थन उन्नततया खर्वीकृतशरीराः पुरुषाः, अपि, **नीचतयैव**—संकुचिततयैव,—**शनकैः**—मन्दं मन्दम् अशब्दमिति यावत्, **यान्ति**—अपसरन्ति। अत्र सहृदये पाठके श्रोतरि वा भयानको रसोऽभिव्यज्यते। तत्र वर्षवर-वामनादिनिष्ठं भयं स्थायिभावः। वानर आलम्बनविभावः। तच्चेष्टा उत्प्लवनादिकमुद्दीपनम्। वर्षवरादीनां पलाय्य निलयनमनुभावः। त्रासशङ्कादयो व्यभिचारिभावाः।

जुगुप्सास्थायिभावको रसो बीभत्स इत्युच्यते। कदर्यवस्तुविलोकनजन्मा विचिकित्साख्यश्चित्तवृत्तिविशेषो जुगुप्सा। तस्यालम्बनविभावादयो यथा—

दुर्गन्धमांस-रुधिर-मेदांस्यालम्बनं मतम्। तत्रैव कृमिपाताद्यमुद्दीपनमुदाहृतम्॥
निष्ठीवनास्यवलननेत्रसंकोचनादयः। अनुभावास्तत्र मतास्तथा स्युर्व्यभिचारिणः॥
मोहोऽपस्मार आवेगो व्याधिश्च मरणादयः॥

---

भयानक रस का उदाहरण—नष्टमिति। मनुष्यों में अपनी गिनती न होने के कारण नपुंसक [ वर्षवर ] लोग लज्जा छोड़कर कहीं छिप गए। यह बौना डर के मारे कञ्चुकी के अंगरखे में दुबक रहा है। किरातों ने कोनों का आश्रय लेकर अपने नाम के सदृश ही कार्य किया। कुबड़े अपने दीख जाने की आशङ्का से और भी झुक कर धीरे धीरे चल रहे हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



वीभत्सस्य—

"उत्कृत्योत्कृत्य कृत्तिं प्रथममथ पृथूच्छोथभूयांसि मांसा-
न्यंसस्फिक्पृष्ठपिण्ड्याद्यवयवसुलभान्युग्रपूतीनि जग्ध्वा।
आर्तः पर्यस्तनेत्रः प्रकटितदशनः प्रेतरङ्कः करङ्का-
दङ्कस्थादस्थिसंस्थं स्थपुटगतमपि क्रव्यमव्यग्रमत्ति" ॥ १६ ॥

(मालतीमाधवम्)

वीभत्सोदाहरणं यथा—उत्कृत्योत्कृत्येति। मालतीमाधवे पञ्चमेऽङ्के श्मशानगतशवभोजिनं प्रेतरङ्कं दृष्ट्वा माधवस्योक्तिरियम्। **प्रेतरङ्कः**—प्रेतेषु, रङ्को दरिद्रः बुभुक्षापीडितः प्रेत इति यावत्। **प्रथमम्** आदौ **कृत्तिम्**—चर्म, **उत्कृत्योत्कृत्य**—उल्लुच्योल्लुच्य, **अथ**—अनन्तरम्, **पृथूच्छोथभूयांसि**—पृथुना महता, उच्छोथेन पच्छूनतया [ क्वचित् पृथूत्सेधेति पाठः, तत्राप्ययमेवार्थः ] भूयांसि अत्यधिकानि, **अंसस्फिक्पृष्ठपिण्ड्याद्यवयवसुलभानि**—अंसौ स्कन्धौ, स्फिग् ऊरुमूलं कटिसन्धिभागश्च, पृष्ठपिण्डीजङ्घोर्ध्वभागः, [ एषां प्राण्यङ्गत्वात् समाहारद्वन्द्वः ] आदि येषां तादृशाः, ये अवयवाः गात्राणि, तेषु, सुलभानि, **उग्रपूतीनि** उत्कटदुर्गन्धानि, **मांसानि**, **जग्ध्वा**—आस्वाद्य, **अङ्कस्थात्** उत्सङ्गस्थितात्, **करङ्कात्**—अस्थिशेषात् प्रेतशरीरात्, अथवा मस्तकात् [ 'करङ्को मस्तकः' इति मेदिनी ] **अस्थिसंस्थम्** अस्थिसंबद्धम्, **स्थपुटगतम्** स्थपुटं निम्नोन्नतभागः, तत्र गतं स्थितम्, **अपि क्रव्यम्**—आममांसम्, **अव्यग्रम्**—शनैः शनैरास्वादमास्वादन्, **अत्ति**—भक्षयति। कीदृशः प्रेतरङ्कः? **आर्तः**—क्षुत्पीडितः, **पर्यस्तनेत्रः** परितः, अस्ते क्षिप्ते [ भोजनप्राप्तीच्छया, बलवत्पिशाचान्तरापहरणशङ्कया वा ] नेत्रे येन तादृशः। क्वचित्तु 'अन्तःपर्यस्तनेत्रः' इति पाठः, अन्तःपर्यस्ते अवटान्तर्गते, नेत्रे यस्य तादृश इति तद्व्याख्यानम्। केचित्तु अन्तः शवशरीरमध्ये, मांसजिघृक्षया पर्यस्ते पातिते, नेत्रे येन तादृश इति व्याचक्षते ] **प्रकटितदशनः**—प्रकटिताः स्थपुटगतमांसग्रहणकाले प्रकाशिताः दशना दन्ता येन तादृशः।

अत्र सहृदये सामाजिके वीभत्सो रसोऽभिव्यज्यते। माधवगता जुगुप्सात्र स्थायिभावः। उत्कृत्यमानमांसः शव आलम्बनम्। प्रेतरङ्केण तदुत्कर्तनं तद्भक्षणं चोद्दीपनम्। द्रष्टुर्नासाकुञ्चनवदनविधूननादयोऽनुभावाः। आवेगादयो व्यभिचारिणः।

ननु रति-शोक-क्रोधोत्साह-भयेषु प्रागुदाहृतेषु यथा रत्यादीनामालम्बनमाश्रयश्च पृथक् पृथक् प्रतीयेते, न तथा हासे जुगुप्सायां च। तत्रालम्बनस्यैव प्रतीतिर्न तु तदाश्रयस्यापि। न च

वीभत्स रस का उदाहरण—उत्कृत्योत्कृत्येति। यह दरिद्र प्रेत पहले अपनी गोद में रखे हुए इस मुर्दे के देह की चमड़ी नोच नोच कर, कन्धे, चूतड़, पीठ, पिंडली आदि अवयवों में सुलभ, बहुत फूल जाने के कारण मात्रा में अधिक, दुर्गन्धयुक्त सड़े मांस को खाकर भी भूख से आर्त आंखें फाड़े (मांस ढूंढने के लिये) दांत निकाले, (हड्डियों में से मांस नोचने के लिये) हड्डियों में चिपके और जोड़ों में जमे हुए मांस को भी धीरे २ (अव्यग्रम्) खा रहा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


अद्भुतस्य—

"मानुषीभ्यः कथं नु स्यादस्य रूपस्य सम्भवः।
न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात्" ॥ १७ ॥ [ अभि० शा० ]

पद्यश्रोतैव तत्राश्रयतयाऽभ्युपगन्तव्यः, तस्य रसास्वादाधिकरणत्वेन लौकिकहासजुगुप्साश्रयत्वानुपपत्तेः, इति चेत् सत्यम्। तदाश्रयस्य द्रष्टृपुरुषविशेषस्य तत्राक्षेप्यत्वात्। तदनाक्षेपेऽपि श्रोतुः स्वीयकान्तावर्णनपद्यादिव रसोद्बोधे बाधकाभावाददोषः।

विस्मयस्थायिभावको रसोऽद्भुत इत्युच्यते। अलौकिकवस्तुदर्शनादिजन्मा आश्चर्याख्या चित्तवृत्तिर्विस्मयः। तस्य विभावादयो यथा—

अत्र लोकातिगं वस्तु मतमालम्बनं विदाम्।
गुणानां तस्य महिमा भवेदुद्दीपनं पुनः॥
स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चगद्गदस्वरसंभ्रमाः।
तथा नेत्रविकासाद्या अनुभावाः प्रकीर्तिताः॥
वितर्कावेगसंभ्रान्तिहर्षाद्या व्यभिचारिणः।

अद्भुतस्योदाहरणं यथा—मानुषीभ्य इति। प्रथमशिखायां (पृ० ८) व्याख्यातमिदं पद्यम्। शकुन्तलात्र आलम्बनम्। तस्या अलौकिकं सौन्दर्यमुद्दीपनम्। तस्याः प्रशंसनमनुभावः। वितर्कहर्षाद्या व्यभिचारिणः। दुष्यन्ताश्रयो विस्मयः स्थायी। स च सामाजिकैरद्भुतरसतयास्वाद्यते। वस्तुतस्तु नेदमद्भुतरसध्वनेरुदाहरणं भवितुमर्हति, अत्र प्रतीयमानस्यापि विस्मयस्य दुष्यन्तनिष्ठशकुन्तलाविषयकरतेरेव प्रकर्षकत्वेन गुणीभूतत्वात्। तथा चास्य गुणीभूतव्यङ्ग्यत्वमेवोचितम्। तथा चेदमत्रोदाहार्यम्—

चराचरजगज्जालसदनं वदनं तव।
गलद्गगनगाम्भीर्यं वीक्ष्यास्मि हृतचेतना॥

कदाचिद् भगवतो वासुदेवस्य वदनमवलोकितवत्या यशोदाया इयमुक्तिः। अत्र वदनमालम्बनम्। अन्तर्गतचराचरजगज्जालमुद्दीपनम्। हृतचेतनत्वं तेन गम्यं रोमाञ्चनेत्रस्फुरणादि चानुभावः। त्रासादयो व्यभिचारिणः। न चात्रापि पुत्रविषया प्रीतिः (रतिभावः) प्रतीयत इति वाच्यम्। व्यञ्जकाभावात्। प्रकरणादिपर्यालोचनया प्रतीतायामपि तस्यां तां प्रति न विस्मयस्य गुणीभावः, अनुत्कटत्वात्। हृतचेतनत्वेन च विस्मयस्यैव प्राधान्यप्रकटनात्। इत्यलं विस्तरेण।

अथ मम्मटोक्त्या एषां रसानां स्थायिभावानाह—रतिरिति। रत्यादीनां लक्षणानि तत्तद् रसोदाहरणावसरे प्रतिपादितानि।

---

अद्भुतरसका उदाहरण—मानुषीभ्य इति। इस पद्य का अर्थ प्रथम शिखा में लिख चुके हैं (दे० पृ० ८)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



एषां क्रमेण स्थायिभावानाह मम्मटः—

"रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा।
जुगुप्सा विस्मयश्चैव स्थायिभावाः प्रकीर्तिताः" ॥ १८ ॥

व्यभिचारिभावान् कथयति स एव—

"निर्वेदग्लानिशङ्काख्यास्तथाऽसूयामदश्रमाः ।
आलस्यञ्चैव दैन्यञ्च चिन्ता मोहः स्मृतिर्धृतिः ॥ १९ ॥
व्रीडा चपलता हर्ष आवेगो जडता तथा।

---

अथ मम्मटोक्त्यैव व्यभिचारिभावान् निर्दिशति—निर्वेद इति। निर्वेदादीनां लक्षणानि क्रमशो यथा—

१—तत्त्वज्ञानापदीर्ष्यादेः स्वावमाननं निर्वेदः।

२—आधि-व्याधिजन्यबलहानिप्रभवो वैवर्ण्य-शिथिलाङ्गत्व-दृग्भ्रमणादिहेतुर्दुःखविशेषो ग्लानिः।

३—किमनिष्टं मम भविष्यतीत्याकारश्चित्तवृत्तिविशेषः शङ्का।

४—परोत्कर्षदर्शनादिजन्यः परनिन्दाकारणीभूतश्चित्तवृत्तिविशेषोऽसूया।

५—मद्याद्युपयोगजन्मा उल्लासाख्यः शयनहसितादिहेतुश्चित्तवृत्तिविशेषो मदः।

६—बहुतरशारीरव्यापारजन्मा निःश्वासाङ्गसंमर्दनिद्रादिकारणीभूतः खेदविशेषः श्रमः।

७—अतितृप्ति-गर्भ-व्याधि-श्रमादिजन्या चेतसः क्रियानुन्मुखता—आलस्यम्।

८—दुःखदारिद्र्यापराधादिजनितः स्वापकर्षभाषणादिहेतुश्चित्तवृत्तिविशेषो दैन्यम्।

९—इष्टाप्राप्त्यनिष्टप्राप्त्यादिजनिता ध्यानापरपर्याया वैवर्ण्य-भूलेखनाधोमुखत्वादिहेतुश्चित्तवृत्तिश्चिन्ता।

१०—भयवियोगादिप्रयोज्या वस्तुतत्त्वानवधारिणी चित्तवृत्तिर्मोहः।

११—संस्कारजन्यं ज्ञानं स्मृतिः।

१२—लोभ-शोक-भयादिजनितोपप्लवनिवारणकारणीभूतश्चित्तवृत्तिविशेषो धृतिः।

१३—स्त्रीणां पुरुषमुखावलोकनादेः, पुंसां च प्रतिज्ञाभङ्गपराभवादेरुत्पन्नो वैवर्ण्याधोमुखत्वादिकारणीभूतश्चित्तवृत्तिविशेषो व्रीडा।

१४—अमर्षादिजन्यवाक्पारुष्यादिकारणीभूता चित्तवृत्तिश्चपलता।

१५—इष्टप्राप्त्यादिजन्यः सुखविशेषो हर्षः।

---

क्रमशः रसों के स्थायीभाव—

**रतिरिति**। रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा और विस्मय ये रसों के स्थायी भाव कहे गए हैं।

व्यभिचारिभाव—

**निर्वेदेति**। निर्वेद, ग्लानि, शङ्का, असूया, मद, श्रम, आलस्य, दैन्य, चिन्ता, मोह,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



गर्वो विषाद औत्सुक्यं निद्राऽपस्मार एव च ॥ २० ॥
सुप्तं प्रबोधोऽमर्षश्चाप्यवहित्थमथोग्रता ।
मतिर्व्याधिस्तथोन्मादस्तथा मरणमेव च ॥ २१ ॥
त्रासश्चैव वितर्कश्च विज्ञेया व्यभिचारिणः ।
त्रयस्त्रिंदशमी भावाः समाख्यातास्तु नामतः" ॥ २२ ॥

नवमः शान्तरसः—

"निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः" ॥ [ मम्मटः ]

---

१७—चिन्तोत्कण्ठाभयविरहेष्टानिष्टदर्शनश्रवणादिजन्या अवश्यकर्तव्यार्थ-प्रतिसंधानविकला चित्तवृत्तिर्जडता ।

१८—रूप-धन-विद्यादिप्रयुक्तात्मोत्कर्षज्ञानाधीनं परावहेलनं गर्वः ।

१९—इष्टासिद्धिराजगुर्वाद्यपराधादिजन्योऽनुतापो विषादः ।

२०—अधुनैवास्य लाभो ममास्त्वितीच्छा औत्सुक्यम् ।

२१—श्रमादिप्रयोज्यं चेतःसंमीलनं निद्रा ।

२२—वियोग-शोक-भय-जुगुप्सादीनामतिशयाद् ग्रहावेशादेश्चोत्पन्नो व्याधिविशेषोऽपस्मारः ।

२३—निद्राविर्भावोत्थज्ञानं सुप्तम्—स्वप्न इति यावत् ।

२४—निद्रानाशोत्तरं जायमानो बोधः प्रबोधः ।

२५—परकृतावज्ञादिनानापराधजन्यो मौनवाक्पारुष्यादिकारिणीभूतश्चित्तवृत्तिविशेषोऽमर्षः ।

२६—व्रीडादिभिर्निमित्तैर्हर्षाद्यनुभावानां गोपनाय जनितो भावविशेषोऽमर्षः ।

२७—अधिक्षेपापमानादिप्रभवा किमस्य करोमीत्याद्याकारा चित्तवृत्तिरुग्रता ।

२८—शास्त्रादिविचारजन्यमर्थनिर्धारणं मतिः ।

२९—रोगविरहादिप्रभवो मनस्तापो व्याधिः ।

३०—विप्रलम्भ-महापत्ति-परमानन्दादिजन्मा अन्यस्मिन्नन्यावभास उन्मादः ।

३१—रोगादिजन्या मूर्च्छारूपा मरणप्रागवस्था मरणम् ।

३२—भीरोर्घोरसत्त्वदर्शन-स्फूर्जथुश्रवणादिजन्मा चित्तवृत्तिस्त्रासः ।

३३—संदेहाद्यनन्तरं जायमान ऊहो वितर्कः । एतेषामुदाहरणानि विस्तरभयान्नेहोपन्यस्यन्ते । जिज्ञासुभिः साहित्यदर्पणादितोऽवगन्तव्यानि ।

---

स्मृति, धृति, व्रीडा, चपलता, हर्ष, आवेग, जड़ता, गर्व, विषाद, औत्सुक्य, निद्रा, अपस्मार, सुप्ति, प्रबोध, अमर्ष, अवहित्थ, उग्रता, मति, व्याधि, उन्माद, मरण [ मरण से पहली अवस्था ], त्रास और वितर्क इन्हें व्यभिचारिभाव [ अथवा संचारिभाव ] जानो, ये संख्या में तैंतीस हैं और प्रत्येकका नाम लेकर बता दिये गये हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



यथा—

"अहौ वा हारे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा
मणौ वा लोष्टे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा।
तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यान्ति दिवसाः
क्वचित् पुण्येऽरण्ये शिव ! शिव ! शिवेति प्रलपतः" ॥२३॥ [ वैरा० शत० ]

---

निर्वेदस्यामङ्गलप्रायस्य प्रथममनुपादेयत्वेऽपि उपादानं व्यभिचारित्वेऽपि स्थायिताऽभिधानार्थम्। ननु 'अष्टौ काव्ये रसाः स्मृताः' इति पूर्वमुक्तम्। तेषां चाष्टानां रसानामष्टौ स्थायिभावा अपि रत्यादयः पूर्वमुक्ताः, तत् किं रसान्तरं नवनमस्ति यत्रायं निर्वेदः स्थायितां गच्छतीत्यत आह निर्वेद इति। निर्वेदः स्थायिभावो यत्र तादृशः शान्तो नाम नवमोऽपि रसोऽस्तीत्यर्थः, तस्य विभावादयो यथा—

अनित्यत्वादिनाऽशेषवस्तुनिःसारता तु या। परमात्मस्वरूपं वा तस्यालम्बनमिष्यते ॥
पुण्याश्रम-हरिक्षेत्र-तीर्थ-रम्यवनादयः। महापुरुषसङ्गाद्यास्तस्योद्दीपनरूपिणः ॥
रोमाञ्चाद्याश्चानुभावास्तथा स्युर्व्यभिचारिणः। निर्वेद-हर्ष-स्मरण-मति-भूतदयादयः ॥

तदुदाहरणमाह **अहाविति**। भर्तृहरिशतकस्य वैराग्यशतके पद्यमिदमुपलभ्यते। श्रीमदभिनवगुप्तपादगुरोरुत्पलाचार्यस्येदं पद्यं भर्तृहरिणा स्वशतके संगृहीतमित्यैतिहासिकाः। **अहौ**—सर्पे वा, **हारे**—मौक्तिकस्रजि वा, **कुसुमशयने**—पुष्पशय्यायां वा, **दृषदि**—प्रस्तरशिलायां वा, **मणौ**—रत्ने वा, **लोष्टे**—मृत्पिण्डे वा, **बलवति**—शक्तिशालिनि, **रिपौ**—शत्रौ वा, तादृशे **सुहृदि**—मित्रे वा, **तृणे**—घासे वा, **स्त्रैणे**—स्त्रीणां समूहे वा, [ स्त्रीशब्दात् स्नञ्प्रत्ययः ] **समदृशः**—समा तुल्या हेयत्वोपादेयत्वशून्या दृग् दृष्टिर्यस्य तादृशस्य, अत एव **क्वचित्**—कस्मिँश्चिदपि, **पुण्ये**—पवित्रे, **अरण्ये**—नैमिषारण्यादौ ( केचित्तु क्वचिद् अमेध्ये देशे वा, पुण्येऽरण्ये वेत्येवं व्याचक्षते ) **शिव शिव शिव, इति प्रलपतः**—प्रयोजनमनुद्दिश्यैव उच्चारयतः, वीतस्पृहत्वादिति भावः, **मम दिवसाः** दिनानि, **यान्ति**—व्यतियन्ति। यान्त्विति पाठस्त्वनुचितः। निराशिषः शान्तस्य तादृगाशाया अनौचित्यात्। प्रत्युत तथा पाठे तादृशदिवसगमने रतेः प्रतीयमानत्वेन शान्तरसभङ्गापत्तेः। र दुक्तम्—

अनौचित्याद् ऋते नान्यद् रसभङ्गस्य कारणम्।
औचित्योपनिबन्धस्तु रसस्योपनिपत् परा ॥

अत्र नश्वरतया विभाव्यमानं जगद् आलम्बनम्। तपोवनाद्युद्दीपनम्। अहिहारादौ समदृष्टिरनुभावः। मति-धृति-हर्षादयो व्यभिचारिणः। एतैरभिव्यक्तो निर्वेदः स्थायी सहृदयसामाजिकैः शान्तरसतया आस्वाद्यते।

---

नवम रस—

**निर्वेदेति**। 'शान्त' नामक नौवाँ रस भी है जिसका स्थायी-भाव 'निर्वेद' है।

उदाहरण जैसे **अहौ** इति। साँप में और मोतियों की माला में, फूलों की सेज में और पत्थर की शिला में, मणि में और मिट्टी के ढेले में, बलवान् शत्रु में और मित्र में, तिनके में और स्त्री-समुदाय में, समान दृष्टि रखनेवाले मेरे दिन किसी पवित्र तपोवन में शिव शिव शिव जपते हुए व्यतीत होते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



वत्सलरसः—

"केचिच्चमत्कारितया वत्सलञ्च रसं विदुः" ॥ [ विश्वनाथः ]

यथा—

"उवाच धाव्या प्रथमोदितं वचो ययौ तदीयामवलम्ब्य चाङ्गुलिम् ।
अभूच्च नम्रः प्रणिपातशिक्षया पितुर्मुदं तेन ततान सोऽर्भकः" ॥ २४ ॥

संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यमाह—

"यत्र व्यङ्ग्यप्रतीतेस्तु क्रमः सम्यग्विभाव्यते ।

---

केचित्तु पूर्वोक्तनवरसातिरिक्तं वत्सलं नाम दशममपि रसमाहुः, तन्मतेनाह केचिदिति । चमत्कारितया—शृङ्गारादिवद् अलौकिकास्वादजनकतयेत्यर्थः । तस्य वत्सलरसस्य स्थायिभावादयो यथा—

स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः । स्थायी वत्सलता स्नेहः पुत्राद्यालम्बनं मतम् ॥
उद्दीपनानि तच्चेष्टा-विद्या-शौर्य-दयादयः । आलिङ्गनाङ्गसंस्पर्शशिरश्चुम्बनमीक्षणम् ॥
पुलकानन्दवाष्पाद्या अनुभावाः प्रकीर्तिताः । संचारिणोऽनिष्टशङ्काहर्षगर्वादयो मताः ॥

तदुदाहरणं यथा—उवाचेति । रघुवंशे दिलीपसूनो रघोः शैशववर्णनमिदम् । सः, अर्भकः—वालः रघुरिति यावत् । धाव्या—उपमात्रा, प्रथमोदितम्—प्रथममुच्चारितम्, वचः—शब्दम्, उवाच—अनूच्चचारेत्यर्थः, तदीयाम्—धाव्या इत्यर्थः, अङ्गुलिम्, अवलम्ब्य—गृहीत्वा, ययौ च—चचाल च, प्रणिपातशिक्षया—प्रणिपातो नमस्कारः, तस्य शिक्षया शिक्षणेन, 'वृद्धा अञ्जलिं बद्ध्वा प्रणम्याः' इत्येवं प्रणामकरणशिक्षणेन, नम्रः—वृद्धान् प्रति प्रणतः अभूत् च, इति यत्, तेन—कारणेन, पितुः—महाराजदिलीपस्य, मुदम्—आनन्दम्, ततान—अवर्धयत् ।

अत्र शिशू रघुरालम्बनम् । तस्य प्रथमादिपादत्रयोक्ता धात्र्युक्तोच्चारणादिरूपा चेष्टा उद्दीपनम् । आलिङ्गनादयोऽनुभावा अनुक्ता अपि आनन्दानुभवादाक्षेप्याः । हर्षादयः संचारिणः । वात्सल्यं स्थायि, तच्च पूर्वोक्तविभावादिभिर्व्यज्यमानं सहृदयै रसतयाऽऽस्वाद्यते ।

इत्थमसंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यं शृङ्गारादिरसध्वनिं प्रतिपाद्येदानीं प्राप्तावसरं संलक्ष्यक्रमं निरूपयति यत्रेति । यत्र—ध्वनौ, व्यङ्ग्यप्रतीतेः—व्यङ्ग्यार्थावगमस्य, क्रमः—पौर्वापर्यम् (वाच्यप्रतीत्या सहेति शेषः) सम्यक्—स्पष्टम्, घण्टायां ताडितायां रणनानुरणनयोः क्रमवदिति भावः ।

---

वत्सल रस—

**केचिच्च ।** कोई २ चमत्कार युक्त होने के कारण वत्सल रस भी (दसवां रस) मानते हैं । उदाहरण—

**उवाच ।** वह वालक 'रघु' धाई के प्रथम उच्चारण किये हुए शब्द को बोलता था, उस (धाई) की उंगली पकड़ कर चलता था और प्रणाम करने की शिक्षा से नम्र हो जाता था—प्रणाम करता था । इन बातों से वह वालक अपने पिता 'दिलीप' की प्रसन्नता को बढ़ाता था । यहाँ वालकृत चेष्टादि से परिपुष्ट हुआ स्नेह वत्सल रस कहलाता है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



स संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यस्तद्भेदा बहवः स्मृताः" ॥ २५ ॥

यथा पूर्वोदाहृते (३६ पृ०) "कुबेरगुप्ताम्" इत्यादिश्लोके दक्षिणाशब्देन दाक्षिण्यशीलनायिकारूपं वस्तु व्यज्यते । अयञ्च शब्दशक्त्युद्भवो वस्तुध्वनिः ।

गुणीभूतव्यङ्ग्यमाह—

"अनुत्तमे गुणीभूत-व्यङ्ग्यं व्यङ्ग्ये तु वाच्यतः" ।

व्यङ्ग्ये—व्यङ्ग्यार्थे, वाच्यतः—वाच्यार्थात्, अनुत्तमे—अनधिकचमत्कारिणि सति, गुणीभूतव्यङ्ग्यम्, तच्च मध्यमं काव्यं कथ्यते । यथा—

"अत्राऽऽसीत् फणिपाशबन्धनविधिः शक्त्या भवद्देवरे
गाढं वक्षसि ताडिते हनुमता द्रोणाद्रिरत्राऽऽहृतः ।

---

विभाव्यते–अनुभूयते, स—ध्वनिः; संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यः, अस्तीति शेषः । तद्भेदाः–तस्य संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यस्य, भेदाः, बहवः, स्मृताः–उक्ता इति भावः ।

उदाहरति यथेति । संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यस्य बहुषु भेदेषु कतमस्मिन् भेद इदमुदाहरणमन्तर्भवति–इत्याकाङ्क्षायामाह–अयं चेति । अयं भावः–संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यं त्रिधा विभज्यते शब्दशक्त्युद्भवम्, अर्थशक्त्युद्भवम् उभयशक्त्युद्भवं चेति । यत्र शब्दाः पर्यायपरिवृत्तिं न सहन्ते तत्र शब्दानां प्राधान्याद् ध्वनिः शब्दशक्त्युद्भव इत्युच्यते । यत्र शब्दाः पर्यायपरिवृत्तिसहाः–पर्यायपरिवर्तनेऽपि ध्वन्यनुभवस्तदवस्थ एव तिष्ठति–तत्रार्थस्य प्राधान्याद् ध्वनिरर्थशक्त्युद्भव इत्युच्यते । यत्रांशतः शब्दाः पर्यायपरिवृत्त्यसहाः, अंशतश्च तत्सहास्तत्रोभयप्राधान्यादुभयशक्त्युद्भवत्वव्यवहारः । तथा च पूर्वोक्तमुदाहरणं दक्षिणादिशब्दानां पर्यायपरिवृत्त्यसहतया शब्दशक्त्युद्भवध्वनिभेदेऽन्तर्भवति । शब्दशक्त्युद्भवध्वनिरपि वस्त्वलङ्कारभेदाद् द्विविधो भवति । तत्रायं वस्तुनो ध्वननाद् वस्तुध्वनिरुच्यते ।

गुणीभूतव्यङ्ग्यमुदाहरति अत्रासीदिति । बालरामायणनाटके रावणं हत्वा विमानमार्गेण

---

संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यध्वनि—

यत्रेति । जहाँ व्यङ्ग्य की प्रतीति का क्रम स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है वह 'संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य' ध्वनि है । इसके अनेक भेद माने गये हैं ।

यथेति । जैसे पहले (द्वितीयशिखा में ३३ पृ० पर) उदाहरणरूप में दिये गए 'कुबेरगुप्ताम्' इत्यादि पद्यमें 'दक्षिणा' शब्द से दाक्षिण्यशीलनायिकारूप वस्तु व्यञ्जित होती है । यह शब्दशक्त्युद्भव वस्तु ध्वनि है ।

गुणीभूतव्यङ्ग्य—

अनुत्तमे इति । जहाँ व्यङ्ग्य अर्थ वाच्य की अपेक्षा उत्तम–अधिकचमत्कारी–न हो, वह 'गुणीभूतव्यङ्ग्य' है । तच्चेति । उसे 'मध्यम' काव्य कहते हैं ।

जैसे अत्रेति । इस स्थान पर (हमारा) नागपाश से बन्धन हुआ था और यहाँ पर जब तुम्हारे देवर लक्ष्मण की छाती में (मेघनाद की) शक्ति से तीव्र चोट लगी तब हनुमान् गन्ध-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


दिव्यैरिन्द्रजिदत्र लक्ष्मणशरैर्लोकान्तरं प्रापितः
केनाप्यत्र मृगाक्षि ! राक्षसपतेः कृत्ता च कण्ठाटवी" ॥२६॥

अत्र अनुनायकोपनायकप्रतिनायकेषु निर्दिष्टेषु चतुर्थपादे नायको राम एवार्थशक्त्या प्रतीयते, स च केनापीत्युपादानेन वाच्यायमानतयाऽगूढः कृत इति व्यङ्ग्यस्य चमत्कारित्वमपनीतम् ।

---

गच्छतो रामस्य सीतां प्रत्युक्तिरियम् । **मृगाक्षि !** हे मृगनयने सीते ! **अत्र**–अस्मिन् स्थाने, आवयो रामलक्ष्मणयोः **फणिपाशबन्धनविधिः**–फणिपाशेन नागपाशेन, बन्धनविधानम्, **आसीत्**–अवटत । ( विधिरित्युक्त्या भवितव्यताया दुर्लङ्घ्यतोक्ता ) **भवद्देवरे**–भवत्या देवरे लक्ष्मणे, **वक्षसि**–उरसि, **शक्त्या**–मेघनादप्रेरितेन आयुधविशेषेण, **गाढम्**–दृढम्, **ताडिते**–प्रहृते सति, **अत्र, हनुमता, द्रोणाद्रिः**–संजीवनौषधिमान् गन्धमादनपर्वतः, **आनीतः**–प्रापितः । [ एतेन हनुमतः पराक्रमातिशयः स्वोपकारित्वं चोक्तम् ] **अत्र दिव्यैः**–अलौकिकैः, **लक्ष्मणशरैः** लक्ष्मणस्य बाणैः, **इन्द्रजिद्**–मेघनादः, **लोकान्तरम्**–परलोकम्, मरणमिति यावत् । **प्रापितः** । 'लम्भितः' इति क्वचित् पाठः । अर्थः समानः । [ इन्द्रजिदित्युक्तयेन्द्रविजेतुरपि विजेतृत्वेन लक्ष्मणस्य वीर्यातिरेक उक्तः । एवं लोकान्तरप्रापणे शराणां कर्तृत्वकथनात् लक्ष्मणस्येन्द्रजिद्विजयेऽवहेला सूचिता । ] **अत्र, केनापि**–मयेति भावः । धीरोदात्ततया स्वनामाग्रहणम् । **राक्षसपते** राक्षसानां पत्यू रावणस्य, **कण्ठाटवी**–कण्ठानामटवी कण्ठसमूहः, [ दशकण्ठतया प्रसिद्धत्वाद् रावणस्य ] **कृत्ता**–छिन्ना । फणिपाशबन्धनादिघटनानां विभिन्नस्थानेषु घटितत्वात् तेषां पृथग् २ बोधनाय पुनः पुनरत्रपदोपादानं बोध्यम् ।

अस्य गुणीभूतव्यङ्ग्यत्वं दर्शयति **अत्रेत्यादिना** । अनुनायको हनूमान् । उपनायको लक्ष्मणः । प्रतिनायको रावणः । **अर्थशक्त्या**–अर्थशक्त्युद्भवध्वनिप्रकारेणेत्यर्थः प्रतीयत इत्यस्य रावणहन्तृत्वेनेति शेषः । **अपनीतम्**–अपहृतमित्यर्थः ।

अयं स्पष्टो भावः वाच्यापेक्षया व्यङ्ग्यार्थस्यानुत्तमत्वे गुणीभूतव्यङ्ग्यता भवतीति पूर्वमुक्तम् । व्यङ्ग्यार्थस्यानुत्तमता तु अगूढत्वादिभिरनेकैर्हेतुभिर्भवति । तदुक्तं काव्यप्रकाशे—

---

मादन पर्वत को उठाकर लाया था । यहाँ पर लक्ष्मण के दिव्य बाणों ने इन्द्र-विजेता मेघनाद को दूसरे लोक में ( यमलोक में ) पहुँचाया था । हे मृगनयनी ! और यहाँ पर किसी ने राक्षसों के राजा रावण के कण्ठों का वन काटा था ।

**अत्रेति** । यहाँ पर अनुनायक ( हनुमान् ) उपनायक ( लक्ष्मण ) और प्रतिनायक ( रावण ) के शब्द द्वारा निर्दिष्ट कर दिये जाने पर चतुर्थ पाद में नायक राम अर्थ-सामर्थ्य से ही प्रतीत ( व्यञ्जित ) हो जाता है । परन्तु वह ( रामरूप अर्थ ) 'केनापि' इस शब्द के द्वारा वाच्य जैसा होने से अगूढ़ कर दिया गया है, गूढ़ नहीं रहा । इसलिये यहाँ व्यङ्ग्यार्थ का चमत्कारित्व जाता रहा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



स संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यस्तद्भेदा बहवः स्मृताः" ॥ २५ ॥

यथा पूर्वोदाहृते (३६ पृ०) "कुबेरगुप्ताम्" इत्यादिश्लोके दक्षिणाशब्देन दाक्षिण्यशीलनायिकारूपं वस्तु व्यज्यते। अयञ्च शब्दशक्त्युद्भवो वस्तुध्वनिः।

गुणीभूतव्यङ्ग्यमाह—

"अनुत्तमे गुणीभूत-व्यङ्ग्यं व्यङ्ग्ये तु वाच्यतः"।

व्यङ्ग्ये—व्यङ्ग्यार्थे, वाच्यतः—वाच्यार्थात्, अनुत्तमे—अनधिकचमत्कारिणि सति, गुणीभूतव्यङ्ग्यम्, तच्च मध्यमं काव्यं कथ्यते। यथा—

"अत्राऽऽसीत् फणिपाशबन्धनविधिः शक्त्या भवद्देवरे
गाढं वक्षसि ताडिते हनुमता द्रोणाद्रिरत्राऽऽहृतः।

---

विभाव्यते—अनुभूयते, स—ध्वनिः; संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यः, अस्तीति शेषः। तद्भेदाः—तस्य संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यस्य, भेदाः, बहवः, स्मृताः—उक्ता इति भावः।

उदाहरति यथेति। संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यस्य बहुषु भेदेषु कतमस्मिन् भेद इदमुदाहरणमन्तर्भवति—इत्याकाङ्क्षायामाह—अयं चेति। अयं भावः—संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यं त्रिधा विभज्यते शब्दशक्त्युद्भवम्, अर्थशक्त्युद्भवम् उभयशक्त्युद्भवं चेति। यत्र शब्दाः पर्यायपरिवृत्तिं न सहन्ते तत्र शब्दानां प्राधान्याद् ध्वनिः शब्दशक्त्युद्भव इत्युच्यते। यत्र शब्दाः पर्यायपरिवृत्तिसहाः—पर्यायपरिवर्तनेऽपि ध्वन्यनुभवस्तदवस्थ एव तिष्ठति—तत्रार्थस्य प्राधान्याद् ध्वनिरर्थशक्त्युद्भव इत्युच्यते। यत्रांशतः शब्दाः पर्यायपरिवृत्त्यसहाः, अंशतश्च तत्सहास्तत्रोभयप्राधान्यादुभयशक्त्युद्भवत्वव्यवहारः। तथा च पूर्वोक्तमुदाहरणं दक्षिणादिशब्दानां पर्यायपरिवृत्त्यसहतया शब्दशक्त्युद्भवध्वनिभेदेऽन्तर्भवति। शब्दशक्त्युद्भवध्वनिरपि वस्त्वलङ्कारभेदाद् द्विविधो भवति। तत्रायं वस्तुनो ध्वननाद् वस्तुध्वनिरुच्यते।

गुणीभूतव्यङ्ग्यमुदाहरति अत्रासीदिति। बालरामायणनाटके रावणं हत्वा विमानमार्गेण

---

संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यध्वनि—

यत्रेति। जहाँ व्यङ्ग्य की प्रतीति का क्रम स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है वह 'संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य' ध्वनि है। इसके अनेक भेद माने गये हैं।

यथेति। जैसे पहले (द्वितीयशिखा में ३३ पृ० पर) उदाहरणरूप में दिये गए 'कुबेरगुप्ताम्' इत्यादि पद्यमें 'दक्षिणा' शब्द से दाक्षिण्यशीलनायिकारूप वस्तु व्यञ्जित होती है। यह शब्दशक्त्युद्भव वस्तु ध्वनि है।

गुणीभूतव्यङ्ग्य—

अनुत्तमे इति। जहाँ व्यङ्ग्य अर्थ वाच्य की अपेक्षा उत्तम—अधिकचमत्कारी—न हों, वह 'गुणीभूतव्यङ्ग्य' है। तच्चेति। उसे 'मध्यम' काव्य कहते हैं।

जैसे अत्रेति। इस स्थान पर (हमारा) नागपाश से बन्धन हुआ था और यहाँ पर जब तुम्हारे देवर लक्ष्मण की छाती में (मेघनाद की) शक्ति से तीव्र चोट लगी तब हनुमान् गन्ध-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri


दिव्यैरिन्द्रजिदत्र लक्ष्मणशरैर्लोकान्तरं प्रापितः
केनाप्यत्र मृगाक्षि ! राक्षसपतेः कृत्ता च कण्ठाटवी" ॥२६॥

अत्र अनुनायकोपनायकप्रतिनायकेषु निर्दिष्टेषु चतुर्थपादे नायको राम एवार्थशक्त्या प्रतीयते, स च केनापीत्युपादानेन वाच्यायमानतयाऽगूढः कृत इति व्यङ्ग्यस्य चमत्कारित्वमपनीतम् ।

---

गच्छतो रामस्य सीतां प्रत्युक्तिरियम् । मृगाक्षि ! हे मृगनयने सीते ! अत्र–अस्मिन् स्थाने, आवयो रामलक्ष्मणयोः फणिपाशबन्धनविधिः–फणिपाशेन नागपाशेन, बन्धनविधानम्, आसीत्–अघटत । (विधिरित्युक्त्या भवितव्यताया दुर्लङ्घ्यतोक्ता) भवद्देवरे–भवत्या देवरे लक्ष्मणे, वक्षसि–उरसि, शक्त्या–मेघनादप्रेरितेन आयुधविशेषेण, गाढम्–दृढम्, ताडिते–प्रहृते सति, अत्र, हनुमता, द्रोणाद्रिः–संजीवनौषधिमान् गन्धमादनपर्वतः, आनीतः–प्रापितः । [एतेन हनुमतः पराक्रमातिशयः स्वोपकारित्वं चोक्तम्] अत्र दिव्यैः–अलौकिकैः, लक्ष्मणशरैः लक्ष्मणस्य बाणैः, इन्द्रजिद्–मेघनादः, लोकान्तरम्–परलोकम्, मरणमिति यावत् । प्रापितः । 'लम्भितः' इति क्वचित् पाठः । अर्थः समानः । [इन्द्रजिदित्युक्त्येन्द्रविजेतुरपि विजेतृत्वेन लक्ष्मणस्य वीर्यातिरेक उक्तः । एवं लोकान्तरप्रापणे शराणां कर्तृत्वकथनात् लक्ष्मणस्येन्द्रजिद्विजयेऽवहेला सूचिता । ] अत्र, केनापि–मयेति भावः । धीरोदात्ततया स्वनामाग्रहणम् । राक्षसपते राक्षसानां पत्यू रावणस्य, कण्ठाटवी–कण्ठानामटवी कण्ठसमूहः, [दशकण्ठतया प्रसिद्धत्वाद् रावणस्य] कृत्ता–छिन्ना । फणिपाशबन्धनादिघटनानां विभिन्नस्थानेषु घटितत्वात् तेषां पृथग् २ बोधनाय पुनः पुनरत्रपदोपादानं बोध्यम् ।

अस्य गुणीभूतव्यङ्ग्यत्वं दर्शयति अत्रेत्यादिना । अनुनायको हनूमान् । उपनायको लक्ष्मणः । प्रतिनायको रावणः । अर्थशक्त्या–अर्थशक्त्युद्भवध्वनिप्रकारेणेत्यर्थः प्रतीयत इत्यस्य रावणहन्तृत्वेनेति शेषः । अपनीतम्–अपहृतमित्यर्थः ।

अयं स्पष्टो भावः वाच्यापेक्षया व्यङ्ग्यार्थस्यानुत्तमत्वे गुणीभूतव्यङ्ग्यता भवतीति पूर्वमुक्तम् । व्यङ्ग्यार्थस्यानुत्तमता तु अगूढत्वादिभिरनेकैर्हेतुभिर्भवति । तदुक्तं काव्यप्रकाशे—

---

मादन पर्वत को उठाकर लाया था । यहाँ पर लक्ष्मण के दिव्य बाणों ने इन्द्र-विजेता मेघनाद को दूसरे लोक में (यमलोक में) पहुँचाया था । हे मृगनयनी ! और यहाँ पर किसी ने राक्षसों के राजा रावण के कण्ठों का वन काटा था ।

अत्रेति । यहाँ पर अनुनायक (हनुमान्) उपनायक (लक्ष्मण) और प्रतिनायक (रावण) के शब्द द्वारा निर्दिष्ट कर दिये जाने पर चतुर्थ पाद में नायक राम अर्थ-सामर्थ्य से ही प्रतीत (व्यञ्जित) हो जाता है । परन्तु वह (रामरूप अर्थ) 'केनापि' इस शब्द के द्वारा वाच्य जैसा होने से अगूढ़ कर दिया गया है, गूढ़ नहीं रहा । इसलिये यहाँ व्यङ्ग्यार्थ का चमत्कारित्व जाता रहा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


चित्रकाव्यमाह—

"व्यङ्ग्यार्थहीनं काव्यं यत् तत्त चित्रमिति स्मृतम्"।

चित्रमिति—गुणालङ्कारयुक्तम्, व्यङ्ग्यार्थहीनं—स्फुटप्रतीयमानव्यङ्ग्यार्थरहितम्; तच्च अधमं काव्यमुच्यते।

तस्य भेदानाह—

"शब्दचित्रं वाच्यचित्रं द्विविधं तत प्रकीर्त्तितम्" ॥ २७ ॥

---

अगूढमपरस्याङ्गं वाच्यसिद्ध्यङ्गमस्फुटम्।
संदिग्धतुल्यप्राधान्यं काक्वाक्षिप्तमसुन्दरम् ॥
व्यङ्ग्यमेवं गुणीभूतव्यङ्ग्यस्याष्टौ भिदाः स्मृताः।

तत्रेदं पद्यमगूढव्यङ्ग्यस्योदाहरणं बोध्यम्। अत्र पद्ये—नायको रामस्तस्याविकत्थनत्व-निगूढमानत्वलक्षणधीरोदात्तत्वरक्षार्थं कवेर्व्यञ्जनावृत्त्यैव प्रतिपिपादयिषितः। प्रतीयते च स व्यञ्जनावृत्त्यैव, यतोऽनुनायकोपनायकप्रतिनायकेषु निर्दिष्टेषु चतुर्थवाक्ये नायको रामोऽनुक्तोऽपि अर्थशक्त्या व्यज्यते। परं व्यज्यमानोऽपि स केनापीत्युक्त्या वाच्यायमानतां नीतः। अत एवास्यागूढत्वम्। व्यङ्ग्यं तु कामिनीकुचकलशवद् गूढमेव चमत्करोति, नागूढम्। न च सर्वनाम्ना किमा सामान्येन रामरूपेऽर्थे प्रतिपादितेऽपि रामत्वेन रूपेण नासौ वाच्य इति वाच्यम्, कथमपि वाच्यवृत्त्यनालिङ्गितस्यैव व्यङ्ग्यस्य चमत्कारित्वेनालङ्कारिकैः स्वीकारात्। केनापीत्यस्य स्थाने तस्यापीति पाठे तु न गुणीभूतत्वम्। तदानीं व्यङ्ग्यस्य गूढत्वात्। चित्रपदार्थमाह गुणालङ्कारेति। गुणेन अलङ्कारेण च युक्तमित्यर्थः। यद्यपि गुणस्य रसधर्मत्वेन रसाविनाभूतत्वाद् रससत्तायां च चित्रत्वाव्यवहारात्, प्रत्युतोत्तमकाव्यत्वस्वीकारान्नायमर्थः साधीयान्। तथापि गुणपदमत्र तद्व्यञ्जकरचनापरमिति केचित्। अथवा गुणेन-गुणीभूतेन वाच्येन अलङ्कारेण युक्तमिति तदर्थः। यत्र तूपमादयो व्यङ्ग्यास्तत्र न तेषां गुणीभूतत्वम्। तत्र ते ध्वनिव्यवहारप्रयोजका एवेति भावः। ननु व्यङ्ग्यार्थहीनस्य चित्रकाव्यत्वं यदुक्तं तन्न संगच्छते, यत्किञ्चिद् व्यङ्ग्यार्थस्य सर्वत्र विद्यमानत्वादित्यत आह स्फुटप्रतीयमानार्थरहितम्। स्फुटव्यङ्ग्यरहितमित्यर्थः। स्फुटत्वं च कवितात्पर्यविषयत्वम्। यथा च व्यङ्ग्यार्थहीनमित्यस्य कवितात्पर्यविषयीभूतव्यङ्ग्यशून्यमित्यर्थः, न तु सर्वथा व्यङ्ग्यशून्यम् इति। शब्दचित्रम् अनुप्रासादिशब्दालङ्कारयुक्तम्। अर्थ-

---

चित्रकाव्य—

**व्यङ्ग्यार्थे**। जो काव्य व्यङ्ग्यार्थ से रहित है वह चित्रकाव्य कहलाता है। चित्र शब्द का अर्थ है—गुणालङ्कारयुक्त। व्यङ्ग्यार्थहीन पद का अर्थ है—स्फुटव्यङ्ग्य-रहित।

**तच्चेति**। इस ( चित्र काव्य ) को अधम काव्य भी कहते हैं।

चित्रकाव्य के भेद—

**शब्देति**। वह चित्र काव्य दो प्रकार का है—शब्दचित्र और अर्थचित्र।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri


यत्र वाच्यार्थात् शब्दस्य प्राधान्येन चमत्कारित्वं तत् शब्दचित्रम् । यथा—

"कूजत्कुञ्जकुटीरकौशिकघटाघुत्कारवत्कीचक-
स्तम्बाडम्बरमूकमौकुलिकुलः क्रौञ्चावतोऽयं गिरिः ।
एतस्मिन् प्रचलाकिनां प्रचलतामुद्वेजिताः कूजितै-
रुद्वेल्लन्ति पुराणचन्दनतरुस्कन्धेषु कुम्भीनसाः" ॥ २८ ॥ ( उ० च० )

---

**चित्रम्**—उपमाद्यर्थालङ्कारयुक्तम् । शब्दचित्रं विवृणोति **यत्र वाच्यार्थादिति** । **वाच्यार्थात्**—वाच्यार्थापेक्षयेत्यर्थः । प्राधान्यं च अन्वयव्यतिरेकाभ्यां निर्णेयम् । तत्सत्त्वे तत्सत्त्वमन्वयः; तदभावे तदभावो व्यतिरेकः । यत्र शब्दसत्त्वे चमत्कारसत्त्वं शब्दाभावे चमत्काराभाव इत्येवं शब्देन सहान्वयव्यतिरेकौ तत्र चमत्कारे शब्दस्य प्राधान्यं ज्ञेयम् । एवमर्थेन सहान्वयव्यतिरेकयोः सतोरर्थस्य प्राधान्यम् । अथवा पर्यायपरिवृत्त्यसहत्वसहत्वाभ्यां शब्दार्थयोः प्राधान्यं निर्णेयम् ।

शब्दचित्रस्योदाहरणं यथा—**कूजत्कुञ्जेति** । उत्तररामचरिते द्वितीयाङ्के क्रौञ्चावतस्य गिरेर्वर्णनमिदम् । **अयम्**—पुरो दृश्यमानः, **कूजत्कुञ्जकुटीरकौशिकघटाघुत्कारवत्कीचकस्तम्बाडम्बरमूकमौकुलिकुलः**—कूजन्तः शब्दायमानाः, कुञ्जेषु लतादिपिहितोदरस्थानेष्वेव कुटीरेषु, ये कौशिका उलूकाः, तेषां घटायाः समूहस्य, ये घुत्काराः घुघु इति शब्दाः, तद्वत्सु कीचकस्तम्बानां वेणुविशेषगुच्छानाम्, आडम्बरेषु समूहेषु, मूकानि उलूकत्रासान्निःशब्दानि, मौकुलीनां काकानां कुलानि समूहा यत्र तादृशः, **क्रौञ्चावतः**—क्रौञ्चावताख्यः, 'क्रौञ्चाभिधः' इति क्वचित् क्रौञ्चनामेति तदर्थः । **गिरिः**—पर्वतः, अस्ति । **एतस्मिन्** , **प्रचलताम्**—विहरताम् , **प्रचलाकिनाम्**—मयूराणाम् ; **कूजितैः**—केकाभिः, **उद्वेजिताः**—त्रासिताः, **कुम्भीनसाः**—सर्पाः, **पुराणचन्दनतरुस्कन्धेषु**—पुराणानां चिरंतनानाम्, चन्दनवृक्षाणाम् । स्कन्धेषु शाखामूलेषु, **उद्वेल्लन्ति**—कम्पन्ते । निलीयन्त इत्यपरे । सर्पभुजां मयूराणां केकां श्रुत्वा भीताः सर्पाः शाखास्कन्धेषु स्थिताः कम्पन्ते, आत्मत्राणाय तत्र निलीयन्त इति वा भावार्थः । अत्र दीर्घसमासत्वाद् टकारादिवर्णप्रयोगाच्च रचना ओजोगुणव्यञ्जिका ककारमकारादीनामनेकधा साम्यादनुप्रासश्च शब्दालङ्कारः ।

तदुक्तमस्यैव ग्रन्थस्याऽष्टमशिखायाम्—स्वरवैसादृश्येऽपि व्यञ्जनमात्रसादृश्यमनुप्रास इति । यद्यपि अत्र क्रौञ्चगिरौ काकोलूकस्य, मयूरसर्पस्य, चन्दनतरूणां च बाहुल्यं व्यज्यते तथापि न तद्व्यङ्ग्यं कवितात्पर्यविषयीभूतम् । अपि त्वनुप्रास एवात्र कविसंरम्भगोचरः, स एव चात्र चमत्कारकारी ।

---

यत्रेति । जहां वाच्य अर्थ की अपेक्षा शब्द ही प्रधान रूप से चमत्कारी हो उसे शब्दचित्र कहते हैं ।

जैसे कूजत् इति । यह क्रौञ्चावत पर्वत है । यहां कुञ्ज-रूपी कुटियों में शब्द करते हुए उल्लू समुदाय के घुघु शब्द से युक्त वांसों के वन में कौवे ( डर के मारे ) चुपचाप बैठे हुए हैं । और इधर-उधर विचरने वाले मोरों की आवाज से डरे हुए साँप पुराने चन्दनवृक्ष की शाखाओं में छिप रहे हैं अथवा काँप रहे हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizaqtion by eGangotri

यत्र शब्दाद् वाच्यार्थस्य प्राधान्येन चमत्कारित्वं तद् वाच्यचित्रम्। यथा—

"ते दृष्टिमात्रपतिता अपि कस्य नात्र
क्षोभाय पक्ष्मलदृशामलकाः खलाश्च।
नीचाः सदैव सविलासमलीकलग्ना
ये कालतां कुटिलतामिव न त्यजन्ति" ॥ २९ ॥

इति काव्यप्रभेदनं नाम तृतीयशिखा।

---

अर्थचित्रं विवृणोति यत्र शब्दादिति। शब्दात्–शब्दापेक्षया। अर्थचित्रमुदाहरति–ते दृष्टिमात्रेति। ते प्रसिद्धाः, पक्ष्मलदृशाम्–पक्ष्मले बहुपक्ष्मयुक्ते [ पक्ष्मशब्दाद् भूम्नि मत्वर्थीयो लच् ] दृशौ नेत्रे यासां तादृशीनां सुन्दरीणाम्, अलकाः–चूर्णकुन्तलाः, खलाश्च–शठाश्च, दृष्टिमात्रपतिता अपि–दृङ्मात्रगोचरतां गता अपि [ किं पुनर्वाग्व्यवहारगोचराः ], अत्र–लोके, कस्य, क्षोभाय–क्षोभं हृदयचाञ्चल्यं व्यथां चोत्पादयितुम्, न, भवन्तीति शेषः। इमे दर्शनमात्रेण सर्वेषामविशेषेण हृदयं क्षोभयन्तीति भावः। अलकान् खलांश्च समानैर्विशेषणैर्विशिनष्टि नीचा इति। ये–अलकाः खलाश्च; नीचाः–( अलकपक्षे) अधोगामिनः, ( खलपक्षे ) दुराशयाः, सदैव–सर्वस्मिन्नपि काले, सविलासम्–( अलकपक्षे ) विलासेन विभ्रमेण सहितं यथा स्यात् तथा, ( खलपक्षे ) बवयोरभेदाद् विलं विलं छिद्रम्, तत्र आसः प्रहारः, तत्सहितं यथा स्यात् तथा–छिद्रेषु प्रहारकामनापुरस्सरमित्यर्थः, अलीके–( अलकपक्षे ) ललाटे ( खलपक्षे ) मिथ्याभाषणे, परवञ्चन इति यावत्। लग्नाः–( अलकपक्षे ) संनिविष्टाः, ( खलपक्षे ) आसक्ताः, सन्तः कुटिलतामिव–( अलकपक्षे ) वक्रतामिव, ( खलपक्षे ) कपटपरायणतामिव, कालताम्–( अलकपक्षे ) वक्रताकृष्णताम्, ( खलपक्षे ) परपीडनोद्यमम्, भयानकत्वेन यमरूपतां वा, न त्यजन्ति। कुटिलतामिव कालताम्, कालतामिव कुटिलतामिति सहोपमया कालताकुटिलतयोः समुच्चयो बोध्यः। कालतां कुटिलतां चेत्यर्थः। अत्र प्रकृताप्रकृतयोः खलालकयोः क्षोभजनकत्वादिरूपैकधर्मान्वयाद् दीपकालङ्कारः।

---

यत्रेति। जहां शब्द की अपेक्षा वाच्यार्थ में प्रधान रूप से चमत्कारिता हो उसे वाच्य-चित्र—अर्थचित्र कहते हैं।

जैसे ते दृष्टिमात्र इति। इस संसार में वे स्त्रियों के केश और दुर्जन केवल दृष्टिगोचर होने से किस को क्षुब्ध नहीं कर देते हैं। जो सदा ही नीचे ( लम्बे और नीचकर्म-रत ) हैं विलास सहित ( सज-धज के साथ और दूसरे के छिद्रों पर प्रहार करने के अभिप्राय से ) अलीक में ( ललाट में और धोखा देने में लगे हुए हैं; और जो कालता को ( कालेपन और दूसरों को दुःख देने के उद्योग को ) कुटिलता ( टेढ़ेपन और दुःस्वभाव ) की तरह नहीं छोड़ते हैं।

काव्यप्रभेदन नामक तृतीय शिखा समाप्त।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri



तदुक्तम्—

"अप्रस्तुतप्रस्तुतयोर्दीपकं तु निगद्यते।"

'एकधर्माभिसंबन्ध' इति पूर्वतोऽनुवर्तते।

सविलासालीकशब्दयोः पर्यायपरिवृत्त्यसहत्वेन विद्यमानोऽपि शब्दश्लेषो दीपकनिर्वाहक एव। एवं ककारलकारयोरनुप्रासोऽप्यत्र गुणीभूत एव। अर्थालङ्कार एवात्रासमाप्तेः कविसंरम्भदर्शनात्। तथा च चमत्काराधानेऽर्थस्य प्राधान्यादर्थचित्रमेवास्य। एवं पक्ष्मलदृगलकानां शृङ्गारविभावतया शृङ्गारोऽप्यत्र व्यज्यत इति शक्यं वक्तुम्। तथापि तस्यास्फुटत्वान्न तथा चमत्कारित्वं यथार्थचित्रस्य।

इति श्रीद्रोणाश्रमाभिजन-श्रीमदच्युतानन्दनन्दन-श्रीपरमेश्वरानन्दशर्मकृतायां बालबोधिन्यां काव्यदीपिकाव्याख्यायां काव्यप्रभेदननाम्नी तृतीयशिखा समाप्ता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

## चतुर्थशिखा

अथ दृश्यश्रव्यभेदेन काव्यविभागः—

एवं ध्वनिगुणीभूतव्यङ्ग्यचित्रत्वेन काव्यस्य भेदत्रयमुक्त्वा, पुनर्दृश्यश्रव्यत्वभेदेन भेदद्वयमाह—

"दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्"।

(विश्वनाथः)

दृश्यकाव्यलक्षणम्—

"दृश्यं तत्राभिनेयं तद्रूपारोपात्तु रूपकम्" ॥ १ ॥

(विश्वनाथः)

अभिनेयम्—अभिनययोग्यम्, तच्च दृश्यं काव्यं नटैः रामादि-स्वरूपारोपाद्रूपकमिति च कथ्यते।

अभिनयस्य स्वरूपं भेदाश्च कथ्यन्ते—

"भवेदभिनयोऽवस्थानुकारः स चतुर्विधः।

---

चतुर्थशिखा

तृतीयशिखायां ध्वन्यादिकाव्यभेदान् निरूप्य चतुर्थशिखायां प्रकारान्तरेण काव्यं विभजते **एवमिति**।

तत्र दृश्यकाव्यं लक्षयति **दृश्यमिति**। तत्र—दृश्यश्रव्ययोर्मध्ये। **अभिनेयं** काव्यं दृश्यमित्युच्यते। यदर्थो नटैर्गात्रविक्षेपादिभिरभिनीयते, यथाऽभिज्ञानशाकुन्तलम्। तस्य संज्ञान्तरमाह **तद्रूपेति**। यथा मुखादौ पद्मादेरारोपो रूपकमुच्यते तद्वत्। तत्राभिनयस्य लक्षणं तद्भेदांश्च

---

दृश्य-श्रव्य-भेद से काव्य के दो भेद

**एवमिति**। इस प्रकार ध्वनि, गुणीभूतव्यङ्ग्य और चित्र रूप से काव्य के तीन भेद बताकर फिर दृश्य और श्रव्य रूप से काव्य के दो भेद बताते हैं। **दृश्येति**। पूर्वोक्त काव्य दृश्य और श्रव्य भेद से फिर दो प्रकार का माना गया है।

दृश्य का लक्षण

उनमें से 'दृश्य' वह है जिसका अभिनय किया जा सकता है—अर्थात् जो रङ्गमञ्चपर खेला जा सकता है। इसको नटों के द्वारा रूप का [ काव्य के नायक—राम आदि के रूप का ] आरोप करने के कारण 'रूपक' भी कहते हैं।

अभिनय का स्वरूप और भेद

**भवेदिति**। अवस्था के अनुकरण को 'अभिनय' कहते हैं। यह चार प्रकार का होता है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri


आङ्गिको वाचिकश्चैवमाहार्यः सात्त्विकस्तथा" ॥ २ ॥

नटैरङ्गेन, वाचा, वस्त्रालङ्कारादिभिः, मानसभावैश्च रामयुधिष्ठिरादीनामवस्थानुकरणमभिनयः।

दृश्यकाव्यानि कानिचिद् रूपकनाम्ना, अपराणि उपरूपकनाम्ना कथ्यन्ते। तत्र रूपकाणि नाटक-प्रकरण-प्रहसनप्रभृतीनि दशविधानि, उपरूपकाणि च नाटिका-त्रोटका-

---

निरूपयति भवेदिति। अवस्थानुकारः—अवस्थायाः नायकादीनां तात्कालिकचेष्टादेः अनुकारः अनुकरणम्, अभिनयः, भवेत्। अभिनयपदवाच्यार्थ इति यावत्। सः—अभिनयः, आङ्गिकः, वाचिकः, आहार्यः तथा सात्त्विक इत्येवं चतुर्विधः—चतुःप्रकारो भवति। तत्र हस्तपादाद्यवयवैः क्रियमाणं नायकचेष्टानुकरणम् आङ्गिकोऽभिनय इत्युच्यते। अङ्गनिष्पन्न इत्याङ्गिकः। एवं वाचानुकरणं वाचिकोऽभिनयः, वस्त्रालङ्कारादिभिरनुकरणम् आहार्योऽभिनयः तथैव नायिकादिनिष्ठस्तम्भ-स्वेद-रोमाञ्चादिसात्त्विकभावानामनुकरणमेवं सात्त्विकोऽभिनयः। कारिकार्थं व्याचष्टे नटैरिति। मानसभावैः—मानसभावप्रत्यायकस्तम्भ-स्वेद-रोमाञ्चादिभिरित्यर्थः।

नाटक-प्रकरण-प्रहसन-प्रभृतीनीति—तत्र नाटकलक्षणं सविस्तरं वक्ष्यते। प्रकरणलक्षणं यथा—

भवेत् प्रकरणे वृत्तं लौकिकं कविकल्पितम्।
आदिमोऽङ्गी नायकस्तु विप्रोऽमात्योऽथवा वणिक् ॥
सापायधर्मकामार्थपरो धीरप्रशान्तनायकः। नायिकाकुलजा क्वापि, वेश्या क्वापि द्वयं क्वचित् ॥

यथा मृच्छकटिक—मालतीमाधवादि।

धीरप्रशान्तलक्षणं यथा—

सामान्यगुणैः—त्यागादिनायकसामान्यलक्षणैः।

यथा—मालतीमाधवे माधवः।

प्रहसनलक्षणं यथा—

भवेत् प्रहसने वृत्तं निन्द्यानां कविकल्पितम्।
अङ्गी हास्यरसो नात्र विष्कम्भक-प्रवेशकौ ॥

यथा—लटकमेलकम्।

दशविधानीति। तदुक्तं दर्पणे—

---

आङ्गिक, वाचिक, आहार्य और सात्त्विक। नटैरिति। नटों ( नाटक खेलने वालों ) के द्वारा शरीरसे, वाणी से, वस्त्र, भूषण आदि से और मानस भावों से राम-युधिष्ठिरादि की अवस्था का अनुकरण—नकल—करना ही 'अभिनय' है। दृश्य काव्यों में कुछ रूपक नाम से और कुछ उपरूपक नाम से कहे जाते हैं। उनमें रूपक—नाटक, प्रकरण, प्रहसन आदि भेद से दश प्रकार का होता है, और उपरूपक के नाटिका, त्रोटक आदि अठारह भेद होते हैं। किसी विशेष बात को छोड़कर बाकी सबका ही लक्षण नाटक के समान है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


**दीनि अष्टादशभेदानि । विशेषं विना सर्वेषामेव स्वरूपं नाटकलक्षणसमानम् ।**
**"नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पञ्चसन्धिसमन्वितम् ।**

---

नाटकमथ प्रकरणं भाण-व्यायोग-समवकार-डिमाः ।
ईहामृगाङ्क-वीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश ॥

भाणो यथा—'लीलामधुकरः' । व्यायोगो यथा—'सौगन्धिकाहरणम्' । समवकारो यथा 'समुद्रमथनम्' । डिमो यथा—'त्रिपुरदाहः' । ईहामृगो यथा—'कुसुमशेखरविजयादिः' अङ्को यथा—'शर्मिष्ठाययातिः' । वीथी यथा—'मालविका' । प्रहसनं यथा—'लटकमेलकम्' ।

**नाटिका-त्रोटकादीनि अष्टादशभेदानीति**—तत्र नाटिकालक्षणं यथा—

नाटिकावऌप्तवृत्ता स्यात् स्त्रीप्राया चतुरङ्किका । प्रख्यातो धीरललितस्तत्र स्यान्नायको नृपः ॥
स्यादन्तःपुरसंबन्धा सङ्गीतव्यापृताऽथवा । नवानुरागा कन्यात्र नायिका नृपवंशजा ॥
संप्रवर्तेत नेताऽस्यां देव्यास्त्रासेन शङ्कितः । देवी पुनर्भवेज्ज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवंशजा ॥
पदे पदे मानवती तद्वशः सङ्गमो द्वयोः । वृत्तिः स्यात् कौशिकी स्वल्पविमर्शाः सन्धयः पुनः ॥

यथा रत्नावल्यादिः ।

धीरललित इति तल्लक्षणं यथा—

निश्चिन्तो मृदुरनिशं कलापरो धीरललितः स्यात् ।

कलाः नृत्यादिकाः । यथा—रत्नावल्यां वत्सराजः ।

त्रोटकलक्षणं यथा—

सप्ताष्टनवपञ्चाङ्कं दिव्यमानुषसंश्रयम् । त्रोटकं नाम तत् प्राहुः प्रत्यङ्कं सविदूषकम् ॥

यथा—'विक्रमोर्वशीयम्' ।

**अष्टादशभेदानीति** । तद्यथा—

नाटिका त्रोटकं गोष्ठी सट्टकं नाट्यरासकम् । प्रस्थानोल्लाप्यकाव्यानि प्रेङ्खणं रासकं तथा ॥
संलापकं श्रीगदितं शिल्पकं च विलासिका । दुर्मल्लिका प्रकरणी हल्लीशो भाणिकेति च ॥

गोष्ठी यथा 'रैवतमदनिका' । सट्टकं यथा—'कर्पूरमञ्जरी' । नाट्यरासकं यथा 'नर्मवती' 'विलासवती' । प्रस्थानकं यथा—'शृङ्गारतिलकम्' । उल्लाप्यं यथा 'यादवोदयः' । प्रेङ्खणं यथा—'वालिबधः' । रासकं यथा—'मेनकाहितम्' । संलापकं यथा—'मायाकापालिकम्' । श्रीगदितं यथा—'कनकवतीमाधवः' । विलासिकाया दुर्मल्लिकायामन्तर्भावः । दुर्मल्लिका यथा—'विन्दुमती' । प्रकरणी प्रायो नाटिकातुल्यैव भवति । हल्लीशो यथा—'कलिरैवतकम्' । भाणिका यथा—'कामदत्ता' ।

अथ नाटकं लक्षयति **नाटकमिति ख्यातवृत्तम्**—ख्यातमितिहासादिषु प्रसिद्धम्, वृत्तं वर्णनीयं वस्तु यस्य तादृशम् । **पञ्चसन्धिसमन्वितम्**—मुख-प्रतिमुख-गर्भ-विमर्शादिभिर्वक्ष्यमाणैः

---

नाटक का लक्षण

**नाटकमिति** । नाटक का वृत्त ( प्रतिपाद्य वस्तु ) प्रसिद्ध होना चाहिये । [ जिसमें कथा कोरी कवि-कल्पित हो उसे नाटक नहीं कहते] उसमें पाँच सन्धियाँ होनी चाहियें । विलास, समृद्धि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



विलासद्धर्यादिगुणवद् युक्तं नानाविभूतिभिः ॥ ३ ॥
सुखदुःखसमुद्भूति नानारसनिरन्तरम् ।
पञ्चादिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्त्तिताः ॥ ४ ॥
प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान् ।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मतः ॥ ५ ॥
चत्वारः पञ्च वा मुख्याः कार्य्यव्यापृतपूरुषाः ।

---

पञ्चभिः सन्धिभिः समन्वितम्; **विलासद्ध्यादिगुणवत्**–विलासः 'धीरा दृष्टिर्गतिश्चित्रा विलासे सस्मितं वचः' इत्युक्तलक्षणो नायकस्य गुणविशेषः, ऋद्धिरभ्युदयः, तौ आदी येषां तादृशा ये गुणा नायकस्य धैर्यगाम्भीर्यादयः, तद्वत् तद्वर्णनयुक्तमिति भावः। **नानाविभूतिभिर्युक्तम्**–नाना विभूतिर्नायकाभ्युदयो येभ्यस्ते नानाविभूतयः–महान्त इति यावत्, तैर्युक्तम् महासहायमिति हृदयम्। **सुखदुःखसमुद्भूति**–सुखदुःखाभ्यां समुद्भूतिः संभवो यस्य तादृशम्। तदुक्तं मातृगुप्ताचार्यैः–सुखदुःखोत्पत्तिकृतम्। अथवा सुखदुःखयोः घटनाक्रमेण आपततोः, समुद्भूतिः उद्भवः–वर्णनमिति यावद्, यत्र तादृशम्। **नानारसनिरन्तरम्**–नानारसैः शृङ्गारादिभिरनेकै रसैः, निरन्तरम् अविच्छिन्नम्। तत्र–नाटके। **पञ्चादिकाः**–पञ्च आदिः प्रथमा संख्या येषां तादृशाः, अवरतः पञ्चेत्यर्थः। **दशपराः**–दश परा अन्तिमा संख्या येषां तादृशाः, अधिकतो दशेत्यर्थः। पञ्च आरभ्य दश यावदिति भावः। अङ्काः–परिच्छेदरूपाः। तल्लक्षणं वक्ष्यते। **राजर्षिः** राजा ऋषिरिव–श्रेष्ठनृपतिरित्यर्थः। **धीरोदात्तः**—तल्लक्षणं यथा—

अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्त्वः।
स्थेयान्निगूढमानो धीरोदात्तो दृढव्रतः कथितः ॥

अविकत्थनः–अनात्मश्लाघी। महासत्त्वः–हर्षशोकादिभिरनभिभूतस्वभावः, निगूढमानः–विनयच्छन्नगर्वः। दृढव्रतः–अङ्गीकृतनिर्वाहकः। यथा रामादिः। **प्रतापवान्**–कोशदण्डजं तेजः प्रताप इत्युच्यते तद्वान्। **दिव्यः**–दिवि भवः श्रीकृष्णादिः। **दिव्यादिव्यः**–दिव्यश्च अदिव्यश्च। दिव्यः पूर्वमुक्तः, अदिव्यः–मर्त्यरूपः–अभिज्ञानशाकुन्तलादौ दुष्यन्तादिः। यत्र दिव्यता अदिव्यता च स दिव्यादिव्यः, श्रीरामादिः। गुणवान्–नायकसामान्यगुणैर्युक्तः। तद्यथा—

त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही।
दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजोवैदग्ध्यशीलवान् नेता ॥

त्यागी–सर्वस्वदायकः। दक्षः–क्षिप्रकारी निपुणो वा अनुरक्तलोकः–लोकरञ्जकः। शीलवान्–सच्चरित्रः।

---

आदि गुण तथा नायक के अभ्युदय में उसके सहायकों का वर्णन होना आवश्यक है। सुख और दुःख की उत्पत्ति तथा अनेक रसों से परिपूर्ण होना चाहिये। नाटक में न्यून से न्यून पाँच और अधिक से अधिक दस अङ्क होते हैं। किसी प्रख्यात कुल में उत्पन्न धीरोदात्त, प्रतापी, गुणवान् कोई राजर्षि अथवा दिव्य या दिव्यादिव्य पुरुष नाटक का नायक होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



एक एव भवेदङ्गी प्रथमो वीर एव वा ॥ ६ ॥
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यं निर्वहणेऽद्भुतम्" ॥

अङ्कलक्षणमाह—

"प्रत्यक्षनेतृचरितो रसभावसमुज्ज्वलः ।
नानाविधानसंयुक्तो बीजसंहृतिमान् न च ॥ ७ ॥

---

**नायकः**—नाट्यप्रधानपुरुषः । अत्र **मुख्याः**—प्रधानीभूताः, **कार्यव्यापृतपूरुषाः**—कार्येषु तत्तदभिनव्यापारेषु व्यापृताः—संलग्नाः, पूरुषाः, चत्वारः, पञ्च वा भवन्तीति शेषः । कार्ये—नायककर्मणीति तर्कवागीशाः । अत्र **अङ्गी**—प्रधानभूतो रसः, **एक एव भवेत्** । सः, **प्रथमः**—शृङ्गारः स्यात्, **वा**—अथवा **वीर एव** स्यात् । **अन्ये सर्वे रसाः**—करुणहासादयः, **अङ्गम्**—प्रधानरसपरिपोषकाः स्युः । **निर्वहणे**—निर्वहणसन्धौ, **अद्भुतम्**—अद्भुतो रसः, **कार्यम्**—सन्निवेश्यम् । यथा—अभिज्ञानशाकुन्तलादि ।

अङ्कलक्षणमाह **प्रत्यक्षेति** । **प्रत्यक्षनेतृचरितः**—प्रत्यक्षं प्रत्यक्षवद्भासमानम्, नेतुर्नायकस्य चरितं यत्र तादृशः । **रसभावसमुज्ज्वलः**—रसेन शृङ्गारादिना, भावेन देवमुनिगुरुपुत्रादिविषयया रत्या, प्रधानतया व्यञ्जितेन व्यभिचारिभावेन च ।

तदुक्तं काव्यप्रकाशे—

'रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाञ्जितः । भावः प्रोक्तः' इति ।

**समुज्ज्वलः**—चमत्कृतिबहुलः । **नानाविधानसंयुक्तः**—नानाविधानैः विविधानुष्ठानैः संयुक्तः । **बीजसंहृतिमान्**—बीजलक्षणं यथा—

---

इसमें प्रधान रूप से चार या पाँच पुरुष कार्य के साधन में व्यापृत ( लगे ) रहते हैं । शृङ्गार या वीर इनमें से कोई एक रस यहां प्रधान रहता है । अन्य सारे रस प्रधान रस के अङ्ग होते हैं । नाटक को निर्वहण-सन्धि में अद्भुत रस-युक्त बनाना चाहिये ।

**ख्यातम्**—अर्थात् रामायण, महाभारत आदि में प्रसिद्ध राम, युधिष्ठिर आदि का चरित । **वक्ष्यमाणाः**—जिनका वर्णन आगे किया जायगा । **'विलासद्ध्यर्यादिगुणवत्'** विलास आदि नायक के गुणों से युक्त । **सुखेति**—सुख-दुःख की उद्भूति ( उत्पत्ति ) राम, युधिष्ठिर आदि के चरितों में स्पष्ट है । **नानेति**—अनेक रसों से युक्त । **अविच्छिन्नम्**—परिपूर्ण । **राजर्षय इति**—जैसे राजर्षि दुष्यन्त आदि । **दिव्य**—जैसे श्री कृष्ण आदि । **दिव्यादिव्य**—जो दिव्य होने पर भी अपने को मनुष्य ( अदिव्य ) समझता हो जैसे श्री राम आदि । **निर्वहणे**—निर्वहण नामक पाँचवीं सन्धि में ।

अङ्क का लक्षण—

जिसमें नायक का चरित्र प्रत्यक्ष जैसा प्रतीत हो, रस और भाव परिपूर्ण हों, जो नाना विधानों से युक्त हो, जिसमें बीज का उपसंहार न हो, जो बहुत कार्यों से युक्त न हो, पद्य भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


युक्तो न बहुभिः कार्य्यैर्नातिप्रचुरपद्यवान् ।
आवश्यकानां कार्य्याणामविरोधाद् विनिर्मितः ॥ ८ ॥
नानेकदिननिर्वर्त्य-कथया सम्प्रयोजितः ।
आसन्ननायकः पात्रैर्युतस्त्रिचतुरैस्तथा ॥ ९ ॥
वधयुद्धविवाहाद्यैर्वर्जितो नातिविस्तरः ।
देवीपरिजनादीनां प्रत्यक्षचरितैर्युतः ॥ १० ॥
अन्तनिष्क्रान्तनिखिलपात्रोऽङ्क इति कीर्त्तितः" ॥

भावाः—देवादिविषयकरत्यादयः, बीजस्य संहृतिः—सङ्कोचः ।

---

स्वल्पमात्रं समुद्दिष्टं बहुधा यद् विसर्पति । फलावसानं यच्चैवं बीजं तदिह कीर्तितम् ॥

एवंलक्षणलक्षितस्य बीजस्य, संहृतिः उपसंहृतिः, लोप इति यावत्, तद्वान्, न च–बीज-संहृतिरहित इति भावः । **बहुभिः**–अतिविस्तृतैः, **कार्यैः**–व्यापारैः, **न युक्तः** । **नातिप्रचुरपद्य-वान्**–स्वल्पसंख्यकपद्ययुक्तः । **आवश्यकानां कार्याणाम्**–संध्यावन्दनादीनाम् । **अविरोधात्**–अबाधात्, **विनिर्मितः**–रचितः । **अनेकदिननिर्वर्त्यया कथया**—अनेकैर्दिनैः, निर्वर्त्यया समाप्यया, कथया वृत्तान्तेनेत्यर्थः, **न संप्रयोजितः**–न कल्पितः । अनेकदिनसाध्यं वृत्तमेकस्मिन्ने-वाङ्के न निरूपणीयम् इति भावः । **आसन्ननायकः**–आसन्न उपस्थितो नायको यत्र तादृशः । तथा **त्रिचतुरैः**–त्रिभिश्चतुर्भिर्वा **पात्रैः**–अभिनेतृभिः, **युक्तः**–सहितः । **देवीपरिजनादीनाम्**–देवी पट्ट-राज्ञी, तस्याः परिजनः सेवकवर्गः, तदादीनाम्, (आदिना मन्त्र्यादिग्रहणम्) **प्रत्यक्षचरितैः**–प्रत्यक्षवद्भासमानैश्चरित्रैः, **युतः**–युक्तः । **अन्तनिष्क्रान्तनिखिलपात्रः**–अन्ते अवसाने, निष्क्रा-न्तानि रङ्गमञ्चादपसृतानि, निखिलानि पात्राणि, यत्र तादृशः, **अङ्क इति** नाम्ना, **कीर्तितः**–कथितः । नाटके प्रथमप्रयोज्यं कृत्यमाह **तत्रे**ति । **तत्र**–नाटके, **पूर्वम्**–प्रथमम्, **पूर्वरङ्गः**–वक्ष्य-माणलक्षणः, **प्रयोज्यः** । **ततः**–पूर्वरङ्गात्, **परम्**–अनन्तरम्, **सभापूजा**–सभायाः–अभिनयं

---

जिसमें बहुत न हों, जिसकी घटना ऐसी न हो कि उसमें आवश्यक-सन्ध्यावन्दन आदि कार्यों का विरोध हो, अर्थात् सन्ध्या आदि के समय उनका (सन्ध्या आदि का) उल्लङ्घन न हो, अनेक दिनों में सिद्ध हुई कथा से जिसकी रचना न की गई हो (अर्थात् अनेक दिनों में सिद्ध होनेवाली घटना का वर्णन एक ही अङ्क में नहीं करना चाहिये) जिसमें तीन चार पात्रों से युक्त नायक सदा उपस्थित रहे, जो वध, युद्ध, विवाह आदि से वर्जित (रहित) हो (अर्थात् अङ्क में इनका प्रदर्शन निषिद्ध है), अधिक लम्बा न हो, देवी (रानी) और उसके नौकर चाकरों के प्रत्यक्ष चरितों से युक्त हो, और जिसमें समाप्ति पर सारे पात्रों का मञ्च से निकल जाने का वर्णन हो, उसे अङ्क कहते हैं ।

**भावा** इति । देवतादिविषयक रति आदि को भाव कहते हैं । **बीजस्य संहृति**—बीज का संकोच ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



नाटकीयपूर्वकृत्यम्—

"तत्र पूर्वं पूर्वरंगः सभापूजा ततः परम्।
कथनं कविसंज्ञादेर्नाटकस्याप्यथाऽऽमुखम्" ॥ ११ ॥

तत्र—नाटके, सभापूजा—विनीतवचनादिना सभ्यानाम् आभिमुख्यसम्पादनम्, आमुखं—प्रस्तावना।

पूर्वरङ्गस्य लक्षणमाह—

"यन्नाट्यवस्तुनः पूर्वं रंगविघ्नोपशान्तये।
कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरंगः स उच्यते" ॥ १२ ॥

अस्य नान्दीनामाङ्गस्य स्वरूपमाह भरतः—

"देवद्विजनृपादीनामाशीर्वादपरायणा।

---

पश्यन्त्याः परिषदः पूजा-स्तुतिः, प्रयोज्या। तदनन्तरम्, **कविसंज्ञादेः**—कवेः काव्यकर्तुः, संज्ञादेः, **कथनम्**—कीर्तनम् **नाटकस्यापि**—नाटकस्य च नामतः कथनम्, कर्तव्यमिति शेषः। **अथ**—कविसंज्ञाकथनानन्तरम्, **आमुखम्**—प्रस्तावना, प्रयोज्यमिति शेषः। **आभिमुख्यसंपादनम्**—स्वाभिमुखीकरणम्।

पूर्वरङ्गस्य लक्षणमाह—**यन्नाट्येति**। **नाट्यवस्तुनः**—अभिनेतव्याद् इतिवृत्तात्, **पूर्वम्**—प्राक्, **रङ्गविघ्नोपशान्तये**—रङ्गस्य—रङ्गमञ्चस्य, विघ्नानाम्—उपद्रवाणाम् उपशान्तये, **कुशीलवाः**—नटाः, **यद्**—नान्द्यादिरूपं मङ्गलम्, **प्रकुर्वन्ति**—आचरन्ति, **सः**, **पूर्वरङ्ग** इत्युच्यते।

अस्य पूर्वरङ्गस्य प्रत्याहारादीन्यनेकान्यङ्गानि सन्ति तत्र नान्द्यप्येकमङ्गम्। प्रत्याहारादीनामननुष्ठानेऽपि विघ्नोपशान्तये नान्दी त्ववश्यं कर्तव्यैव। तदुक्तं दर्पणे—प्रत्याहारादिकान्यङ्गान्यस्य भूयांसि यद्यपि। तथाप्यवश्यं कर्तव्या नान्दी विघ्नोपशान्तये॥

---

नाटक में सबसे पहले क्या करना चाहिये—

**तत्रेति**। नाटक में सबसे पहले पूर्वरङ्ग होना चाहिये, फिर विनम्र वचनों से सभ्य जनों (नाटक देखने के लिये आये हुए पुरुषों) की प्रशंसा करनी चाहिये—अपनी ओर आकृष्ट करना चाहिए। उसके अनन्तर कवि और नाटक का नाम आदि बताना चाहिये, फिर आमुख–प्रस्तावना होनी चाहिये।

पूर्वरङ्ग का लक्षण—

**यन्नेति**। नाट्यवस्तु के पहले नाट्यशाला के विघ्नों को दूर करने के लिये नट लोग (अभिनय करने वाले) जो कुछ करते हैं उसे 'पूर्वरङ्ग' कहते हैं।

पूर्वरङ्ग के नान्दी नामक अङ्ग का स्वरूप

**देवेति**। जिसमें देवता, द्विज (ब्राह्मण), नृप आदि के प्रति शुभाकाङ्क्षा हो उसका नाम नान्दी है, इसको नान्दी कहने का कारण यह है कि इस से देवता आनन्दित होते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



नन्दन्ति देवता यस्मात्तस्मान्नान्दीति संज्ञिता" ॥ १३ ॥

सूत्रधारः नान्दीं प्रयोज्य काव्यार्थसूचकैर्मधुरैर्वचनैः रङ्गस्थान् सभ्यान् प्रसाद्य रूपकस्य कवेश्च आख्यां कवेः गोत्राद्यपि कीर्त्तयेत्। ततः प्रस्तावना। तल्लक्षणमाह भरतः—

प्रस्तावनारूपम्—

"नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥ १४ ॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्य्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा" ॥ १५ ॥

---

नान्द्याः स्वरूपमाह देवद्विजेति। देवद्विजनृपादीनाम्, आशीर्वादपरायणा—आशीर्वादः शुभाशंसनम्, परम् उत्कृष्टम्, अयनम् आश्रयो यस्याः सा, आशीर्वादसंयुक्ता, या स्तुत्यात्मिका वाङ् नटैः प्रयुज्यते, सा 'नान्दी' इति संज्ञिता—नान्दीनाम्ना व्यवहृता, नाट्याचार्यैरिति शेषः। तदुक्तम्—

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते। देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥

तस्या नान्दीति संज्ञाकरणे हेतुमाह—नन्दन्तीति। यस्मात्—कारणात्, अनया, देवताः, नन्दन्ति—हृष्यन्ति, प्रसीदन्तीत्यर्थः, तस्माद्, नान्दीति संज्ञिता। पूर्वोक्तानां तिसृणामपि कारिकाणां पिण्डितार्थमुपन्यस्यति सूत्रधार इति। सूत्रधारः—सूत्रम्—अभिनयानुष्ठानम्, धारयति—यः सः, प्रधाननट इत्यर्थः। भरतः—नाट्यसूत्रप्रणेता भरतो नाम मुनिः।

नटीति। नटी, वा—अथवा, विदूषकः, अपि वा पारिपार्श्विक एव—परिपार्श्वं पार्श्वं व्याप्य वर्तते तादृशः [ ठक् प्रत्ययः ] सूत्रधारानुचरो नट एव, सूत्रधारेण सहिताः, यत्र, चित्रैः—विचित्रैः, स्वकार्योत्थैः—स्वकार्याद् उत्तिष्ठन्ति उद्भवन्ति तथाभूतैः स्वकार्यविषयकैः तदुपयोगिभिर्वा, स्वकार्यं पात्रप्रवेशः, तदुपयुक्तैरित्यर्थ इति श्रीतर्कवागीशाः। प्रस्तुताक्षेपिभिः—प्रस्तुतं प्रकृतनर्थम्, आक्षिपन्ति सूचयन्ति, तथाभूतैः, वाक्यैः, मिथः—परस्परम्, संलापम्, कुर्वते, तत्तु, आमुखम्, विज्ञेयम्, सा—तदामुखम्, नाम्ना प्रस्तावनापि—'प्रस्तावना' इत्यपि, उच्यत

---

सूत्रधार इति। सूत्रधार नान्दी का प्रयोग करके काव्यार्थ को सूचित करने वाले मधुर वचनों से रङ्गशाला में स्थित सभ्यों की स्तुति करे। उसके अनन्तर रूपक ( नाटक ) और कवि का नाम बतावे, कवि के गोत्र आदि की भी चर्चा करे। उसके अनन्तर प्रस्तावना पढ़े। प्रस्तावना का लक्षण भरत मुनि ने यों कहा है—

प्रस्तावना का स्वरूप—

नटीति। जिसमें नटी, विदूषक अथवा पारिपार्श्विक ही सूत्रधार के साथ ( पात्रप्रवेशादि ) स्वकार्योपयोगी तथा प्रस्तुत कथा का सूचन करने वाले विचित्र वाक्यों से परस्पर बातचीत करते हैं, उसे आमुख' समझना चाहिये। उसका दूसरा नाम प्रस्तावना भी है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



नटीति स्त्रीत्वमविवक्षितम्, प्रस्तुतस्य आक्षेपिभिः—उद्बोधकैः। तद्भेदाः कथितास्तेनैव—

प्रस्तावनाभेदाः—

"उद्घात्यकं कथोद्घातः प्रयोगातिशयस्तथा।
प्रवृत्तकावलगिते आमुखाङ्गानि पञ्च वै" ॥ १६ ॥

एषां क्रमेण लक्षणमाह स एव—

उद्घात्यकलक्षणम्—

"पदानि त्वगतार्थानि तदर्थगतये नराः।
योजयन्ति पदैरन्यैस्तदुद्घात्यकमुच्यते" ॥ १७ ॥

अगतः—अबोधित इति यावत्, अर्थः—हृद्गतो यैस्तानि, तस्य हृद्गतस्य, अर्थस्य गतये—बोधनाय। यथा मुद्राराक्षसे—

---

इति शेषः। 'उद्दिश्यमानप्रतिनिर्दिश्यमानयोरेकत्वमापादयन्ति सर्वनामानि क्रमेण तत्तल्लिङ्गमुपाददते' इत्यभियुक्तोक्त्या 'सा' इति स्त्रीत्वेन निर्देशः। 'यथा शैत्यं हि यत् सा प्रकृतिर्जलस्य' इति।

स्त्रीत्वमविवक्षितमिति। नटस्यापि संलापे प्रस्तावना भवत्येवेति भावः। पारिपार्श्विकादन्यः कतरो नटः स्त्रीत्वाविवक्षया ग्रन्थकर्तुर्विवक्षित इति न ज्ञायते। तद्भेदाः—तस्याः प्रस्तावनाया भेदाः। तेनैव—भरतमुनिनैव।

प्रस्तावनाभेदानाह—उद्घात्यकमिति। उद्घात्यकम्, कथोद्घातः, प्रयोगातिशयः, प्रवृत्तकम्, (प्रवर्तकमिति क्वचित् पाठः)। अवलगितम् इति पञ्च, आमुखस्य अङ्गानि भेदा इति भावः। स एव—भरतमुनिरेव। तत्रोद्घात्यकलक्षणम् आह यथा—पदानीति। यत्र नराः अभिनयपात्राणि, अगतार्थानि—अगतः—अनवगतः, अर्थः—हृद्गतोऽभिप्रायः, येषां, तानि पदानि, तदर्थगतये—तस्य हृद्गतस्य, अर्थस्य, गतये ज्ञानाय, अन्यैः—अभिप्रेतार्थज्ञानसहायैः, पदैः, योजयन्ति—मेलयन्ति, तद्—आमुखम्, उद्घात्यकमित्युच्यते। मुद्राराक्षसे—एतन्नाम्नि कविविशाखदत्तकृते नाटके। उद्घात्यकप्रस्तावनालक्षणं लक्ष्ये संगमयितुं पूर्वमगतार्थानि पदान्युपन्यस्यति—

---

नटीति। कारिका में 'नटी' यह स्त्रीलिङ्ग अविवक्षित है, अर्थात् 'नट' भी हो सकता है। तद्भेदा इति। प्रस्तावना के भेद भी भरत मुनि ने ही बताए हैं।

प्रस्तावना के भेद—

उद्घात्यक, कथोद्घात, प्रयोगातिशय, प्रवृत्तक, अवलगित ये पाँच आमुख (प्रस्तावना) के अङ्ग (भेद) हैं।

एषामिति। इनके लक्षण भी क्रमशः भरत मुनि यों लिखते हैं—

उद्घात्यक का लक्षण—

पदानीति। अप्रतीतार्थक पदों के अर्थ की प्रतीति कराने के लिये जहाँ और पद साथ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


"सूत्र० । क्रूरग्रहः सकेतुश्चन्द्रमसम्पूर्णमण्डलमिदानीम् ।
अभिभवितुमिच्छति बलात्—

अनन्तरं [ नेपथ्ये ]। आः ! क एष मयि स्थिते चन्द्रगुप्तमभिभवितुमिच्छति बलात् !"

---

क्रूरग्रह इति। नटीं प्रति सूत्रधारोक्तिरियम्। क्रूरग्रहः–क्रूरः पापः, ग्रहः, सः–ज्यौतिषशास्त्र-प्रसिद्धः, केतुः, इदानीम्, पूर्णमण्डलम्–संपूर्णबिम्बम्, चन्द्रमसम्–पूर्णिमाचन्द्रम्, बलात्–प्रसह्य, अभिभवितुम्–आक्रमितुम्, उपरञ्जयितुम्, इच्छति–कामयते। यद्यपि केतुना नोपरज्यति चन्द्रः, अपि तु राहुणा, तथापि राहुकेत्वोरेकदेहभागत्वाद् अभेदविवक्षणेन केतुशब्देनात्र राहुरेव विवक्षितोऽर्थो बोध्यः। अथवा ज्यौतिषशास्त्रे केतुशब्दः पातार्थकः, पातश्च क्रान्तिवृत्तद्वययोगः, तेन सह वर्तते इति सकेतुः–सपातः, क्रूरग्रहः—राहुः पृथ्वीच्छायात्मकः। तदुक्तम्—

'छादयत्यर्कमिन्दुर्विधुं भूमिभा'।

इतीत्येवं व्याख्येयम्।

एवमगतार्थानि पदान्युपन्यस्य तदर्थगतये पदान्तरमेलनमुदाहरति आः क इति। एषः, कः–पुरुषः, यः, मयि–चाणक्ये, स्थिते–जीविते, चन्द्रगुप्तम्–चन्द्रगुप्तनामानं नृपतिम्, बलाद्, अभिभवितुम् तिरस्कर्तुम्, इच्छति।

अत्रायं स्पष्टोऽभिप्रायः। सूत्रधारेण नटीं प्रति आपाततः चन्द्रोपरागविषय एव 'क्रूरग्रहः स केतुः' इत्याद्युक्तम्। वस्तुतस्तु नायमत्र हृद्गतोऽभिप्रायः, किन्तु सकेतुः–केतुना मलयकेतुना राज्ञा सहितः ( नामैकदेशे नामग्रहणमत्र बोध्यम् ) क्रूरग्रहः–क्रूरो ग्रहो यस्य तादृशः क्रूराशयो राक्षसनाना नन्दस्य राज्ञोऽमात्यः। इदानीम्–असम्पूर्णमण्डलम्–असम्पूर्णम् असमग्रम्, मण्डलम्–राज्यमण्डलं यस्य तादृशम्, राज्ये अचिराभिषिक्ततया अव्याहताज्ञाभावेन अस्वाधीन-प्रकृतिमण्डलमिति यावत्। चन्द्रम् चन्द्रगुप्तम्, बलाद्–बलं सामर्थ्यम्, मित्रादिसैन्यं वाश्रित्य। ( ल्यब्लोपे पञ्चमी ), अभिभवितुमिच्छति। एतस्य हृद्गताभिप्रायस्य स्पष्टप्रतिपत्तये 'आः क एषः' इत्यादिनेपथ्यवाक्ये 'चन्द्र' पदेन सह 'गुप्त' पदं योजितम्, 'मयि स्थिते' इत्यादि चोक्तम्। तथा च 'मलयकेतुसाहाय्येन राक्षसश्चन्द्रगुप्तनृपतिं बलादाक्रमितुमिच्छति' हार्दाभिप्रायः स्पष्टं

---

में जोड़ दिये जायँ उसे 'उद्घात्यक' कहते हैं। जैसे मुद्राराक्षस में 'क्रूरग्रह' इत्यादि। यह सूत्रधार की उक्ति है। 'क्रूरग्रह केतु बल से पूर्णमण्डल चन्द्रमा का पराभव करना चाहता है'। इसके अनन्तर नेपथ्य से ( चाणक्य की ) आवाज आती है 'अरे यह कौन है जो मेरे रहते ( जीते ) चन्द्रगुप्त का अभिभव ( तिरस्कार ) करना चाहता है'। यद्यपि यहाँ पद अन्यार्थक ( चन्द्रग्रहण को बोधित करते ) हैं उनसे ( नेपथ्य से बोलने वाले व्यक्ति का ) हृद्गत अभिप्राय प्रकट नहीं होता तथापि ( हृद्गताभिप्राय को बताने के लिये ) दूसरे ( गुप्त आदि ) पदों को जोड़कर पात्र का प्रवेश कराया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अत्र अन्यार्थवन्त्यपि पदानि हृद्गतार्थबोधनविरहात् पदान्तरैर्योजयित्वा पात्रप्रवेशः।

कथोद्घातलक्षणम्—

"सूत्रधारस्य वाक्यं वा यत्र वाक्यार्थमेव वा।
गृहीत्वा प्रविशेत् पात्रं कथोद्घातः स उच्यते" ॥ १८ ॥

वाक्यमादाय रत्नावल्याम्। वाक्यार्थं गृहीत्वा वेण्याम्।

---

प्रतीयते। इदमेवोद्घात्यकं नाम आमुखम्। लक्षणं लक्ष्ये संगमयति **अत्रेति**। अत्र—सूत्रधारवाक्ये। **अन्यार्थवन्ति**—अन्यः—चन्द्रोपरागरूपः, अर्थः अभिप्रायः, येषां विद्यते तादृंश्यपि, **पदानि**—'क्रूरग्रहः सकेतुः' इत्यादीनि, **हृद्गतार्थबोधनविरहात्**—हृद्गतस्य राक्षसकर्तृकचन्द्रगुप्ताभिभवात्मकस्य, अर्थस्य, बोधनविरहाद् बोधनाभावात्, **पदान्तरैः**—अन्यैर्गुप्तादिभिः पदैः, **योजयित्वा**, **पात्रप्रवेशः**—पात्रस्य, चाणक्यस्य, प्रवेशः।

कथोद्घातलक्षणं यथा **सूत्रधारस्येति**। **यत्र**—यस्यां प्रस्तावनायाम् **पात्रम्**, **सूत्रधारस्य**—सूत्रधारोच्चारितमिति भावः, **वाक्यम् वा**—अथवा, **वाक्यार्थमेव**—सूत्रधारोक्तवाक्यस्याभिप्रायमात्रम्, **गृहीत्वा**—आदाय, उच्चार्येति भावः, **प्रविशेत्**, **सः**, **कथोद्घात** इत्युच्यते। क्रमश उदाहरति **वाक्यमिति**। **वाक्यम्**—सूत्रधारवाक्यम् **आदाय**—उच्चार्य, **रत्नावल्याम्**—तदाख्यायां नाटिकायाम्। पात्रप्रवेश इति शेषः। अयं भावः—रत्नावल्यां नाटिकायां—

द्वीपादन्यस्मादपि जलनिधेर्मध्यादपि दिशोऽप्यन्तात्।
आनीय झटिति घटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूय ॥

इति सूत्रधारपठितं वाक्यमेव 'एवमेतत्, कः संदेहः ? द्वीपादन्यस्मादपि' इत्येवमुच्चारयन् यौगन्धरायणनामकं पात्रं प्रविशति। अतस्तत्र कथोद्घातप्रस्तावना।

वाक्यार्थमादाय पात्रप्रवेशस्योदाहरणं **वेण्याम्**—वेणीसंहारनाम्नि नारायणभट्टकृते नाटके। तत्र—

निर्वाणवैरदहनाः प्रशमादरीणां नन्दन्तु पाण्डुतनयाः सह माधवेन।
रक्तप्रसाधितभुवः क्षतविग्रहाश्च स्वस्था भवन्तु कुरुराजसुताः सभृत्याः ॥

इति सूत्रधारेण पठितस्य वाक्यस्य '( नेपथ्ये ) आः दुरात्मन्! वृथामङ्गलपाठक! कथं स्वस्था भवन्ति मयि जीवति धार्तराष्ट्राः।'

इत्येवमर्थमात्रं गृहीत्वा भीमसेनस्य प्रवेशः।

---

कथोद्घात का लक्षण—

**सूत्रधारस्येति**। जहाँ सूत्रधार का वाक्य या वाक्यार्थ ( अभिप्राय ) लेकर पात्र प्रविष्ट होवे उसे कथोद्घात कहते हैं। **वाक्यमिति**। वाक्य लेकर रत्नावली नाटिका में पात्र प्रविष्ट होता है और वाक्यार्थ लेकर वेणीसंहार नाटक में।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


प्रयोगातिशयलक्षणम्—

"यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते।
तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तदा" ॥ १९ ॥

यथा उत्तररामचरिते—

"सूत्र०। तत् किमनेन? एहि राजद्वारमेव स्वजातिसमयेनोपतिष्ठावः" इति स्तुतिप्रयोगोद्यते सूत्रधारे, नटेन—

"स्नेहात् सभाजयितुमेत्य दिनान्यमूनि नीत्वोत्सवेन जनकोऽद्य गतो विदेहान्।
देव्यास्ततो विमनसः परिसान्त्वनाय धर्मासनाद्विशति वासगृहं नरेन्द्रः" ॥ २० ॥

प्रयोगातिशयं लक्षयति—यदीति। यदि, एकस्मिन्, प्रयोगे-प्रसङ्गे, अन्यः-अपरः, प्रयोगः-प्रसङ्गः प्रयुज्यते-उत्थाप्यते, किञ्च उत्थापितेन तेन-प्रयोगान्तरेण, चेत्-यदि, पात्रप्रवेशः-पात्रस्य यत्कृते प्रयोगान्तरमाश्रितम्, तस्य प्रवेशः, भवेत्, तदा-तर्हि, प्रयोगातिशयः-एकस्य प्रयोगस्य प्रयोगान्तरेण अतिशयनाद् अतिक्रमणात्-प्रयोगातिशयनाम्नी प्रस्तावना, स्यादिति शेषः।

उदाहरति यथेति। सूत्रधारो नटमाह तदिति। अनेन किमस्माकं प्रयोजनम्। एहि-आगच्छ। स्वजातिसमयेन-स्वजात्यनुकूलाचारेण। उपतिष्ठावः-स्तुवः। आवां स्तुतिपाठकौ वन्दिनौ, अत एव स्वजात्यनुरूपं राजस्तुतिरूपं कर्म कुर्व इति भावः। इत्येवं स्तुतिप्रयोगाय उद्यते सूत्रधारे, नटेन पात्रप्रवेशाय "भो भोः! क्वेदानीं महाराजः? (आकर्ण्य) एवं जनाः कथयन्ति—" इत्येवमाकाशभाषितेन प्रयोगान्तरं प्रयोजितम्।

स्नेहादिति। जनकः, स्नेहात्-स्वपुत्र्यां सीतायां जामातरि रामे च प्रेम्णः, (हेतौ पञ्चमी) सभाजयितुम्-जामात्रादीन् अभिनन्दितुम्, एत्य-अयोध्यामागत्य, अमूनि-स्वनिवासोपलक्षितानि, दिनानि, उत्सवेन-आनन्देन, नीत्वा-व्यतियाप्य, अद्य, विदेहान्-विदेहदेशं स्वराज्यम्, गतः-निवृत्तः। ततः-पितृविरहाद्, विमनसः-दुःखितायाः, देव्याः-सीतायाः, परिसान्त्वनाय-तद्दुःखापनयनक्षममधुरवचनप्रयोगाय, नरेन्द्रः, धर्मासनात्-सिंहासनं परि-

प्रयोगातिशय का लक्षण—

यदीति। यदि एक ही प्रयोग (प्रसङ्ग) में दूसरा प्रयोग आरम्भ हो जाय और उसी के द्वारा पात्रप्रवेश हो तो उसे प्रयोगातिशय कहते हैं। जैसे—उत्तररामचरित में—

'सूत्र०—तो इससे क्या, आओ, अपनी जाति के आचार के अनुसार, राजद्वार की स्तुति करें' ऐसा कहकर जब सूत्रधार स्तुति करने के लिये उद्यत हुआ तब नट ने—

स्नेहादिति। राजा जनक स्नेह से बधाई देने के लिये यहाँ आए थे, वे ये दिन हर्ष से बिता कर आज विदेह देश को चले गए हैं। इसलिये (अपने पिता के वियोग से) दुःखित महारानी सीता को सान्त्वना देने के लिये महाराज रामचन्द्र सिंहासन छोड़कर महल में जा रहे हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



इति रामस्यान्तःपुरप्रवेशरूपं स्तुतिप्रयोगमतिशयानं प्रयोगान्तरं प्रयुञ्जानेन सीतारामयोः प्रवेशः प्रयोजितः।

प्रवृत्तकलक्षणम्—

"कालं प्रवृत्तमाश्रित्य सूत्रभृद् यत्र वर्णयेत्।
तदाश्रयश्च पात्रस्य प्रवेशस्तत् प्रवृत्तकम्" ॥ २१ ॥

सूत्रभृत्—सूत्रधारः। यथा—

"आसादितप्रकटनिर्मलचन्द्रहासः प्राप्तः शरत्समय एष विशुद्धकान्तिः।

---

त्यज्य, वासगृहम्—अन्तःपुरम्, विशति—विशति। अत्र सूत्रधारस्य स्तुतिप्रयोगमतिशय्य नटेन रामस्यान्तःपुरप्रवेशरूपं प्रयोगान्तरं प्रयुञ्जानेन सीतारामयोः प्रवेशः प्रयोजितः। प्रयोगातिशयपदस्य योगार्थं प्रदर्शयन् लक्ष्ये संगमयति—इतीति। इति—एवं पूर्वोक्तेन प्रकारेण, स्तुतिप्रयोगं सूत्रधारप्रयोजितं (कर्म) अतिशयानम्, रामस्यान्तःपुरप्रवेशरूपम्, प्रयोगान्तरम्, प्रयुञ्जानेन, नटेन, सीतारामयोः, प्रवेशः—रङ्गावतरणम्, प्रयोजितः इति वाक्ययोजना।

प्रवृत्तकं लक्षयति—कालमिति। यत्र—यस्मिन् आमुखे, सूत्रभृत्—सूत्रधारः। प्रवृत्तम्—उपस्थितम्, कालम्—वसन्तग्रीष्मादिसमयम्, आश्रित्य—अवलम्ब्य वर्णयेत्—वर्णनं कुर्यात्, किंच, तदाश्रयः—सा वसन्तादिवर्णनैव, आश्रयः—अवलम्बो यस्य तादृशः, वसन्तादिवर्णनाश्रयेणेत्यर्थः, पात्रप्रवेशः, स्यात्, तत्, प्रवृत्तकम् इति व्यपदिश्यते।

उदाहरति यथेति। उग्रम् निरन्तरवृष्ट्यादिभिरुद्वेगकरम्, अन्यत्र उग्रस्वभावं भयङ्करम्, गाढतमसम्—गाढं तमो यत्र तादृशम्, निरन्तरमेघाच्छन्नगगनतया निबिडान्धकारम्, अन्यत्र अत्यन्तं विवेकहीनम्, घनकालम्—घनानां मेघानाम्, कालं समयम्, वर्षासमयमिति यावत्, अन्यत्र-घनवत् कालं कृष्णम्, अथवा घनं कालम् अतिकृष्णम् दशास्यम्—दशमुखम्-रावणम्, राम इव, उत्खाय—उन्मूल्य-विनाश्य, आसादितप्रकटनिर्मलचन्द्रहासः—आसादितः प्राप्तः, प्रकटः मेघाद्यनावृततया सर्वेषामक्षिगोचरः, निर्मलः स्वच्छः, चन्द्रहासः चन्द्रद्युतिः, येन तादृशः। अन्यत्र (रामपक्षे) आसादितः, प्रकटस्य निर्मलचन्द्रस्य हास इव हासो विकासः, रावणादिशत्रूणां निहननेन हर्षातिरेक इति यावत्, येन तादृशः, केचित्तु आसादितः, प्रकटः कोशान्निष्कासिततयाऽक्षिगोचरः, निर्मलः, चन्द्रहासः—खड्गो येन तादृश इत्येवं व्याचक्षते। अपरे आसादितेत्यादिपदं द्वितीयान्तं कृत्वा दशास्यविशेषणतयाऽपि योजयन्ति, रावणस्यापि चन्द्रहासो नाम

---

इस प्रकार (सूत्रधार के उठाए हुए) स्तुतिप्रसङ्ग में रामचन्द्र का अन्तःपुर प्रवेश-रूप दूसरा प्रसङ्ग उठाकर सीता और राम का प्रवेश कराया।

प्रवृत्तक का लक्षण

जहाँ सूत्रधार उपस्थित समय (ऋतु) का वर्णन करे और उसी के आश्रय से पात्र का प्रवेश हो तो उसे 'प्रवृत्तक' कहते हैं।

जैसे आसादित इति। जिसने सुव्यक्त-मेघ आदि से रहित-स्वच्छ चन्द्रमा का विकास

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


'उत्खाय गाढतमसं घनकालमुग्रं रामो दशास्यमिव सम्भृतबन्धुजीवः" ॥ २२॥

ततो रामस्य प्रवेशः।

अवलगितलक्षणम्—

"यत्रान्यस्मिन् समावेश्य कार्य्यमन्यत् प्रसाध्यते।
परानुरोधात् तज्ज्ञेयं नाम्नावलगितं बुधैः" ॥ २३ ॥

समावेश्य—सादृश्यमुद्भाव्य। यथा—अभिज्ञानशाकुन्तले प्रस्तावनान्ते रूपकस्य प्रकृतेतिवृत्तमारभते।

---

खड्ग आसीत्। अत एव **विशुद्धकान्तिः**—विशुद्धा, कान्तिः शोभा यस्य तादृशः। उभयत्र समानं विशेषणम्। **संभृतबन्धुजीवः**—संभृताः सम्यग् वर्धिताः, बन्धुजीवा बन्धुजीवकुसुमानि, येन तादृशः। अन्यत्र संभृताः पालिताः बन्धूनाम् उपकारितया बन्धुसदृशानां सुग्रीव-विभीषणादीनाम्, जीवाः जीवनानि येन तादृशः, **एषः**—अनुभूयमानः, **शरत्समयः**—शरदृतुः, **प्राप्तः**—उपस्थितः।

**ततः**—उपर्युक्तोक्त्यनन्तरम्, रामस्य प्रवेशः। अत्र सूत्रधारेण शरत्समयवर्णनप्रसङ्गेन राम-रूपस्य पात्रस्य प्रवेशः सूचितः।

अवलगितलक्षणमाह—**यत्रेति**। **यत्र**—यस्मिन्नामुखे, **परानुरोधात्**—परस्य कार्यान्तरस्य पात्रप्रवेशरूपस्य, अनुरोधात्—अपेक्षणात्, **अन्यस्मिन्**—कस्मिंश्चिदपरस्मिन् प्रयोगे, **समावेश्य**—सादृश्यमुद्भाव्य, **अन्यत् कार्यं**—पात्रसूचनारूपम्, **प्रसाध्यते**—क्रियते, तद् आमुखम्, **बुधैः, नाम्ना, अवलगितम्, ज्ञेयम्**। प्रयोगान्तरे सादृश्योद्भावनद्वारा यत्र पात्रप्रवेशः सूच्यते, तद-वलगितं नाम आमुखं भवतीति संक्षिप्तार्थः।

उदाहरति **यथेति**। अभिज्ञानशाकुन्तले—

तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसभं हृतः। एष राजेव दुष्यन्तः सारङ्गेणातिरंहसा॥

इत्यत्र गीतरागकरणकस्वसमाकर्षणरूपे प्रयोगे सारङ्गकरणकदुष्यन्तसमाकर्षणस्य सादृश्य-मुद्भाव्य 'ततः प्रविशति' इत्यादिना राज्ञः प्रवेशः सूचितः। **प्रकृतेतिवृत्तम्**—प्रकृतम्, इतिवृत्तं कथावस्तु।

---

प्राप्त किया है ऐसी विशुद्धकान्ति से युक्त यह शरद् ऋतु उपस्थित है। बन्धुजीव (गुलदुपहरिया फूल और बन्धुसदृश सुग्रीव आदि के जीवन) को संभृत (विकासित और रक्षित) करने वाले इस शरत्काल ने, राम ने रावण की तरह, घने अन्धकार (अज्ञान) वाले, तथा उग्र, उग्रवर्षाकाल को उखाड़ फेंका है।

यहाँ शरत्काल का वर्णन करके (उसके आश्रय से) राम का प्रवेश कराया गया है।

अवलगित का लक्षण

जहाँ दूसरे कार्य के (पात्रप्रवेश के) अनुरोध से किसी प्रयोग में सादृश्य बताकर दूसरा कार्य अर्थात् पात्र का सूचनरूप सिद्ध किया जाय उसे विद्वद्गण 'अवलगित' कहते हैं। **सादृश्यमुद्भाव्य**—सादृश्य बताकर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


पताकास्थानकप्रयोगस्थलम्—

"पताकास्थानकं योज्यं सुविचार्येह वस्तुनि"।

इह—रूपके, वस्तुनि—इतिवृत्ते।

तल्लक्षणमुक्तं भरतेन—

पताकास्थानकलक्षणम्—

"यत्रार्थे चिन्तितेऽन्यस्मिन् तल्लिङ्गोऽन्यः प्रयुज्यते।
आगन्तुकेन भावेन पताकास्थानकन्तु तत्" ॥ २४ ॥

यत्र एकस्मिन् विषये चिन्तिते तत्संसक्तः अपरोऽर्थः अतर्कितेन भावेन बोध्यते तत् पताकास्थानकम्। यथा उत्तरचरिते—

रामः—कथं प्रियवचना वक्षसि प्रसुप्तैव ? [ निर्वर्ण्य सस्नेहम् ]—

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्त्तिर्नयनयो-
रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरसः।

---

पताकास्थानकप्रयोगविषयम् आह—पताकेति।

पताकास्थानकस्य लक्षणमाह यत्रार्थे इति। यत्र-स्थले, अन्यस्मिन्, अर्थे-विषये, चिन्तिते-विचारिते, तल्लिङ्गः-तत्संसक्तः, अन्यः-अपरोऽर्थः, आगन्तुकेन-अतर्कितेन, भावेन प्रयुज्यते-बोध्यते, तत् तु पताकास्थानकम्, उच्यत इति शेषः। अयं भावः—यत्र चिन्तितादन्यस्मादर्थात् साङ्कर्यादिना अतर्कितोऽन्य एवार्थः प्रतीयते तत् पताकास्थानकमुच्यते। यथा पताका दूरत एव स्थानं सूचयति, तथैवेदमपि सूचयतीत्यस्य पताकास्थानकमित्यन्वर्थं नाम।

उदाहरति यथेति। इयमिति। उत्तरचरिते प्रथमाङ्के स्ववक्षसि शयितां सीतां दृष्ट्वा तद्वर्णनपरा रामस्योक्तिरियम्। इयम्-सीता, गेहे-गृहे, ( नमेति सर्वत्राध्याहार्यम् ) लक्ष्मीः-

---

यथेति। जैसे—शाकुन्तल में प्रस्तावना के अन्त में नाटक की प्रकृत कथा आरम्भ होती है।

पताकास्थानक के प्रयोग का स्थल

पताकेति। नाटक में पताकास्थानक का प्रयोग बहुत सोच समझकर करना चाहिये।

पताकास्थानक का लक्षण—

यत्रेति। जहाँ अभिलषित ( चिन्तित ) अर्थ तो दूसरा ही हो परन्तु उस अभिलषित अर्थ में छिपा हुआ दूसरा अर्थ यदि अनजाने ही प्रतीत हो जाय उसे 'पताकास्थानक' कहते हैं।

यत्रैकस्मिन्निति। इस वाक्य का अर्थ उपर्युक्त कारिकार्थ के समान ही है। उदाहरण के लिये उत्तरचरित का प्रसङ्ग उद्धृत करते हैं।

"राम—क्या प्रियभाषिणी सीता मेरे वक्षस्थल पर सो ही गई। ( प्रेमपूर्वक देखकर ) यह घर की लक्ष्मी है, आंखों में अमृताञ्जन की बत्ती के समान है। इसका यह स्पर्श शरीर पर अत्यधिक चन्दन-रस के सदृश है। मेरे कण्ठ पर पड़ा हुआ ( इसका ) बाहु शीतल कोमल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri


अयं कण्ठे बाहुः शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः
किमस्या न प्रेयः ? यदि परमसह्यस्तु विरहः ॥ २५ ॥

प्रतिहारी—[ प्रविश्य ]। देव ! उवत्थिदो।

रामः—अयि ! कः ?

प्रति०—आसण्णपरिचारओ देवस्य दुम्मुहो ।

अत्र दुर्मुखोपस्थितिरूपार्थे चिन्तिते सीताविरहरूपार्थः सूचितः ।

---

श्रीः, शोभा, अस्तीति शेषः, इयम्, नयनयोः, अमृतवर्तिः—अमृताञ्जनशलाका, तद्वन्नयनानन्दकारिणीति भावः। असौ—अनुभूयमानः, अस्याः—सीतायाः, स्पर्शः, वपुषि—समस्ते शरीरे, बहुलः—प्रभूतः, चन्दनरसः—मलयजरससेकवदतिशीतलः। कण्ठे—ग्रीवायाम्, अर्पितः, शिशिरमसृणः—शिशिरः शीतलः, मसृणः कोमलश्च, अयम्—वर्तमानः, अस्याः, बाहुः—भुजः, मौक्तिकसरः—मुक्ताहारः, तद्वद् हृदयानन्दवर्धनः। किमन्यत्, अस्याः—सीतायाः सम्बन्धि, किं वस्तु, प्रेयः—वस्त्वन्तरापेक्षया अधिकप्रियम्, न अस्ति ? सर्वमप्येतदीयं निरतिशयप्रियमिति भावः। यदि, किञ्चिद् अस्या अप्रियमस्ति, तर्हि, परम्—केवलम्, असह्यः—सोढुमशक्यः, विरहः—वियोगः, नान्यत्। विरहमेकं परित्यज्यास्याः सर्वं प्रियमिति भावः। उवत्थिदो—उपस्थितः इति संस्कृतम्। आसण्णेति—आसन्नपरिचारको देवस्य दुर्मुख इति संस्कृतम्। आसन्नः—सदासन्निहितः, परिचारकः—सेवकः।

लक्ष्यसमन्वयं करोति—अत्रेति। अयं भावः—रामेण 'इयं गेहे' इत्यादिपद्ये पठिते सति प्रतिहार्या 'देव ! उपस्थितः' इत्युक्तम्। यद्यपि उपस्थितपदेन दुर्मुखनामा रामस्य आसन्नः परिचारक एव प्रतिहार्या विवक्षितः, तथापि 'यदि परमसह्यस्तु विरहः' इत्येतत्समनन्तरमेव 'देव ! उपस्थितः' इत्युक्त्वा 'विरह उपस्थितः' इति योजनया सीताया विरह उपस्थित इति सूच्यते। तथा च चिन्तितात् परिचारकोपस्थानाद् अतर्कितस्य सीताविरहस्य उपस्थितेः प्रत्यायनेन पताकास्थानकमिदमुच्यते।

---

मोतियों की लड़ ( माला ) के समान है। इसकी कौनसी वस्तु प्रिय नहीं है ? यदि कोई अप्रिय है तो केवल ( इसका ) असह्य विरह।

प्रतिहारी—( प्रवेश करके ) हे देव ! उपस्थित है।

राम—अरे कौन ?

प्रतिहारी—समीप रहने वाला आपका सेवक दुर्मुख।

अत्रेति। यहां दुर्मुख की उपस्थिति ही अभिलषित थी, परन्तु उससे सीता का विरह रूप अर्थ भी सूचित हो जाता है। ( श्लोक की समाप्ति का 'विरह' पद और उसके आगे प्रतिहारी का कहा हुआ 'उपस्थित' शब्द मिलकर विरह की सूचना देते हैं। ) अथवा जैसे वेणीसंहार में हे करभोरु ! ( करभ के सदृश जङ्घा वाली ! ) मेरी जाँघों का जोड़ा पर्याप्त ही हैं।' इस प्रकार दुर्योधन के कहने पर संभ्रान्त कञ्चुकी ने प्रविष्ट होकर कहा—हे राजन् ! तोड़ दिया, तोड़ दिया'। यद्यपि कञ्चुकी का अभिप्राय वायु के द्वारा रथ के झण्डे के टूट जाने से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



यथा वा वेण्याम्—

"पर्य्याप्तमेव करभोरु ! ममोरुयुग्मम्" इति दुर्योधनेन कथिते, "[ प्रविश्य सम्भ्रान्तः कञ्चुकी ] देव ! भग्नं भग्नम्" इत्यनेन वायुना रथकेतनभङ्गरूपार्थे चिन्तिते भीमेन दुर्य्योधनोरुभङ्गरूपार्थः सूचितः ।

अर्थोपक्षेपकाः—

यत्तु युद्धवधादिकमन्यच्चानुचितमङ्केष्वदर्शनीयं तत् सर्वमर्थोपक्षेपकैः विष्कम्भकादिभिः सूच्यते । आदिपदेन प्रवेशकाङ्कावतारादयो गृह्यन्ते ।

विष्कम्भकस्य लक्षणमाह धनञ्जयः—

"वृत्तवर्त्तिष्यमाणानां कथांऽशानां निदर्शकः ।

---

द्वितीयमुदाहरति यथा वेति । वेण्याम्—वेणीसंहारे । अयं भावः—वेणीसंहार-नाटके द्वितीयाङ्के—'पर्याप्तमेव करभोरु ! ममोरुयुग्मम्' इति दुर्योधनेन स्वपत्नीं भानुमतीं प्रत्युक्ते सति कञ्चुकिना 'देव ! भग्नं भग्नम्' इत्युक्तम् । तत्र यद्यपि भग्नं भग्नमित्यनेन कञ्चुकिनः 'भग्नं भीमेन भवतो मरुता रथकेतनम्' इति वक्ष्यमाणो रथकेतनभङ्ग एवाभिप्रेतः । तथापि ममोरुयुग्म-मित्येतत्समनन्तरमेव 'देव ! भग्नं भग्नम्' इत्युक्त्या 'ममोरुयुग्मं भग्नम्' इत्यन्वयेन दुर्योधनो-रुभङ्गरूपोऽचिन्तितार्थः प्रतीयते । तथा चेदमपि पताकास्थानमुच्यते ।

अथ अर्थोपक्षेपकान् अवतारयति यत्त्विति । तदुक्तं साहित्यदर्पणे—

अङ्केष्वदर्शनीया या वक्तव्यैव च संमता ।
या च स्याद् वर्षपर्यन्तं कथा दिनद्वयादिजा ॥
अन्या च विस्तरा सूच्या सार्थोपक्षेपकैर्बुधैः ।

अङ्केषु अदर्शनीया—निषिद्धा, कथा युद्धादिकथा । वक्तव्यैव—अवश्यवक्तव्या अभिनेतुम-योग्या वक्तुमभीष्टा चेति भावः । दिनद्वयादिनिर्वर्त्या । विस्तरा—अतिबहुला । अर्थोपक्षेपकैः—भाव्यर्थसूचकैः । ते चार्थोपक्षेपकाः पञ्च भवन्ति । तदुक्तं दर्पणे—

अर्थोपक्षेपकाः पञ्च विष्कम्भक-प्रवेशकौ । चूलिकाऽङ्काऽवतारोऽथ स्यादङ्कमुखमित्यपि ॥

तत्र विष्कम्भलक्षणं यथा—वृत्तेति । कथांशानाम्—अवान्तरार्थानाम् । इतरत् मूल एव

---

था, तब भी भीमसेन के द्वारा दुर्योधन की जाँघों का तोड़ना सूचित हो जाता है । ( दुर्योधन की उक्ति में जाँघों का जोड़ा ( ऊरुयुग्म ) यह शब्द कञ्चुकी के कहे हुए 'तोड़ दिया' इस शब्द के साथ मिलने पर, उपर्युक्त अर्थ को सूचित करता है । )

यत्तु इति । युद्ध, वध आदि और जो कुछ भी अनुचित वस्तु अङ्कों में दिखाने के अयोग्य है, वह सब अर्थ को सूचित करने वाले 'विष्कम्भक' आदि के द्वारा सूचित किया जाना चाहिये । 'विष्कम्भकादि' में आदि शब्द से 'प्रवेशक', 'अङ्कावतार' आदि लिये जाते हैं ।

विष्कम्भक का लक्षण

वृत्त इति । जो भूत और भविष्यत् कथाओं का सूचक हो, जिसमें प्रतिपाद्य वस्तु का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



सङ्क्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः" ॥ २६ ॥

वृत्तवर्त्तिष्यमाणानाम्—अतीतानां भाविनाञ्च, निदर्शकः—सूचकः मध्येन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां प्रयोजितः। यथा—रत्नावल्यां प्रथमाङ्कादौ, अभिज्ञानशाकुन्तले च चतुर्थाङ्कादौ।

प्रवेशकलक्षणम्—

"प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा" ॥ २७ ॥ [ विश्वनाथः ]

अनुदात्तोक्त्या—प्राकृतवचनेन, अङ्कद्वयान्तरिति प्रथमाङ्केऽस्य प्रतिषेधः। यथा—वेण्यां तृतीयाङ्कादौ।

---

विष्कम्भकोऽपि द्विविधो भवति शुद्धः संकीर्णश्च। केवलमध्यमपात्रप्रयोजितः संस्कृतभाषात्मकः शुद्धो भवति। मध्यमनीचोभयपात्रप्रयोजितः संस्कृतप्राकृतात्मकः संकीर्णो भवति। तत्र शुद्धो यथा रत्नावल्यां प्रथमाङ्कादौ। तत्र कविना यौगन्धरायणद्वारा वत्सराजस्य मदनमहोत्सवादिप्रासादारोहणमुपक्षिप्तम्।

संकीर्णस्तु अभिज्ञानशाकुन्तले चतुर्थाङ्कादौ। तत्र हि—प्रियंवदानुसूयासंवादव्याजेन शकुन्तलाया दुष्यन्तेन गान्धर्वविवाहो मुनिशापश्चोपक्षिप्तौ।

प्रवेशकलक्षणमाह—**प्रवेशक** इति। **अनुदात्तोक्त्या**—अनुदात्तया प्राकृतभाषात्मिकया, ग्राम्यया वा उक्त्या—वचनेन, **नीचपात्रप्रयोजितः**—नीचेन नीचाभ्यां वा पात्राभ्यां प्रयोजितः। नीचानि पात्राणि प्रायः प्राकृतमेव भाषन्ते। **अङ्कद्वयान्तः**—अङ्कयोर्द्वयम्, तदन्तः तन्मध्ये। **प्रवेशकः**—प्रवेशकनामा अर्थोपक्षेपकः, **विज्ञेयः**। **शेषम्**—वृत्तवर्तिष्यमाणकथांशनिदर्शकत्वादिकम्। **विष्कम्भके यथा**—विष्कम्भवद्, ज्ञातव्यमिति शेषः। अङ्कद्वयान्तरिति विशेषणस्य फलमाह—**प्रथमाङ्क**—इति। **अस्य** प्रवेशकस्य। अयं भावः—प्रवेशकात् प्राक् पश्चाच्च केनचिदङ्केन भाव्यम्। न च प्रथमाङ्कादौ सन्निवेश्यमानात् तस्मात् प्राक्, कश्चिदङ्कः संभवति। अतः प्रवेशकः प्रथमाङ्कादौ न संनिवेश्यत इति।

उदाहरति **यथा वेण्यामिति**। तत्र हि—राक्षससंवादव्याजेन युद्धे जयद्रथघटोत्कचवधादिकं सूचितम्। अङ्कावतारलक्षणमाह **अङ्कान्त** इति।

---

संक्षेप से वर्णन किया गया हो उसे विष्कम्भक कहते हैं, यह (एक या दो) मध्यम (संस्कृत भाषी) पात्रों द्वारा किया जाता है। जैसे रत्नावली में प्रथम अङ्क के आदि में, अभिज्ञानशाकुन्तल में चतुर्थ अङ्क के आदि में।

प्रवेशक का लक्षण—

**प्रवेशक इति**। जिसका प्रयोग नीच पात्रों द्वारा होता है और जिसमें उक्तियाँ उदात्त नहीं होतीं, दो अङ्कों के बीच में जिसका प्रयोग होता है अर्थात् प्रथमाङ्क के आदि में जिसका प्रयोग नहीं होता, शेष बातें जिसकी विष्कम्भक के समान ही होती हैं उसे 'प्रवेशक' कहते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अङ्कावतारलक्षणम्—

"अङ्कान्ते सूचितः पात्रैस्तदङ्कस्याविभागतः।
यत्राङ्कोऽवतरत्येषोऽङ्कावतार इति स्मृतः" ॥ २८ ॥

यथा—अभिज्ञानशाकुन्तले पञ्चमाङ्कान्ते पात्रैः सूचितः षष्ठाङ्कः तदङ्कस्य अङ्गविशेष इवावतीर्णः।

यत्र अङ्कान्ते-अङ्कस्य प्राग्वर्तिनः अङ्कस्य, अन्ते अवसाने, पात्रैः-अभिनेतृभिः, सूचितः-उपक्षिप्तः, तदङ्कस्य-यस्य पात्रैः सूचितः, तस्यैवाङ्कस्य, अविभागतः-अविभागेन, तदङ्गतयेवेत्यर्थः, अङ्कः-अग्रिमोऽङ्कः, अवतरति, एषः, अङ्कावतार इति नाम्ना, स्मृतः-आम्नातः, नाट्यशास्त्राचार्यैरिति शेषः।

उदाहरति यथेति। अयं भावः—अभिज्ञानशाकुन्तलस्य षष्ठाङ्के 'शचीतीर्थं वन्दमानायाः सख्यास्ते हस्ताद् गङ्गास्रोतसि परिभ्रष्टम्' इत्यनेन शकुन्तलायै दुष्यन्तेन दत्ताया अभिज्ञानमुद्रिकायाः शचीतीर्थे स्खलनम्, 'तस्स दंसणेन अहिणो अभिमदो जणो सुमराविदो'—'तस्य दर्शनेन भर्तुरभिमतो जनः स्मारितः' इत्यादिना च तां मुद्रिकां दृष्ट्वा दुर्वासःशापहेतुकविस्मृतिसमाक्रान्तस्य दुष्यन्तस्य पुनः शकुन्तलाकृतस्मरणम्, इत्याद्यन्यच्च वर्णितम्। तदेव पञ्चमाङ्कान्ते—

सा निन्दन्ती स्वानि भाग्यानि बाला बाहूत्क्षेपं क्रन्दितुं च प्रवृत्ता।
स्त्रीसंस्थानं चाप्सरस्तीर्थमाराद् उत्क्षिप्यैनां ज्योतिरेकं जगाम ॥
कामं प्रत्यादिष्टां स्मरामि न परिग्रहं मुनेस्तनयाम्।
बलवत्तु दूयमानं प्रत्याययतीव मे हृदयम् ॥

इत्येवमादिभिरुक्तम्।

चूलिकाङ्कमुखं च दीपिकाकृता संक्षेपानुरोधेन नोक्तम्। तत्र चूलिकालक्षणं दर्पणे यथा—

'अन्तर्जवनिकासंस्थैः सूचनार्थस्य चूलिका।'

जवनिका—नटानां वेषस्थानम्। यथा वीरचरिते चतुर्थाङ्कस्यादौ '( नेपथ्ये ) भोः ! भोः !! वैमानिकाः ! प्रवर्तन्तां रङ्गमङ्गलानि' इत्यादि। 'रामेण परशुरामो जितः'। इति नेपथ्ये पात्रैः सूचितम्।

---

है। प्राकृतवचनेन-प्राकृत भाषा से युक्त, अथवा ग्राम्य वचनों से युक्त। जैसे—वेणीसंहार में तृतीय अङ्क के आदि में।

अङ्कावतार का लक्षण—

अङ्कान्त इति। पूर्व अङ्क के अन्त में उसी के पात्रों द्वारा सूचित किया गया जो अगला अङ्क पूर्व से अविभक्त ( उसका अङ्ग जैसा ) होकर अवतीर्ण होता है उसे 'अङ्कावतार' कहते हैं। जैसे—अभिज्ञानशाकुन्तल में पञ्चमांक के अन्त में पात्रों के द्वारा सूचित छठा अंक उसका ( पाँचवें अंक का ) अङ्ग सा बनकर अवतीर्ण हुआ है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



नाटकलक्षणोक्तसन्धिलक्षणमुक्तं दशरूपके—

"अन्तरैकार्थसम्बन्धः सन्धिरेकान्वये सति"।

एकेन प्रयोजनेनान्वितानां कथांऽशानामवान्तरैकप्रयोजनसम्बन्धः सन्धिः।

तद्भेदानाह विश्वनाथः

"मुखं प्रतिमुखं गर्भो विमर्श उपसंहृतिः" ॥ २९ ॥

---

अङ्कमुखलक्षणं दर्पणे यथा—

'यत्र स्यादङ्क एकस्मिन्नङ्कानां सूचनाऽखिला।

तदङ्कमुखमित्याहुर्बीजार्थख्यापकं च तत्॥'

यथा मालतीमाधवे प्रथमाङ्कादौ कामन्दक्यवलोकिते भूरिवसुप्रभृतीनां भाविभूमिकानां परिक्षिप्तकथाप्रबन्धस्य च प्रसङ्गात् सन्निवेशं सूचितवत्यौ।

नाटकलक्षणे पञ्चसन्धिसमन्वितमित्युक्तम्। तत्र सन्धेर्लक्षणं तद्भेदांश्चाह–अन्तरैकार्थ इति। एकान्वये–एकेन प्रयोजनेन, अन्वये संबन्धे, कथांशानामिति शेषः। सति कथांशानाम् एकप्रयोजनान्वितत्वे सतीत्यर्थः। अन्तरैकार्थसंबन्धः–अन्तरेण मध्यवर्तिना अवान्तरेण, एकेन अपरेण, अर्थेन प्रयोजनेन, संबन्धः तेषामेव एकप्रयोजनान्वितानां कथांशानामिति शेषः। संधिः–संधिरित्युच्यते। तथा च एकमुख्यप्रयोजनान्वितानां कथांऽशानाम् अवान्तरार्थसंबन्धः सन्धिरिति भावः। सन्धिलक्षणं व्याचष्टे एकेनेति। तद्भेदा यथा–मुखमिति। एषां क्रमशो लक्षणानि उच्यन्ते।

१—यत्र बीजसमुत्पत्तिस्तन्मुखं परिकीर्तितम्।

मुखम्-मुखसन्धिः। यथा—अभिज्ञानशाकुन्तले प्रथमाङ्के दुष्यन्तशकुन्तलयोः परस्परानुरागरूपस्य बीजस्योत्पत्तिः।

२—लक्ष्यालक्ष्य इवोद्भेदस्तस्य प्रतिमुखं भवेत्।

लक्ष्यालक्ष्य इव—किञ्चिल्लक्ष्य इत्यर्थः। तस्य–अनुरागरूपबीजस्य। प्रतिमुखम्—प्रतिमुखसन्धिः। यथा—तत्रैव द्वितीयेऽङ्के दुष्यन्तानुरागस्य नातिपरिस्फुटप्रकाशः।

---

सन्धि का लक्षण—

एक प्रयोजन में अन्वित अर्थों ( कथांशों ) के अवान्तर सम्बन्ध को सन्धि कहते हैं।

सन्धि के भेद—

मुखमिति। मुख सन्धि, प्रतिमुख सन्धि, गर्भ सन्धि, विमर्श सन्धि और उपसंहार ( निर्वहण ) सन्धि ये सन्धि के पाँच भेद हैं। जहां बीज की उत्पत्ति का वर्णन हो उसे मुख-सन्धि कहते हैं। जैसे शकुन्तला के पहले अङ्क में दुष्यन्त और शकुन्तला के परस्परानुरागरूप बीज की उत्पत्ति बताई गई है।

जहाँ बीज का कुछ लक्ष्य और कुछ अलक्ष्य उद्भेद—विकास-हो उसको प्रतिमुख कहते हैं। जैसे उसी शकुन्तला के द्वितीय अङ्क में दुष्यन्त का अनुराग अतिस्फुट नहीं हुआ है, अर्थात् कुछ स्पष्ट है और कुछ अस्पष्ट।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अथ नाट्योक्तयः—

"सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यादश्राव्यं स्वगतं मतम्।

---

३—फलप्रधानोपायस्य प्रागुद्भिन्नस्य किञ्चन। गर्भो यत्र समुद्भेदो ह्रासान्वेषणवान् मुहुः॥

फलस्य यः प्रधानोपायः अथवा फलं प्रधानं यत्र तादृशो य उपायस्तस्य फलप्रधानोपायस्य। प्राक् पूर्वम् प्रतिमुखसंधाविति यावत्। किञ्चन—यत्किञ्चित्, उद्भिन्नस्य उद्भूतस्य। ह्रासान्वेषणवान्—ह्रासः तिरोभावः, अन्वेषणं च यत्र सः। समुद्भेदः विकासः, गर्भः–गर्भसन्धिरित्यर्थः। यथा शाकुन्तले तृतीयांके उभयानुरागस्य सम्यग् विकासः मुहुरन्वेषणम्, शकुन्तलाप्रस्थानादिना ह्रासश्च।

४—यत्र मुख्यफलोपाय उद्भिन्नो गर्भतोऽधिकः। शापाद्यैः सान्तरायश्च स विमर्श इति स्मृतः॥

गर्भतः–गर्भसन्धेः, शापाद्यैरित्यत्राद्यपदेन भयादीनां ग्रहणम्। सान्तरायः–विघ्नसहितः। विमर्शः–विमर्शसंधिः। यथा शाकुन्तले चतुर्थाङ्के उत्कर्षप्राप्तोऽनुरागो दुर्वाससः शापेन विघ्नितः। भयेन सान्तरायो यथा रत्नवल्यां सागरिकासंगमोपायवत्सराजानुरागो वासवदत्ताभयेन सविघ्नः।

५—बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम्। एकार्थमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत्॥

मुखाद्यर्थाः—मुखादिसन्धयः, विप्रकीर्णाः—उपक्षिप्ताः, यथायथम्—स्वस्वस्थाने। एकार्थम्—एकस्मा इति एकार्थम्, एकं प्रधानप्रयोजनं साधयितुम्, उपनीयन्ते—उपसंह्रियन्ते। निर्वहणम्-निर्वहणसन्धिः। यत्र मुखादिसंधिषु विप्रकीर्णानामर्थानामेकस्मिन् प्रधानप्रयोजने समन्वयः क्रियते, स निर्वहणसंधिरिति भावः। यथा शाकुन्तले सप्तमाङ्के शकुन्तलादुष्यन्तयोः समागम एव सर्वकार्याणामुपसंहारः। उपसंहारो निर्वहणमित्यनर्थान्तरम्।

अथ नाट्योक्तीर्वर्णयति **सर्वश्राव्यमिति**। यत् **सर्वश्राव्यम्** सर्वेषां श्रवणार्हम्, तत्

---

पूर्व सन्धियों में कुछ २ प्रकट हुए फलप्रधान उपाय का जहां ह्रास और अन्वेषण से युक्त वार २ विकास हो उसे गर्भ सन्धि कहते हैं। जैसे शकुन्तला के तीसरे अङ्क में दोनों का अनुराग स्पष्ट प्रकाशित हुआ है, वार २ उसका अन्वेषण भी हुआ है, शकुन्तला के प्रस्थान से उसका ह्रास भी दिखाया गया है।

जहाँ मुख्य फल का उपाय गर्भ सन्धि की अपेक्षा अधिक उद्भिन्न हो किन्तु शाप आदि के कारण विघ्न युक्त हो उसे विमर्श सन्धि कहते हैं। जैसे शकुन्तला के चौथे अङ्क में उत्कर्ष को प्राप्त हुआ अनुराग दुर्वासा के शाप से विघ्नित हुआ है।

बीज से युक्त, मुखादि सन्धियों में बिखरे हुए अर्थों का जहां एक प्रधान प्रयोजन में यथावत् समन्वय सिद्ध किया जाय उसे निर्वहण सन्धि कहते हैं। जैसे शकुन्तला के सातवें अङ्क में दुष्यन्त और शकुन्तला का मेल कराकर सब कार्यों का एक अर्थ में (दुष्यन्त शकुन्तला के मेल रूप अर्थ में) पर्यवसान किया गया है।

नाट्योक्तियाँ—

**सर्वश्राव्यमिति**। जो बात सबको सुनाने योग्य हो उसे 'प्रकाशम्' इस शब्द से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्यापवारितम् ॥ ३० ॥
त्रिपताककरेणान्यानपवार्य्यान्तरा कथाम् ।
अन्योऽन्यामन्त्रणं यत् स्याज्जनान्ते तज्जनान्तिकम् ॥ ३१ ॥
किं ब्रवीष्येवमित्यादि विना पात्रं ब्रवीति यत् ।
श्रुत्वेवानुक्तमप्येकस्तत् स्यादाकाशभाषितम्" ॥ ३२ ॥ [ दशरू० ]
"प्रायेण ण्यन्तकः साधिर्गमेः स्थाने प्रयुज्यते ।

---

प्रकाशम् इति स्यात् । यच्च अश्राव्यम्–अन्येषां श्रवणानर्हम्, तत् स्वगतम् इति मतम् । अयं भावः—रूपकेषु 'प्रकाशम्' इति शब्दं पुरस्कृत्य या उक्तिः, सा सर्वेषां पात्राणां श्रवणार्हा भवति । या च 'स्वगतम्' इति पुरस्कृत्य प्रवर्तते, तां तु वक्तैव स्वमनसि कथयति, नान्यानि पात्राणि तां श्रोतुमर्हन्ति । यत् परावृत्य–अन्यश्रवणपरिहाराय विपरीतदिशि मुखं कृत्वा, अन्यस्य–( सम्बन्धसामान्ये षष्ठी ) अन्यं प्रति, रहस्यम्–गोपनीयम्, कथ्यते, तद् अपवारितम् इत्युच्यते ।

त्रिपताकेति । कथाम्, अन्तरा–कथाया मध्ये, त्रिपताककरेण–त्रिपताकश्चासौ करः, तेन । त्रिपताकलक्षणं यथा मन्दारमरन्दे—

तर्जनीमूलसंलग्नकुञ्चिताङ्गुष्ठकः करः । गण्डकः संहताकारः प्रसारिततलाङ्गुलिः ॥
पताकः स्यादथ यदि वक्रिताऽनामिकाङ्गुलिः । स एव श्रोत्रगस्तर्हि त्रिपताक उदीर्यते ॥

अत्र द्वितीयपद्ये पताकः स्यादित्यस्य पूर्वेण सम्बन्धः । अन्यान्–प्रतिपाद्यपुरुषातिरिक्तान्, अपवार्य–परिहृत्य, जनान्ते–जनस्य प्रतिपाद्यपुरुषस्य, अन्ते समीपे, यत्, अन्योन्यामन्त्रणम्–अन्योन्यस्य, आमन्त्रणं गुह्यालापः, स्यात्, तद्, जनान्तिकम् इत्युच्यते । यस्य न श्राव्यं तस्यान्तरं ऊर्ध्वसर्वाङ्गुलं वक्रानामिकं [ त्रिपताकम् ] करं कृत्वा अन्येन सह यन्मन्त्र्यते तज्जनान्तिकमिति भावः ।

किमिति । यत्, एकः–कोऽपि, पात्रं विना–पात्राभावेऽपि, अनुक्तमपि श्रुत्वेव—अनुक्तस्यापि श्रवणमभिनीयेत्यर्थः, 'किं ब्रवीषि ? एवम्' इत्यादि ब्रवीति तद् आकाशभाषितम्, स्यात् ।

प्रायेणेति—गमेः–'गम्लृ गतौ' इत्यस्य धातोः, स्थाने–प्रसङ्गे, प्रायेण ण्यन्तकः–णिच्-

---

सूचित करते हैं। और जो सुनाने योग्य न हो उसे 'स्वगतम्' इस शब्द से कहते है। जो बात किसी एक से छिपा कर दूसरे पात्र से मुंह फेरकर कहानी हो उसे 'अपवारितम्' कहते हैं। त्रिपताक कर से दूसरों को बचा कर कथा के बीच में ही जो आदमी आपस में ही कुछ बातचीत करने लगते हैं उसे 'जनान्तिकम्' कहते हैं। सब उँगलियाँ मिली और फैली हुई हों और अँगूठा कुञ्चित हो, ऐसे हाथ को 'पताक' कहते हैं। 'पताक' में यदि अनामिका टेढ़ी हो तो उसे 'त्रिपातक' कहते हैं।

किं ब्रवीषीति। दूसरे किसी पात्र के विना ही विना कही बात को ही सुना सा करके 'क्या कहते हो' इत्यादि बोल कर जो कोई पात्र कुछ कहता है, उसे 'आकाश-भाषित' कहते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



राजा स्वामीति देवेति भृत्यैर्भट्टेति चाधमैः ॥ ३३ ॥
राजर्षिभिर्वयस्येति तथा विदूषकेण च ।
राजन्नित्यृषिभिर्वाच्यः सोऽपत्यप्रत्ययेन च ॥ ३४ ॥
स्वेच्छया नामभिर्विप्रैर्विप्र आर्येति चेतरैः ।
वयस्येत्यथवा नाम्ना वाच्यो राज्ञा विदूषकः ॥ ३५ ॥
वाच्यौ नटी सूत्रधारावार्यनाम्ना परस्परम् ।
सूत्रधारं वदेद् भाव इति वै पारिपार्श्विकः ॥ ३६ ॥

---

प्रत्ययान्तः, साधिः-साधयतिः, प्रयुज्यते । यथा शाकुन्तले—पञ्चमाङ्के शार्ङ्गरवोक्तौ 'तिष्ठ, गच्छामो वयम्' इत्यर्थे 'तिष्ठ, साधयामो वयम्' इत्युक्तम् ।

नाट्यपात्राणां परस्परव्यवहारार्थान् शब्दानाह—राजेत्यादिना । राजा भृत्यैः—उत्तमसेवकैः, स्वामीति—स्वामिशब्देन, देवेति—देवशब्देन वा, अधमैः—नीचैर्भृत्यैः, भट्टेति—भट्टशब्देन, राजर्षिभिः—तथा विदूषकेण च 'वयस्येति'—वयस्यशब्देन, वाच्यः-संबोध्यः । किं च सः—स एव राजा, ऋषिभिः-राजन्निति—'राजन्' इति शब्देन, अपत्यप्रत्ययान्तेन—अपत्यप्रत्ययः 'तस्यापत्यम्' इत्यधिकारे पठितः अणिञादिः, तदन्तेन 'पौरव' 'दाशरथे' इत्यादिनेति भावः, वाच्यः । स्वेच्छयेति । विप्रः—ब्राह्मणः, विप्रैः—ब्राह्मणैः, स्वेच्छया—यथेच्छम्, अपत्यप्रत्ययान्तेन 'कौशिक' इत्यादिना, नामभिः—'विश्वामित्र' इत्यादिसंज्ञाभिर्वा, इतरैः—विप्रातिरिक्तैस्तु, आर्येति—आर्यशब्देन, संबोधनीय इति शेषः । विदूषकः—राज्ञो नर्मसचिवः, राज्ञा, वयस्येति—वयस्यशब्देन, अथवा नाम्ना वाच्यः ।

वाच्याविति । नटी सूत्रधारौ परस्परम् आर्यनाम्ना—यथायथम् आर्यशब्देन आर्याशब्देन च, वाच्यौ । सूत्रधारमिति । पारिपार्श्विकः सूत्रधारं भाव इति वदेत्—संबोधयेत् ।

---

है । प्रायेणेति । 'गम्' धातु के स्थान में प्रायः णिजन्त साध धातु ( साधय—साधयामि इत्यादि ) का प्रयोग होता है ।

राजेति । ( प्रधान श्रेणी के ) भृत्य-वर्ग राजा को 'स्वामी' या 'देव' शब्द से सम्बोधित करते हैं । और नीची श्रेणी के भृत्य 'भट्ट' कह कर उसे पुकारते हैं । इसी प्रकार राजर्षि और विदूषक उसे 'वयस्य' कह कर सम्बोधित करते हैं । ऋषि लोग राजा को 'राजन्' कह कर या अपत्यप्रत्ययान्त—( पौरव ! दाशरथे ! आदि ) शब्दों से पुकारें ।

स्वेच्छयेति । ब्राह्मणवर्ग आपस में चाहें तो अपत्यप्रत्ययान्त—कौशिक आदि शब्दों से या नाम लेकर ही व्यवहार करें । दूसरे लोग—क्षत्रियादि ब्राह्मण को 'आर्य' कह कर पुकारें ।

वयस्य इति । राजा विदूषक को 'वयस्य' इस शब्द से या नाम लेकर सम्बोधित करें । नटी और सूत्रधार आर्य और आर्या शब्द से एक दूसरे को सम्बोधित करें ।

सूत्रधारमिति । पारिपार्श्विक सूत्रधार को 'भाव' कहे । सूत्रधार पारिपार्श्विक को 'मारिष' कहे । नीची श्रेणी के लोग आपस में 'हण्डे' कहकर, उत्तम श्रेणी के लोग अपने समानकोटि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



सूत्रधारो मारिषेति हण्डे इत्यधमैः समाः।
वयस्येत्युत्तमैर्हंहो मध्यैरार्येति चाग्रजः ॥ ३७ ॥
भगवन्निति वक्तव्याः सर्वैर्देवर्षिलिङ्गिनः।
वदेद्राज्ञीं च चेटीं च भवतीति विदूषकः ॥ ३८ ॥
आयुष्मन् रथिनं सूतो वृद्धस्तातेति चेतरैः।
वत्स पुत्रक तातेति नाम्ना गोत्रेण वा सुतः ॥ ३९ ॥
शिष्योऽनुजश्च वक्तव्योऽमात्य आर्येति चाधमैः।
विप्रैरयममात्येति सचिवेति च भण्यते ॥ ४० ॥
उपाध्यायेति चाऽऽचार्यः कुमारो भर्तृदारक।
सौम्य-भद्रमुखेत्येवमधमैस्तु कुमारकः ॥ ४१ ॥

---

सूत्रधारः पारिपार्श्विकम्, मारिषेति–मारिषशब्देन, आह्वयेत्। अधमैः, समाः–स्वतुल्याः, अधमा एवेत्यर्थः। हण्डे इति हण्डे शब्देन, संबोधनीयाः। उत्तमैः समाः उत्तमा इत्यर्थः, वयस्येति–वयस्यशब्देन, संबोध्या। मध्यैः–मध्यमैः, समाः मध्यमा इति यावत्। हंहो–हंहो इति शब्देन संबोध्याः। अग्रजः–ज्येष्ठो भ्राता, आर्य इति शब्देन संबोध्यः।

भगवन्निति। देवर्षिलिङ्गिनः–देवाः, ऋषयः, लिङ्गिनः-संन्यासिप्रभृतयः, भगवन्निति 'भगवन्' इत्येवम्, वक्तव्याः–संबोध्याः। विदूषकः राज्ञीं चेटीं च, भवतीति–'भवति' इति वदेत्।

आयुष्मन्निति। सूतः–सारथिनः, रथिनम् आयुष्मन् इति, संबोधयेयुः। वृद्धः–प्रवयाः, इतरैः–युवभिर्बालकैश्च, तातेति–'तात' इत्येवम्, सुतः शिष्यः, अनुजश्च कनीयान् भ्राता च, वत्स, पुत्रक, तात, इति-इत्येवंप्रकारेण, नाम्ना, गोत्रेण वा, गोत्रप्रत्ययान्तेन वा शब्देन, वक्तव्यः–संबोध्यः। अमात्यः–सचिवः, अधमः, आर्येति–'आर्य' इत्येवं संबोध्यः, अयम्–अमात्य एव, विप्रैः, अमात्येति सचिवेति च–अमात्यसचिवशब्दाभ्याम्, भण्यते–संबोध्यते।

उपाध्यायेति। आचार्यस्य, उपाध्यायेति–'उपाध्याय' इत्येवम्, कुमारः–युवराजः, 'भर्तृदारक' इत्येवम्, संबोध्यः। कुमारकः–युवराजः, अधमैः, सौम्य, भद्रमुख, इत्येवम्,

---

के पुरुषों को 'वयस्य' कह कर और मध्यम श्रेणी के लोग परस्पर 'हंहो' कर सम्बोधन करें। बड़े भाई को ( सब लोग ) आर्य कह कर पुकारें।

भगवन्निति। सब लोग देवता, ऋषि और संन्यासी को 'भगवन्' इस प्रकार कहें। विदूषक रानी चेटी और ( दासी ) को 'भवती' शब्द से पुकारे। आयुष्मन्निति। सारथि रथी को 'आयुष्मन्' कहे। जवान और बालक-वृद्ध पुरुष को 'तात' कहें। पुत्र शिष्य और छोटे भाई को 'वत्स' 'पुत्रक' और 'तात' इन शब्दों से अथवा नाम लेकर या गोत्रप्रत्ययान्त शब्द से सम्बोधित करें। अधम श्रेणी के लोग अमात्य को 'आर्य' कहें। ब्राह्मण लोग इसे ( मन्त्रीको )

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



वाच्या प्रकृतिभी राज्ञः कुमारी भर्तृदारिक"। [ दर्पणः ]
"हण्डे हञ्जे हलाह्वानं नीचां चेटीं सखीं प्रति" ॥ ४२ ॥ [ अमरः ]

श्रव्यकाव्यस्य लक्षणं भेदांश्चाऽऽह—

"श्रव्यं श्रोतव्यमात्रं तत् त्रिविधं परिकीर्त्तितम्।
पद्यं गद्यञ्च मिश्रञ्च पद्यं चतुष्पदी मतम् ॥ ४३ ॥
जातिर्वृत्तमिति द्वेधा जातिर्मात्राकृतेन तत्।
वृत्तमक्षरसङ्ख्यातं पद्येनैकेन मुक्तकम्" ॥ ४४ ॥

---

संबोधनीयः । राज्ञः कुमारी, प्रकृतिभिः—अमात्यादिभिः, भर्तृदारिका—भर्तृदारिकाशब्देन, वाच्या। नीचाम्, चेटीम्—दासीम्, सखीम्—सहचरीम्, प्रति, क्रमशः हण्डे, हञ्जे, हला, इत्येवम्, आह्वानम्—संबोधनं कर्तव्यम्।

दृश्यश्रव्यभेदेन काव्यस्य द्वौ भेदौ पूर्वमुक्तौ। तत्र दृश्यलक्षणादिकं सर्वमुक्तम्। इदानीं श्रव्यस्य लक्षणादिकं प्राप्तावसरम्। श्रव्यमिति। श्रोतव्यमात्रम्—यत् केवलं श्रूयते, न तु रङ्गमञ्चेऽभिनीयते तत्, श्रव्यम्—श्रव्यकाव्यमित्युच्यते । तत्—श्रव्यकाव्यम्, पद्यम्, गद्यम्, मिश्रं च—इत्येवम्, त्रिविधम् परिकीर्तितम्। पद्यस्य लक्षणमाह पद्यमिति। चतुष्पदी—चतुश्चरणात्मकम्, काव्यम्, पद्यम्, मतम्—अभिमतम्। पद्यं विभजते जातिरिति। जातिः, वृत्तं-चेत्येवं पद्यं द्वेधा, विभज्यत इति शेषः। जातिं लक्षयति जातिरिति । मात्राकृतेन—मात्रा ह्रस्ववर्णोच्चारणकालः, तया मात्रागणनयेति भावः, कृतम्—कृतिः, रचना, ( भावे क्तः ) तेनोपलक्षितम्, मात्रागणनायुक्तमिति तात्पर्यम्, तत्—पद्यम्, जातिः—जातिशब्देनोच्यते। यत्र पद्ये मात्राणां व्यवस्था, तत् पद्यं जातिनाम्ना व्यवह्रियत इति भावः। वृत्तलक्षणं यथा—वृत्तमिति। अक्षरसंख्यातम्—अक्षरैः—मात्रागणनानिरपेक्षैः केवलं वर्णैः, संख्यातम् परिगणितम्। वर्णमात्रनियमयुक्तम्, पद्यम्, वृत्तम्—वृत्तमित्युच्यते। प्रकारान्तरेणापि श्रव्यकाव्यं विभजते यथा मुक्तकम्, युग्मकम्, विशेषकम्, कलापकम्, कुलकम्, महाकाव्यम्, खण्डकाव्यं चेति। तेषां क्रमशो

---

अमात्य या सचिव कहें। शिष्य आचार्य को उपाध्याय कहें। राजकुमार को 'भर्तृदारक' शब्द से सम्बोधित करना चाहिये। अधम लोग राजकुमार को 'सौम्य' 'भद्रमुख' इत्यादि शब्दों से पुकारें।

वाच्येति। राजा के नौकर-चाकर राजकुमारी को 'भर्तृदारिका' कहें। नीच स्त्रीपात्र को 'हण्डे' शब्द से, चेटी को 'हञ्जे' शब्द से और सखी को 'हला' शब्द से संबोधित करना चाहिये।

श्रव्य काव्य का लक्षण और भेद

श्रव्यमिति। जो केवल सुना जाय—जिसका अभिनय न हो सके—उसे श्रव्य काव्य कहते हैं। उसके तीन भेद हैं—पद्य, गद्य और मिश्र। जिसमें चार पाद हों अर्थात् जो छन्दोबद्ध हो उसे पद्य कहते हैं। पद्य के दो भेद हैं जाति और वृत्त। मात्रा-छन्द में निर्मित पद्य 'जाति' कहलाता है। वर्ण छन्द में निर्मित पद्य को 'वृत्त' कहते हैं। पद्यान्तरानपेक्ष एक पद्यात्मक काव्य को 'मुक्तक' कहते हैं। यदि दो श्लोकों में वाक्यपूर्ति हो तो उसे 'युग्मक' ( जोड़ा ) कहते हैं। तीन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri


"द्वाभ्यान्तु युग्मकं ज्ञेयं त्रिभिः श्लोकैर्विशेपकम् ।
कलापकं चतुर्भिः स्यात् तदूर्ध्वं कुलकं स्मृतम्" ॥ ४५ ॥

पद्यमयस्य महाकाव्यस्य लक्षणमुक्तं काव्यादर्शे—

"सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम् ।
आशीर्नमस्क्रिया वस्तु-निर्देशो वाऽपि तन्मुखम् ॥ ४ ॥
इतिहासकथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम् ।
चतुर्वर्गफलोपेतं चतुरोदात्तनायकम् ॥ ४७ ॥
नगरार्णवशैलर्तुचन्द्रसूर्य्याऽऽद्वि(दि)वर्णनैः ।

---

लक्षणानि यथा—पद्येनेति । एकेन—अन्यनिरपेक्षेण, पद्येन, मुक्तकमित्युच्यते । द्वाभ्यां पद्याभ्याम्, युग्मकं ज्ञेयम् । त्रिभिः, श्लोकैः—पद्यैः, विशेपकम् ज्ञेयम् । चतुर्भिः पद्यैः कलापकम् स्यात् । तदूर्ध्वम्—ततः चतुःसंख्यात ऊर्ध्वम्, पञ्चपडादिभिः पद्यसंख्याभिः कुलकम्, स्मृतम् ।

महाकाव्यलक्षणमाह—सर्गबन्ध इति । सर्गबन्धः—सर्गैः अवान्तरार्थवर्णनैः, उपलक्षितः, बन्धः पद्यबन्धः, महाकाव्यम्—इत्युच्यते, तस्य—महाकाव्यस्य, इतरदपि लक्षणम्—चिह्नम्, परिचायको धर्मः, उच्यते—वर्ण्यते, इति भावः । आशीः—मङ्गलाशंसनम्, नमस्क्रिया—देवतादि-प्रणामः, अपि वा, वस्तुनिर्देशः—वर्णनीयनायकस्य नाम्ना उल्लेखः, तन्मुखम्—तस्य महाकाव्यस्य मुखम्—आरम्भः, भवति । महाकाव्यादावाशीर्वादात्मकादित्रिविधमङ्गलेष्वन्यतमं मङ्गलं भवतीत्यर्थः । इतिहासकथोद्भूतम्—इतिहासकथाया इतिहासकथामाश्रित्येत्यर्थः उद्भूतम्, रचितमिति भावः । वा—अथवा, इतरत्—तद्भिन्नम्, ऐतिहासिकवृत्तमनाश्रित्य रचितमपि, सदाश्रयम्—सन् सज्जनः लोकप्रसिद्धः, आश्रयः प्रतिपाद्यतया अवलम्बो यस्य तादृशम् । तदुक्तं दर्पणे—

'इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद् वा सज्जनाश्रयम् ।' इति ।

चतुर्वर्गफलोपेतम्—चत्वारो वर्गा धर्मार्थकाममोक्षाः, तद्रूपं यत् फलम्, तेन उपेतं युक्तम् । चतुर्वर्गसाधनमिति भावः, तदुक्तं भामहेन—

धर्मार्थकाममोक्षेपु वैचक्षण्यं कलासु च । करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधुकाव्यनिषेवणम् ॥

चतुरोदात्तनायकम्—चतुरः कलासु कुशलः, उदात्तः उदात्तचरितः, नायको यस्य तादृशम् । नगरार्णवशैलर्तुचन्द्रसूर्यादिवर्णनैः—पुर-पयोधि-पर्वतपुष्पाकरादिसमय-चन्द्र-सूर्यादीनां

---

पद्यों का 'विशेपक' होता है । चार का 'कलापक' और उससे ऊपर-पांच अथवा अधिक का 'कुलक' होता है ।

### पद्यमय महाकाव्य का लक्षण

**सर्गबन्ध** इति । जिसमें अनेक सर्ग हों ऐसी रचना को महाकाव्य कहते हैं । इसके आरम्भ में आशीर्वाद, नमस्कार या वर्णनीय वस्तु का निर्देश होता है । इस में कथा ऐतिहासिक अथवा किसी श्रेष्ठ व्यक्ति के आधार पर कविकल्पित होती है । इसे चतुर्वर्ग ( धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ) रूप फल से युक्त होना चाहिये । इसका नायक चतुर और उदात्तप्रकृति होता है । इसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अलङ्कृतमसङ्क्षिप्तं रसभावनिरन्तरम् ॥ ४८ ॥
सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्रव्यवृत्तैः सुसन्धिभिः ।
सर्वत्र भिन्नवृत्तान्तैरुपेतं लोकरञ्जकम् ॥ ४९ ॥
काव्यं कल्पान्तरस्थायि जायते सदलङ्कृति"।

यथा—रामायण-रघुवंश-शिशुपालवध-नैषधचरिताऽऽदि ।

खण्डकाव्यलक्षणम्—

"खण्डकाव्यं भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारि च" ॥ ५० ॥

यथा—मेघदूतादि ।

---

वर्णनैः, **अलङ्कृतम्**—भूषितम्, **असंक्षिप्तम्**—विस्तृतम्, **रसभावनिरन्तरम्**—रसैः शृङ्गारादिभिः भावैः व्यज्यमानैः संचारिभिश्च, निरन्तरम्-निर्गतमन्तरमवकाशो यस्मात् तादृशम्, सर्वत्र रसभावैर्व्याप्तमिति भावः । **अनतिविस्तीर्णैः**, **श्रव्यवृत्तैः**—श्रव्याणि श्रवणमधुराणि वृत्तानि च्छन्दांसि यत्र तादृशैः, **सुसन्धिभिः**—शोभनाः यथायथं सन्निवेशिताः, संधयः—मुखादिसंधयो यत्र तादृशैः, **सर्वत्र, भिन्नवृत्तान्तैः**—भिन्ना नवनवाः, वृत्तान्ताः वर्णनीयविषयाः, येषु तादृशैः । अथवा भिन्नं वृत्तं छन्दो यत्र स भिन्नवृत्तः, भिन्नवृत्तः अन्तः अवसानं येषां तादृशैः, अवसाने वृत्तभेदयुक्तैरित्यर्थ इति व्याख्येयम् । उभयस्यापि महाकाव्ये सन्निवेद्यत्वात् तन्त्रेणोभयाभिप्रायगर्भमिदं विशेषणमिति वा । **सर्गैः**—सर्गाख्यपरिच्छेदैः **उपेतम्** । **लोकरञ्जकम्**—लोकाः सहृदयाः, तेषां रञ्जकम् आनन्दनम् । **सदलङ्कृति**—सत्यः निर्दोषाः, अलङ्कृतयोऽनुप्रासोपमादयः, यत्र तादृशम्, **काव्यम्, कल्पान्तरस्थायि**—कल्पान्तरेऽपि तिष्ठति, एकस्मिन् कल्पे तिष्ठतीति किमु वक्तव्यम् । **जायते**—सहृदयैः सदा नवनवास्वादहेतुतया चिरमास्वाद्यत इति भावः । एतल्लक्षणकमहाकाव्यं नामनिर्देशेनोदाहरति यथेति ।

खण्डकाव्यं लक्षयति **खण्डकाव्यमिति** । **काव्यस्य**—महाकाव्यस्य, **एकदेशानुसारि** एकदेशम् अनुसरति तादृशम् । यत्र महाकाव्यस्य सर्वाणि लक्षणानि न भवन्ति, अपि तु कश्चिदेकदेशः । यत्र सर्गा अपि अष्टतो न्यूना एव भवन्ति, तत् **खण्डकाव्यम्**, **भवेत्** । यथा मेघदूतादि ।

---

नगर, समुद्र, पर्वत, ऋतु, चन्द्र, सूर्य आदि के वर्णनों से अलङ्कृत करना चाहिये । इसे रस भाव आदि से परिपूर्ण होना चाहिये । सर्ग अधिक लम्बे नहीं होने चाहिये । छन्द कर्णसुखद, मधुर होने चाहियें । मुख, प्रतिमुख आदि सन्धियों का सन्निवेश अच्छी तरह होना चाहिये। सर्ग की समाप्ति में भिन्न छन्द होने चाहियें । इस प्रकार सुन्दर अलङ्कारों से सुसज्जित काव्य लोकरञ्जक कल्पान्तर तक स्थायी होता है ।

जैसे—रामायण, रघुवंश, शिशुपालवध, नैषधचरित आदि ।

खण्डकाव्य का लक्षण

**खण्डेति** । महाकाव्य के एकदेश का (कुछ लक्षणों का) अनुसरण करने वाला काव्य खण्डकाव्य कहलाता है । जैसे मेघदूत आदि ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri


गद्यलक्षणम्—

"वृत्तबन्धोज्झितं गद्यं तद्भेदास्तु कथाऽऽदयः"।

यथा—कादम्बर्यादि।

चम्पूलक्षणम्—

"गद्यपद्यमयं मिश्रं चम्पूरित्यभिधीयते" ॥ ५१ ॥

पद्यमिश्रत्वञ्चात्र बाहुल्येनेति ज्ञेयम्। ततश्च कादम्बर्यादिषु एकद्वित्रिपद्यसत्त्वेऽपि न तेषां गद्यकाव्यत्वहानिः।

इति दृश्यश्रव्यत्वभेदेन काव्यप्रभेदनं नाम चतुर्थशिखा।

---

आदिपदेन ऋतुसंहारादीनां ग्रहणं बोध्यम्। अत्रैव भेदे देव-द्विज-राजस्तुतिप्रवणानां महाकाव्यस्य यत्किञ्चिल्लक्षणाक्रान्तानामन्येषामपि काव्यानामन्तर्भावः।

गद्यलक्षणमाह—**वृत्तबन्धेति**। **वृत्तबन्धोज्झितम्**—वृत्तं छन्दो मात्रिकादि, तेन बन्धो रचना, तेन उज्झितं त्यक्तम्, छन्दोहीनं काव्यमित्यर्थः, **गद्यम्** इत्युच्यते। **तद्भेदास्तु**—तस्य गद्यकाव्यस्य, भेदास्तु कथादयः भवन्ति। आदिपदेन आख्यायिकादयो गृह्यन्ते। तत्र कादम्बर्यादि कथाया उदाहरणम्। श्रीहर्षचरितादि च आख्यायिकायाः। कथालक्षणं यथा—

'प्रबन्धकल्पनां स्तोकसत्यां प्राज्ञाः कथां विदुः' इति।

मिश्रकाव्यमाह—**गद्येति**। **गद्यपद्यमयम्**—गद्यं पद्यं चोभयं यत्र विद्यते, तादृशं काव्यम्, **मिश्रम्**—गद्यपद्यमिश्रत्वाद् मिश्रनाम्ना व्यवह्रियते, तदेव मिश्रं काव्यं **'चम्पूः'** इत्यपि **अभिधीयते**। यथा नलचम्पूः। कादम्बर्यादिषु क्वचित् पद्योपलब्धेरतिव्याप्तिं वारयितुमाह **पद्यमिश्रत्वं चेति**।

इति श्रीद्रोणाश्रमाभिजन-श्रीमदच्युतानन्दनन्दन-श्रीपरमेश्वरानन्दशर्मकृतायां बालबोधिन्यां काव्यदीपिकाव्याख्यायां काव्यप्रभेदननाम्नी चतुर्थशिखा समाप्ता।

---

गद्य का लक्षण

**वृत्त इति**। छन्दोरहित रचना को 'गद्य' कहते हैं। 'कथा' आदि गद्य काव्य के भेद हैं। जैसे कादम्बरी आदि।

मिश्र का लक्षण

**गद्यपद्य इति**। जिसमें गद्य पद्य दोनों हों उसे 'मिश्र' अथवा 'चम्पू' कहते हैं। **पद्यमिश्रत्वम्** इति। मिश्र काव्य में पद्यों का मिश्रण अधिक मात्रा में होता है ऐसा समझो। इसलिये कादम्बरी आदि में एक, दो, तीन पद्यों के रहने पर भी गद्य काव्यत्व की हानि नहीं होती—अर्थात् वे यत्र तत्र थोड़े से पद्यों के होने पर भी गद्य काव्य ही माने जाते हैं। मिश्र या चम्पू नहीं।

काव्यप्रभेदन नामक चतुर्थशिखा समाप्त।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

# पञ्चमशिखा

दोषस्वरूपं तद्भेदांश्चाऽऽह—

काव्यापकर्षका दोषास्ते पुनः पञ्चधा मताः।
पदपदांशवाक्यार्थरसानां दूषणेन हि ॥ १ ॥

## पञ्चमशिखा

'स्याद् वपुः सुन्दरनपि श्वित्रेणैकेन दुर्भगम्' इत्यभियुक्तोक्त्या रसवत्यपि सूक्तिः सुन्दरी श्वित्रादिभिरिव श्रुतिकटुत्वादिभिर्दोषैर्न सचेतसां मनो रमयति। तथा च काव्ये दोषा हेयाः। न च हेयानामपरिचये तद्धानसंभवः। अतो दोषपरिचयाय पञ्चमीं शिखामारभते। तत्र पूर्वं दोषाणां सामान्यलक्षणं तद्भेदांश्चाह काव्येति। काव्यापकर्षकाः—काव्यस्य रमणीयार्थप्रतिपादकशब्दकदम्बस्य, अपकर्षकाः चमत्कृतिप्रतिबन्धेन अपकर्षं जनयन्तः, धर्माः दोषाः—दूषकत्वाद् दोषशब्दाभिधेया इति भावः। ते दोषास्तु (पुनः शब्दस्त्वर्थे) पदपदांशवाक्यार्थरसानाम्—पदस्य, पदांशस्य प्रकृतिप्रत्ययादेः, वाक्यस्य, अर्थस्य, रसस्य च, दूषणेन—हेतुना, पञ्चधा—पददोषाः, पदांशदोषाः, वाक्यदोषाः, अर्थदोषाः, रसदोषा इत्येवंप्रकारेण पञ्चविधाः, मताः—दृष्टाः, आलङ्कारिकाणामिति शेषः। अयमत्राभिसन्धिः—अलौकिकश्चमत्कार एव काव्यस्य जीवातुः। तदभावे काव्यव्यवहाराभावात्। अलौकिकचमत्कारश्च रसाश्रितः, तं विना तदभावात्। तथा च ये साक्षाद् रसं दूषयन्ति ते रसदोषा उच्यन्ते। रसस्तु विभावाद्यर्थाश्रितः, तैरेव तस्याभिव्यञ्जनात्, तदभावे तदभावाच्च। तथा च ये दोषा विभावाद्यर्थान् दूषयन्तो रसं दूषयन्ति ते साक्षादर्थदूषकत्वाद् अर्थदोषा इत्युच्यन्ते। शब्दोपस्थाप्यैरेव विभावादिभिः चमत्कृतिजनकस्य रसस्याभिव्यञ्जनाद् विभावाद्यर्था अपि शब्दाश्रिताः, तथा च ये शब्ददूषणद्वारा विभावाद्यर्थान् दूषयन्तो रसं दूषयन्ति ते साक्षाच्छब्ददूषकत्वात् शब्ददोषा इत्युच्यन्ते। तथा चैवं मुख्यतया दोषास्त्रिविधाः, रसदोषाः, अर्थदोषाः, शब्ददोषाश्चेति। तत्र शब्दः वाक्य-पद-पदांशभेदेन त्रिधा भवतीति तद्गतो दोषोऽपि वाक्यदोष-पददोष-पदांशदोषभेदेन त्रिधा विभज्यते। इत्थं संकलनेन पञ्च दोषाः सिध्यन्ति। ननु अलौकिकश्चमत्कारो न केवलं रसाश्रितः, अपि त्वलङ्काराश्रितोऽपि। अतो नीरसेऽप्यलङ्कारयोगिनि काव्यव्यवहारः प्राचामर्वाचां च संगच्छते। अत एव दण्डिनापि काव्यलक्षणे 'रसव्यवच्छिन्न

## पञ्चमशिखा

### दोष का स्वरूप और उसके भेद

**काव्येति।** जो काव्य के अपकर्ष (हीनता) के हेतु हैं उन्हें दोष कहते हैं। वे पद, पदांश [प्रकृति और प्रत्यय], वाक्य, अर्थ और रस को दूषित करने के कारण पाँच प्रकार के होते हैं। अर्थात्—पददोष, पदांशदोष, वाक्यदोष, अर्थदोष और रसदोष।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri


ये खलुपदवाक्यरसाऽऽदिदूषणद्वारेण काव्यस्यापकर्षमुत्पादयन्ति ते नाम दोषनाम्ना कथ्यन्ते। ते पुनः पद-पदांश-वाक्यार्थ-रस-दूषणद्वारेण काव्यं दूषयन्तीति प्रथमतः पञ्चविधाः। तत्र—

पदमात्रगता दोषाः—

निरर्थकासमर्थत्वे च्युतसंस्कृतित्वञ्च पदगतान्येव।

निरर्थकत्वम्—अर्थहीनत्वम्। यथा—'च, वा, हा'ऽऽदीनि, वृत्तपूरणमात्रप्रयोजनानि रामायणाऽऽदिषु बाहुल्येन द्रष्टव्यानि।

---

पदावली' इत्युनुक्त्वा इष्टार्थव्यवच्छिन्नापदावलीत्युक्तम्। पूर्वोक्ता नीरसेऽलङ्कारयोगिन्यव्याप्तेः। ननु चैवमलङ्कारस्यापि काव्यजीवातुचमत्कृतिहेतुत्वे अलङ्कारदूषणेन चमत्कृतिं प्रतिबध्नतामलङ्कारदोषाणामपि दोषभेदेषु कुतो न गणना ? इति चेदुच्यते। अलङ्कारा नाम द्विविधाः, शब्दालङ्कारा अर्थालङ्काराश्चेति। तत्र शब्दालङ्कारदोषाणां शब्ददोषेष्वन्तर्भावः, अर्थालङ्कारदोषाणां चार्थेषु। अतो न तेषां पृथग् गणना।

नन्वेवमपि साक्षात् परम्परया वा रसमेव दूषयतां दोषत्वं व्यवतिष्ठते। तथा च 'रसापकर्षका दोषाः' इत्येवं वाच्यम्। न पुनः 'काव्यापकर्षकाः' इति। रसमात्रस्य काव्यत्वाभावात् इति चेन्मैवम्। शब्दार्थरससमष्टिरेव काव्यम्। तद्व्यतिरेकेण काव्यानुपलब्धेः। तथा च साक्षात्, शब्दार्थदूषणद्वारा वा रसं दूषयन्तो दोषाः काव्यमेव दूषयन्ति, नान्यत्। तथा च काव्यापकर्षका दोषा इति साधूक्तम्।

कारिकां व्याचष्टे ये खल्विति। अर्थः स्पष्टः। इदमत्र बोध्यं यत्रैकमेव पदं दुष्टं तत्र पददोषः, यत्र चानेकपदानि दुष्टानि तत्र वाक्यदोषः। सुप्तिङन्तसमुदायरूपं वाक्यं त्वत्र न विवक्षितम्। तत्र पूर्वं पदमात्रगतान् दोषानाह निरर्थकेति। निरर्थकासमर्थत्वे—निरर्थकत्वम् असमर्थत्वं चेत्यर्थः। द्वन्द्वात् त्वप्रत्ययः, अत उभाभ्यां सम्बन्धः। अर्थहीनत्वम्—अविवक्षितार्थकत्वम्, उदाहरति यथा च वा हेति। यद्यपि चादीनां समुच्चयाद्यर्थः प्रसिद्धः, तथापि यत्र ते समुच्चयाद्यर्थस्य अविवक्षयैव पादपूर्तिमात्रप्रयोजनेन प्रयुज्यन्ते, तत्र तेषां निरर्थकत्वमेव। यथा 'मुञ्च मानं हि मानिनि' इत्यत्र हिशब्दः केवलं वृत्तपिठरपूर्तिमात्रप्रयोजनः। न च तस्य 'हि हेताववधारणे' इति कोशोक्तार्थोऽत्र विवक्षितः। तथा चात्र हि पदस्य निरर्थकत्वम्। प्रयोजनानुसंधानव्यग्रता चात्र दूषकताबीजम्। तस्यां हि सत्यां रसास्वादो विहन्यते। असमर्थत्वं विवृणोति—

---

केवल पदगत दोष

तत्रेति। इनमें निरर्थकत्व, असमर्थत्व और च्युतसंस्कृतित्व ये दोष केवल पद में ही होते हैं—पदांश आदि में नहीं होते।

निरर्थकत्वमिति। जो शब्द अर्थहीन (निष्प्रयोजन) हो अर्थात् छन्दःपूर्ति के अतिरिक्त जिसका कोई दूसरा प्रयोजन न हो, वह शब्द निरर्थक-निरर्थकत्वदोषयुक्त माना जाता है। जैसे च, वा, ह आदि। ऐसे निरर्थक शब्द रामायण आदि में बहुधा मिल सकते हैं। जहां

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


**असमर्थत्वं**—तदर्थे पठितमपि तस्य अवाचकत्वम्। यथा—"कुञ्जं हन्ति कृशोदरी" इत्यत्र हन्तीति गमनार्थे पठितमपि न तत्र समर्थम्।

**च्युतसंस्कारत्वं**—व्याकरणलक्षणहीनत्वम्। यथा—

"गाण्डीवी कनकशिलानिभं भुजाभ्या-
माजघ्ने विषमविलोचनस्य वृक्षः"॥ [ किरातार्जुनीयम् ]

"आङो यमहनः" [ १।३।२८ पा० ] "स्वाङ्गकर्मकाच्च" [पा० १।३।२८ सू० वा०]

---

**असमर्थत्वमिति**। **तदर्थे**—तदर्थवाचकतयेत्यर्थः। **तस्य**—यदर्थे पठितस्तस्यार्थस्य। **अवाचकत्वम्**—अबोधकत्वम्। उदाहरति—**कुञ्जमिति**। **हन्ति**—गच्छति। **गमनार्थे पठितमपि** इत्यस्यादौ 'हन हिंसागत्योरित्येवम्' इति शेषः कल्पनीयः। **न तत्र समर्थम्**—गमनार्थं बोधयितुमक्षममिति भावः। अयं भावः लोकाश्रयो हि शब्दप्रयोगः। लोके खलु हनधातुः पदान्तरसहकारेणैव गमनार्थे प्रयुज्यते, न केवलः। यथा पद्धतिशब्दे 'हन' धातोर्गमनमर्थः पदान्तरसहकारेणैव। पदाभ्यां हन्यते गम्यत इत्यवयवार्थः। तथा च शास्त्रेण गमनार्थे पाठ्यमानस्यापि हन्तेर्लोकात् उपसंदानितस्यैव [ सोपपदस्य ] तदर्थवाचकत्वं निर्णीयते, न केवलस्य। यथा अध्ययनार्थे पठितस्य केवलस्यापि इङो लोकादधिपूर्वकस्यैव तदर्थवाचकत्वम्। तदेवं निरुक्तोदाहरणे पदान्तरसहकाराभावेन हन्ति-पदं गमनार्थेऽसमर्थमेव। अर्थानुपस्थितिरत्र दूषकताबीजम्।

**च्युतसंस्कारत्वमिति**। च्युतः स्खलितः, संस्कारः व्याकरणशास्त्रानुगमो यत्र तत्र, तस्य भावश्च्युतसंस्कारत्वम्। अन्वर्थेयं दोषसंज्ञा। तदेवाह **व्याकरणलक्षणहीनम्** इति, व्याकरणशास्त्रविरुद्धमिति भावः। उदाहरति **गाण्डीवीति**। **गाण्डीवी**—गाण्डीवाख्यधनुर्धारी, अर्जुनः, **भुजाभ्याम्**—बाहुभ्याम्, **कनकशिलानिभम्**—स्वर्णशिलोपमम्, **विषमविलोचनस्य**—महादेवस्य, **वक्षः**—वक्षःस्थलम्, **आजघ्ने**—ताडयामास। व्याकरणविरोधं दर्शयति **'आङो यमहनः'** इति। अयमर्थः—अत्र पद्यार्धे 'आजघ्ने' इति पदं व्याकरणशास्त्रविरुद्धत्वाच्च्युत संस्कृति। तथाहि 'अकर्म-

---

छन्द की पूर्ति करना ही इनका प्रयोजन है और कुछ नहीं। **असमर्थत्वमिति**। जो शब्द उस ( विवक्षित ) अर्थ में पढ़ा तो गया हो परन्तु प्रकृत में ( उपपद आदि के बिना ) उसका अवाचक हो-उस अर्थ को बताने में असमर्थ हो, वह शब्द असमर्थ-असमर्थत्वदोषयुक्त-कहलाता है। जैसे 'कुञ्जं हन्ति कृशोदरी' ( कृशोदरी कुञ्ज की ओर जा रही है )। यहां यद्यपि 'हन्ति'—यह शब्द 'हन हिंसागत्योः' ( हन धातु हिंसा और गति अर्थ का बोधक है ) इस धातुपाठ में 'गति' अर्थ में पढ़ा गया है, तथापि उस ( गति अर्थ ) को बताने में असमर्थ है। क्योंकि लोक-व्यवहार में 'पद्धति' इत्यादि सोपपद प्रयोगों में ही 'हन' धातु का 'गति' अर्थ लिया गया है, और जगह नहीं।

**च्युतसंस्कारत्वमिति**। जो शब्द व्याकरण के सूत्र से हीन-विरुद्ध हो, अर्थात् 'अशुद्ध' हो उसे च्युतसंस्कारत्वदोषयुक्त कहते हैं। जैसे—**गाण्डीवी** इति। 'अर्जुन ने स्वर्णशिला के समान महादेव जी के वक्षःस्थल को ( अपनी ) दोनों भुजाओं से ताड़ित किया'। 'आङो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


इत्यनुशासनबलादाङ्पूर्वस्य हनः स्वाङ्गकर्मकस्याकर्मकस्य चाऽऽत्मनेपदं नियमितम्, इह तु तदुल्लङ्घितमिति व्याकरणलक्षणहीनत्वात् च्युतसंस्कारत्वम्।

पदवाक्यगता दोषाः—

"दुःश्रवानुचितार्थत्वे ग्राम्यत्वं निहतार्थता।
क्लिष्टत्वमप्रतीतत्वं विरुद्धमतिकारिता॥ २॥
अविमृष्टविधेयांशभावः सन्दिग्धता तथा।
पदवाक्याऽऽश्रिता दोषाः पदांशेऽप्येषु केचन"॥ ३॥

दुःश्रवत्वं—परुषवर्णतया श्रुतिदुःखाऽऽवहत्वम्। पदगतं यथा—

---

कात्' इत्यनुवर्तमानो 'आङो यमहनः' इति सूत्रेण अकर्मकाद् आङ्पूर्वकाद् हन्तेरात्मनेपदं विधीयते। किं च 'स्वाङ्गकर्मकाच्च' इत्यनेन स्वाङ्गकर्मकादपि आहन्तेरात्मनेपदं विधीयते। अत्र तु आहन्तिर्नाकर्मकः वक्षसः कर्मणो विद्यमानत्वात्। नापि स्वाङ्गकर्मकः, वक्षसः कर्मणो विषमविलोचनसम्बन्धित्वेन प्रतिपादनात् स्वाङ्गत्वाभावात्। तस्य स्वाङ्गत्वाग्रहे तु 'गाण्डीवी बाहुभ्यां स्ववक्ष आजघ्ने' इत्येवं योजनायां विषमविलोचनस्येति षष्ठ्यन्तं पदमनन्वितमापद्येत। तथा चात्र आहन्तेः सकर्मकत्वात् स्वाङ्गकर्मकत्वाभावाच्च आत्मनेपदं सर्वथा व्याकरणविरुद्धम्। अतश्च्युतसंस्कृतिरत्र दोषः।

पदवाक्ययोः साधारणान् दोषानाह **दुःश्रवेति।** दुःश्रवानुचितार्थत्वेदुःश्रवत्वम्, अनुचितार्थत्वं चेत्यर्थः, इमे दुःश्रवत्वादिसंदिग्धतान्ता दोषाः, पदवाक्याश्रिताः—पदाश्रिता वाक्याश्रिताश्च। एषु—दुःश्रवत्वादिदोषेषु, केचन—दुःश्रवत्वनिहतार्थत्वादयः, पदांशेऽपि—पदैकदेशेऽपि संभवन्ति। एषां क्रमशो लक्षणोदाहरणानि वक्ष्यन्ते। **दुःश्रवत्वमिति।** दुःखेन श्रूयत इति दुःश्रवम्,

---

यमहनः' [ आङ्पूर्वक अकर्मक 'यम' और 'हन्' धातुओं से आत्मनेपद हो ] 'स्वाङ्गकर्मकाच्च' [ स्वाङ्ग जिसका कर्म हो ऐसे 'यम्' और 'हन्' से भी आत्मनेपद हो ] इन दोनों सूत्रों से स्वाङ्गकर्मक अथवा अकर्मक आङ्पूर्वक हन्-धातु से आत्मनेपद का विधान किया गया है। परन्तु यहां ( गाण्डीवी इत्यादि उपर्युक्त पद के 'आजघ्ने' इस प्रयोग में ) उस आत्मनेपद विधि का उल्लङ्घन किया गया है। क्योंकि यहां 'वक्षः' यह आजघ्ने का कर्म विद्यमान होने से हन-धातु अकर्मक नहीं है। जिस वक्षःस्थल को ताडित किया गया है वह अपना नहीं है, किन्तु 'विषमविलोचन' का है, इस लिये इसे स्वाङ्गकर्मक भी नहीं कह सकते। अतः व्याकरणसूत्रविरुद्ध होने से 'आजघ्ने' इस प्रयोग में च्युतसंस्कारत्वदोष है।

पद-वाक्यगतदोष—

**दुःश्रवेति।** दुःश्रवत्व, अनुचितार्थत्व, ग्राम्यत्व, निहतार्थत्व, क्लिष्टत्व, अप्रतीतत्व, विरुद्धमतिकारित्व, अविमृष्टविधेयांशत्व और संदिग्धत्व, ये दोष पद और वाक्य दोनों में होते हैं। इनमें से कुछ दोष दुःश्रवत्व आदि पदांश में भी होते हैं।

**दुःश्रवत्वमिति।** कठोरवर्णयुक्त होने के कारण जो पद या वाक्य-कानों को दुःखदायी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


"बन्धुभिः सादरं नेत्रैः पीयमानेव सा मुहुः।
सुताऽऽननेन्दुपूर्णाङ्का कार्त्तार्थ्यं लभतां कदा" ॥ ४ ॥

अत्र कार्त्तार्थ्यमिति श्रुतिकटु।

वाक्यगतं यथा—

"सोऽध्यैष्ट वेदांस्त्रिदशानयष्ट पितॄनताप्र्सीत् सममंस्त बन्धून्।
व्यजेष्ट षड्वर्गमरंस्त नीतौ समूलघातं न्यवधीदरींश्च" ॥ ५ ॥ [ भट्टि० ]

---

तस्य—भावो दुःश्रवत्वम्। तदेव विशदयति—**परुषेति**। **परुषवर्णतया**—परुषा अध ऊर्ध्वं वा रेफयोगिनष्टवर्गशकारादयश्च श्रुतिकटवो वर्णा यत्र, तस्य भावस्तत्ता, तया। **श्रुतिदुःखावहत्वम्**—श्रुत्योः कर्णयोः, दुःखमावहति यत् तादृशत्वम्। कर्णकटुवर्णयुक्तत्वमिति यावत्। तस्य पदगतस्योदाहरणं यथा **बन्धुभिरिति**। **बन्धुभिः**—संबन्धिवर्गैरिति भावः। **सादरम्**—आदरेण सह, **नेत्रैः**, **मुहुः**—भूयो भूयः, **पीयमानेव**—सोत्कण्ठमवलोक्यमानेव, **सा**, **सुताननेन्दुपूर्णाङ्का**—सुतस्य, आननेन्दुना—आननमेव इन्दुः, तेन मुखचन्द्रेण, पूर्णः अङ्कः क्रोडो यस्यास्तादृशी पुत्रजन्मवती सती, **कदा**—कस्मिन् समये, **कार्तार्थ्यम्**—कृतार्थाया भावः कार्तार्थ्यम्, पुत्रलाभेन सफलमनोरथत्वमिति भावः, **लभताम्**। अत्र कार्तार्थ्यमिति पदं कर्णकटुवर्णघटितत्वाद् दुःश्रवत्वदोषग्रस्तम् तदेवाहात्रेति। **श्रुतिकटु** दुःश्रवम्। अस्यैव वाक्यगतस्योदाहरणमाह—**सोऽध्यैष्टेति**। भट्टिकाव्यस्य दशरथवर्णनपरमिदं पद्यम्। **सः**—दशरथः **वेदान्**—ऋगादीन्, **अध्यैष्ट**—अधीतवान्, **त्रिदशान्**—देवान्, **अयष्ट**—यज्ञैरयाक्षीत्। **पितॄन्**—स्वपितृपितामहादीन्, **अताप्र्सीत्**—पिण्डपितृयज्ञेन तर्पितवान्। **बन्धून्**—सुहृदः सम्बन्धिवर्गांश्च, **सममंस्त**—दानमानादिभिः सम्मानितवान्। **षड्वर्गम्**—कामक्रोधादीनां षण्णामरीणां वर्गं समूहम्, **व्यजेष्ट**—विजितवान्। कामादिदोषरहित इति भावः। **नीतौ**—नीतिशास्त्रे, **अरंस्त**—रमणं कृतवान्, नीतिनिपुण आसीदिति भावः। किं च **अरीन्**, **समूलघातम्**—समूलं हत्वा ( णमुल् )। निःशेषतयेति भावः। **न्यवधीत्**—व्यनीनशत्। अत्र अध्यैष्टायष्टादीन्यनेकपदानि कर्णकटुवर्णयुक्तानि सन्ति, अतोऽयं वाक्यगतो दुःश्रवत्वदोषः।

---

हो—बुरा लगे, वह दुःश्रव—दुःश्रवत्वदोषयुक्त कहलाता है। दुःश्रवत्वदोष का पदगत उदाहरण जैसे **बन्धुभिरिति**। बन्धुवर्ग जिसे बार-बार आदरपूर्वक नेत्रों से मानों पान कर रहा है ऐसी वह पुत्रमुखरूपी चन्द्रमा से भरी हुई गोदवाली बनकर कब कृतार्थता प्राप्त करेगी। **अत्रेति**। यहां 'कातार्थ्यम्' यह पद श्रुतिकटु—दुःश्रव है। ( त्, थ्, र्, य, के संयोग से इस शब्द में कठोरता आई है )

वाक्यगत दुःश्रवत्व का उदाहरण जैसे **सोध्यैष्ट** इति। उस राजा दशरथ ने वेदों का अध्ययन किया, देवताओं का यजन किया—अर्थात् यज्ञ किये, पितरों को ( श्राद्ध आदि से ) तृप्त किया, बन्धुओं को ( दान-मान आदि द्वारा ) सम्मानित किया, काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-मात्सर्य इन छः शत्रुओं को विशेष रूप से जीता, नीति-शास्त्र में रमण किया, अर्थात् नीति के अनुसार राजकार्य संभाला। और ( अपने ) शत्रुओं का समूल नाश कर दिया। यहां 'अध्यैष्ट' 'अयष्ट'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri


पदांशेऽप्येतत्, यथा—
"तद्गच्छ सिद्ध्यै कुरु देवकार्य्यम्" इत्यत्र "द्ध्यै" इति पदांशं दुष्टमाहुः।

---

पदांशगतस्य दुःश्रवत्वस्योदाहरणं यथा—तद् गच्छेति। कुमारसंभवे तृतीयसर्गे कामं प्रति इन्द्रस्योक्तिरियम्। हे काम! तत्—तस्मात् कारणात्, त्वम्, सिद्ध्यै—शिव-पार्वतीसमागमरूप-कार्यस्य सिद्ध्यै, गच्छ, देवकार्यम्—देवानाम्, न मम केवलस्येति भावः, कार्यं प्रयोजनम्, कुरु—साधय। अवशिष्टस्तु पद्यांश इत्थं विज्ञेयः—

अर्थोऽयमर्थान्तरलभ्य एव। अपेक्षते प्रत्ययमङ्गलब्ध्यै बीजाङ्कुरः प्रागुदयादिवाम्भः।

अत्र 'द्ध्यै' इति पदांशः परुषाक्षरतया दुःश्रवत्वाक्रान्तः।

अत्र सर्वत्र श्रोतुरुद्वेग एव दूषकताबीजम्। यत्र तु क्रोधिनि वक्तरि रौद्रादौ रसे वा न श्रोतुरुद्वेगः, प्रत्युत क्रोधादेः परिपोषः, तत्र दुःश्रवत्वं न दोषः, प्रत्युत गुणः। तदुक्तम्—

वक्तरि क्रोधसंयुक्ते तथा वाच्ये समुद्धते। रौद्रादौ तु रसेऽत्यन्तं दुःश्रवत्वं गुणो भवेत्॥

क्रोधसंयुक्ते वक्तरि दुःश्रववर्णानां गुणत्वं यथा—

रक्ताशोक! कृशोदरी क्व नु गता त्यक्त्वाऽनुरक्तं जनं
नो दृष्टेति मुधैव वा लपसि किं वातावधूतं शिरः।
उत्कण्ठा घटमानषट्पदघटासंघट्टदष्टच्छद-
स्तत्पादाहतिमन्तरेण भवतः पुष्पोद्गमोऽयं कुतः॥

विक्रमोर्वशीये चतुर्थाङ्के पुरूरवस उक्तिरियम्। अत्रोत्तरार्धे मिथ्याशिरोधूननप्रतिपादित-दर्शनापलापेन कुपितस्य पुरूरवसो वचसि विकटवर्णताया गुणत्वमेव। क्रोधप्रकर्षकत्वात्। समुद्धते वाच्ये यथा—

मातङ्गाः! किमु वल्गितैः, किमफलैराडम्बरैर्जम्बुका!
सारङ्गा! महिषा! मदं व्रजत किं शून्येषु शूरा न के।
कोपाटोपसमुद्भटोत्कटसटाकोटेरिभारेः पुरः;
सिंधुध्वानिनि हुंकृते स्फुरति यत् तद् गर्जितं गर्जितम्॥

अत्रोत्तरार्धे समुद्धते सिंहे वाच्ये परुषवर्णानां न दोषत्वम्। रौद्ररसे यथा—

नवोच्छलितयौवनस्फुटदखर्वगर्वज्वरे, मदीयगुरुकार्मुकं गलितसाध्वसं वृश्चति।
अयं पततु निर्दयं दलितदृप्तभूभृद्गलस्खलद्रुधिरघस्मरो मम परश्वधो भैरवः॥

एषा खलु शिवपिनाकभङ्गध्वनिभग्नसमाधेः परशुरामस्योक्तिः। अत्र गुरुकार्मुकभञ्जका-लम्बनकः, धनुर्भङ्गोद्दीपितः, परुषोक्त्यनुभावितः, गर्वोग्रत्वादिभिः संचारितः स्थायी क्रोधो रस-

---

आदि अनेक पद कठोर (ष्ट आदि संयुक्त) वर्णों के कारण दुःश्रव हैं, इसलिये यहां वाक्यगत दुःश्रवत्व दोष है। (जहां केवल एक पद दुष्ट हो वहां पदगत दोष होता है। और जहां दो या उससे अधिक पद दुष्ट होते हैं वहां वाक्यगत)। पदांशे इति। यह दुःश्रवत्व दोष पदांश में भी होता है, जैसे तद्गच्छ इत्यादि। इसलिये हे कामदेव! तुम सिद्धि के लिये जाओ और देवताओं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अनुचितार्थत्वं पदगतं यथा—

"तपस्विभिर्या सुचिरेण लभ्यते प्रयत्नतः सत्रिभिरिष्यते च या ।
प्रयान्ति तामाशु गतिं यशस्विनो रणाश्वमेधे पशुतामुपागताः" ॥ ६ ॥

अत्र पशुपदं कातर्यम् अभिव्यनक्तीत्यनुचितार्थम् । वाक्यगतन्तूह्यम् ।

---

पदवीमधिरोहति । अत एव दुःश्रवत्वमत्र गुणः । रसपरिपोषकत्वात् ।

**अनुचितार्थत्वमिति** । अनुचितः—विवक्षितार्थतिरस्कारकः, अर्थः यस्य, तस्य भावः अनुचितार्थत्वम् । तस्य पदगतस्योदाहरणं यथा—**तपस्विभिरिति** । **या**, **गतिः**, **तपस्विभिः**, अपि **सुचिरेण**—अतिदीर्घकालेन, **लभ्यते** । **या च सत्रिभिः**—यज्ञानुष्ठातृभिर्जनैः, **प्रयत्नतः**—प्रकृष्टैर्यत्नैः, **इष्यते**—वाञ्छ्यते, न तु प्राप्यतेऽपि । **ताम्** , **गतिम्**—अर्चिर्मार्गम् , **रणाश्वमेधे**—रण एवाश्वमेधस्तन्नामको यज्ञः तत्र **पशुताम्**—वध्यतामिति यावत् , **उपागताः**—प्राप्ताः, अत एव **यशस्विनः**, **आशु**—अचिरम् अप्रयत्नं च, **प्रयान्ति**—प्राप्नुवन्ति । रणमुखे हता अर्चिर्मार्गेण गताः क्रममुक्तिं भजन्त इति भावः । तदुक्तं महाभारत उद्योगपर्वणि विदुरनीतौ—

द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र ! सूर्यमण्डलभेदिनौ ।
परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः ॥ इति ।

अत्र रणमृतानां शौर्यं कवेः प्रशंसनीयतया विवक्षितम् । परमिह पशुपदं रणे उपहारपशुमारं मृतानां तेषां कातर्यमभिव्यञ्जयद् विवक्षितार्थं शौर्यं तिरस्करोति । अतोऽनुचितार्थम् । **वाक्यगतमिति** । वाक्यगतस्य अनुचितार्थत्वस्योदाहरणम् , ऊह्यम्—क्वचित् काव्ये स्वयमन्वेष्टव्यम् । काव्यप्रकाशे तदुदाहरणं यथा—

कुविन्दस्त्वं तावत् पटयसि गुणग्राममभितो
यशो गायन्त्येते दिशि दिशि च नग्नास्तव विभो ! ।
शरज्ज्योत्स्नागौरस्फुटविकटसर्वाङ्गसुभगा
तथापि त्वत्कीर्तिर्भ्रमति विगताच्छादनमिह ॥

राजानं प्रति कवेरुक्तिरियम् । कुविन्दशब्दः कुं पृथ्वीं विन्दत इति योगवशाद् भूपतिम-

---

का कार्य करो । यहां 'सिद्धयै' इस पद में 'द्धयै' इतने अंश को ही दुष्ट कहते हैं, सारे पद को नहीं ।

**अनुचितार्थत्वमिति** । [ जिस शब्द का अर्थ विवक्षित अर्थ के अपकर्ष का हेतु हो, उसे अनुचितार्थ—अनुचितार्थत्व-दोष से युक्त कहते हैं । ] अनुचितार्थत्व दोष का पदगत उदाहरण जैसे—**तपस्विभिः** इति । जो ( गति ) तपस्वियों को बड़े विलम्ब से प्राप्त होती है, जिसे यज्ञ करने वाले बड़े यत्न से ( प्राप्त करना ) चाहते हैं; उस गति को संग्रामरूपी अश्वमेधयज्ञ में बलि के पशु की तरह भेंट चढ़े हुए यशस्वी पुरुष शीघ्र प्राप्त कर लेते हैं ।

यहाँ 'पशु' पद कातर्य ( कायरता ) का द्योतक होने से 'अनुचितार्थ' है ।

**वाक्य** इति । वाक्यगत 'अनुचितार्थत्व' का उदाहरण ( स्वयं ) ढूँढ़ लो ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


ग्राम्यत्वं—केवलं लोके एव स्थितत्वम् ।

पदगतं यथा—

"किं रुषा शोणितस्पर्द्धी गल्लस्ते स्पन्दते भृशम्" ।

वाक्यगतं यथा—

"ताम्बूलभृतगल्लोऽयं भल्लं जल्पति मानुषः ।
करोति खादनं पानं सदैव तु यथा तथा" ॥ ७ ॥

प्रथमे गल्लशब्दः, द्वितीये भल्लादयश्च शब्दाः ग्राम्याः ।

---

भिधत्ते, रूढ्या तु तन्तुवायार्थकः । अत्र प्रकरणवशात् कुविन्दादिपदानां राज्ञि तदन्वययोग्ये चार्थे शक्तेर्नियमनाद् अप्राकरणिकस्तन्तुवायो राज्ञि तत्सादृश्यं च व्यञ्जनया बोध्यते । तथा च तन्तुवायसादृश्यप्रतीत्या विवक्षितार्थस्य राज्ञस्तिरस्कारादनुचितार्थत्वमत्र दोषः । कुविन्द पट्यसीत्याद्यनेकपदगतदोषत्वाद् वाक्यदोषत्वमस्य बोध्यम् । विवक्षिततिरस्कारकार्थोपस्थितिरत्र दूषकताबीजमिति भावः । ग्राम्यत्वमिति । ग्रामे भवं ग्राम्यम्, तस्य भावो ग्राम्यत्वम् । अविदग्धजनमात्रप्रसिद्धत्वम् । तदेवाह केवलेति । केवललोके एव—अविदग्धजनव्यवहारे एव, न तु विदग्धजनव्यवहारेऽपि । पदगतं ग्राम्यत्वम् उदाहरति—किमिति । रुषा—क्रोधेन, शोणितस्पर्धी—शोणितेन स्पर्धत इति तादृशः, रक्तवद् आरक्त इति भावः, ते—तव, गल्लः—कपोलः, किम्—केन हेतुना, भृशम्—अत्यर्थम्, स्पन्दते—स्फुरति । अत्र गल्लपदमविदग्धमात्रप्रयोज्यत्वाद् ग्राम्यत्वाक्रान्तम् । एकपदस्थत्वात् पददोषोऽयम् । वाक्यगतं तदुदाहरति ताम्बूलेति । ताम्बूलभृतगल्लः—ताम्बूलेन ताम्बूलवीटिकया, भृतः पूर्णः गल्लः कपोलः, यस्य तादृशः, अयम्, मनुष्यः, भल्लम्—साधु, जल्पति—भाषते । किं तु खादनम्—भोजनम्, पानम्, सदैव, यथा तथा—येन केनापि प्रकारेण स्थानाद्यविचार्यैव, करोति । अत्र गल्ल-भल्लादयोऽनेके शब्दा ग्राम्याः । अतो वाक्यदोषः । ग्राम्यशब्दप्रयोगाद् वक्तुरवैदग्ध्योन्नयनेन तद्वचसि श्रोतुर्विमुखीभावोऽत्र दूषकताबीजम् । ग्राम्ये तु वक्तरि नायं दोषः, तस्य तथैवोचितत्वात्, प्रत्युत हास्यरसपोषकत्वाद् गुणः—यथा अभिज्ञानशाकुन्तले—

एत्ति के दाव एदस्सागमे [ एतावांस्तावदेतस्यागमः ] अध मां मालेध कुट्टेध [ अथ मां मारयत कुट्टयत ] अत्र 'मालेध कुट्टेध' इति ग्राम्ये पदे अधमोक्तिषु' इति । 'गुण इति शेषः ।

---

ग्राम्यत्वमिति । जो शब्द केवल लोक में ही स्थित हो—अर्थात् अविदग्ध पुरुष ही जिसे व्यवहार में लाते हों, वह शब्द ग्राम्य-ग्राम्यत्वदोषयुक्त-कहलाता है । ग्राम्यत्वदोष का पदगत उदाहरण जैसे—किं रुषा इति । क्रोध के कारण रुधिर के सदृश लाल तेरे गाल क्यों अत्यधिक स्पन्दित हो रहे हैं ?

वाक्यगत ग्राम्यत्व का उदाहरण जैसे—ताम्बूल इति । गाल में पान ठूँसे हुए यह मनुष्य खूब बोलता है और सदा जैसे तैसे ( यथेच्छ ) खान पान करता है ।

पहले पद्य में 'गल्ल' शब्द दूसरे में 'भल्ल' आदि शब्द ग्राम्य' हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri



निहतार्थत्वम् उभयार्थकस्य शब्दस्य अप्रसिद्धेऽर्थे प्रयोगः। यथा—"यमुना-शम्बरमम्बरं व्यतानीत्"।

शम्बरशब्दो दैत्यविशेषे प्रसिद्धः, इह तु जले निहतार्थः।

क्लिष्टत्वम्—अर्थप्रतीतेर्व्यवहितम्। पदगतं यथा—

"क्षीरोदजावसतिजन्मभुवः प्रसन्नाः"।

---

**निहतार्थत्वम्** इति। निहतः प्रसिद्धेनाविवक्षितेन अर्थेन अप्रसिद्धतया व्यवहितो विवक्षितोऽर्थो यस्य तत्, तस्य भावो निहतार्थत्वम्। तदेव विशदयति—**यदुभयेति**। **उभयार्थकस्य**—उभौ प्रसिद्धाप्रसिद्धौ अर्थौ यस्य तस्य। यस्य पदस्य द्वावर्थौ, तयोरेकोऽर्थः प्रसिद्धः, अपरोऽप्रसिद्धः। तत्र प्रसिद्धार्थे तत्प्रयोगं विहाय यद्यप्रसिद्धेऽर्थे प्रयोगः क्रियते, तदा तत् पदं निहतार्थं निहतार्थत्वदोषग्रस्तं स्यादिति भावः। उदाहरति **यमुनेति**। **यमुनाशम्बरम्**—यमुनायाः शम्बरं जलम्, **अम्बरम्**—आकाशम्, **व्यतानीत्**—वितस्तार। "शम्बरं सलिले पुंसि मृगदैत्यविशेषयोः" इति मेदिनीकोशेन यद्यपि शम्बरशब्दो जलदैत्ययोरुभयोरपि वाचकस्तथापि स दैत्य एव प्रसिद्धः, अत्र तु तस्याप्रसिद्धेऽर्थे जले प्रयोगः। अतो निहतार्थत्वमत्र दोषः। प्रसिद्धस्यैव द्रागुपस्थित्या विवक्षितस्य विलम्बेनोपस्थानमेवात्र दूषकताबीजम्। श्लेषयमकादावस्यादोषत्वम्। एतत् पदगतस्योदाहरणम्। वाक्यगतस्य निहतार्थत्वस्योदाहरणं यथा प्रकाशे—

सायकसहायबाहोर्मकरध्वजनियमितक्षमाधिपतेः।
अब्जरुचिभास्वरस्ते भातितरामवनिप! श्लोकः॥

अत्र सायकादयः शब्दाः शरार्थे प्रसिद्धाः, खड्गादिषु निहतार्थाः।

**क्लिष्टत्वम्** इति। अर्थप्रतीतौ क्लेशवत्त्वमेव क्लिष्टत्वम्। तदेव विवृणोति **अर्थप्रतीतेरिति**। **व्यवहितत्वम्**—विलम्बितत्वम्। विलम्बश्च सामान्यशक्तात् पदात् प्रकरणाद्यभावे विवक्षितविशेषस्य द्रागनुपस्थितेः, आसक्तेरभावाद् वा। आद्ये पददोषः, द्वितीये तु वाक्यदोषः। तत्र पदगतस्योदाहरणं

---

**निहतार्थत्वमिति**। प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध दोनों अर्थों के वाचक शब्द का अप्रसिद्ध अर्थ में प्रयोग करने से निहतार्थत्व दोष होता है। जैसे **यमुना** इति। यमुना के जल ने आकाश को व्याप्त कर लिया।

**शम्बर** इति। शम्बर शब्द शम्बरनामक किसी विशेष दैत्य में ही प्रसिद्ध है, किन्तु यहाँ 'जल' रूप अप्रसिद्ध अर्थ में प्रयुक्त होने के कारण 'निहतार्थ' हो गया है। [ तात्पर्य यह है—यद्यपि शम्बर शब्द के दैत्यविशेष और जल दोनों ही अर्थ हैं, परन्तु काव्यों में उसका प्रयोग शम्बरनामक असुर के लिये ही होता है। जल के लिये यह शब्द अप्रसिद्ध है। यहाँ अप्रसिद्ध जलरूप अर्थ में इसका प्रयोग किया गया है, इसलिये निहतार्थत्व दोष है। ]

**क्लिष्टत्वमिति**। अभिधेय अर्थ की प्रतीति में व्यवधान ( रुकावट ) का होना क्लिष्टत्व दोष कहलाता है।

क्लिष्टत्व का पदगत उदाहरण जैसे **क्षीरोदेति**। जल निर्मल है। यहाँ 'क्षीरोदजा'—क्षीर-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri


अत्र क्षीरोदजा—लक्ष्मीः, तस्या वसतिः—पद्मं, तस्य जन्मभुवः—जलानि, इत्यतिकष्टेन बोधः।

वाक्यगतं यथा—

"धम्मिल्लस्य न कस्य प्रेक्ष्य निकामं कुरङ्गशावाक्ष्याः।
रजत्यपूर्वबन्धव्युत्पत्तेर्मानसं शोभाम् ?" ॥ ८ ॥

अत्र धम्मिल्लस्य—केशबन्धस्य; शोभां प्रेक्ष्य कस्य मानसं न रज्यतीति सम्बन्धः क्लिष्टः।

अप्रतीतत्वम्—एकदेशशास्त्रान्तरमात्रप्रसिद्धत्वम्। यथा—

"योगेन दलिताऽऽशयः"।

---

यथा क्षीरोदजेति। क्षीरोदजा–क्षीरसागरादुत्पन्ना। प्रसन्नाः–निर्मलाः। जलानि निर्मलानीति समस्तार्थः। अत्र जलार्थप्रतीतौ क्षीरोदेत्यादि पदं क्लिष्टम्। वाक्यगतमुदाहरति धम्मिल्लस्येति। अपूर्वबन्धव्युत्पत्तेः–अपूर्वा अद्भुता, बन्धे केशरचनायाम्, व्युत्पत्तिर्नैपुण्यं यस्यास्तादृश्याः, [ अथवा धम्मिल्लस्य विशेषणमिदम्। अपूर्वा बन्धस्य केशसंयमनस्य, व्युत्पत्तिः सौष्ठवं यत्र तस्य ] कुरङ्गशावाक्ष्याः–मृगलोचनायाः, धम्मिल्लस्य–संयतकेशकलापस्य [ धम्मिल्लः संयताः कचाः–इत्यमरः ] शोभाम्, प्रेक्ष्य, कस्य–पुरुषस्य, मानसम्, निकामम्–अतिशयेन, न रज्यति–नानुरक्तं भवति ? सर्वस्यापि भवतीति भावः। अत्र पदानामासत्त्यभावेन क्लिष्टत्वमित्याहात्रेति। अप्रतीतत्वमिति। न प्रतीतमप्रतीतम्, नञोऽल्पार्थतया अल्पप्रसिद्धम्, केवले शास्त्रे एकस्मिन् देशे वा प्रसिद्धम्, नान्यत्रेति भावः। तस्य भावोऽप्रतीतत्वम्। तदेव विशदयति—एकदेशेति। उदाहरति योगेनेति। योगेन–चित्तवृत्तिनिरोधो योगः, तेन दलिताशयः–दलितः विनाशितः आशयः

---

सागर से उत्पन्न होने वाली लक्ष्मी, उसकी 'वसति'–निवास स्थान, अर्थात् कमल, उसकी ( कमल की ) जन्मभूमि ( जन्मभुवः ) जल। इस प्रकार अतिकष्ट से अर्थबोध होता है।

क्लिष्टत्व का वाक्यगत उदाहरण जैसे धम्मिल्लस्य इति। जिसमें गूंथने की कला अद्भुत है, उस धम्मिल्ल ( बँधी हुई चोटी या जूड़े ) की शोभा देख कर किसका मन अनुरक्त नहीं होता ?

[ जिन पदों का परस्पर सम्बन्ध होता है, उन्हें पास पास ही रखना चाहिये, ऐसा करने से ही अर्थप्रतीति सुगम और शीघ्र होती है, यदि वे एक दूसरे से दूर २ पड़े हुए हों तो उनका अन्वय ( सम्बन्ध ) करने में क्लेश होता है, जिसके कारण अर्थप्रतीति में विलम्ब होने से काव्य-रसास्वाद में विघ्न पड़ जाता है। ] अत्र इति। इस पद्य में भी अन्वय क्लेश से ही करना पड़ता है। 'धम्मिल्लस्य' सब के पहले है, परन्तु उसका अन्वय सबसे पीछे पड़े हुए 'शोभाम्' पद के साथ है। इसी तरह 'शोभाम्' का 'प्रेक्ष्य' के साथ, 'मानसम्' का 'न' के साथ, 'न' का 'रज्यति' के साथ दूरान्वय है। इसलिये यहां क्लिष्टत्व दोष है।

अप्रतीतत्वम् इति। जो शब्द किसी विशेष देश या शास्त्र में ही प्रसिद्ध हो उसके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


अत्र आशयशब्दो वासनाऽर्थो योगशास्त्रे एव प्रसिद्धः।

विरुद्धमतिकारिता यथा—

"उदारचरितो धीमान् सर्वलोकप्रियङ्करः।
अकार्य्यमित्रमेकोऽसौ तस्य किं वर्णयामहे?" ॥ ९ ॥

अत्र कार्यं विना मित्रमिति विवक्षितम्, अकार्य्येषु मित्रमिति विरुद्धा प्रतीतिः।

---

मिथ्याज्ञानजन्या वासना यस्य तादृशः। अत्राशयशब्दो वासनार्थो योगशास्त्र एव प्रसिद्धः। इदं पदगतस्योदाहरणम्। वाक्यगतस्य यथा प्रकाशे—'तस्याधिमात्रोपायस्य तीव्रसंवेगताजुपः। दृढभूमिः प्रियप्राप्तौ यत्नः स फलितः सखे!॥' अत्र अधिमात्रोपायादयः शब्दा योगशास्त्रमात्रप्रसिद्धाः। अत्र तच्छास्त्रानभिज्ञस्य तद्देशशब्दव्यवहारानभिज्ञस्य वाऽर्थानुपस्थितिर्दूषकताबीजम्। यत्र तु वक्तृश्रोतारौ तच्छास्त्रतद्देशसंकेताभिज्ञौ, तत्र नायं दोषः, अर्थानुपस्थितेरभावात्। तदुक्तमन्यत्र—'गुणः स्यादप्रतीतत्वं ज्ञत्वं चेद् वक्तृवाच्ययोः'। उदाहरणं यथा—

त्वामामनन्ति प्रकृतिं पुरुषार्थप्रवर्तिनीम्। तद्दर्शिनमुदासीनं त्वामेव पुरुषं विदुः॥

अत्र यद्यपि प्रधानार्थः प्रकृतिशब्दः चितिशक्तिपरः, पुरुषशब्दः सांख्यशास्त्रादावेव प्रसिद्धः, तथाप्यत्र वक्तृवाच्ययोस्तज्ज्ञत्वान्न दोषः, प्रत्युत गुणः। विरुद्धमतिकारितेति। विरुद्धां प्रतिकूलां प्रकृतार्थतिरस्कारिकाम्, मतिं धियम्, करोत्युत्पादयतीति विरुद्धमतिकारि, तस्य भावस्तत्ता। प्रकृतार्थतिरस्कारकप्रतीतिजनकत्वं विरुद्धमतिकारित्वमिति भावः। अत्र पदान्तरसहकारेणेत्यपि लक्षणे प्रवेश्यम्। अन्यथा अनुचितार्थत्वेऽतिव्याप्तिः स्यात्।

उदाहरति—**उदारचरित** इति। **उदारचरितः**—उदारं महत्, उत्कृष्टमिति भावः, चरितं यस्य तादृशः, **धीमान्**—प्रशस्तधीः, **सर्वलोकप्रियङ्करः**—सर्वेषां स्वपरविवेकवर्जितमिति भावः, लोकानाम्, प्रियं हितं करोतीति तादृशः, **असौ एकः**—केवलः, **अकार्यमित्रम्**—अकार्यं कार्यं विनैव, निष्कारणमिति भावः, मित्रम्, अस्ति। **तस्य किं वर्णयामहे**—वर्णनातीतगुणः स इति भावः।

अत्र अकार्यमित्रमिति पदेन निष्प्रयोजनसौहार्दप्रतिपादनद्वारा वर्णनीयस्य स्तुतिर्विवक्षिता। परमिह अकार्येषु-कुकार्येषु मित्रमिति व्युत्पत्त्या तत्तिरस्कारः प्रतीयते। अतो विरुद्धमतिकारित्वमत्र पददोषः। विवक्षितार्थतिरस्कारकार्थोपस्थितिरत्र दूषकताबीजम्। अविमृष्टविधेयांशभावमाह—

---

प्रयोग में अप्रतीतत्व दोष होता है। जैसे **योगेन** इति। समाधि के बल से जिसने वासनाओं को नष्ट कर दिया है—वही मोक्ष का अधिकारी है। **अत्र** इति। 'आशय' शब्द 'वासना' के अर्थ में योगशास्त्र में ही प्रसिद्ध है, अन्यत्र नहीं।

**विरुद्धमतिकारिता** इति। जिससे विरुद्ध बुद्धि पैदा हो उसे 'विरुद्धमतिकारी' कहते हैं। ऐसे शब्द के प्रयोग में 'विरुद्धमतिकारिता' दोष होता है।

जैसे **उदार** इति। एक वही उदारचरित है, बुद्धिमान् है, सब लोगों की भलाई करने वाला है, निःस्वार्थमित्र (अकार्यमित्र) है। उसका क्या वर्णन करें? **अत्र** इति। यहाँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


अविमृष्टः—प्राधान्येनानिर्दिष्टः, विधेयांशो यत्र, तस्य भावः अविमृष्टविधेयांशभावः; अयं विधेयाविमर्श इति च कथ्यते। यथा—

"वपुर्विरूपाक्षमलक्ष्यजन्मता दिगम्बरत्वेन निवेदितं वसु।
वरेषु यद् बालमृगाक्षि! मृग्यते तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने" ॥ १० ॥

[ कुमारसं० ]

अत्र अलक्ष्यं विधेयं, तस्य च समासे गुणीभावादप्राधान्येन निर्देशः। यथा वा—

---

अविमृष्ट इति। विधेयाविमर्शः–विधेयस्य, अविमर्शः प्राधान्येन अनिर्देशो यत्र स इति विग्रहः। अयं भावः—प्रतिवाक्यमेकमुद्देश्यमेकं विधेयं च भवति। यदुद्दिश्य किञ्चिद् विधीयते तदुद्देश्यमित्युच्यते, यद् विधीयते तद् विधेयं भवति। यथा 'बालो रुग्णः' इत्यत्र बालमुद्दिश्य रुग्णत्वं विहितम्। अतो बालोऽत्र उद्देश्यम्, रुग्णत्वं च विधेयम्। उद्देश्यविधेययोश्च विधेयस्यैव प्राधान्यं भवति। तथा च वक्त्रा तथा शब्दाः प्रयोज्या यथा विधेयस्य प्राधान्यं न नश्येत्। विधेयप्राधान्यलोपे च विधेयाविमर्शः, अविमृष्टविधेयांशो वा दोषो भवति। विधेयस्य प्राधान्यं च प्रायो द्विधा विनश्यति। विधेयबोधकस्य समासकरणेन, उद्देश्यात् प्राक् पठनेन वा। यत्र पूर्वेण अप्राधान्यं तत्र पददोषः। यत्रापरेण तत्र वाक्यदोषः।

तत्र पददोषोदाहरणं यथा वपुरिति। कुमारसंभवे पञ्चमे सर्गे पद्यमिदम्। तपोनिरतां पार्वतीं प्रति वटुवेषस्य शिवस्योक्तिरियम्। बालमृगाक्षि–हे हरिणशावकलोचने मुग्धे! पार्वति! वरेषु–जामातृतया वरणीयेषु, यद्–वपुः कुलं धनं च, मृग्यते–अन्विष्यते, तत्, व्यस्तमपि–एकैकमपि, त्रिलोचने–शिवे, अस्ति–विद्यते, किम्? वरणीयगुणेषु शिवस्यैकैकोऽपि नास्ति कुतस्तु तत्समुदाय इति भावः। तथाहि—तस्य वपुः–शरीरम्, विरूपाक्षम् विरूपं भीषणम्, अक्षि तृतीयं नेत्रं यत्र तादृशम्, [ विरुद्धं रूपं सर्पकपालादिवेषः, अक्षीणि च यस्य तादृशीति केचित् ] अस्ति। अलक्ष्यजन्मता–अलक्ष्यम् अज्ञातम्, जन्म यस्य सोऽलक्ष्यजन्मा, तस्य भावस्तत्ता। यस्य जन्मैव न ज्ञायते तस्य कुलादिज्ञानं तु दूरापास्तमिति भावः। दिगम्बरत्वेन–दिश एव, अम्बराणि वासांसि यस्य, तस्य भावस्तत्त्वम्, तेन, नग्नशरीरतया, वसु–धनम्, निवेदितम्–सूचितम्। तस्य कियती सम्पदस्तीति तस्य नग्नतैव सूचयति। शिशिरे शरीरमावरीतुं चीरमप्य-

---

('अकार्यमित्रम्' इस पद का) विना कार्य के अर्थात् निःस्वार्थ-मित्र यह अर्थ विवक्षित है, परन्तु 'बुरे कामों में मित्र' यह विरुद्ध अर्थ प्रतीत होता है।

अविमृष्ट इति। जहां विधेय अंश का प्रधान रूप से निर्देश न हुआ हो उसे 'अविमृष्टविधेयांश' कहते हैं। ऐसे पद या वाक्य में रहने वाले दोष को 'अविमृष्टविधेयांशभाव' या 'विधेयाविमर्श' कहते हैं। जैसे वपुरिति। हे मृगशावकनयने पार्वति! वरों में जो बात ढूंढी जाती है उनमें से क्या एक भी शिव में विद्यमान है? उसका शरीर तीन नेत्रों वाला है, उसके जन्म (किस कुल में कहां जन्मा है इत्यादि) का कुछ भी पता नहीं, दिगम्बरत्व (नग्नता) ने ही जिस की धन-सम्पत्ति की पोल खोल दी है—अर्थात् वह नितान्त निर्धन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


"अमुक्ता भवता नाथ! मुहूर्त्तमपि सा पुरा"।

अत्र नञो विधेयत्वमेवोचितम्। यथा निम्ने श्लोके—

"नवजलधरः सन्नद्धोऽयं, न दृप्तनिशाचरः
सुरधनुरिदं दूराऽऽकृष्टं, न तस्य शराऽऽसनम्।
अयमपि पटुर्धाराऽऽसारः न बाणपरम्परा
कनकनिकषस्निग्धा विद्युत्, प्रिया न ममोर्वशी" ॥ ११ ॥

[ विक्रमो० ]

---

लभमानस्य कुतो धनमिति भावः। अतो वपुःकुलधनाभावान्न स त्वया वरणीय इति भावः। लक्षणं लक्ष्ये संघटयति अत्रेति। अलक्ष्यजन्मतेत्यत्र जन्म उद्देश्यम्, अलक्ष्यत्वं च विधेयम्। तत्र विधेयबोधकस्य अलक्ष्यपदस्य बहुव्रीहिसमासः कृतः, तत्रान्यपदार्थस्य प्राधान्येन विधेयस्य गुणीभावो जातः, अतोऽविमृष्टविधेयांशत्वमत्र दोषः। समासान्तरेऽप्ययं दोषो भवतीत्याह—यथा वेति। अमुक्तेति। नाथ! हे स्वामिन्! भवता, सा—तन्वी, पुरा—पूर्वम्, मुहूर्त्तमपि—क्षणमात्रमपीत्यर्थः, अमुक्ता—न त्यक्तेति भावः।

अत्रेति। नञः—नञर्थस्येत्यर्थः। विधेयत्वमुचितम्—विधेयत्वात् प्राधान्यमुचितमिति भावः। अयमभिसन्धिः—अत्र 'अमुक्ता' पदे मोचनमुद्देश्यं तन्निषेधो नञर्थस्तु विधेयः। परं स नञ्समासे गुणतां प्राप्तः। अतो विधेयाविमर्शः। यत्र नञर्थो विधेयो गुणीभावं न प्राप्तस्तादृशमुदाहरति यथा—निम्न इति। नवेति। उर्वशीविरहे पुरूरवसो मेघादौ निशाचरादिभ्रमानन्तरं विशेषदर्शने सतीयमुक्तिः। सन्नद्धः—बद्धपरिकर इव स्थितः, अयं—पुरो दृश्यमानः पदार्थः, नवजलधरः—नवः अभिनवोदितः, जलधरः मेघः, अस्ति। दृप्तनिशाचरः—दृप्तः बलावलिप्तः, निशाचरः, कश्चिद् राक्षसः, न—नास्ति। दूराकृष्टम्—दूरमत्यर्थम्, आकृष्टम् बाणान् क्षेप्तुं कुण्डलीकृतं धनुरिव, इदम्—गगने दृश्यमानम्, सुरधनुः—इन्द्रकार्मुकम्, अस्ति। तस्य—तत्पदृप्तनिशाचरस्य, शरासनम्—धनुः, नास्ति। पटुः—अतितीव्रः, अयम्—गगनाद् भूमौ निपतन् पदार्थः।

धारासारः—जलधारासंपातः, अस्ति। बाणपरम्परा—शरवृष्टिः, न—नास्ति। कनकनिकषस्निग्धा—कनकनिकषः स्वर्णरेखा, तद्वत् स्निग्धा कान्तिमती, इयम्, विद्युत्—विद्योतनशीला तडि-

---

है। अत्र इति। यहाँ (जन्म में) अलक्ष्यता विधेय है, किन्तु समास में गुणीभाव होने से उसमें अप्रधानता प्रतीत होती है।

अथवा जैसे अमुक्ता इति। हे नाथ! आपने उसे पहले क्षणभर के लिये भी नहीं छोड़ा। यहाँ 'नञ्' के अर्थ में विधेयता ही उचित है (परन्तु 'अमुक्ता' पद में 'नञ्' का समास करने से वह गुणीभूत हो गया है।) जैसे कि नीचे लिखे श्लोक में—(नञर्थ के विधेय होने के कारण उसका (नञ् का) समास नहीं किया गया है।)

नवजलधर इति। यह सन्नद्ध जैसा दीखने वाला नवीन बादल है, अभिमानी निशाचर नहीं। अत्यधिक ताना हुआ (कुण्डलीकृत) यह इन्द्रधनुष है, उस (राक्षस) का धनुष नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri



"जुगोपाऽऽत्मानमत्रस्तो भेजे धर्ममनातुरः।
अगृध्नुराददे सोऽर्थानसक्तः सुखमन्वभूत्" ॥ ३ ॥

इत्यत्र तु अत्रस्ताऽऽद्यनुवादेनाऽऽत्मगोपनाऽद्येव विधेयमिति न दोषः।

वाक्यगतो यथा—

"न्यक्कारो ह्ययमेव मे यदरयस्तत्राप्यसौ तापसः

---

दस्ति, प्रिया—मम प्रेमपात्रम्, उर्वशी, न—नास्ति। अत्र विधेयो नञर्थः समासेन गुणीभावं न नीतः।

अमुक्तेतिवद् अदृप्तनिशाचर इत्येवमुक्तौ तु अत्रापि तस्य गुणीभावः स्यात्।

यत्र तु नञर्थो न विधेयः, अपि त्वनुवाद्यः, तत्र नञः समासे न विधेयाविमर्शः। उदाहरति—जुगोपेति। रघुवंशे प्रथमे दिलीपप्रशंसायां कवेरुक्तिरियम्। सः—दिलीपः अत्रस्तः—अभयः सन्, त्रासोपाधिमन्तरेणैव चतुर्वर्गसिद्धेः प्रथमसाधनत्वादेव, आत्मानम्—शरीरम्, जुगोप—ररक्ष। अनातुरः—अरुग्ण एव, धर्मम्—सुकृतम्, भेजे—अर्जितवान्। निष्कामं धर्ममाचरदिति भावः। अगृध्नुः—अलोलुप एव सन्, अर्थम्—धनम्, आददे—स्वीकृतवान्। प्रजाभ्यः कररूपेणेति शेषः। तस्य करग्रहणं प्रजोपकारायैवासीत्, न त्विदानींतनस्येव स्वविषयोपभोगायेति भावः। अनासक्तः—आसक्तिरहित एव, सन्, सुखम्, अन्वभूत्—बुभुजे। अत्र समासेन गुणीभूतो निषेधोऽनुवाद्यो न तु विधेयः, अतो न दोष इत्याह इत्यत्रेति। यदि त्वत्रैव अमुक्ता भवतेत्यत्रापि अमुक्तात्वानुवादेन किञ्चिदन्यद् विधेयं स्यात्, तदा विधेयाविमर्शो न स्यात्। वाक्यगतमविमृष्टविधेयांशत्वमुदाहरति—न्यक्कार इति। हनुमन्नाटके पद्यमिदम्। रामेण राक्षसक्षये क्रियमाणे क्षुब्धस्वान्तस्य रावणस्य स्वाधिक्षेपोक्तिरियम्। अयमेव, मे—मम, न्यक्कारः—तिरस्कारः, यद्, अरयः, सन्ति। एवशब्दः प्राथम्यं द्योतयति। शत्रुसत्त्वं वशीकृतत्रिजगतो मम प्रथमो न्यक्कार इति भावः। तत्रापि—तेष्वपि अरिषु, असौ—मानुषः सोऽपि तापसः—तपस्वी, मुख्य इति शेषः। तापससहस्र-

---

है। यह अतितीव्र (आकाश से गिरने वाला पदार्थ) धारासार-मूसलाधार वर्षा है, उसके बाणों की बौछार नहीं। स्वर्णरेखा के समान कान्तियुक्त यह बिजली है, मेरी प्रिया उर्वशी नहीं।

जुगोप इति। वह निर्भय होकर अपनी रक्षा करता था, अनातुर (दुःखरहित) होकर ही धर्माचरण करता था। निर्लोभ होकर ही (प्रजा से कर रूप में) धन लेता था। अनासक्त होकर सुख भोगता था।

इस पद्य में अत्रस्तत्व (त्रासाभाव) आदि का अनुवाद करके आत्मगोपन (स्वरक्षण) आदि ही विधेय है। (नञर्थ विधेय नहीं है, इसलिये 'अत्रस्त' इत्यादि पदों में नञ् का समास कर दिया गया है।)

वाक्यगत विधेयाविमर्श का उदाहरण जैसे न्यक्कार इति। पहले तो शत्रुओं का होना ही मेरा तिरस्कार है, उस पर भी यह तापस-तपस्वी (मेरा शत्रु है) वह भी यहीं है और राक्षसों के कुल का नाश कर रहा है। आश्चर्य तो यह है कि रावण जी रहा है। इन्द्र को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


सोऽप्यत्रैव निहन्ति राक्षसकुलं जीवत्यहो ! रावणः ।
धिक् ! धिक् ! शक्रजितं प्रबोधितवता किं कुम्भकर्णेन वा
स्वर्गग्रामटिकाविलुण्ठनवृथोच्छूनैः किमेभिर्भुजैः ?" ॥ १३ ॥

[ हनु० ना० ]

अनुवाद्यमनुक्त्वैव न विधेयमुदीरयेत्" इत्युक्तेरुद्देश्यस्य प्रथमं, ततो विधेयस्य निर्देशो युक्तः । अत्र न्यक्कारस्य विधेयत्वे विवक्षितेऽपि प्रथमं निर्देशात् न तथा प्रतीतिः । रचना च पदद्वयस्य विपरीतेति वाक्यदोषः । यथा वा—

---

भक्षकस्य ममैकस्तापसो रिपुमुख्य इति द्वितीयो न्यक्कारः । सोऽपि, अत्रैव—मत्समीपे एव, न तु दूरे, राक्षसकुलम्—राक्षसानां कुलम्, न त्वेकं द्वौ वा, निहन्ति । अहो—आश्चर्यम्, एतादृश्या-मप्युत्तरोत्तरोत्कृष्टायां पराभवपरम्परायाम्, रावणः—रावयति क्रन्दयति लोकान् तादृशः, जीवति-ध्रियते । जीवतस्तस्य मानिनस्तादृशपराभवपरम्परासहनानौचित्यादिति भावः । शक्रजितम्—इन्द्रजितम्, धिग् धिग् !, धिग् धिगिति वीप्सया निन्दातिशयः । येन शक्रो विजितस्तस्य मनुष्य-मात्रात् पराभवे अतिशयेन निन्दायोग्यत्वमिति भावः । प्रबोधितवता—प्रबोधितं प्रबोधो जाग-रणम्, तद्वता त्यक्तनिद्रेणेति भावः, कुम्भकर्णेन, किम् ? न किंचित्फलमित्यर्थः । स्वर्गग्रामटिके-त्यादि—स्वर्ग एव ग्रामटिका स्वल्पग्रामः, तस्या विलुण्ठनेन विध्वंससनेन, वृथोच्छूनैः वृथाध्मातैः, एभिः—प्रसिद्धपराक्रमैः, भुजैः—विंशतिसंख्याकैर्मम बाहुभिः, किम्—न किंचित् फलमित्यर्थः । भुज-द्वयवतः शत्रोरपि सकाशात् पराभवप्राप्तेरिति भावः ।

अत्र प्रथमे पादे 'अरयः सन्ति' इत्यरिसत्त्वमुद्देश्यम्, न्यक्कारत्वं च विधेयम् । उद्देश्य-विधेययोश्च उद्देश्यस्यैव प्रथमं निर्देशो युज्यते । तथा सत्येव यथायथमुद्देश्यविधेयभावः प्रतीयते । अत्र तु न्यक्कार इति विधेयबोधकं प्रथमं निर्दिष्टम् । उद्देश्यनिर्देशकम् 'अयम्' इति पदं च पश्चात् पठितम् । तेन च विधेयस्यानुवाद्यतया प्रतीतावप्राधान्यमायातम् । अतोऽत्र विधेयाविमर्शो दोषः । विधेयाविमर्शदोषमुदाहरणे संगमयति—अनुवाद्यमिति । अनुवाद्यम्—उद्देश्यम् । तथा—विधेय-त्वेन । 'अयम्' 'न्यक्कारः' इत्यनेकपदसापेक्षत्वादस्य वाक्यदोषत्वम् । ननु न्यक्कारोऽयमित्यत्र वैपरी-त्येन विधेयत्वप्रत्ययाद् अर्थदोष एवायं किन्न स्याद् इत्यत आह—रचनेति । अयं भावः—न खल्वत्र विवक्षितोऽर्थो दुष्टः, किन्तु पदद्वयस्य विपरीतरचनया अविवक्षितार्थप्रत्ययः, तत्र च शब्दरचनैवाप-राध्यति । 'अयमेव न्यक्कारः' इति रचनापरिवर्तने तु न दोषः । तथा च शब्दरचनान्वयव्यतिरे-

---

जीतने वाले मेघनाद को धिक्कार है । जगाए हुए कुम्भकर्ण से भी क्या बना ? । स्वर्ग नाम के छोटे से गाँव को लूट लेने मात्र से व्यर्थ फूली हुई इन भुजाओं से भी क्या फल है ? ।

अनुवाद्य इति । 'उद्देश्य को विना कहे विधेय नहीं कहना चाहिये' इस वचन के अनुसार पहले उद्देश्य का फिर विधेय का निर्देश करना उचित है । इस पद्य में यद्यपि 'न्यक्कार' की विधेय रूप से ही विवक्षा है तथापि ( उद्देश्य से ) पहले निर्दिष्ट होने के कारण वैसी ( विधेय रूप से ) प्रतीति नहीं होती । दो पदों की विपरीत रचना होने से यह वाक्यदोष है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizaqtion by eGangotri


"आनन्दयति ते नेत्रे योऽसौ सुभ्रु ! समागतः"।

अत्र "असौ" इत्यस्य विधेयत्वमेव भवितुं युक्तम्, तच्च यच्छब्दनिकटस्थतया अनुवाद्यत्वप्रतीतिकृत्।

सन्दिग्धत्वं यथा—

"आशीःपरम्परां वन्द्यां कर्णे कृत्वा कृपां कुरु"।

---

कानुविधानाद् वाक्यस्यैवायं दोषो न वाक्यार्थस्य। वाक्यगतं द्वितीयमुदाहरति आनन्दयतीति। सुभ्रु !–हे सुन्दरि, यः समागतः, असौ–नायकः, ते नेत्रे, आनन्दयति।

अत्र योऽसाविति पदद्वयं क्रमश उद्देश्यविधेयार्थतया विवक्षितमपि उद्देश्यमात्रं प्रत्याययति। न पुनर्विधेयमपि। यच्छब्दाव्यवधानेन पठितस्य तच्छब्दस्य तत्समानार्थकस्यादसादिशब्दस्य वा यच्छब्दवदुद्देश्यमात्रबोधकत्वात्। तथा चात्र विधेयानुपस्थित्या विधेयाविमर्शो दोषः। यच्छशब्दव्यवधानेन पठितानां तु तदादीनां भवत्येव विधेयबोधकत्वम्। यथा 'आनन्दयति ते नेत्रे योऽधुनाऽसौ समागतः' इत्येवं पाठे अधुनापदव्यवहितस्य 'असौ' इत्यस्य।

उदाहरणे संगतिं दर्शयति—अत्रेति। अयं भावः—'यत्तदोर्नित्यः सबन्धः' इति न्यायाद् उपक्रान्तस्य उद्देश्यार्थकस्य यच्छब्दस्य निराकाङ्क्षत्वप्रतिपत्तये तच्छब्दसमानार्थतया पठ्यमाना इदमेतददश्शब्दा विधेयार्थबोधका एव भवितुं युक्ताः। परं नेहादश्शब्दो विधेयार्थं बोधयति। तत्र हेतुमाह–तच्चेति। अनुवाद्यत्वप्रतीतिकृत्–उद्देश्यसमर्पकम्। विवक्षितार्थाप्रत्ययोऽत्र दूषकताबीजम्। संदिग्धत्वमिति। तात्पर्यसंदेहविपर्यभूतार्थद्वयोपस्थापकत्वं संदिग्धत्वम्। उदाहरति—आशीरिति। अत्र 'वन्द्याम्' इति पदं वन्दीशब्दस्य सप्तम्यन्तम्, उत वन्द्याशब्दस्य द्वितीयान्तमिति संदेहः। यदि सप्तम्यन्तं तर्हि—आशीःपरम्पराम्–आशिषामाशीर्वादानाम्, परम्परां समूहमिति भावः, कर्णे कृत्वा–श्रुत्वा, वन्द्याम्–वन्दीभूतायां कारागारे निक्षिप्तायां महिलायाम्,

---

और भी जैसे आनन्दयति इति। हे सुभ्रु ! (सुन्दर भौंहों वाली) यह जो पुरुष आया है वह तेरे नेत्रों को आनन्दित करेगा। अत्र इति। इस पद्यांश में 'असौ' इसको विधेय ही होना चाहिये, किन्तु वह 'यत्' शब्द के समीप स्थित होने के कारण उद्देश्यत्व की प्रतीति कराता है–विधेयत्व की नहीं। (तात्पर्य यह है–'यत्' और 'तत्' शब्द का नित्य संबन्ध होता है। एक के विना दूसरा साकाङ्क्ष रहता है। यदर्थ उद्देश्य होता है और तदर्थ विधेय। इस नियम के अनुसार उक्त पद्यांश में 'यत्' शब्द की आकाङ्क्षा पूरी करने के लिये 'तत्' शब्द या उसके समानार्थक इदम्, एतत्, अदस् आदि शब्दों का प्रयोग करना आवश्यक है, और उन्हें विधेयबोधक भी होना चाहिये। यहां यद्यपि अदस् (असौ) शब्द विद्यमान है, तथापि उससे यत् शब्द के समीप (अव्यवहित) पठित होने के कारण विधेयता की प्रतीति नहीं होती, किन्तु उद्देश्यता की प्रतीति होती है। 'तत्' शब्द भी यदि 'यत्' शब्द के समीप पढ़ा हो तो वह भी विधेयता का बोधक नहीं होता, किन्तु प्रसिद्धि का बोधक होता है।)

संदिग्धत्वमिति। जो शब्द किसी निश्चित अर्थ का बोधक न हो उसे संदिग्ध कहते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अत्र वन्द्यामिति वन्दीभूतायाम्, उत वन्दनीयामिति सन्देहः।

वाक्यमात्रगतान् दोषानाह—

"वर्णानां प्रतिकूलत्वं सन्धौ विश्लेपकष्टते।
अधिकन्यूनकथित-पदताऽक्रमता तथा ॥ १४ ॥
भग्नप्रक्रमता ख्याति-हतता सङ्करोऽपि च।
गर्भितत्वं तथा काव्ये दोषाः स्युर्वाक्यमात्रगाः" ॥ १५ ॥

---

कृपाम्, कुरु। इत्यर्थः। यदि द्वितीयान्तं तर्हि 'वन्द्याम्'—वन्दनीयाम्' इत्याशीःपरम्परा-विशेषणम्। वन्दनीया आशिषः श्रुत्वा कृपां विधेहीति भावः। तथा चात्र न निश्चीयते कतरोऽर्थो विवक्षितः। अत एव संदिग्धत्वमत्र दोषः। पदगतमिदमुदाहरणम्। वाक्यगतं यथा—

सुरालयोल्लासपरः प्राप्तपर्याप्तकम्पनः।
मार्गणप्रवणो भास्वद्भूतिरेष विलोक्यताम् ॥

अत्र सुर-कम्पन-मार्गण-भूतिशब्दाः किं देव-सेना-शर-विभूत्यर्थाः, उत मदिराद्यर्था इति संदेहः। अनेकपदगत्वाद् वाक्यदोषत्वमत्र। उद्देश्यनिश्चयाभावोऽत्र दूषकताबीजम्। अतो यत्र व्याजस्तुतौ वाच्यादिमहिम्ना प्रकरणादिना वा निश्चयस्तत्रादोषत्वमस्य, प्रत्युत गुणत्वम्। तदुक्तम्—'संदिग्धत्वं गुणो व्याजस्तुतिपर्यवसायि चेत्।'

पदवाक्यसाधारणान् दोषानुक्त्वेदानीं वाक्यमात्राश्रितान् दोषानाह—**वर्णानामिति**। **वर्णानां प्रतिकूलत्वम्**—प्रतिकूलवर्णत्वमिति भावः। **सन्धौ विश्लेपकष्टते**—सन्धौ विश्लेषः, सन्धौ कष्टता चेत्यर्थः, विसन्धित्वमिति भावः। **अधिकन्यूनकथितपदता**—अधिकं न्यूनं कथितं च पदं यत्र, तद् अधिकन्यूनकथितपदम्, तस्य भावस्तत्ता, द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणस्य प्रत्येकमभिसंबन्धाद् अधिकपदता, न्यूनपदता, कथितपदता चेति भावः। **अक्रमता, भग्नप्रक्रमता ख्यातिहतता, सङ्करः, गर्भितत्वम्,** एते एकादश **दोषाः, काव्ये, वाक्यमात्रगाः**—केवले वाक्ये स्थिताः, **स्युः**। एतेषां लक्षणोदाहरणानि क्रमश उपरिष्टाद् वक्ष्यन्ते।

---

हैं। जैसे **आशीः** इति। यहाँ 'वन्द्याम्' इस पद में संदेह है, यदि कैदी वाचक 'वन्दी' शब्द मानकर सप्तमी का एक वचन माना जाय तो 'आशीर्वादों को सुन कर इस वन्दी महिला पर कृपा करो' यह अर्थ होगा। यदि वन्द्या शब्द का द्वितीया का एकवचन माना जाय तो 'वन्दनीय (प्रशंसा के योग्य) आशीर्वादों को सुनकर कृपा करो' यह अर्थ होगा। निश्चायक कोई है नहीं, इसलिये यहां संदिग्धत्व दोष है।

केवल वाक्य में होने वाले दोष—

**वर्णानामिति**। प्रतिकूलवर्णत्व, संधिविश्लेप, सन्धिकष्टता, अधिकपदता, न्यूनपदता, कथितपदता, अक्रमता, भग्नप्रक्रमता, ख्यातिहतता संकर और गर्भितत्व ये काव्य में केवल वाक्य में आने वाले दोष हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri


वर्णानां रसानुगुणत्वं वक्ष्यते; तद्वैपरीत्यं प्रतिकूलत्वम्। यथा—"कृतमनुमतम्" (५६ पृ० ) इत्यादि पूर्वमुक्तम् । अत्र हि गाढबन्धत्वं दीर्घसमासत्वञ्च उचितम्। तद्वैपरीत्यकरणात् दोषः।

सन्धौ विश्लेषो द्विविधः—व्याकरणलक्षणानुसारेण कृतः, अनुशासनमुल्लङ्घ्य स्वेच्छया कृतश्च। पूर्वः–असकृदेव दोषः, द्वितीयस्तु सकृदपि।

आद्यो यथा—

---

वर्णानां प्रतिकूलत्वं विवृणोति–वर्णानामिति। प्रतिकूलत्वमिह रसाननुगुणत्वम्। वर्णपदं समासस्याप्युपलक्षकम्। तथा च यत्र विवक्षितरसादेः प्रतिकूला अननुगुणा वर्णाः समासाश्च स्युः तत्र प्रतिकूलवर्णत्वं वाक्यदोषः। रसानुगुणत्वम्–रसानुकूलत्वम्। वक्ष्यत इत्यस्य षष्ठशिखाया-मिति शेषः। उदाहरति—कृतमनुमतमिति। पूर्वमुक्तम्–तृतीयपरिच्छेदे रौद्ररसोदाहरण इति शेषः।

कथमत्र प्रतिकूलवर्णत्वमित्यत आह अत्र हीति। अयमभिप्रायः–उदाहृतं कृतमित्यादि पद्यं रौद्ररसीयमस्ति। रौद्रो नाम रस ओजोगुणवान् भवति। अतस्तत्परिपोषाय कविना ओजोगुण-व्यञ्जकैष्टकारादिवर्णैः गाढबन्धत्वं विकटाक्षररचना, दीर्घसमासत्वम्–व्यधिकपदसमासश्च अपेक्ष-णीयम्। परमिह प्रकृतपद्ये कविना तद्विपरीतं कृतमिति प्रतिकूलवर्णत्वं दोषः।

संधिविश्लेषं व्याचष्टे संधौ विश्लेष इति। तत्र विश्लेषो नाम व्याकरणशास्त्रात् प्राप्तस्य श्लेषस्य संहिताकार्यस्याभावः। स द्विविधो भवति वाचनिक ऐच्छिकश्चेति। तत्र वाचनिकमाह—व्याकरणे। व्याकरणलक्षणानुसारेण व्याकरणलक्षणम् 'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्' इत्यादि व्याकरणशास्त्रसूत्रम्, तदनुसारेण कृतः। ऐच्छिकमाह—स्वेच्छयेति। स्वेच्छया कृतः–शास्त्रमुल्ल-ङ्घ्यः विहितः। ननु वाचनिकस्य कुतो दोषत्वम्, तस्यापरिहार्यत्वादित्यत आह—पूर्व इति। पूर्वः–व्याकरणलक्षणबोधितो विश्लेषः, असकृदेव–भूयो भूयः प्रयुज्यमान एव, दोषो भवति। द्वितीयस्तु–शास्त्रमुल्लङ्घ्य स्वेच्छया विहितो विश्लेषस्तु। सकृदपि–एकवारं क्रियमाणोऽपि, दोषो

---

वर्णानामिति। कौन वर्ण किस रस के अनुकूल है यह बात आगे कही जायगी, उसके विपरीत वर्णों का प्रयोग करने में 'प्रतिकूलवर्णत्व' दोष होता है। जैसे कृतमनुमतमिति। यह पद्य पहले ( रौद्ररस के उदाहरण में पृ० ५६ पर ) आ चुका है। इसमें ( रौद्ररस के अनुकूल ) बन्ध ( रचना ) की गाढ़ता टकारादि वर्ण, संयुक्ताक्षरों की अधिकता, और लम्बे समास उचित थे। परन्तु यहाँ इसके विपरीत बन्ध शिथिल हैं, समास भी छोटे हैं, इसलिये प्रतिकूल-वर्णत्व दोष है।

सन्धौ इति। सन्धिविश्लेष से अभिप्राय है—सन्धि न करना। यह सन्धिविश्लेष दो प्रकार से होता है—एक व्याकरण के नियमों के अनुसार, दूसरा नियमों का उल्लङ्घन करके अपनी इच्छा से ही। पहले प्रकार सन्धिविश्लेष अनेक वार होने पर ही दोष माना जाता है, किन्तु दूसरा एक वार भी दोष है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


"दलिते उत्पले एते अक्षिणी अमलाङ्गि ! ते"।

द्वितीयो यथा—

"वासवाऽऽशामुखे भाति इन्दुश्चन्दनबिन्दुवत्।"

सन्धौ कष्टता—श्रुतिदुःखाऽऽवहत्वम्। यथा—

"उर्व्यसावत्र तर्वाली मर्वन्ते चार्ववस्थितिः।
नात्रर्जु युज्यते गन्तु शिरो नमय तन्मनाक्" ॥ १६ ॥

---

भवतीति शेषः। क्रमशः उदाहरति—**दलिते** इति। **अमलाङ्गि !**—हे निर्मलगात्रि !, **एते, ते**—तव, **अक्षिणी**—नेत्रे, **दलिते**—विकसिते, **उत्पले** कमले, विकसितकमलसदृशे, स्तः। अत्र 'दलिते उत्पले एते अक्षिणी अमलाङ्गि !' इत्यत्र एदन्तद्विवचनत्वादिप्रयुक्तप्रगृह्यत्वहेतुकः संध्यभावः (संधिविश्लेपः) असकृत् कृतः। अतः श्रुत्युद्वेजकतयाऽस्य दोषत्वम्। स्वेच्छया कृतं संधिविश्लेप-मुदाहरति—**वासवेति। वासवाशामुखे**—वासव इन्द्रः, तस्य तदधिष्ठातृकेत्यर्थः, आशा दिशा, प्राची दिगिति भावः। तस्या मुखं अग्रभागे, **इन्दुः, चन्दनबिन्दुवत्**, गौरत्ववृत्ताकारत्वसाम्या-दिति भावः, **भाति**। अत्र 'भाति इन्दुः' इत्यत्र प्राप्तः 'अकः सवर्णे दीर्घः' स्वेच्छयैवोल्लङ्घितः। अतः कवेरशक्तिख्यापकत्वेन सकृदप्ययं दोषः। यद्यपि—

संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयोः।
नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते ॥

इत्यभियुक्तोक्त्या वाक्ये संहिताया विवक्षाधीनत्वाद् इह तस्या अविवक्षणे दोषत्वं न युज्यते। तथापि पद्यपूर्तिप्रयोजकसंध्यभावस्य विशिष्य अशक्त्युन्नायकतया दोषत्वमस्त्येव। अत एवैकपदादिवत् पद्येऽपि संहिता नित्येति संप्रदायः।

संधिकष्टतामाह—**संधाविति। श्रुतिदुःखावहत्वम्**—श्रुत्योः कर्णयोः, दुःखम्, आवहति जनयति, तादृशं श्रुतिदुःखावहम्। तस्य भावस्तत्त्वम्, कर्णोपतापकत्वम्, इति भावः।

उदाहरति **उर्व्यसाविति**। अध्वगं प्रति कस्यचिदुपदेशोक्तिरियम्। **अत्र**—अस्मिन्, **मर्वन्ते**—मरुप्रान्ते, निर्जलप्रदेशे, **चार्ववस्थितिः**—चारुः शोभना अवस्थितिः अवस्थानं यस्या-स्तादृशी, मरौ वृक्षदौर्लभ्याच्चारुत्वम्। **उर्वी**—महती [ उरुशब्दाद् 'वोतो गुणवचनाद्' इति ङीप् ]

---

प्रथम सन्धिविश्लेप का उदाहरण जैसे **दलित** इति। हे निर्मल अंगों वाली ! तेरी ये आँखें खिले हुए कमल हैं। ( यहाँ यद्यपि 'दलित उत्पले एते अक्षिणी—इन पदों में प्रगृह्यसंज्ञा होने के कारण नियमानुसार ही सन्धिविश्लेप ( प्रकृतिभाव ) हुआ है, तथापि अनेक बार होने से दोष है )

द्वितीय संधिविश्लेप का उदाहरण जैसे **वासवा** इति। पूर्वदिशा के मुख पर चन्द्रमा चन्दनविन्दु के समान शोभित हो रहा है। ( यहाँ 'भाति इन्दु' में अपनी इच्छा से संधि नहीं की गई है, नियमानुसार यहाँ संधि होनी ही चाहिये, इसलिये एक बार भी दोष ही है )।

**सन्धिकष्टता** इति। कानों को अखरने वाली सन्धि करने पर सन्धिकष्टता दोष होता है। जैसे **उर्व्यसौ** इति। इस मरु-प्रदेश में अति विस्तृत यह वृक्ष-पङ्क्ति अति सुन्दरता से अवस्थित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


अधिकपदता यथा—"सदाशिवं नौमि पिनाकपाणिम्" इत्यत्र "पिनाकपाणिम्" इति विशेषणमधिकम्।

"कुर्य्यां हरस्यापि पिनाकपाणेः" इत्यत्र तु अतिदुष्प्रधृष्यत्वसूचनाय "पिनाकपाणेः" इति विशेषणं युक्तमेव।

---

असौ—दृश्यमाना, तर्वाली—तरूणाम् आली पङ्क्तिः, अस्ति। अत एव, अत्र, ऋजु—सरलं यथा स्यात् तथा, गन्तुम्, न युज्यते, न गन्तव्यमिति भावः। तत्—तस्मात् कारणात्, मनाक्—किञ्चित्, शिरः, नमय—नीचैः कुरु। अत्र 'उर्व्यसौ' 'तर्वाली' 'मर्वन्ते' 'चार्ववस्थितिः' 'नात्रर्जु' एषु पदेषु संधौ कष्टत्वम्।

अधिकपदतेति। अधिकम् अनुपयुक्तार्थं पदं यत्र तादृशम्, तस्य भावस्तत्ता। अनुपयुक्तार्थपदकत्वमधिकपदत्वस्य लक्षणमिति भावः। उदाहरति—सदेति। अर्थः स्पष्टः। अत्र पिनाकपाणिमिति विशेषणमनुपयुक्तार्थकत्वादधिकम्। प्रणामप्रसङ्गे प्रणम्यदेवतायास्त्रासोत्पादकपिनाकपाणित्वादिकीर्तनस्यानुपयुक्तत्वात्। भक्तिपरिपोषकतद्भक्तवत्सलत्वादिवर्णनस्यैव तत्रौचित्याद्। अथवा 'पल्लवाकृतिरक्तोष्ठी' इत्युदाहर्तव्यम्। अत्र 'पल्लवरक्तोष्ठी' इत्येतावतैव विवक्षितार्थप्रत्यये 'आकृति'-पदम् अनुपयुक्तार्थकत्वाद् अधिकम्। निष्प्रयोजनशब्दश्रवणेन श्रोतुर्वैमुख्यमत्र दूषकताबीजम्। अत एव यत्र न शब्दस्य निष्प्रयोजनत्वं तत्र श्रोतुर्वैमुख्याभावान्नाधिकपदत्वम्। यथा कुर्यामित्यत्र।

'कुर्यां हरस्यापि पिनाकपाणेर्धैर्यच्युतिं के मम धन्विनोऽन्ये।'

इति समग्रं पद्यार्धम्। कुमारसंभवे तृतीये कामस्येन्द्रं प्रति वचनमिदम्। अत्र हि कामेन पिनाकाख्यधनुर्धारितया अतिदुष्प्रधृष्यस्य शिवस्यापि धैर्यच्युतिकरणेन आत्मनः शौर्यातिशयश्चिख्यापयिषितः। तत्र च पिनाकपाणेरिति हरस्य विशेषणं तस्य दुष्प्रधृष्यत्वसूचनया नितान्तं सप्रयोजनम्। अतोऽत्र नाधिकपदत्वं दोषः। किं च-यत्र अयोगव्यवच्छेदादिविशेषो बुबोधयिषितस्तत्रापि नाधिकपदत्वं दोषः, प्रत्युत चमत्कृतिविशेषाधायकतया गुणः। तदुक्तम्—'गुणः क्वाप्यधिकं पदम्' इति। क्वापि—यत्र विशेषप्रतिपत्तिस्तत्रेत्यर्थः। उदाहरणं यथा—

आचरति दुर्जनो यत् सहसा मनसोऽप्यगोचरानर्थान्।
तन्न न जाने जाने स्पृशति मनः किन्तु नैव निष्ठुरताम्॥

---

है। यहाँ सीधा चलना ठीक नहीं, इसलिये जरा सिर झुका लो। (यहाँ उर्व्यसौ, तर्वाली, मर्वन्ते, चार्ववस्थिति, नात्रर्जु—इन पदों में कर्णकटु सन्धि होने से संधिकष्टता दोष है)।

अधिकपदता इति। अनुपयोगी (व्यर्थ) शब्द के प्रयोग में 'अधिकपदता' दोष होता है।

जैसे सदा इति। पिनाकधारी शङ्कर को सदा प्रणाम करता हूँ। अत्र इति। यहाँ 'पिनाकपाणि' यह (शिव का) विशेषण अनुपयोगी है। (प्रणाम के प्रसङ्ग में प्रणम्य-देवता के भक्तवत्सलतादि गुणों का कीर्तन ही उपयोगी है, भयोत्पादक पिनाकपाणित्वादि का नहीं) कुर्यामिति। इस पद्य में हर (शङ्कर) के अतिदुर्जयत्व को सूचित करने के लिये 'पिनाकपाणेः' यह विशेषण उचित ही है, (इसलिये यहाँ अधिकपदत्व नहीं है)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



**न्यूनपदता** * यथा—"तथाभूतां दृष्ट्वा" (४० पृ०) इत्यादौ पूर्वमुक्ते। अत्र "अस्माभिः" इति, "खिन्ने" इत्यस्मात् पूर्वम् "इत्थम्" इति च पदं न्यूनम्।

कथितपदत्वं + यथा—

* "उक्तावानन्दमग्नादेः स्यान्न्यूनपदता गुणः"।

+ यत्र तत्पदप्रयोग एव न युक्तः, तत्र अधिकपदत्वम्; यत्र तु पर्य्यायान्तरेण सर्वनाम्ना वा तत्प्रयोगो युक्तः, तत्र कथितपदत्वम्।

विहितस्य अनुवाद्यत्वे कथितपदत्वं गुणः। यथा—

"उद्वेति सविता ताम्रस्ताम्र एवास्तमेति च।
सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता"॥

अत्र ताम्रपदस्य कथितपदत्वेऽपि उत्तरवाक्येऽनुवाद्यत्वान्न दोषः। यथा वा—

"जितेन्द्रियत्वं विनयस्य कारणं गुणप्रकर्षो विनयादवाप्यते।
गुणप्रकर्षेण जनोऽनुरज्यते जनानुरागप्रभवा हि सम्पदः"॥

---

अत्र 'न न जाने' इति द्वितीयो नकारः 'अहं न जाने इति न, अपि त्ववश्यं जाने' इत्येवं ज्ञानायोगव्यवच्छेदार्थकत्वान्नाधिकः। एवं द्वितीयं 'जाने' इति पदम् 'अहमेव जाने नान्यः' इत्येवमन्ययोगव्यवच्छेदसूचनार्थत्वान्नाधिकम्। एवं 'संभ्रमे विस्मये हर्षे विषादेऽप्यधिकं पदम्' गुण इति शेषः। तत्र संभ्रमे यथा—

अर्घ्यमर्घ्यमिति वादिनं नृपं सोऽनवेक्ष्य भरताग्रजो यतः।
क्षत्रकोपदहनार्चिषं ततः संदधे दृशमुदग्रतारकम्॥

रघुवंश एकादशसर्गे पद्यमिदम्। स परशुरामः अर्घ्यम् अर्घ्यम्—अर्घोदकमर्घोदकम्, गृहाणेति शेषः, इति वादिनं नृपं दशरथमनवेक्ष्य, यतः—यस्यां दिशि भरताग्रजः—राम आसीत्, ततः—तस्यां दिशि, क्षत्रकोपदहनार्चिषम्—क्षत्रे क्षत्र कुले, यः कोपदहनो रोपाग्निः, तस्यार्चिषं ज्वालामिव स्थिताम्, उदग्रतारकाम्—उदग्रा तारका कनीनिका यस्यास्ताम्, दृशं संदधे। अत्र—अर्घ्यम्-अर्घ्यमिति द्विरुक्तिः संभ्रमसूचिका, अतो नाधिकपदत्वम्।

'चित्रं चित्रं वत वत महच्चित्रमेतद् विचित्रम्' इत्यादौ द्वितीयचित्रादिपदानां नाधिकपदत्व-दोषप्रयोजकत्वम्। तेषां विस्मयादिबोधकत्वात्। एवं 'हा हन्त हन्त नलिनीं गज उज्जहार' इत्यत्र द्वितीयहन्तपदस्य नाधिकत्वम्। विषादातिशयप्रतिपादनाय तदुपादानात्।

**न्यूनपदतेति**। न्यूनं विवक्षितार्थकमप्यनुपात्तं पदं वाचकशब्दो यत्र तादृशम्। तस्य भावस्तत्ता। अनुपात्तविवक्षितार्थपदकत्वं न्यूनपदत्वमिति भावः। उदाहरति **तथाभूतामिति**। व्याख्यातचरमिदं पद्यम्। अत्र उपितमित्यत्र स्थितमित्यत्र च कैरित्याकाङ्क्षोदयात्, अस्माभि-रित्यावश्यकम्। एतदभावे कर्तुरलाभात् केनोपितम्, केन स्थितमित्याकाङ्क्षाया अनिवृत्तेः। किं

---

**न्यूनपदता इति**। जहाँ आवश्यक (उपयोगी) पद छोड़ दिया जाय वहाँ 'न्यूनपदता' दोष होता है। जैसे **तथाभूताम्** इति। यह पद्य पहले (काकुव्यङ्ग्य के उदाहरण में पृ० ४०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



"प्रियं चेद् भरतस्यैतद् रामप्रव्राजनं भवेत्।
मास्म मे भरतः कार्षीत् प्रेतकृत्यं कदाचन" ॥ १७ ॥ [ रामायणे ]

अत्र भरत इति पुनः कथितम्, सर्वनाम्नैव अस्य परामर्शो युक्तः। "मा स्म मेऽसौ सुतः" इत्यदुष्टम्।

अक्रमत्वम्–अविद्यमानः क्रमः–पदस्थितिक्रमो यत्र तद् अक्रमम्, तस्य भावः। यथा—

"द्वयं गतं सम्प्रति शोचनीयतां समागमप्रार्थनया कपालिनः।

---

च 'खिन्ने' इत्यस्मात् पूर्वम् 'इत्थम्' इति चावश्यकम्। एतदभावे चतुर्थपदस्य पूर्वपादैः सहैकवाक्यता न स्यात्। इत्थमित्यस्य–तथाभूतनृपतनयादर्शनोत्तरकालिकवल्कलधरव्याधसहवासादिभिरित्यर्थः। तथा च इत्थमित्यनेन पूर्वपादत्रयार्थस्य चतुर्थपादस्थखिन्नपदार्थघटकखेदार्थेन सह हेतुहेतुमद्भावप्रतिपादनेन एकवाक्यता सुलभा। अत एव उपर्युक्तावश्यकपदद्वयाभावे न्यूनपदत्वमत्र दोषः। पदज्ञानविरहकृता विवक्षितार्थाप्रतिपत्तिश्चात्र दूषकताबीजम्।

**कथितपदत्वमिति**। कथितं कथितचरं पदं यत्र तत् कथितपदम्। तस्य भावस्तत्त्वम्। निष्प्रयोजनत्वे सति समानार्थकसमानुपूर्वीकपदवत्त्वं कथितपदत्वस्य लक्षणमिति भावः।

तदुदाहरणं यथा **प्रियमिति**। दशरथोक्तिरियं रामायणे। **एतद्; रामप्रव्राजनम्**–रामस्य, प्रव्राजनम् वने प्रवासनम्, **चेद्**–यदि, **भरतस्य, प्रियम्**–अभीष्टम्, **भवेत्**, संभावनायां लिङ्। तर्हि, **भरतः, मे**–मम, **प्रेतकृत्यम्**–मरणानन्तरं प्रेतमुद्दिश्य शास्त्रेण विधीयमानं कर्म, और्ध्वदेहिकमिति भावः। **मा स्म कार्षीत्**–न करोतु। अत्र प्रथमार्धे कथितं भरत इति पदं द्वितीयेऽर्धे पुनरुक्तम्। वस्तुतस्तु सर्वनाम्ना तत्परामर्श उचित आसीत्। अतोऽत्र कथितपदत्वं दोषः। उचितं पाठान्तरमुपन्यस्यति **मास्मेत्यादि**। परे तु 'मा स्म कार्षीन्मदीयं स' इत्युचितं पाठमाहुः। उभयोर्युक्तायुक्तत्वं सहृदया एव विचारयन्तु। कवेरशक्त्युन्नयनेन श्रोतुर्वैमुख्यमत्र दूषकताबीजम्।

**अक्रमत्वमिति**। अक्रमपदस्य अवयवार्थं विवृणोति—**अविद्यमान** इति। यत्पदानन्तरं यत्पदोपादानमुचितं ततोऽप्यत्र तदुपादानमक्रमत्वमिति भावः। उदाहरति—**द्वयमिति**। कुमार-

---

पर ) आ चुका है। इसमें 'अस्माभिः' शब्द और 'खिन्ने' शब्द से पहले 'इत्थम्' शब्द न्यून है, अर्थात् इनका प्रयोग आवश्यक है। परन्तु नहीं किया गया, इसलिये न्यूनपदता दोष है।

**कथितपदत्वम्** इति। जो पद पहले प्रयुक्त हो चुका हो उसका पुनः प्रयोग करने से 'कथितपदत्व' दोष है। जैसे **प्रियमिति**। यदि राम का वनप्रवास भरत को प्रिय हो तो वह कभी भी मेरा और्ध्वदेहिक ( प्रेतक्रिया, श्राद्ध आदि ) कर्म न करे। **अत्र** इति। यहाँ 'भरत' शब्द का दोबारा प्रयोग हुआ है। सर्वनाम के द्वारा ही उसका परामर्श ( बोध ) होना चाहिये। यदि 'भरत' के स्थान में 'असौ सुतः' कर दिया जाय तो दोष नहीं रहेगा।

**अक्रमत्वम्** इति। जिसमें पद की स्थिति का ( ठीक ) क्रम न हो उसे अक्रम कहते हैं। अर्थात् जिस पद का जिस पद के अनन्तर प्रयोग होना चाहिये वहाँ उसका प्रयोग न करके अन्यत्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



कला च सा कान्तिमती कलावतस्त्वमस्य लोकस्य च नेत्रकौमुदी" ॥ १८ ॥

[ कुमारस० ]

अत्र "त्वम्" इत्यनन्तरं चकारो युक्तः ।

भग्नप्रक्रमता—भग्नः प्रक्रमः—उद्देशानुगुणः प्रस्तावो यस्मिन् तद् भग्नप्रक्रमम्, तस्य भावः । यथा—

"यशोऽधिगन्तुं सुखलिप्सया वा मनुष्यसङ्ख्यामतिवर्त्तितुं वा ।

---

संभवे पञ्चमे वटुवेषधारिणः शिवस्य तपस्यन्तीं पार्वतीं प्रत्युक्तिरियम् । कपालिनः—मृतमुण्डमालाधारिणः, अत एव जुगुप्सितस्य शिवस्य, प्रार्थनया—प्राप्तिकामनया, संप्रति, द्वयम्, शोचनीयताम्—शोच्यत्वम्, गतम् । किं तद् द्वयमित्याह—सा—प्रागेव कपालिशिरोगता, कान्तिमती—नित्यकान्तियुक्ता, कलावतः—चन्द्रस्य, कला च षोडशो भागश्च, अस्य—लोकस्य, नेत्रकौमुदी—कौमुदीव नेत्रानन्दिनी, त्वं च । कान्तिमतीत्वनेत्रकौमुदीत्वविशेषणयोरुभयत्राप्यन्वयः । प्रागेकैव शोच्या, संप्रति तु त्वमप्यपरेति द्वयं शोच्यमिति समस्तार्थः । शोच्यत्वं जुगुप्सिताश्रयणादिति भावः अत्र 'लोकस्य च' इति समुच्चयार्थश्चकारस्त्वमिति शब्दानन्तरमेव सन्निवेश्यः । अयं भावः—चादयो यदनन्तरमुपात्तास्तस्यैव समुच्चयं द्योतयन्ति । तथा च यस्य समुच्चयो विवक्षितस्तदनन्तरमेवचादीनां प्रयोग उचितः । प्रकृतपद्ये हि 'कलावतः कला च त्वं चैतद् द्वयं शोचनीयतां गतम्' इत्येवं त्वंशब्दार्थस्यैव शोच्यतायां समुच्चयो विवक्षित इति तदग्र एव 'च' शब्दः पठनीयः । परमिह तत्रापठित्वा 'लोकस्य च' इति लोकशब्दाग्रे पठितः । न च लोकशब्दार्थस्य समुच्चयोऽत्र विवक्षितः । तथा चात्रोचितक्रमत्यागाद् अक्रमत्वं दोषः । उद्देश्यप्रतीतिविरह एवात्र दूषकताबीजम् ।

भग्नप्रक्रमतेति । भग्नः—विच्छिन्नः, उद्देशानुगुणः—उपक्रमानुरूपः । प्रस्तावः—संदर्भो यत्र । या सरणिरुपक्रान्ता तयैव सर्वोऽपि संदर्भो निर्वाह्यः । मध्ये उपसंहारे वा क्वापि तत्त्यागो न कार्यः । यदि मध्ये उपसंहारे वा तत्त्यागः क्रियते तदा भग्नप्रक्रमत्वं दोषः । केचित्तु भग्नः प्रक्रमः—उपक्रमो यत्रेत्येवं सरलं व्याचक्षते । उपक्रमस्य भङ्गश्च उपसंहारं यावत् तदनिर्वाहेण जायत इति पूर्ववदेवात्रापि तात्पर्यम् । उदाहरति—यश इति । किरातार्जुनीये तृतीये तपश्चरितुं जिगमिषुमर्जुनं प्रति

---

प्रयोग करने पर 'अक्रमत्व' दोष होता है। जैसे द्वयम् इति । कपालधारी शङ्कर का समागम चाहने वाली दो वस्तुएँ वर्तमान में शोचनीय हैं। (एक तो) वह (प्रसिद्ध) चन्द्रमा की कान्तियुक्त कला और (दूसरी) इस लोक के नेत्रों को कौमुदी (चाँदनी) के समान आनन्द देने वाली तू।

अत्र इति । 'त्वम्' इस शब्द के अनन्तर 'च' का प्रयोग करना चाहिये था। (क्योंकि 'कला' के साथ 'त्वम्' शब्द के अर्थ का ही—'कला और तू' इस रूप से समुच्चय विवक्षित है, लोक का नहीं, जिसका समुच्चय करना हो उसी के आगे 'च' आना चाहिये)।

भग्नप्रक्रमता इति । जिसमें उपक्रम के अनुरूप प्रस्ताव (संदर्भ) नहीं है उसे भग्नप्रक्रम कहते हैं। तात्पर्य यह है—जिस का जिस क्रम से प्रारम्भ किया है, उसका अन्त तक उसी क्रम से निर्वाह करना चाहिये। यदि यह क्रम टूट जाय तो 'भग्नप्रक्रमता' दोष होता है। जैसे—यशो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


निरुत्सुकानामभियोगभाजां समुत्सुकेवाङ्कमुपैति लक्ष्मीः" ॥ १९ ॥ [ किरातार्जु० ]

अत्र "सुखलिप्सया वा" इत्यत्र "सुखमीहितुं वा" इति तुमुनन्तप्रयोग एव युक्तः।

ख्यातिहतता–प्रसिद्धत्यागः। मेघाऽऽदीनां गर्जिताद्येव प्रसिद्धम्, तदन्यथावर्णने ख्यातिहतत्वम्।

---

द्रौपद्या उक्तिरियम्। यशः–कीर्तिम्, अधिगन्तुम्–लब्धुम्, वा–अथवा, सुखलिप्सया–सुखं लब्धुमिच्छया, वा, मनुष्यसंख्याम्–मानुषगणनाम्, अतिवर्तितुम्–अतिक्रमितुम्, अमानुषं कर्म कर्तुं वेति भावः। अभियोगभाजाम्–अभिनिवेशवताम्, निरुत्सुकानाम्–अदुर्मनायमानाना-मित्यर्थः, सिद्धिः–पूर्वोक्तं यशआदि वाञ्छितं वस्तु, समुत्सुकेव–अनुरक्तकान्तेव, अङ्कम्–उत्सङ्ग-मन्तिकं च, उपैति–प्राप्नोति। तस्माद् अस्मद्विरहदुःखमातपःसिद्धेः सोढव्यमिति भावः। अत्र हि अधिगन्तुमिति तुमुनोपक्रान्तम्, परं मध्ये सुखलिप्सयेत्यत्र तत्त्यागः कृतः। अतः प्रक्रमस्य भङ्गादत्र भग्नप्रक्रमो दोषः। उचितं पाठमाह—सुखमिति। एकरूपप्रसृतायाः प्रतीतेः स्थगनमेवात्र दूषकताबीजम्।

ख्यातिहततेति। ख्यातिः प्रसिद्धिः, हता त्यक्ता, यत्र तत् ख्यातिहतम्। तस्य भाव-स्तत्ता। तात्पर्यमाह—प्रसिद्धित्याग इति। अयं भावः—

मञ्जीरादिषु रणितप्रायं पक्षिषु च कूजितप्रभृति।
स्तनितमणितादि सुरते मेघादिषु गर्जितप्रमुखम्॥

इत्यभियुक्तोक्त्या—लोके मञ्जीरादिशब्दे रणितादिशब्दप्रयोग एव प्रसिद्धः। एवं रव इति मण्डूकादिशब्दे, हेषा हेषेति चाश्वशब्दे, बृंहितमिति हस्तिशब्दे, भषणमिति कुक्कुरशब्दे प्रसिद्धम्। एतत्प्रसिद्धिविरुद्धं यदि शब्दप्रयोगः क्रियते तदा प्रसिद्धित्यागेन ख्यातिहतत्वं दोषो भवति। यथा 'घोरो वारिमुचां रवः' इत्यत्र मेघानां शब्दे रवशब्दप्रयोगः प्रसिद्धिविरुद्धः। मेघानां हि गर्जितं प्रसिद्धम्। न तु रवः, स तु मण्डूकानां भवति। कवेर्लोकाननुशीलनोन्नयनेन तद्वचसि वैमुख्यापाद-कत्वमत्र दूषकताबीजम्।

---

इति। यश की प्राप्ति के लिये, अथवा सुख की इच्छा से अथवा मनुष्यगणना से ऊँचा उठने के लिये जो लोग निरन्तर प्रयत्नशील हैं, जिन्हें (कभी भी) उद्वेग नहीं होता, उनकी गोद में लक्ष्मी मानों उत्कण्ठित होकर (स्वयम्) उपस्थित होती है।

अत्र इति। यहाँ 'सुखलिप्सया' के स्थान में 'सुखमीहितुं वा' यह तुमुन्प्रत्ययान्त प्रयोग ही उचित है। (क्योंकि प्रारम्भ 'अधिगन्तुम्' इस प्रकार 'तुमुन्' से ही किया गया है, समाप्ति भी (अतिवर्तितुम्) तुमुन् से ही हुई है, अतः बीच में भी तुमुन् ही आना चाहिये।)

ख्यातिहतता इति। यदि प्रसिद्धि को छोड़ दिया जाय—अर्थात् शब्द-प्रयोग के समय प्रसिद्धि की परवाह न की जाय तब 'ख्यातिहतता' दोष होता है। मेघ आदि का 'गरजना' ही प्रसिद्ध है, इसके विपरीत वर्णन में अर्थात् 'मेघा गर्जन्ति' के स्थान में यदि 'मेघा रवन्ति' ऐसा कह दिया जाय, तब—'ख्यातिहतत्व' दोष होगा। (मेघों का 'गरजना' ही प्रसिद्ध है, 'रव' नहीं।)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


वाक्यान्तरपदानां वाक्यान्तरेऽनुप्रवेशः सङ्करः। यथा—

"किमिति न पश्यसि ? कोपं पादगतं बहुगुणं गृहाणैनम्।
ननु मुञ्च हृदयनाथं सदयं मनसस्तमोरूपम्" ॥ २० ॥

अत्र पादगतं बहुगुणं हृदयनाथं किमिति न पश्यसि ? एनं सदयं गृहाण, मनसस्तमोरूपं कोपं मुञ्चेत्यन्वयः। एकवाक्यगतत्वे तु क्लिष्टत्वमित्यस्माद्भेदः।

वाक्यान्तरे वाक्यान्तरप्रवेशो गर्भितत्वम्।* यथा—

---

* गर्भितत्वं क्वचिद् गुणः, यथा—

"दिङ्मातङ्ग घटाविभक्तचतुराघाटा मही साध्यते
सिद्धा साऽपि वदन्त एव हि वयं रोमाञ्चिताः पश्यत।
विप्राय प्रतिपाद्यते किमपरं रामाय तस्मै नमः
यस्मात् प्रादुरभूत् कथाऽद्भुतमिदं यत्रैव चास्तं गतम्" ॥

अत्र "वदन्त एव हि" इत्यादिवाक्यं वाक्यान्तरमध्ये प्रविष्टं चमत्कारातिशयं पुष्णाति।

---

सङ्करमाह—वाक्यान्तरेति। उदाहरति—किमितीति।

अन्वयं प्रदर्शयति अत्रेति। **पादगतम्**–चरणप्रणतम्। **हृदयनाथम्**–दयितम्। **एनम्**–गुणिनं हृदयनाथम्। **सदयम्**–दयासहितं यथा स्यात् तथा। **गृहाण**–स्वीकुरु, मानत्यागादिना सम्मानयेति भावः। मुद्रितपुस्तकेषु सर्वत्र **'बहुगुणमाद्रियस्वैनम्'** इत्येव पाठ उपलभ्यते, परं तत्र पाठे छन्दोभङ्गः। अत्र किमिति न कोपं पश्यसि, इति प्रथमवाक्ये कोपमिति पदम्, ननु मुञ्च हृदयनाथमित्यादितृतीयवाक्येऽपेक्षितम्। एवं तृतीयवाक्यघटकं हृदयनाथमिति पदम्, द्वितीयवाक्यघटकं बहुगुणमिति पदं च प्रथमेऽपेक्षितम्। एवं सदयमिति पदं तृतीयवाक्यस्थं द्वितीयस्मिन् वाक्येऽपेक्ष्यते तथा चैवमेकवाक्योचितानां पदानामपरवाक्येषु प्रयोगात् संकरोऽत्र दोषः। इदमेव संकीर्णत्वमित्यभिधीयते। क्लिष्टत्वसंकीर्णत्वयोर्भेदं दर्शयति—एकवाक्येति। क्लिष्टत्ववद् आसत्त्यभावेनार्थप्रतीतौ विलम्ब एवात्र दूषकताबीजम्। गर्भितत्वमाह—वाक्यान्तर

---

**वाक्यान्तर** इति। एक वाक्य के पदों का दूसरे वाक्य में प्रयोग करने से **'सङ्कर'** दोष होता है। जैसे **किमिति**।

तू चरणों में विनत, अनेकगुण युक्त (अपने) हृदयनाथ (प्रिय पति) की ओर क्यों नहीं ध्यान देती ? दयापूर्वक इसको स्वीकार कर। मन का अन्धकार (अज्ञान) रूप कोप को छोड़ दे। (यहाँ एक वाक्य के पद दूसरे वाक्य में प्रयुक्त हुए हैं, इसलिये 'संकर' दोष है। किस वाक्य का कौन पद किस वाक्य में प्रयुक्त हुआ है—यह मूल में ही स्पष्ट है।)

**एक** इति। एक वाक्य में यदि दूरान्वय हो तो 'क्लिष्टत्व' दोष होता है। यही संकर से (क्लिष्टत्व का) भेद है। तात्पर्य—'क्लिष्टत्व' एक वाक्य में और 'संकर' अनेक वाक्यों में होता है।

**वाक्यान्तरे** इति। एक वाक्य में यदि दूसरे वाक्य का प्रवेश हो तो 'गर्भितत्व' दोष

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizaqtion by eGangotri


"परापकारनिरतैर्दुर्जनैः सह सङ्गतिः।
कर्त्तव्यः साधुसंसर्गो न विधेया कदाचन"॥ २१॥

अत्र तृतीयपादवाक्यं वाक्यान्तर मध्ये प्रविष्टम्।

अर्थदोषानाह—

"दुष्क्रमग्राम्यकष्टत्वं व्याहतत्वमहेतुता।
अनवीकृतता पौनरुक्त्यं ख्यातिविरुद्धता॥ २२॥
अनुवादो विधेश्चैवमर्थदोषाः प्रकीर्त्तिताः'।

दुष्क्रमता—दुः—दुष्टः, विरुद्ध इति यावत्, क्रमः—वचनक्रमो यस्मिन् स दुष्क्रमः; यथा—वसन्तादिवर्णने प्रथमं प्रवालोद्गमस्य, ततः कुसुमोत्पत्तेः, अनन्तरं पुष्पेषु शिलीमुखानाम् आपतनमिति यथाक्रममेवैतेषामाविष्करणमुचितम्। विशिष्टहेतुं विना ततोऽन्यथावर्णने दुष्क्रमतादोषः। एवमन्यत्रापि।

---

इति। उदाहरति—परापकारेति। 'परापकारनिरतैर्दुर्जनैः सह संगतिः कदाचन न विधेया, साधुसंसर्गः कर्तव्यः' इत्यन्वयः। गर्भितत्वमुदाहरणे संगमयति—अत्रेति। प्रतीतिविच्छेदोऽत्र दोषबीजम्।

अथार्थदोषानाह—दुष्क्रमेति। दुष्क्रम-ग्राम्य-कष्टत्वम्—दुष्क्रमश्च, ग्राम्यश्च, कष्टश्च दुष्क्रमग्राम्यकष्टाः, अर्था इति भावः। तेषां भावस्तत्त्वम्। द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणस्य प्रत्येकमभिसंबन्धाद् दुष्क्रमत्वं ग्राम्यत्वं, कष्टत्वं चेत्यर्थः। इमे दुष्क्रमत्वादयः अर्थदोषाः, प्रकीर्तिताः—कथिताः। अर्थदोषत्वं चैषां शब्दपरिवर्तनेऽपि दोषतादवस्थ्याद् अर्थान्वयव्यतिरेकानुविधानाद् बोध्यम्। इतरत् स्पष्टम्। एतेषां क्रमशो लक्षणोदाहरणानि वक्ष्यन्ते।

दुष्क्रमतेति। दुष्क्रमशब्दार्थमाह—दुरित्यादि। विरुद्धः—युक्त्यसहः। अयमर्थः—प्राग् वक्तव्योऽर्थो यत्र पश्चात् प्रतिपाद्यते, अथवा पश्चाद् वाच्योऽर्थो यत्र प्राग् उच्यते तत्र दुष्क्रमत्वं दोषः। तदुक्तम्—

---

होता है। जैसे परापकार इति। सज्जनों का संग करो। दूसरों के अपकार में लगे हुए दुर्जनों का संग कभी न करो।

अत्र इति। यहाँ तृतीय पाद का वाक्य अन्य ( पहले ) वाक्य में प्रविष्ट हुआ है। इसलिये गर्भितत्व दोष है।

### अर्थदोष

दुष्क्रम इति। दुष्क्रमत्व, ग्राम्यत्व, कष्टत्व, व्याहतत्व, अहेतुता, अनवीकृतता, पौनरुक्त्य, ख्यातिविरुद्धत्व, विध्यनुवाद ये अर्थ दोष कहे गए हैं।

दुष्क्रमता इति। जिस अर्थ का उक्तिक्रम दुष्ट हो, अर्थात् जो अर्थ पहले कहा जाना चाहिये उसको पीछे कहा जाय, और जो पीछे कहा जाना चाहिये उसे पहले कहा जाय, उसे दुष्क्रम' अर्थ कहते हैं। जैसे वसन्त आदि के वर्णन में पहले अङ्कुरोत्पत्ति या नवीन पत्तों के 'प्रादुर्भाव का, उसके अनन्तर पुष्पों के उद्गम का और उसके बाद पुष्पों पर भौरों के आने का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



ग्राम्यत्वं यथा—

"ताम्रभृङ्गारतुल्योऽयमर्को मज्जति वारिधौ" ॥

कष्टत्वम्—अर्थप्रतीतेर्व्यवहितत्वम्। यथा—

---

प्राग् वाच्य उच्यते पश्चात्, पश्चाद् वाच्योऽथवाग्रतः।
कविना शक्तिवैकल्याद् योऽर्थस्तं दुष्क्रमं विदुः॥

यथा—'देहि मे वाजिनं राजन्! गजेन्द्रं वा मदालसम्।' इति। अत्र गजेन्द्रस्य प्रथमं याचनमुचितम्। बहुमूल्यं वस्तु प्रथमं याच्यते, तदप्राप्तिसंभावनायामल्पमूल्यं वस्तु प्रार्थ्यते। गुरुदानाशक्तौ लघुदानौचित्याद्। यस्याल्पमूल्यवाजिदानशक्तिर्नास्ति, स महामूल्यं गजेन्द्रं कथमिव दातुं शक्नुयादिति युक्तिविरुद्धोऽत्र प्रतिपाद्यार्थयोः क्रमः। अतो दुष्क्रमत्वमत्र दोषः। वाजिगजेन्द्रशब्दौ विहाय तत्पर्यायोपादानेऽपि दोषतादवस्थ्यमित्यर्थदोषोऽयम्। उदाहरति—वसन्तेत्यादि। **प्रवालोद्गमस्य**–अङ्कुरोत्पत्तेः नवपल्लवप्रादुर्भावस्य वा। **शिलीमुखानाम्**–भ्रमराणाम्। **आविष्करणम्**–प्रतिपादनम्। **अन्यथा**–विपरीतक्रमेण। युक्तिविरुद्धार्थाभिधानाद् श्रोतुरुद्वेग एवात्र दूषकताबीजम्।

**ग्राम्यत्वमिति**। ग्रामे भवो ग्राम्यः, तस्य भावस्तत्त्वम्। वैदग्ध्यशून्यत्वमिति भावः। उदाहरति—**ताम्रेति**। सायंकालवर्णनमिदम्। अयं पुरो दृश्यमानः, **ताम्रभृङ्गारतुल्यः**–ताम्रः ताम्रवर्णो रक्त इति यावद्, भृङ्गारः पात्रविशेषः, 'झज्झर' इति भाषायाम्, तत्तुल्यः–तत्सदृशः, **अर्कः** सूर्यः, **वारिधौ**–समुद्रे, **मज्जति**–ब्रुडति, अस्तं गच्छति, इति भावः। अत्र सूर्यस्य ताम्रभृङ्गारतुल्यताप्रतिपादनं वैदग्ध्यशून्यम्। केचित्तु—

स ग्राम्योऽर्थोऽरिरंसादिः पामरैर्यत्र कथ्यते। वैदग्ध्यवक्रिमवलं हित्वैव वनितादिषु॥

इति ग्राम्यत्वलक्षणमाहुः। वक्रिमा–वक्रोक्तिः। एतद्ग्राम्यत्वमधमोक्तिषु गुणः, तद् यथा—

एष शशधरबिम्बो दृश्यते हैयङ्गवीनपिण्ड इव।
एते च रश्मिसमूहाः पतन्त्याशासु दुग्धधरा इव॥

अत्र विदूषकोक्तौ शशधरबिम्बस्य नवनीतपिण्डोऽपमा किरणानां दुग्धधारोपमा च ग्राम्यापि न दुष्टा। प्रत्युत हास्यपरिपोषकत्वाद् ग्राम्यत्वमत्र गुणः।

**कष्टत्वमिति** कष्टः प्रतीतौ क्लेशवान्, दुरूह इति भावः, तस्य भावस्त्वम्। दुरूहत्वं

---

वर्णन करना उचित है। किसी विशेष हेतु के विना इसके विपरीत वर्णन करने में 'दुष्क्रमता' दोष होगा। इसी प्रकार और स्थानों पर भी।

**ग्राम्यत्वम्** इति। ग्राम्य अर्थ का वर्णन करने में 'ग्राम्यत्व' दोष होता है। **ताम्र** इति। ताँबे के झज्झर के सदृश (लाल) यह सूर्य समुद्र में डूब रहा है। (यहाँ सूर्य को ताँबे के झज्झर के सदृश कहना ग्राम्योक्ति है, इसलिये ग्राम्यत्व दोष है।)

**कष्टत्वमिति**। जहाँ अर्थ (दुर्बोध होने के कारण) विलम्ब से प्रतीत हो वहाँ 'कष्टत्व'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"सदा मध्ये यासामियममृतनिष्यन्दसुरसा
सरस्वत्युद्दामा वहति बहुमार्गा परिमलम्।
प्रसादं ता एता घनपरिचिताः केन महतां
महाकाव्यव्योम्नि स्फुरितमधुरा यान्तु रुचयः" ॥ २८ ॥

अत्र यासां कविरुचीनां मध्ये सुकुमारचित्रमध्यमाऽऽत्मकत्रिमार्गा भारती चमत्कारं वहति, ता गम्भीरकाव्यपरिचिताः कथमितरकाव्यवत् प्रसन्ना भवन्तु? इत्येकोऽर्थः। यासामादित्यप्रभाणां मध्ये त्रिपथगा वहति, ता मेघपरिचिताः कथं प्रसन्ना भवन्ति?

---

कष्टत्वस्य लक्षणमिति भावः। तदेवाह—अर्थप्रतीतेरिति। व्यवहितत्वम्—विलम्बितत्वम्। उदाहरति—सदेति।

स्वकाव्यस्य गम्भीरचमत्कारकार्थशालितया स्फुटार्थत्वाभावेऽपि दोषाभावसमर्थनाय कस्यचित् कवेरुक्तिरियम्।

यासाम्, कविरुचीनां कवेरभिप्रायाणां काव्यानामिति यावत्, मध्ये सदा, अमृतनिष्यन्दसुरसा—अमृतनिष्यन्दा सुधास्राविणी, सुरसा च सुष्ठु शृङ्गारादिरसयुक्ता च, उद्दामा—प्रौढा, बहुमार्गा—वैदर्भ्यादिरीतित्रयवर्ती, इयम्, सरस्वती—कवितारूपा वाणी, परिमलं—चमत्कारम्, वहति—दधाति। स्फुरितमधुराः—स्फुरिता बुद्धिपथमारूढाः सत्यः, मधुरा मनोहराः, ता एताः—पूर्ववर्णिताः, महताम्—महाकवीनाम्, रुचयः—काव्यरूपा अभिप्रायाः, घनपरिचिताः—गम्भीरकाव्याभ्यस्ताः सत्यः महाकाव्यव्योम्नि—व्योमवदत्यन्तापरिच्छेद्ये महाकाव्ये, केन—कया रीत्या, प्रसादम्—स्फुटताम्, सुबोधतामिति भावः, यान्तु—प्राप्नुवन्तु। एषोऽस्य पद्यस्य प्रकृतोऽर्थः। अप्रकृतोऽर्थो यथा—यासाम्, आदित्यप्रभाणाम्, मध्ये, सदा अमृतनिष्यन्दसुरसा—अमृतनिष्यन्दा जलस्राविणी, सुरसा च स्वादीयसी च, उद्दामा उत्कटप्रवाहा, बहुमार्गा-त्रिपथगामिनी, इयम्, सरस्वती गङ्गाख्या नदी, परिमलम्—सुराङ्गनाङ्गसङ्गसंभवं सौरभम्, वहति। स्फुरितमधुराः—स्फुरितेन प्रकाशेन मधुरा मनोहराः, महताम्—द्वादशादित्यानाम्, रुचयः-प्रभाः, महाकाव्यव्योम्नि-महाकाव्यसदृश आकाशे, घनपरिचिताः—घनैर्मेघैः परिचिताः संबद्धाः आच्छादिताः, सत्यः, केन प्रकारेण, प्रसादम्-स्वच्छतां यान्तु। कथमितरशरदादिकालप्रभावत् स्वच्छा भवन्तु, न कथमपि तथा भवितुमर्हन्तीति भावः। पद्यस्य कठिनत्वात् स्वयमेव तत् संक्षेपेण व्याचष्टे-अत्र यासामिति। सुकुमार-चित्र-मध्यमात्मकत्रिमार्गा—वैदर्भी-गौडी-पाञ्चाल्याख्यं-

---

दोष होता है। जैसे—सदा इति।

अत्र इति। जिन कविरुचियों (कवि के अभिप्रायों) में सुकुमार, चित्र तथा मध्यम इन तीन मार्गों वाली कवि की वाणी चमत्कार को धारण करती है, वे (कविरुचियाँ) गम्भीरकाव्य में स्थित होने के कारण दूसरे काव्यों के सदृश किस प्रकार सुबोध (प्रसन्नाः) हो सकती हैं। यह पहला अर्थ है। जिन आदित्य रश्मियों के बीच में त्रिपथगा गङ्गा वह रही है वे (रश्मियाँ) बादलों से आच्छादित होने के कारण किस प्रकार स्पष्ट हो सकती हैं। यह दूसरा अर्थ है। ये दोनों अर्थ अत्यन्त दुर्बोध हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


इति द्वितीयोऽर्थः। अर्थद्वयमपि नितरां दुर्बोधम्; शब्दानां परिवर्त्तनेऽपि कष्टताया-स्तादवस्थ्यादयमर्थदोषः।

कस्यचित् प्रागुत्कर्षमपकर्षं वा अभिधाय पश्चात् तदन्यथाप्रतिपादनं व्याहतत्वम्। यथा—

"हरन्ति हृदयं यूनां न नवेन्दुकलाऽऽदयः।
वीक्ष्यते यैरियं तन्वी लोकलोचनचन्द्रिका" ॥ २४ ॥

अत्र येषामिन्दुकला नाऽऽनन्दहेतुः, तेषामेवाऽऽनन्दाय तन्व्यां चन्द्रिकात्वारोपः।

---

रीतित्रयवती। अत्रादित्यप्रभारूपो द्वितीयार्थ उपमानम्, तेन सह वाच्यार्थस्योपमा व्यङ्ग्या। पद्यार्थस्य दुरूहत्वमाह—अर्थद्वयमिति। अस्य अर्थदोषत्वं समर्थयते शब्दानामिति। सम्यक्-प्रतीतिविरह एवात्र दूषकताबीजम्।

व्याहतत्वमाह कस्यचिदिति। तदन्यथा प्रतिपादनम्—यस्य उत्कर्षो वर्णितस्तस्यापकर्ष-वर्णनम्, यस्यापकर्षो वर्णितस्तस्योत्कर्षवर्णनमित्यर्थः। उदाहरति—हरन्तीति। यैर्युवभिः, लोकलोचनचन्द्रिका-लोकानां लोचनयोः चन्द्रिका चन्द्रिकावद् आनन्ददायिनी, इयं तन्वी-सुन्दरी, वीक्ष्यते-विशिष्य नेत्रगोचरीक्रियते, तेषां यूनाम्-युवपुरुषाणाम्, हृदयम्, नवेन्दु-कलादयः-नवा अभिनवोदिता, इन्दुकला, आदिर्येषां ते, आदिपदेन चन्द्रिकापद्मादीनां संग्रहः। न हरन्ति-नाकर्षन्ति। तेभ्यश्चन्द्रकलादयो न रोचन्त इति भावः। अत्र प्राक् पूर्वार्धे अरोचकत्व-प्रतिपादनमुखेनेन्दुकला अपकर्षमारोपिताः, परमपरार्धे नायिकायां तत्सम्बन्धि (इन्दुकलासम्बन्धि) ज्योत्स्नारोपेण तस्या (इन्दुकलायाः) एव उत्कर्षः प्रतिपादितः। इदं प्रागपकर्षितस्य पश्चादुत्कर्ष-वर्णनम्। प्रागुत्कर्षितस्य पश्चादपकर्ष वर्णनं यथा—

कान्ते! तव मुखाम्भोजं सुतरां हृदयङ्गमम्।
जितानि येन पद्मानि वसन्ति सलिले सदा॥

अत्र पूर्वार्धे मुखे पद्मत्वारूपेण पद्मानामुत्कर्षो बोधितः, परमपरार्धे तान्येव पद्मानि जितानीत्युक्त्या परममपकर्षं नीतानि। उभयत्रापि पूर्ववर्णितविरुद्धवर्णनेन व्याहतत्वम्। व्याहतत्वं लक्ष्ये संगमयति—अत्र येषामिति। यस्या इन्दुकलाया आनन्दाहेतुतया प्राग् अपकर्षो वर्णितः, पश्चात् तस्या एव तत्सम्बन्धिज्योत्स्नारोपेण आनन्दहेतुत्वप्रतिपादनाद् उत्कर्षः प्रतिपादित इति परस्परविरोधिवर्णनया व्याहतत्वमिति भावः। वाक्यार्थाप्रतीतिरिह दूषकताबीजम्।

---

शब्दानाम् इति। यहाँ शब्द बदल देने पर भी कष्टता ज्यों की त्यों बनी रहती है, इसलिये यह अर्थदोष है।

कस्यचिदिति। किसी वस्तु का पहले उत्कर्ष या अपकर्ष बताकर पीछे यदि उसके विप-रीत वर्णन किया जाय तब 'व्याहतत्व' दोष होता है। जैसे—हरन्ति इति। लोगों के नेत्रों को चन्द्रिका के सदृश आनन्द देने वाली इस सुन्दरी को जो देख लेते हैं उन युवा पुरुषों के हृदय को नवोदित चन्द्रकला आदि (सुन्दर पदार्थ भी) आकृष्ट नहीं करते। अत्र इति। यहाँ चन्द्रकला

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri


अहेतुता—( निर्हेतुता ) हेतोरवचनम्; यथा—

"गृहीतं येनाऽऽसीः परिभवभयान्नोचितमपि
प्रभावाद् यस्याभून्न खलु तव कश्चिन्न विषयः।
परित्यक्तं तेन त्वमसि सुतशोकान्न तु भयाद्
विमोक्ष्ये शस्त्र ! त्वामहमपि यतः स्वस्ति भवते" ॥ २५ ॥

[ वेणीसंहार० ]

अत्र द्वितीयशस्त्रमोचने हेतुर्नोक्त इति निर्हेतुत्वम् ।

---

अहेतुतेति। अकथितो हेतुर्यस्य सोऽहेतुरर्थः, तस्य भावस्तत्ता। हेतोराकाङ्क्षायां विद्यमानायामपि तदनभिधानमहेतुत्वमिति भावः।

उदाहरति—गृहीतमिति। वेणीसंहारे तृतीयाङ्के द्रोणे हते तत्पुत्रस्याश्वत्थाम्नः स्वशस्त्रं प्रत्युक्तिः। शस्त्र ! हे ममायुध ! येन—मत्पित्रा द्रोणाचार्येण, त्वम्, नोचितमपि—ब्राह्मणजात्यननुरूपमपि, परिभवभयात्—परकृतानादरभयाद्, गृहीतम्—धारितम्, आसीः। यस्य—मत्पितुः, प्रभावात् सामर्थ्यात् तव—शस्त्रस्य, विषयः—लक्ष्यः, कश्चिद्, न अभूत् इति न, अपि तु सर्वोऽपि ते विषयोऽभूदिति भावः। तेन—मत्पित्रा, त्वम्, सुतशोकात् सुतस्य मृतत्वेन मिथ्याश्रुतस्य पुत्रस्य, मम अश्वत्थाम्न इति भावः, शोकात्, परित्यक्तम् असि; न तु भयात्—शत्रुभयात्, परित्यक्तमसीति शेषः। अहमपि, तत्सुतोऽश्वत्थामा, त्वाम्, विमोक्ष्ये—त्यक्ष्यामि, यतः—मोक्षणाद्, भवते, स्वस्ति—कल्याणम्, अस्त्विति शेषः।

अत्र यथा द्रोणस्य शस्त्रत्यागे सुतशोको हेतुरुपात्तस्तथाऽश्वत्थाम्नः शस्त्रत्यागे न कश्चिदपि हेतुर्दत्तः, अतो निर्हेतुतात्र दोषः। अत्रेति। द्वितीयशस्त्रमोचने—अश्वत्थाम्नः शस्त्रत्यागे। उद्देश्यप्रतीतिविरह एवात्र दोषबीजम्। अत एव प्रसिद्धेऽर्थे हेतोरनुपादानेऽपि न दोषः। तदुक्तम्—

---

( भी ) जिनके आनन्द का हेतु नहीं है, उन्हीं के आनन्द के लिये सुन्दरी में चन्द्रिकात्व का आरोप किया गया है। अर्थात् पूर्वार्ध में हृदयाकर्षक न होने के कारण जिस चन्द्रकला का अपकर्ष बतलाया है, उत्तरार्ध में उसके विपरीत नायिका में चन्द्रिकात्व का आरोप करके उसी ( चन्द्रकला ) का उत्कर्ष बताया है, इसलिये यहाँ 'व्याहतत्व' दोष है।

अहेतुता इति। जो अर्थ हेतु की अपेक्षा रखता है, परन्तु उसमें यदि कोई हेतु नहीं दिया जाता तब 'अहेतुता' या 'निर्हेतुता' दोष होता है। जैसे गृहीतम् इति। हे शस्त्र ! जिस ( द्रोणाचार्य ) ने अनुचित होने पर भी ( केवल ) तिरस्कार के डर से तुम्हें उठाया था, जिसके प्रभाव से ( संसार में ) ऐसा कोई ( शत्रु ) नहीं जो तुम्हारा लक्ष्य न बना हो। उसने तुम्हें; भय से नहीं, किन्तु पुत्र-शोक से छोड़ दिया है, मैं ( अश्वत्थामा ) भी तुम्हें छोड़ता हूँ, जिससे तुम्हारा कल्याण हो।

अत्र इति। यहाँ ( जैसे द्रोणाचार्य के शस्त्र छोड़ने में 'पुत्रशोक' हेतु दिया है, वैसे )

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri



अनवीकृतत्वं यथा—

"प्राप्ताः श्रियः सकलकामदुघास्ततः किम् ?
दत्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किम् ?
सन्तर्पिताः प्रणयिनो विभवैस्ततः किम् ?
कल्पं स्थितं तनुभृतां तनुभिस्ततः किम् ?" ॥ २६ ॥ [ वैराग्यशत० ]

अत्र "ततः किम् ?" इति न नवीकृतम् ।

---

'निर्हेतुता तु ख्यातेऽर्थे दोषतां नैव गच्छति' ।
चन्द्रं गता पद्मगुणान्न भुङ्क्ते पद्माश्रिता चान्द्रमसीमभिख्याम् ।
उमामुखं तु प्रतिपद्य लोला द्विसंश्रयां प्रीतिमवाप लक्ष्मीः ॥

अत्र रात्रौ पद्मस्य संकोचः, दिवा चन्द्रमसश्च निष्प्रभत्वं लोकप्रसिद्धम्, इति 'न भुङ्क्ते' इति स्वक्षसर्थने हेतुं नापेक्षते ।

अनवीकृतत्वमिति । भङ्ग्यन्तरेण निर्दिष्टत्वं नवीकृतत्वम्, तद्भिन्नमनवीकृतत्वम् । यद्येक एवार्थो भिन्नभिन्नवाक्येषु एकेनैव प्रकारेण निर्दिश्यते तदा अनवीकृतत्वं दोष इति भावः । तदुदाहरणं यथा प्राप्ता इति । वैराग्यशतके शान्तस्योक्तिरियम् । यदि **सकलकामदुघाः**—सकलान्, कामान् मनोरथान्, दुहन्ति पूरयन्तीति तादृश्यः, **श्रियः**—सम्पदः, **प्राप्ताः**, **ततः किम्**—तेन किं फलम् ? तत्त्वज्ञानं विना सर्वस्याकिंचित्करत्वादिति भावः । एवमग्रेऽपि बोध्यम् । यदि **विद्विषताम्**—शत्रूणाम्, **शिरसि**, **पदम्**, **दत्तम्**—न्यस्तम्, शत्रवः पराजिता इति भावः । **ततः किम्** । यदि **प्रणयिनः**—याचकाद्याः, **विभवैः**—समृद्धिभिः, **संतर्पिताः**—तोषिताः, **ततः किम्** । यदि **तनुभृताम्**—शरीरधारिणाम्, **तनुभिः**—शरीरैः, **कल्पम्**—कल्पपर्यन्तम्, **स्थितम्**—न नष्टम्, **ततः किम्** । अत्र प्रथमे पादे ततः किमित्येनेन नैष्फल्यरूपोऽर्थो विवक्षितः, स एव नैष्फल्यरूपोऽर्थः अन्येष्वपि पदेषु 'ततः किम्' इत्येकेनैव प्रकारेण प्रतिपादितः । अतोऽनवीकृतत्वम् । ननु कथित-पदत्वाद् अस्य को विशेष इति चेदुच्यते । 'ततः किम्' इत्यस्य स्थाने 'एतस्मात् किम्' 'इतः किम्'

---

द्वितीय शस्त्रत्याग में ( अश्वत्थामा के शस्त्रत्याग में ) कोई हेतु नहीं दिया इसलिये निर्हेतुता दोष है ।

**अनवीकृतत्वम्** इति । जहाँ एक ही बात प्रकारान्तर से कई बार कही जाय उसे नवीकृत कहते हैं, इसके विपरीत यदि एक ही बात एक ही तरह से अनेक बार कही जाय तो उसे अनवीकृत कहते हैं । जैसे—

**प्राप्ताः श्रिय** इति । यदि सफल कामनाओं को पूर्ण करने वाली लक्ष्मी प्राप्त भी कर ली तो क्या हुआ ? शत्रुओं के सिर पर पाँव रख भी दिया तो क्या हुआ ? याचकों को ऐश्वर्य से तृप्त भी कर दिया तो क्या हुआ ? यदि शरीरधारियों के शरीर कल्प पर्यन्त बने भी रहें तो क्या हुआ ? **अत्र** इति । यहाँ 'ततः किम्' इन पदों से 'लक्ष्मीप्राप्ति' आदि का व्यर्थत्व बताया है। परन्तु सब पादों में एक ही रूप से, उसे नवीन रूप नहीं दिया; इसलिये अनवीकृतत्व दोष है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



पौनरुक्त्यं यथा—

अस्त्रज्वालाऽवलीढप्रतिबलजलधेरन्तरौर्वायमाणे
सेनानाथे स्थितेऽस्मिन् मम पितरि गुरौ सर्वधन्वीश्वराणाम् ।
कर्णालं सम्भ्रमेण व्रज कृप ! समरं मुञ्च हार्दिक्य ! शङ्कां
ताते चापद्वितीये वहति रणधुरां को भयस्यावकाशः ? ॥ २७ ॥

अत्र चतुर्थपादवाक्यार्थः पुनरुक्तः ।

---

इत्येवं शब्दपरिवर्तनेऽपि भङ्गेरेकरूपतया दोषतादवस्थ्येन अनवीकृतत्वस्य अर्थदोषत्वम् । कथितपदत्वं तु शब्ददोषः । नवीकृतत्वं कीदृगिति चेत् श्रूयताम्—

यदि दहत्यनलोऽत्र किमद्भुतम् यदि च गौरवमद्रिषु किं ततः ॥
लवणमम्बु सदैव महोदधेः प्रकृतिरेव सतामविषादिता ॥

अत्र हि सतामविषादिता स्वाभाविकीति नाश्चर्याय, यथाऽनलादेर्दाहकत्वादि । अत्र आश्चर्याभावरूप एक एवार्थः—किमद्भुतम्, ततः किम्, सदैव प्रकृतिरेवेत्येतैर्विभिन्नार्थबोधकैः शब्दैः सूचित इति नवीकृतत्वम् ।

**पौनरुक्त्यमिति** । शब्देन प्रतिपन्नस्यार्थस्य पुनस्तद्वाचकेन पर्यायान्तरेण प्रतिपादनं पौनरुक्त्यम् । यथा **अस्त्रज्वालेति** । वेणीसंहारे तृतीयाङ्के अश्वत्थाम्न उक्तिरियम् । **अस्त्रज्वालावलीढप्रतिबलजलधेः**—अस्त्राण्येव ज्वाला वह्निशिखाः ताभिरवलीढः व्याप्तः, प्रतिबलमेव शत्रुसैन्यमेव, जलधिः तस्य, **अन्तः**—मध्ये, **औवार्यमाणे**—और्वः वाडवाग्निः स इवाचरति तस्मिन्, वाडवाग्नि सदृशे, **सर्वधन्वीश्वराणाम्**—सकलधनुर्धरश्रेष्ठानाम्, **गुरौ**—आचार्यभूते, **सेनानाथे**—दुर्योधनसेनापतौ, **अस्मिन्**—प्रसिद्धशौर्ये **मम**—अश्वत्थाम्नः, **पितरि**—द्रोणाचार्ये **स्थिते**—सति, हे **कर्ण, संभ्रमेण**—पलायनत्वरया, **अलम्**, संभ्रमो न कर्तव्य इति भावः । हे **कृप**—कृपाचार्य ! **समरम्**—संग्रामम्, **व्रज**—गच्छ, रणभूमिमवतरेत्यर्थः । हे **हार्दिक्य**—हे कृतवर्मन् !, **शङ्काम्**—भयम्, **मुञ्च** । **चापद्वितीये** चापं धनुरेव, द्वितीयं सहायं यस्य तादृशे, **ताते**—पितरि द्रोणाचार्ये, **रणधुराम्**—संग्रामभारं सैनापत्यमिति यावत्, **वहति**—धारयति सति, **भयस्य, कः, अवकाशः**—अवसरः, न कोपीत्यर्थः । अत्र द्वितीये तृतीये च पादे यदुक्तं तदेव चतुर्थे शब्दान्तरैः पुनरुक्तम् । निष्प्रयोजनद्वितीयाभिधानेन श्रोतुर्वैमुख्यमिह दूषकताबीजम् ।

---

**पौनरुक्त्यम्** इति । जो अर्थ एक वार बता दिया गया है, उसी को फिर दोबारा कहने से 'पौनरुक्त्य' दोष होता है । जैसे **अस्त्रज्वाला** इति ।

अस्त्र रूपी ज्वाला से व्याप्त शत्रुसेना रूपी समुद्र में वडवानल के सदृश आचरण करने वाले सब धनुर्धारियों के गुरु, और सेनापति मेरे पिता ( द्रोणाचार्य ) के रहते, हे कर्ण ! भागने की आवश्यकता नहीं; हे कृपाचार्य ! संग्राम में जुट जाओ, हे हार्दिक्य ! भय छोड़ दो । धनुर्धारी पिता जी के सेनापति रहते भय के लिए कोई स्थान नहीं ।

**अत्र** इति । यहाँ चतुर्थ पाद का अर्थ पुनरुक्त है, ( क्योंकि यही अर्थ दूसरे पाद में पहले कह दिया गया है । )

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



ख्यातिविरुद्धता यथा—

"ततश्चचार समरे सितशूलधरो हरिः।"

अत्र हरेः शूलं लोकेऽप्रसिद्धम्।

---

ख्यातिविरुद्धतेति। ख्यातिः लोकप्रसिद्धिः, कविप्रसिद्धिश्च, तद्विरुद्धः, तस्य भावस्तत्ता। लोक-कवि-प्रसिद्धिविरुद्धार्थाभिधानं ख्यातिविरुद्धतेति भावः। लोकप्रसिद्धिविरुद्धार्थाभिधानं यथा—**ततश्चचारेति**। ततः—तदनन्तरम्, **शितशूलधरः**—शितस्य तीक्ष्णस्य, शूलस्य, धरो धारकः, **हरिः**—विष्णुः, **समरे**—संग्रामे, **चचार**। अत्र हरेः शूलधारणं लोकप्रसिद्धिविरुद्धम्। महादेवस्यैव लोके शूलधारितया प्रसिद्धेः। शूलपदस्य पर्यायान्तरोपादानेऽपि दोषतादवस्थ्यादर्थदोषत्वम्। अत एव ख्यातिहतत्वादस्य भेदः।

कविप्रसिद्धिविरुद्धाभिधानं यथा साहित्यदर्पणे—

'पादाघातादशोकस्ते संजाताङ्कुरकण्टकः' इति।

इह पादाघातेन अशोकस्याङ्कुरोद्गम उक्तः स च कविप्रसिद्धिविरुद्धः। कविषु पादाघातेन तत्र पुष्पोद्गमस्यैव प्रसिद्धत्वात्।

यत्र तु लोकस्य कवेश्च प्रसिद्ध्योर्विरोधः, तत्र कविप्रसिद्धेरेव बलवत्त्वम्। काव्ये तस्या एव प्रधानत्वाद्। तथा च लोकविरुद्धेऽपि यत्र कविप्रसिद्धिरस्ति न तत्र ख्यातिविरुद्धता। यथा—

कीर्त्या ते शुभ्रया राजन्! लोकैरुद्गीयमानया।
सत्यं बहलपक्षोऽपि सर्वदा शुक्लपक्षति॥

अत्र अमूर्ताऽपि कीर्तिर्ज्योत्स्नावत् प्रकाशरूपा कथितेति लोकविरुद्धमपि कवि प्रसिद्धेर्नदुष्टम्।

कविसमयप्रसिद्धिर्दर्पणे यथा—

मालिन्यं व्योम्नि पापे यशसि धवलता वर्ण्यते हासकीर्त्यो
रक्तौ च क्रोधरागौ सरिदुदधिगतं पङ्कजेन्दीवरादि।
तोयाधारेऽखिलेऽपि प्रसरति च मरालादिकः पक्षिसङ्घो
ज्योत्स्ना पेया चकोरैर्जलधरसमये मानसं यान्ति हंसाः॥
पादाघातादशोकं विकसति बकुलं योषितामास्यमद्यै-
र्यूनामङ्गेषु हारः स्फुटति च हृदयं विप्रयोगस्य तापैः।
मौर्वी रोलम्बमाला, धनुरथ विशिखाः कौसुमाः पुष्पकेतो-
र्भिन्नं स्यादस्य बाणैर्युवजनहृदयं स्त्रीकटाक्षेण तद्वत्॥

---

**ख्यातिविरुद्धता** इति। लोक-प्रसिद्धि और कवि-प्रसिद्धि के विरुद्ध अर्थ के वर्णन में 'ख्याति-विरुद्धता' दोष होता है। जैसे—

**तत** इति। तब तीक्ष्ण शूलधारी विष्णु संग्राम में विचरने लगे। **अत्र** इति। यहाँ हरि (विष्णु) का शूल—शूलधारण करना—लोक में अप्रसिद्ध है। (महादेव को ही शूलधारी कहा जाता है विष्णु को नहीं।)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



विधेः—विधेयस्य, अनुवादः—अप्राधान्येन निर्देशः; यथा—"प्रयत्नपरिबोधितः स्तुतिभिरद्य शेषे निशाम्" इत्यत्र शयितः प्रयत्नेन बोध्यसे इति विधेयम्।

रसदोषानाह—

"रसस्योक्तिः स्वशब्देन स्थायिसञ्चारिणोरपि।
प्रतिकूलविभावादिग्रहो दीप्तिः पुनः पुनः॥ २८॥
अकाण्डे प्रथनच्छेदावङ्गस्याप्यतिविस्तृतिः।
अङ्गिनोऽननुसन्धानं प्रकृतीनां विपर्य्ययः॥ २९॥
इत्यादिकाः सहृदयै रसे दोषाः प्रकीर्त्तिताः"॥

---

अह्नयम्भोजं निशायां विकसति कुमुदं चन्द्रिका शुक्लपक्षे
मेघध्वानेषु नृत्यं भवति च शिखिनां नाप्यशोके फलं स्यात्।
न स्याज्जाती वसन्ते न च कुसुमफले गन्धसारद्रुमाणा-
मित्याद्युन्नेयमन्यत् कविसमयगतं सत्कवीनां प्रबन्धे॥

विधेरनुवादमाह—**विधेरिति**। विधिशब्दे विधीयत इति कर्मणि किप्रत्ययः। तदाह—विधेयस्येति। अनुवादशब्दार्थमाह—**अप्राधान्येनेति**। उदाहरति—**प्रयत्नेति**। वेणीसंहारे तृतीयाङ्के द्रोणवधकुपितस्याश्वत्थाम्नो दुर्योधनं प्रत्याश्वासनोक्तिः। हे राजन्! **त्वम्**, **अद्य स्तुतिभिः**—स्तुतिपाठकानां वैतालिकमागधादीनां स्तवैः, **प्रयत्नेन**, **परिबोधितः**—जागरितः, **निशाम्**, रात्रिमभिव्याप्य [ अत्यन्तसंयोगे द्वितीया ] **शेषे**—निद्रां लप्स्यसे।

अत्र 'पाण्डवभयेन अद्य यावत् तव निद्रा नाभूत्, अद्य तु मया शमितेषु तेषु निःशङ्कतया निद्राणस्त्वं वैतालिकस्तुतिभिः प्रयत्नेन जागरयिष्यसे' इति कविनिबद्धवक्तुरश्वत्थाम्नोऽभिप्रायः, तदनुसारेण चात्र निशायां गाढं शयितस्य प्रयत्नतः परिबोध एव प्राधान्येन विधेयः, न तु 'प्रयत्नपरिबोधितो निशां शेषे' इत्युक्त्या परिबोधितस्य शयनम्। तथा चात्र विधेयस्य प्रयत्न-परिबोधस्य 'प्रयत्नपरिबोधितः' इत्युक्त्यानुवादः कृतः, तेन च तस्योद्देश्यविशेषणतयावगमः, न पुनः प्राधान्येन विधेयतया। अतो विध्यनुवादोऽत्र दोषः।

अयुक्तार्थस्य विधानाद् विध्ययुक्तत्वमित्यप्ययमुच्यते। विधेरयुक्तत्वं विध्ययुक्तत्वम्। विधेर-युक्तता च अविधेयस्य विधानाद् भवति। अत्र हि प्रयत्नबोधनं शयनातिशयव्यञ्जकतया प्राधान्येन बोधनीयमिति तस्यैव शयनविशिष्टस्य तस्य वा विधेयत्वं युक्तम्, न तु शयनमात्रस्य। 'प्रयत्न-

---

विधेः इति। यदि विधेय का अप्रधानरूपेण निर्देश हो तब 'विध्यनुवाद' दोष होता है। जैसे प्रयत्न इति। स्तुतियों के द्वारा प्रयत्न से जगाए गए तुम ( दुर्योधन ) अब रात भर ( सुख की नींद ) सोओगे। इत्यत्र इति। यहाँ '( सुख से ) सोए हुए तुम प्रयत्नपूर्वक जगाए जाओगे' यह विधेय है। तात्पर्य यह है—यहाँ सुख से सोए हुए का प्रयत्नपूर्वक जगाना विधेय है, न कि जगाए हुए का सुखपूर्वक सोना। परन्तु 'प्रयत्नपरिबोधितः शेषे' ऐसा कह कर विधेय को विशेषण बना दिया गया है, इस लिये 'विध्यनुवाद दोष' है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



**रसस्य स्वशब्देन—"रसः" इति शब्देन, हास्यादिशब्देन वा अभिधानम्,**

---

परिबोधितः शेपे' इति प्रयत्नजागरितस्य शयनविधानेऽसांगत्याच्च। तथा चात्राविधेयस्य शयनस्य विधानाद् विध्ययुक्तत्वं दोषः। विधेयाविमर्शे तु विधेयस्यैव विधिः, किन्तु पौर्वापर्यव्यतिक्रमेण समासेन वा तस्याविमर्शमात्रम्, इह तु अविधेयस्य विधानमिति ततो भेदः। 'सुखेन शयितश्चिरादुषसि बोध्यसे मागधैः' इति पाठे तु न विध्यनुवादो विध्ययुक्तत्वं वात्र दोषः। विवक्षितार्थानिर्वाह एवात्र दूषकताबीजम्।

एवं शब्दार्थदोषान्निरूप्यावसरप्राप्तान् रसदोषानाह—**रसस्योक्तिरिति**।

व्याचष्टे **रसस्येति**। **स्वशब्देन**—सामान्यतो विशेषतश्चेति शेषः। तदेवाह—**रस** इति। रस इति सामान्दरसबोधकः, हास्यादिशब्दस्तु विशेषेण तत्तद्रसबोधकः। **स्थायिनामिति**। 'स्वशब्देनोक्तिः' इति पदद्वयमत्राप्यन्वेति। तदेवाह—**स्वनाम्ना कथनमिति**। अत्रापि सामान्यतो विशेषतश्चेति, शेषो बोध्यः। तत्र स्थायिनां सामान्य शब्दः स्थायीति शब्दः, विशेषशब्दस्तु हासादिशब्दः, एवं संचारिणां कृते सामान्यशब्दौ संचारिव्यभिचारिशब्दौ। विशेषशब्दस्तु निर्वेदादिशब्दः।

तत्र रसस्य सामान्यशब्देनोक्तावुदाहरणं यथा—

'तामुद्वीक्ष्य कुरङ्गाक्षीं **रसो** नः कोप्यजायत।'

अत्र 'रसः' इति सामान्यशब्देन कथनम्।

विशेषशब्देनोक्तौ यथा—

'चन्द्रमण्डलमालोक्य **शृङ्गारे** मग्नमन्तरम्।'

अत्र 'शृङ्गार' इति विशेषशब्देन कथनम्।

इदमत्र बोध्यम्—विभावादिभिरभिव्यक्तस्य रसस्य स्वशब्देनाभिधाने वमनं नाम दोषो भवति। आस्वादापकर्ष एव तत्र दोषबीजम्।

स्थायिभावस्य विशेषतः स्वशब्दोक्तिर्यथा—

'अजायत **रतिस्तस्यास्त्वयि** लोचनगोचरे।'

अत्र रतिरिति शृङ्गारस्थायिनो विशेष्योपादानम्। इदमेव—

---

रस-दोष

**रसस्य इति**। किसी रस का उसके वाचक पद से अर्थात् सामान्यवाचक 'रस' शब्द से या विशेषवाचक 'हास्य' आदि शब्द से कथन करना, इसी प्रकार हास आदि स्थायिभाव और निर्वेद आदि संचारिभावों को भी उनके वाचक पदों से कहना, विरोधि-रस के विभाव आदि का वर्णन करना, रस को बार-बार दीप्त करना, बेमौके रस का विस्तार या विच्छेद करना, अङ्गभूत रस को विस्तृत करना, प्रधान को भुला देना, (दिव्य अदिव्य आदि) प्रकृतियों का विपर्यय—उलट-पुलट कर देना इत्यादि रस के दोष सहृदयों ने कहे हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



स्थायिनां—हासाऽऽदीनां सञ्चारिणां—निर्वेदादीनाञ्च, स्वनाम्ना कथनं दोषः। प्रतिकूलानां—विरुद्धानाम्, विभावाऽऽदीनां ग्रहः—ग्रहणम्।

यथा—आदिमे निर्वेदाऽऽदीनां शान्तसञ्चारिणाम्, वीरे च वैवर्ण्यत्रासाऽऽदीनां भयानकस्यानुभावाऽऽदीनां ग्रहणम्।

---

'स्थाय्यजायत कोऽप्यस्यास्त्वयि लोचनगोचरे।'

इत्येवं पाठऽपरिवर्तने स्थायिनः सामान्यतः स्वशब्दोक्तेरुदाहरणं भवितुमर्हति।

व्यभिचारिभावस्य स्वशब्दोक्तिर्यथा—

'जाता लज्जावती मुग्धा प्रियस्य परिचुम्बने'।

अत्र लज्जाया व्यभिचारिभावस्य लज्जेति स्वशब्देनोक्तिः। स्वस्वानुभावैरभिव्यक्ता एव व्यभिचारिणः रसमास्वादयन्ति। न तु स्वशब्दोपात्ताः। तथा चात्र प्रथमे पादे 'आसीन्मुकुलिताक्षी सा' इत्येवं लज्जायाः स्वानुभावमुकुलिताक्षीत्वमुखेन कथनं युक्तम्।

जाता संचारिसंक्रान्तिर्मुग्धायाश्चुम्बति प्रिये।

इत्येवं पाठपरिवृत्तौ व्यभिचारिभावस्य सामान्यशब्देनोक्तेरुदाहरणमिदम्। अत्रापि पूर्ववदेवास्वादापकर्षो दुष्टिबीजं बोध्यम्।

**प्रतिकूलानामिति।** प्रकृतरसप्रतिकूलानामिति भावः। **विभावादीनाम्—इति।** विरोधिरसान्तरसंबन्धिनामिति शेषः, आदिपदेन अनुभावसंचारिणोर्ग्रहणं बोध्यम्। तथा च प्रकृतरसप्रतिकूलानां विरोधिरसान्तरसंबन्धिनां विभावादीनां ग्रहोऽपि दोष इति भावः। वस्तुतस्तु 'प्रतिकूलविभावादिग्रहः' इत्यस्य 'प्रतिकूलः—प्रकृतरसादेर्विरोधी रसादिः, तत्संबन्धिनां विभावादीनां ग्रहो—निबन्धनम्' इत्येव सर्वानुमतं सरलं व्याख्यानं युक्तम्।

तत्र प्रतिकूलविभावोदाहरणं यथा दर्पणे—

मानं मा कुरु तन्वङ्गि! ज्ञात्वा यौवनमस्थिरम्'।

अत्र यौवनास्थैर्यनिवेदनं प्रकृतशृङ्गाररसप्रतिकूलस्य शान्तस्योद्दीपनविभावः। स चात्र विरोधिरसोपस्थापनया प्रकृतरसपोषं व्याहन्ति। एवं प्रतिकूलानुभावसंचारिस्थलमाह—**आदिम इति। आदिमे—शृङ्गाररसे। निर्वेदादीनामिति।** यद्यपि निर्वेदो न शान्तस्य व्यभिचारी किन्तु स्थायी, तथापि मतान्तरेणेदं बोध्यम्। तदुक्तं काव्यप्रदीपे—'तस्माच्छमोऽस्य स्थायी निर्वेदादयस्तु व्यभिचारिणः' इति। अस्य—शान्तस्येत्यर्थः। इदं तु बोध्यम्—प्रबलानां समबलानां वा प्रतिकूलरसाङ्गानामेव निबन्धनं प्रकृतरसपोषं विहन्तीति तत्रैवायं दोषः। यत्र तु प्रतिकूलरसाङ्गभूता अपि विभावादयो निर्बलाः प्रकृतरसविभावादिभिर्बाध्या भवन्ति, तत्र नायं दोषः। प्रत्युत प्रकृतरसादिपरिपोषकत्वाद् गुणः। तदुक्तम्—

'संचार्यादेर्विरुद्धस्य बाध्यत्वेन वचो गुणः' इति।

---

**यथा आदिमे इति।** प्रतिकूलविभावादि का ग्रहण—जैसे शृङ्गाररस में शान्तरस के सञ्चारी निर्वेद आदि का ग्रहण, वीररस में विवर्णता, त्रास आदि भयानकरस के अनुभावों का ग्रहण।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



पुनः पुनर्दीप्तिर्यथा—कादम्बर्यां महाश्वेताविलापे।

अकाण्डे-अनुचितेऽवसरे प्रथनं-प्रकटनम्। यथा-वेण्यां द्वितीयेऽङ्के अनेकवीर-सङ्क्षये प्रवृत्ते दुर्योधनस्य भानुमत्या प्रमोदवर्णनम्।

अकाण्डे छेदः, यथा—वीरचरिते राघवभार्गवयोर्द्वाराधिरूढे संग्रामे "कङ्कणमोचनाय गच्छामि" इति राघवस्योक्तिः।

---

यथा—'क्वाकार्यं शशलक्ष्मणः क्व च कुलं भूयोऽपि दृश्येत सा
दोषाणां प्रशमाय नः श्रुतमहो कोपेऽपि कान्तं मुखम्।
किं वक्ष्यन्त्यपकल्मषाः कृतधियः स्वप्नेऽपि सा दुर्लभा
चेतः स्वास्थ्यमुपेहि कः खलु युवा धन्योऽधरं धास्यति॥'

अत्र चतुर्षु पादेषु पूर्वभागप्रतिपाद्यानां विरोधिशान्ताङ्गानां वितर्कमतिशङ्काधृतीनामुत्तर-भागप्रतिपाद्याभिरभिलाषाङ्गभूताभिरौत्सुक्यस्मृतिदैन्यचिन्ताभिर्बाधः पर्यन्ते च चिन्तायामेव पर्यवसानम्। तथा चात्रोपात्तानामपि विरोधिरसाङ्गानां बाध्यत्वान्न दोषः। प्रत्युत भावशबलता-परिपोषकत्वाद् गुणत्वम्।

**दीप्तिः पुनः पुनरिति**। वेद्यान्तरेण विच्छिद्य विच्छिद्य ग्रहणमित्यर्थः। प्रबन्धे प्रकृतस्य रसस्य प्रसङ्गान्तरेण विच्छिन्नस्य पुनर्दीपने सामाजिकानां न साकल्येन रसास्वाद इति विच्छिन्न-दीपनं तत्र दोष इति भावः। उदाहरणस्थलमाह **कादम्बर्यामिति**। इदं तु बोध्यम्—अङ्गरसादि-विषया पुनः पुनर्दीप्तिर्दोषः। अङ्गिनस्तु सा (पुनः पुनर्दीप्तिः) महाभारतादौ शान्तादेरिव न वैरस्यमावहति।

**अकाण्डे प्रथनच्छेदाविति**। 'अकाण्डे' इत्यस्य प्रत्येकमभिसम्बन्धः। अकाण्डे प्रथनम्, अकाण्डे छेदश्चेति भावः। छेदो विच्छेदः। क्रमशो व्याचष्टे—**अकाण्ड इति**। उदाहरणमाह **वेण्या-मिति**। **प्रमोदवर्णनम्**—शृङ्गारवर्णनम्। तदा करुणस्य वीरस्य वावसरो न शृङ्गारादेः। न हि शोकोत्साहवासनानिरुद्धे चेतसि शृङ्गारः पदमपि लभते, कुतस्तु तदास्वाद इति भावः। अकाण्डे छेदमुदाहरति—**वीरचरित इति**। **राघवभार्गवयोः**—रामपरशुरामयोः। **द्वाराधिरूढे**—द्वारमधि-रूढे, प्रारब्ध इत्यर्थः। क्वचित्तु 'धाराधिरूढे वीररसे' इति पाठः। तत्र धाराधिरूढे धारामधिरूढे प्रवाहरूपेण प्रवृत्त इत्यर्थः। 'दूरमधिरूढे' इति पाठान्तरे त्वत्यन्तमुद्रिक्त इत्यर्थो बोध्यः।

**कङ्कणमोचनायेति**। कङ्कणम्—विवाहकाले हस्ते धार्यमाणं मङ्गलसूत्रम्। 'कंगना' इति भाषायां प्रसिद्धम्। तदानीं हि तथा वचनं व्याजेन निर्गमं प्रतिपादयद्वीरत्वाभावे पर्यवस्यतीति दोषः।

---

**पुनरिति**। रस की बार-बार दीप्ति, जैसे कादम्बरी में महाश्वेता के विलाप में।

**अकाण्डे इति**। बेमौके रस का प्रथन-फैलाना, जैसे वेणीसंहार के दूसरे अङ्क में जब अनेक (कौरव) वीरों का नाश हो रहा था उस समय दुर्योधन का भानुमती के साथ प्रमोद (शृङ्गार) वर्णन।

**अकाण्डे छेद इति**। बेमौके रस का विच्छेद, जैसे वीरचरित में राम और परशुराम की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



**अङ्गस्य अतिविस्तृतिः, यथा—किरातार्जुनीये सुराङ्गनाविलासाऽऽदिवर्णने।**

**अङ्गिनोऽननुसन्धानम्, यथा—रत्नावल्यां चतुर्थेऽङ्के बाभ्रव्याऽऽगमने सागरिकाया विस्मृतिः।**

**प्रकृतयः—दिव्याः, अदिव्याः, दिव्यादिव्यश्च। तेषु च धीरोदात्ताऽऽदयः। तत्र**

---

**अङ्गस्याप्यतिविस्तृतिरिति।** **अङ्गस्य** अप्रधानस्य, **अतिविस्तृतिः**—अतिविस्तरेण वर्णनमपि। दोष इति शेषः। उदाहरणमाह **किरातार्जुनीय इति।** अप्रधानस्य ह्यतिशयितं वर्णनं प्रधानमुपसर्जनीकरोति। किरातार्जुनीये हि वीरो रसः प्रधानं शृङ्गारादि रसान्तरं चाप्रधानम्। अङ्गभूतशृङ्गारस्यातिशयेन वर्णने नाङ्गी वीरः प्रकृष्यते, प्रत्युतापकर्षमनुभवन् नायकापकर्षे पर्यवस्यति।

**अङ्गिनोऽननुसंधानमिति।** **अङ्गिनः**—प्रबन्धव्यापिनः प्रधानस्य, नायकस्य नायिकाया वा, अननुसंधानं विस्मरणम्, उपेक्षणम्। दोष इति शेषः। रसस्यालम्बनाश्रययोर्मध्ये मध्येऽनुसंधानं चेन्न भवति तर्हि तदनुसंधानाधीना रसप्रतिपत्तिधारापि तदननुसंधाने विरता भवतीति अङ्गिनोऽननुसंधानं दोष इति भावः। उदाहरणमाह—**रत्नावल्यामिति।** अयं भावः—रत्नावल्यां नाटिकायां वत्सराजो नायकः। सिंहलेश्वरसुता सागरिका च नायिकेत्युभावपीमावङ्गिनौ भवतः, तत्र प्रतिपाद्यस्य शृङ्गारस्य तावेवालम्बनीभूतावाश्रयीभूतौ च। यदा सागरिकायाः पितुर्गृहाद् बाभ्रव्यो नाम कञ्चुकी प्राप्तः। तदा वत्सराजेन विजयवर्मवृत्तान्तश्रवणासक्तेन सागरिकाया नाममात्रेणापि स्मरणं न कृतम्। तेन नाटिकाप्रतिपाद्यः शृङ्गाररसो विच्छिन्नप्रायः। रसप्रतिपत्ते रसालम्बनाश्रयोभयानुसंधानाधीनत्वात्। तथा चात्राङ्ग्यननुसंधानं दोषः।

कारिकायां प्रोक्तं 'प्रकृतीनां विपर्ययः' इति वाक्यं व्याचष्टे—**प्रकृतय इति।** प्रकृतयो नायकाः। तल्लक्षणं तु चतुर्थशिखायां नाटकप्रकरणे प्रोक्तं व्याख्यातं च। ते च दिव्यादिभेदेन त्रिधा भवन्ति, तदेवाह—**दिव्या इति।** दिव्यादीनां लक्षणमपि पुरस्तात् प्रतिपादितम् (पश्य पृ० ८०)। ते च दिव्यादयः प्रत्येकं चतुर्धा भवन्ति धीरोदात्तः, धीरललितः, धीरोद्धतः, धीरप्रशान्तश्चेति। तदेवाह—**तेषु चेति।** ते धीरोदात्तादयोऽप्युत्तममध्यमाधमभेदेन प्रत्येकं त्रिधा विभज्यन्ते। इत्थं संकलनेन षट्त्रिंशद्भेदाः प्रकृतयो भवन्ति। तासां प्रकृतीनां विपर्ययोऽनुचितं वर्णनं प्रकृतिविपर्यय इत्युच्यते।

---

संग्रामचर्चा छिड़ने पर 'मैं कङ्कण (कँगना) खुलवाने जाता हूँ' इस प्रकार राम की उक्ति। (ऐसा करने से वहाँ उत्साह [ वीर रस ] विच्छिन्न हो गया है।)

**अङ्गस्य इति।** अङ्ग का अतिविस्तार, जैसे किरातार्जुनीय के आठवें सर्ग में सुराङ्गनाओं के विलास आदि के वर्णन करने में।

**अङ्गिन इति।** प्रधान को भूल जाना, जैसे रत्नावली के चौथे अङ्क में बाभ्रव्य के आने पर (वत्सराज का) सागरिका को भूल जाना।

**प्रकृतय इति।** दिव्य, अदिव्य और दिव्यादिव्य ये तीन प्रकार की प्रकृतियाँ (नायक) हैं। इनमें जो प्रकृति धीरोदात्त आदि जैसी भी हो उसका वैसा वर्णन न करने में 'प्रकृतिविपर्यय'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



यो यथाभूतः, तस्यायथावर्णने प्रकृतिविपर्य्ययो दोषः; यथा—रामस्य च्छद्मना बालिवधः। यथा वा—कुमारसम्भवे अष्टमे उत्तमदेवतयोः पार्वतीयपरमेश्वरयोः सम्भोगवर्णनम्।

दोषाणां क्वचिददोषत्वं क्वचिद् गुणत्वञ्च—

उक्तानां दोषाणां केषाञ्चित् क्वचिददोषत्वं, क्वचिद् गुणत्वञ्च। तच्च तत्तद्दोषोल्लेखस्थलेषु ( पत्राधोभागे ) द्रष्टव्यम्।

"अनुकरणञ्च सर्वेषां दोषाणां स्याददोषता"।

यथा—'प्रलपत्येष वैधेयः स्कन्धस्ते यदि बाधति'।

अत्र बाधतीति दुष्टमप्यनुकरणत्वाददुष्टम्।

इति दोषविवेचनं नाम पञ्चमशिखा।

---

यत्र प्रकृतौ यदुचितं तदेव तत्र वर्णनीयम्। अयथावर्णने प्रकृतिविपर्ययो दोष इति भावः। उदाहरणमाह **रामस्येति**। छद्मवधो हि धीरोद्धतस्य भीमादेः शोभते, न पुनर्धीरोदात्तस्य रामस्य। उदाहरणान्तरमाह—**यथा वेति**। उत्तमदेवतयोः संभोगवर्णनं पित्रोरिवात्यन्तमनुचितमिति भावः।

एवमन्यदपि प्रकृतिविपर्यय उदाहर्तव्यम्। पूर्वोक्तानां पदवाक्यादिदोषाणां क्वचिद् गुणत्वं चेति वक्तुमाह—**उक्तानामिति**। **पत्राधोभाग** इति। अस्माभिस्तु तत् सर्वं प्रायेण टीकायामेव सन्निवेशितम्।

**अनुकरणेति**। अन्योच्चारितस्य शब्दस्य तत्स्वरूपमात्रबोधाभिप्रायेण तथैवोच्चारणमनुकरणमित्युच्यते। तत्र सर्वेषामपि श्रुतिकटुत्वादिदोषाणामदोषत्वमेव। तस्य शब्दस्यान्यथा वक्तुमशक्यत्वेन दोषबीजस्य श्रोतृवैमुख्यादेस्तत्राभावादिति भावः। उदाहरणमाह—**प्रलपत्येष** इति। **वैधेयः**—मूर्खः। अन्यत् स्पष्टम्। अत्र यद्यपि 'बाधति' पदं च्युतसंस्कृति, बाधतेरनुदात्तेत्त्वात् ततः परस्मैपदस्य व्याकरणविरुद्धत्वात्। तथापि न तद् दुष्टम्। परोक्तानुवादत्वात्।

इति श्रीद्रोणाश्रमाभिजन-श्रीमदच्युतानन्दनन्दन-श्रीपरमेश्वरानन्दशर्मकृतायां बालबोधिन्यां काव्यदीपिकाव्याख्यायां दोषविवेचननाम्नी पञ्चमशिखा समाप्ता।

---

दोष होता है। जैसे राम का छल से बालिवध करना—प्रकृतिविपर्यय है, ( क्योंकि राम धीरोदात्त प्रकृति है, छल से वध करना धीरोदात्त का कार्य नहीं, किन्तु धीरोद्धत का है। ) और भी जैसे—कुमारसंभव के आठवें सर्ग में उत्तम देवता पार्वती और परमेश्वर का संभोगवर्णन—प्रकृतिविपर्यय है ( माता-पिता के संभोग के वर्णन के समान यह वर्णन अत्यन्त अनुचित है, दिव्यप्रकृति का ऐसा वर्णन नहीं करना चाहिये। )

दोष कहाँ अदोष हो जाते हैं और कहाँ गुण—

**उक्तानाम्** इति। उक्त दोषों में कुछ कहं दोषों नहीं रहते और कहीं गुण बन जाते हैं।

**अनुकरण** इति। अनुकरण में सब दोष अदोष हो जाते हैं—दोष नहीं माने जाते। जैसे **प्रलपति** इति। यह मूर्ख कहता है 'यदि तुम्हारा कन्धा पिरा रहा है'। **अत्र** इति। यहाँ 'बाधति' पद 'च्युतसंस्कृति' होने से दुष्ट है। ( क्योंकि 'बाध्' ) धातु आत्मनेपदी है, 'बाधते' ऐसा प्रयोग होना चाहिये ) तथापि अनुकरण होने के कारण अदुष्ट है—दुष्ट नहीं माना जाता।

दोषविवेचन नामक पाँचवीं शिखा समाप्त।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

# षष्ठशिखा

## गुणस्वरूपमाह मम्मटः—

"ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्य्यादय इवाऽऽत्मनः ।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः" ॥ १ ॥

आत्मन एव हि यथा शौर्य्याऽऽदयः, नाऽऽकारस्य, तथा रसस्यैव माधुर्याऽऽदयो

---

### षष्ठशिखा

दोषान्निरूप्य गुणान् निरूपयति—**ये रसस्येति**। **आत्मनः**—जीवात्मनः, **शौर्यादय इव**—शौर्यादयो यथा, तथैव **अङ्गिनः**—काव्ये प्रधानतया स्थितस्य, [ अङ्गिन इत्यात्मविशेषणमपि, शरीरे मुख्यतया स्थितस्येत्यर्थः ] **रसस्य**—शृङ्गारादेः, **ये**—वक्ष्यमाणाः, **धर्माः**—माधुर्यादयः सन्ति, **ते उत्कर्षहेतवः**—स्वाश्रयोत्कर्षनिमित्तभूताः, **अचलस्थितयः**—अचला स्वाश्रयाव्यभिचारिणी, स्थितिः येषां तादृशाश्च सन्तः [ उभयमपि विशेषणं हेतुगर्भम्, उत्कर्षहेतुत्वात्, अव्यभिचारिस्थितिकत्वाच्चेत्यर्थः ] **गुणाः**—गुणपदवाच्याः **स्युः**। यथा शौर्यादयो धर्माः शरीरे प्रधानीभूतस्य जीवात्मन उत्कर्षहेतुतया तं विना क्षणमप्यनवस्थानेन च तद्गुणा उच्यन्ते, तथैव काव्ये प्रधानीभूतस्य रसस्य उत्कर्षहेतवः, तं विना क्षणमप्यनवतिष्ठमाना धर्माः तस्य गुणा उच्यन्त इति भावः। तथा च रसोत्कर्षकत्वे सति रसाव्यभिचारिस्थितिकत्वमिति गुणलक्षणं निष्पन्नम्। सत्यन्तानुपादाने रसाव्यभिचारिस्थितिकत्वस्य रसत्वशृङ्गारत्वादावपि सम्भवाद् अतिव्याप्तिः। द्वितीयदलानुपादाने रसोत्कर्षकत्वस्य अलङ्कारेष्वपि सत्त्वादतिव्याप्तिः।

रसस्यात्मोपमया तद्धर्माणां च शौर्याद्युपमया यत् सूच्यते तदाह—**आत्मन एवेति**। यथा शौर्यादयः शरीरिणो जीवात्मन एव गुणा न पुनस्तच्छरीरस्य, तथैव माधुर्यादयोऽपि अङ्गिनो रसस्यैव गुणाः, न पुनस्तदङ्गभूतानां वर्णानाम्। यथा चक्षुराद्यगोचरोऽपि शौर्यादिरात्मधर्मस्तदनुकूलया शरीराकृत्या व्यज्यते, तथैव माधुर्यादिरपि रसधर्मस्तदनुकूलैर्वर्णैरभिव्यज्यते। 'मधुरा

---

### षष्ठशिखा

#### गुण का स्वरूप

**ये इति**। जैसे शूरता आदि धर्म अङ्गी ( शरीरधारी ) आत्मा के उत्कर्ष के हेतु होने के कारण और नियम से उसमें ( आत्मा में ) रहने के कारण उसके ( आत्मा के ) गुण माने जाते हैं, इसी प्रकार अङ्गी ( प्रधान ) रस के धर्म उसके ( रस के ) उत्कर्ष के हेतु होने के कारण और नियम से उसमें ( रस में ) रहने के कारण उसके ( रस के ) 'गुण' कहलाते हैं।

**आत्मन इति**। जैसे शौर्य आदि आत्मा के ही गुण हैं आकार-शरीरादि के नहीं, इसी तरह माधुर्य आदि भी रस के ही गुण हैं, वर्णों के नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


गुणाः, न वर्णानाम् । अचलस्थितयः—नियतावस्थानाः ।

गुणविभागः—

"माधुर्य्यौजःप्रसादाऽऽख्यास्त्रयस्ते समुदीरिताः ।

माधुर्य्यलक्षणमुक्तं काव्यप्रकाशे—

आह्लादकत्वं माधुर्य्यं चित्तस्य द्रुतिकारणम्" ॥ २ ॥

आह्लादकत्वम्—आनन्दजनकत्वम् । द्रुतिः—गलितत्वमिव ।

रसविशेषे द्रुतेरातिशय्यमाह—

"करुणे विप्रलम्भे तत् शान्ते चातिशयान्वितम्" । [ मम्मटः ]

अत्यन्तद्रुतिहेतुत्वादित्यर्थः ।

रचनायां माधुर्य्यलक्षणम्—

"मूर्द्धिन वर्गान्त्यवर्णेन युक्ताष्ट-ठ-ड-ढान् विना ।

---

वर्णाः' इत्यादिव्यवहारस्तु शौर्योचितस्याकारस्य 'शूरोऽस्याकारः' इति व्यवहारवदौपचारिक एवेति भावः । आकारस्य-शरीरस्येत्यर्थः । नियतावस्थानाः-नियतं स्वाश्रयाव्यभिचारि, अवस्थानं येषां तादृशाः । नियमेन स्थितिमन्त इति भावः ।

अथ गुणान् विभजति—माधुर्यौज इति । स्पष्टम् । आह्लादकत्वमिति । आह्लादकत्वं माधुर्यस्य लक्षणमिति भावः । तत्कार्यमाह—चित्तस्य द्रुतिकारणम् इति । माधुर्यं नाम गुणश्चित्तस्य द्रुतिं द्रवीभावमुत्पादयतीत्यर्थः । 'शृंगारे' इति शेषो बोध्यः । गलितत्वमिव-द्वेषादिजन्यकाठिन्याभावः, सुहृदयानुभवसिद्धः सुकुमारश्चित्तस्यावस्थाविशेष इति यावत् । करुण इति । तत्-माधुर्यम् , करुणे-करुणारसे, विप्रलम्भे-विप्रलम्भशृंगारे, शान्ते-शान्तरसे च, अतिशयान्वितम्-संभोगशृङ्गारापेक्षया उत्तरोत्तरमतिशयेन आधिक्येन, अन्वितं युक्तं भवति । संभोगशृङ्गारपेक्षया करुणे, तदपेक्षया विप्रलम्भे, ततोऽपि शान्ते माधुर्यमधिकं भवतीति भावः । तत्र हेतुमाह—अत्यन्तेति । के वर्णाः कीदृशी च रचना माधुर्यमभिव्यञ्जन्तीत्याकाङ्क्षायामाह—मूर्ध्नीति ।

---

नियतावस्थानाः—नियम से रहने वाले ।

गुणों का विभाग—

माधुर्य इति । वे गुण माधुर्य, ओज और प्रसाद नाम वाले तीन हैं ।

माधुर्य का लक्षण—

आह्लादकत्वम् इति । चित्त की द्रुति का कारण आह्लादकत्व को 'माधुर्य' कहते हैं । आनन्दजनकत्वम्-अलौकिक आनन्द उत्पन्न करना । गलितत्वमिव-चित्त का पिघल सा जाना ।

भिन्न-भिन्न रसों में द्रुति की अधिकता—

करुण इति । वह माधुर्य गुण अत्यधिक द्रुति का हेतु होने के कारण करुण, विप्रलम्भ, शृङ्गार और शान्तरस में ( उत्तरोत्तर ) अधिक होता है ।

रचना में माधुर्य का लक्षण—

मूर्ध्नि इति । ट, ठ, ड, ढ इन वर्णों को छोड़कर जो वर्ण आदि में अपने वर्ग के अन्तिम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri


र-णौ लघू च तद्व्यक्तौ वर्णाः कारणतां गताः ॥ ३ ॥
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा मधुरा रचना तथा"। [ विश्वनाथः ]

यथा—

"तदिदं क्रियतामनन्तरं भवता बन्धुजनप्रयोजनम्।
विधुरां ज्वलनातिसर्जनान्ननु ! मां प्रापय पत्युरन्तिकम्" ॥ ४ ॥ [ कुमारसं० ]

"ओजःस्वरूपं तद्व्यञ्जकं वर्णाऽऽदिकञ्चाऽऽह विश्वनाथः—

"ओजश्चित्तस्य विस्ताररूपं दीप्तत्वमुच्यते।

---

**मूर्ध्नि**—शिरसि, **वर्गान्त्यवर्णेन**—वर्गस्य कवर्गादेः स्ववर्गस्य, योऽन्त्यो वर्णो ङकारादिः, तेन युक्ताः [ अङ्क, अञ्च, पुङ्खेत्यादयः ] **टठडढान् विना**—णकारवर्जं टवर्गरहिता इत्यर्थः। **वर्णाः**—कादयो मान्ताः, **लघू**—ह्रस्वस्वरान्तरितौ, **रणौ**—रेफणकारौ च, **तद्व्यक्तौ**—तस्य माधुर्यगुणस्य, व्यक्तौ अभिव्यक्तौ, **कारणताम्**—हेतुताम् **गताः**—प्राप्ताः। टवर्गरहिताः कादयो मावसानाः स्पर्शवर्णा यदि स्वस्वर्गान्त्यवर्णेङ्ञनमैः शिरसि युक्ताः स्युस्तदा माधुर्यमभिव्यञ्जन्ति। ह्रस्वस्वरविशिष्टौ रेफणकारावपि तद्व्यञ्जकौ भवत इति भावः।

माधुर्यव्यञ्जिकां रचनामाह—**अवृत्तिरिति**। **तथा**—तेनैव प्रकारेण, **अवृत्तिः**—समासरहिता, **वा**—अथवा, **अल्पवृत्तिः**—अल्पसमासयुक्ता—अधिकाद् अधिकतश्चतुष्पदसमासयुक्तेति भावः, या **रचना**—पदसंघटना, सा **मधुरा**—माधुर्यवती माधुर्यव्यञ्जिका, भवतीति शेषः। उदाहरति—**तदिदमिति**। कुमारसंभवे चतुर्थे काममनुशोचन्त्या रतेर्वसन्तं प्रत्युक्तिः। **तत्**—तस्मात् कारणादुक्तप्रकारेण, **अनन्तरम्**, **भवता**—त्वया वसन्तेन, **इदम्**—वक्ष्यमाणम्। **बन्धुजनप्रयोजनम्**—बन्धुकृत्यम्, **क्रियताम्**। प्रार्थनायां लोट्। किं तत् प्रयोजनमित्याह—**ननु**, वसन्त ! **विधुराम्**—पतिवियोगेन दुःखिताम्, **माम्**—रतिम्, **ज्वलनातिसर्जनाद्**—अग्निदानात्, **पत्युः**—दयितस्य कामस्य, **अन्तिकम्**, **प्रापय**। अग्निप्रवेशनं कारयेत्यर्थः। करुणोऽत्र रसः। माधुर्यं चात्र गुणः। अनन्तर—बन्ध्वन्तिकशब्देषु च वर्गान्त्ययुक्ताभ्यां तकारधकाराभ्यामल्पसमासया रचनया च स व्यज्यते।

**ओज इति**। **चित्तस्य विस्ताररूपं दीप्तत्वम् ओज इति उच्यते** इत्यन्वयः। चित्तस्य विस्तारो दीप्तत्वं वा द्रुतिविरोधिनी काचन चित्तवृत्तिरस्ति। यद्वशान्मनो ज्वलितमिव भवति।

---

अक्षर—ञ, म, ङ, न—से युक्त हों, वे और ह्रस्व स्वर से युक्त र और ण माधुर्य के व्यञ्जक होते हैं। इसी प्रकार समास रहित अथवा छोटे-छोटे समासों वाली मनोहर रचना भी माधुर्य की व्यञ्जक होती है। जैसे **तदिदम्** इति। इसलिये हे वसन्त—तुम ( अब ) आगे जो कर्तव्य मित्रों को करना चाहिये सो करो, मुझ दुखिया को आग देकर ( मेरे ) स्वामी के पास पहुँचा दो।

ओज का लक्षण और उसके व्यञ्जकवर्ण—

**ओज इति**। चित्त के विस्ताररूप दीप्तत्व को ओज कहते हैं। वीर, बीभत्स और रौद्र रसों में क्रम से इसकी अधिकता होती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



वीरबीभत्सरौद्रेषु क्रमेणाऽऽधिक्यमस्य तु ॥ ५ ॥
वर्गस्याऽऽद्यतृतीयाभ्यां युक्तौ वर्णौ तदन्तिमौ ।
उपर्यधो द्वयोर्वा सरेफाः ट-ठ-ड-ढैः सह ॥ ६ ॥
शकारश्च षकारश्च तस्य व्यञ्जकतां गताः ।
तथा समासबहुला घटनौद्धत्यशालिनी ॥ ७ ॥

यथा—"चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाऽभिघात संचूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य ।
स्त्यानावनद्धघनशोणितशोणपाणिरुत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि ! भीमः" ॥८॥ [वेणीसं०]

---

तदोजो नाम गुण इति भावः। कुत्र रसे तस्यावस्थितिरित्याह—वीरेति। वीरबीभत्सरौद्रेषु—वीरे, बीभत्से, रौद्रे च, क्रमेण—उत्तरोत्तरम्, अस्य—ओजसः, आधिक्यम्—उत्कर्षो भवति। तद्व्यञ्जकान् वर्णान् रचनां चाह वर्गस्येति। वर्गस्य—कवर्गादेः, आद्यतृतीयाभ्याम्—प्रथम-तृतीयाक्षराभ्याम्, युक्तौ, तदन्तिमौ—तयोः प्रथमतृतीययोः, अन्तिमौ द्वितीयचतुर्थाविति भावः। वर्णौ, [क्ख, ग्घ, च्छ, ज्झेत्येवमादयः] उपरि—पूर्वम् इत्यर्थः, अधः—पश्चाद् इति भावः, द्वयोर्वा—उपर्यध उभयत्रापीत्यर्थः, सरेफाः—रेफसहिताः, [यथा धर्म इत्यत्र मकारात् पूर्वो रेफः, आम्रमित्यत्र मकारात् परः श्रीम्रदिम्ना—इत्यत्र मकारात् पूर्वः परश्च] ट-ठ-ड-ढैः सह—णकारवर्जं टवर्गसहिताः वर्णा इति शेषः। शकारश्च षकारश्च—तालव्यशकारो मूर्धन्यषकारश्चेत्यर्थः, द्वितीयश्चकारोऽनुक्त-समुच्चयार्थः—तेन तुल्ययोगस्यापि संग्रहः—यथा चित्तवित्तादि। तस्य—ओजसः व्यञ्जकताम्, गताः, तद्व्यञ्जका इति भावः। समासबहुला—चतुरधिकसमस्तपदा, औद्धत्यशालिनी—उत्कटा, घटना—रचना, च तथा—ओजोव्यञ्जिकेति भावः।

उदाहरति—चञ्चदिति। वेणीसंहारे द्रौपदीं प्रति भीमस्योक्तिरियम्। देवि ! हे द्रौपदि ! चञ्चदित्यादि—चञ्चद्भ्यां चञ्चलाभ्याम्, भुजाभ्याम्, भ्रमितायाः, चण्डाया भीषणायाः, गदायाः, अभिघातेन प्रहारेण, संचूर्णितम्, ऊरुयुगलं जघनद्वयं यस्य, तादृशस्य सुयोधनस्य—दुर्योधनस्य, [शोणितसम्बन्धे षष्ठी] स्त्यानेत्यादि—स्त्यानेन-स्तिमितेन, अवनद्धेन संलिप्तेन, घनेन सान्द्रेण, शोणितेन रुधिरेण, शोणौ रक्तौ, पाणी हस्तौ यस्य, तादृशः, भीमः, तव कचान्—केशान्, उत्तंसयिष्यति—संयमनेन भूषयिष्यतीत्यर्थः। अत्र दीर्घसमासः, उद्धता रचना, डकारादिवर्णाश्चौ-जोगुणं व्यञ्जन्ति।

---

वर्गस्य इति। वर्गों के पहले अक्षर के साथ मिला हुवा उसी वर्ग का दूसरा अक्षर क्ख, च्छ इत्यादि, और तीसरे के साथ मिला हुआ उसी का अगला चौथा अक्षर—ग्घ, ज्झ इत्यादि, ऊपर या नीचे अथवा दोनों जगह रेफ से युक्त अक्षर धर्म, आम्र, श्रीम्रदिम्ना आदि और ट, ठ, ड, ढ, श, ष, ये सब अक्षर ओज के व्यञ्जक होते हैं। इसी प्रकार लम्बे-लम्बे समास वाली उद्धत रचना ओज का व्यञ्जन करती है। जैसे चञ्चद् इति। हे देवि ! (द्रौपदि !) चञ्चल भुजाओं से घुमाई हुई भीषण गदा की चोट से जिस की दोनों जाँघें चूर-चूर हो गई हैं, ऐसे दुर्योधन के जमे, लिपे और गाढ़े खून से लाल हाथों वाला यह भीम तुम्हारे केशों को अलंकृत करेगा अर्थात् बांधेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection; Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri



प्रसादस्वरूपं तद्व्यञ्जकान् वर्णांश्चाऽऽह स एव—

"चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवानलः।
स प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनासु च ॥ ९ ॥
शब्दास्तद्व्यञ्जका अर्थ-बोधकाः श्रुतिमात्रतः" ॥

यथा—

"गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।
करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किं न मे हृतम् ?" ॥ १० ॥ [ रघु० ]

इत्यादिकं कालिदासग्रन्थेषु रामायणे च बाहुल्येन द्रष्टव्यम्।

---

चित्तमिति। यो गुणः, शुष्केन्धनम्—शुष्ककाष्ठम्, अनल इव—अग्निरिव क्षिप्रम्—शीघ्रम्, चित्तम्, व्याप्नोति—अधिकरोति, रसव्यक्त्येति शेषः। सः, समस्तेषु, रसेषु—शृङ्गारादिषु, आधेयतया स्थित इति शेषः, रचनासु च—[ समस्तेष्विति लिङ्गविपरिणामेनेहापि सम्बध्यते, 'पुमान् स्त्रिये'ति पुंस एकशेषः ] व्यञ्जकतया अपेक्षित इति शेषः, प्रसादः—प्रसादो नाम गुणोऽस्ति। सर्वेषां रसानां साधारणोऽयं प्रसादो गुण इति भावः। श्रुतिमात्रतः—श्रवणसमनन्तरमेव, अर्थबोधकाः शब्दाः, तद्व्यञ्जकाः—तस्य प्रसादगुणस्य, व्यञ्जकाः, भवन्ति।

उदाहरति—गृहिणीति। रघुवंशेऽष्टमे मृतामिन्दुमतीमनुशोचतोऽजस्येयमुक्तिः। हे इन्दुमति! त्वमेव गृहिणी—दाराः, आसीः। सर्वं कुटुम्बं त्वदाश्रयमिति भावः। सचिवः—बुद्धिसहायो मन्त्री, सर्वो हितोपदेशस्त्वदायत्त इति भावः। मिथः—रहसि, सखी—नर्मसचिवः, सर्वोपभोगस्त्वदाश्रय इति भावः। ललिते—मनोहरे, कलाविधौ—वादित्रादिचतुःषष्टिकलाप्रयोगे, प्रियशिष्या—प्रिया अन्तेवासिनी। प्रियत्वमिह मेधोत्कर्षनिबन्धनं बोध्यम्। गृहिण्यादिविशेषणैर्मम सर्वानन्दस्त्वन्निबन्धन इत्युपक्षिप्तम्। अत त्वां समष्टिरूपाम्, हरता—मत्सकाशाद् आच्छिन्दता, करुणाविमुखेन—कृपाशून्येन, मृत्युना, मे—मत्संबन्धि, किं—वस्तु, न हृतम्? सर्वमपि हृतमिति भावः। करुणरसवत् पद्यमिदम्। अत्र शब्दश्रुतिमात्रतो विभावाद्यर्थप्रतीतिस्ततो रसव्यक्तिश्च संजायते, अतः प्रसादो गुणः।

---

प्रसाद का लक्षण और उसके व्यञ्जक वर्ण—

चित्तम् इति। जैसे सूखे काष्ठ में आग झट से व्याप्त हो जाती है इसी प्रकार जो गुण तुरन्त ( कविता सुनते ही ) चित्त को व्याप्त कर लेता है उसे 'प्रसाद' कहते हैं। यह गुण सब रसों और रचनाओं में रह सकता है। शब्दा इति। सुनते ही जिनका अर्थ प्रतीत हो जाता है ऐसे सरल और सुबोध शब्द प्रसाद गुण के व्यञ्जक होते हैं। जैसे गृहिणी इति। हे इन्दुमति! तुम मेरे घर की स्वामिनी थीं, मेरी मन्त्रिणी ( सलाहकार ) थीं, एकान्त गोष्ठी के समय ( हँसी ठट्ठा करने वाली ) सखी ( सुहृद् ) थीं, मनोहर कलाओं में मेरी प्रिय शिष्या थीं, निर्दय मौत ने तुम्हें छीन कर मेरा क्या नहीं छीना? कहो, इत्यादि कालिदास के ग्रन्थों में और रामायण में ( यह प्रसाद गुण ) अधिकतर देखा जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



"एषां शब्दगुणत्वञ्च गुणवृत्त्योच्यते बुधैः" ॥

गुणवृत्त्या—परम्परया ।

इति गुणविवेको नाम षष्ठशिखा ।

---

ननु माधुर्यादीनां रसमात्रगुणत्वे कथं 'मधुराः शब्दाः' इति व्यवहार इत्यत आह—**एषा-मिति**। अर्थः स्पष्टः। **परम्परयेति**। परम्परा चात्र स्वाश्रयव्यञ्जकत्वसंबन्धरूपा बोध्या। तथा हि—स्वं गुणाः, तदाश्रया रसाः, तद्व्यञ्जकत्वं शब्दानाम्। तथा च स्वाश्रयव्यञ्जकत्वरूपपरम्परा-सम्बन्धेन माधुर्यादीनां शब्दवृत्तित्वे 'मधुराः शब्दाः' इति व्यवहारो नानुपपन्नः। तदुक्तं प्रकाश-कृता 'गुणवृत्त्या पुनस्तेषां वृत्तिः शब्दार्थयोर्मता।

इति श्रीद्रोणाश्रमासिजन-श्रीमदच्युतानन्दनन्दन-श्रीपरमेश्वरानन्दशर्मकृतायां बाल-बोधिन्यां काव्यदीपिकाव्याख्यायां गुणनिरूपणनाम्नी षष्ठशिखा समाप्ता।

---

**एषाम्** इति। साहित्यज्ञ लोग इन [ माधुर्य आदि गुणों ] को गुणवृत्ति [ परम्परा सम्बन्ध ] से शब्दों का गुण कहते हैं।

गुणविवेक नामक षष्ठशिखा समाप्त।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

# सप्तमशिखा

## रीतिस्वरूपं तद्भेदांश्चाऽऽह—

"अस्त्यनेको गिरां मार्गः सूक्ष्मभेदः परस्परम् ।
तत्र वैदर्भगौडीयौ वर्ण्येते प्रस्फुटान्तरौ" ॥ १ ॥ [ दण्डी ]

प्रस्फुटान्तरौ—स्फुटप्रतीयमानभेदौ । मार्गः—रीतिः, सा च पदविन्यासप्रणाली-रूपा । यथाऽऽह विश्वनाथः—

"पदसङ्घटना रीतिरङ्गसंस्थाविशेषवत्" ॥

---

## सप्तमशिखा

गुणाँस्तद्व्यञ्जकान् वर्णांश्च निरूप्येदानीं रचनापरपर्याया रीतीर्नामतो लक्षणतश्च निरूपयितुमाह—**अस्त्यनेक** इति ।

**गिराम्**—वाचाम्, काव्यानामिति भावः । **मार्गः**—पदविन्यासप्रणाली, रीतिरिति यावत् । **अनेकः**—बहुविधः, वैदर्भी-गौडी-पञ्चाली-लाटी चेत्येवं चतुर्विध इति यावत् । **परस्परम्**—अन्योऽन्यम्, **सूक्ष्मभेदः**—सूक्ष्मः अप्रस्फुटः, सुबुद्धिवेद्यः, भेदः विवेकः, यस्य तादृशश्चास्ति । रीतयोऽनेकाः, तासामन्योन्यभेदश्च सूक्ष्म इति भावः । **तत्र**—त्रिविधे गिरां मार्गे, **प्रस्फुटान्तरौ**—प्रस्फुटं स्थूलतया स्पष्टम्, अन्तरं भेदः, ययोस्तादृशौ, **वैदर्भगौडीयौ**—वैदर्भो गौडीयश्च मार्गः, वैदर्भीगौड्यौ रीती इति भावः, **वर्ण्येते**—नामतो लक्षणतश्च निरूप्येते । विदर्भादिदेशविशेषकविसंप्रदाये विशिष्य समादृतत्वेन वैदर्भादिसंज्ञा बोध्याः ।

सामान्यतो विज्ञाते विशेषतो जिज्ञासा जायते, अतः पूर्वं रीतेः सामान्यलक्षणमाह—**पदसंघटनेति पदसंघटना**—पदानां काव्योपयोगिनां सुप्तिङन्तपदानाम्, संघटना सम्यग् गुणव्यञ्जनानुकूलतया, घटना मेलनम् विन्यासः, **रीतिः**—रीतिरित्युच्यते । रयणं रीतिः, गतिः पदविन्यासक्रमः । रीङ् गतौ, भावे क्तिन् । अथवा गत्यर्थानां ज्ञानार्थत्वाद् रीयते-गम्यते, ज्ञायते माधुर्यादिगुणो यया सा रीतिः, माधुर्यादिगुणव्यञ्जकः पदविन्यासक्रम इति यावत् । करणे क्तिन् । तदुक्तं

---

## सप्तमशिखा

### रीति का स्वरूप और उसके भेद

काव्य-रचना की रीतियाँ ( मार्ग ) अनेक हैं; और उनका परस्पर भेद सूक्ष्म है । ( किन्तु ) उनमें वैदर्भी और गौड़ी रीति का अन्तर ( भेद ) अत्यन्त स्पष्ट है; इसलिये उनका वर्णन करते हैं ।

**पदसंघटना** इति । पदों के मेल वा संगठन को 'रीति' कहते हैं, वह शरीर के अवयवों को विन्यास की तरह मानी जाती है । अर्थात्—जैसे पुरुषों के देह का संगठन होता है उसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



वैदर्भीस्वरूपमाह स एव—

"माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैं रचना ललिताऽऽत्मिका।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते" ॥ २ ॥

ललिताऽऽत्मिका—मधुरस्वरूपा। वृत्तिः—समासः। यथा—"तदिदं क्रियताम्" (१६८ पृष्ठे) इत्यादि पूर्वमुक्तम्।

गौडीस्वरूपमाह—

"ओजःप्रकाशकैर्वर्णैर्बन्ध आडम्बरः पुनः।
समासबहुला गौडी" दर्पणे समुदीरिता ॥ ३ ॥

---

मम्मटाचार्यैः—'वर्णाः समासो रचना तेषां व्यञ्जकतामिताः'। इति। तत्र रचना, पदसंघटना, रीतिरिति समानार्थाः शब्दाः। तदुक्तं वामनेन 'विशिष्टपदरचना रीतिः' इति। तेषां गुणानामित्यर्थः। काव्ये तदुपयोगित्वं दर्शयितुमाह—अङ्गसंस्थाविशेषवदिति। अङ्गानां शरीरान्तर्गतमुखाद्यवयवानाम्, संस्थाविशेषः सन्निवेशविशेषः, तद्वत्-तत्सदृशी। अयं भावः—यथा शरीरे यथास्थानं सन्निवेशितानि मुखादीन्यङ्गानि शरीरशोभायै जायन्ते, तथैव काव्येऽपि यथायथं सन्निवेश्यमानानि पदानि तच्छोभामभिवर्धयन्ति। तथा च रीतिरङ्गसंस्थाविशेषवच्छोभाधायकत्वात् काव्ये नितान्तमुपयुज्यत इति भावः।

माधुर्येति। माधुर्यव्यञ्जकैः—माधुर्यस्य चित्तद्रुतिहेतोर्माधुर्याख्यगुणस्य, व्यञ्जकैः, वर्णैः—अक्षरैः, उपलक्षिता, अत एव ललितात्मिका—मनोहरस्वरूपा, लघुप्रयत्नोच्चार्यवर्णबहुला वा अवृत्तिः—समासरहिता, अल्पवृत्तिः—अल्पसमासा वा रचना—पदसंघटना, 'वैदर्भी रीतिः' इति व्यपदेष्टुम्, इष्यते—इष्टा।

उदाहरति—तदिदं क्रियतामिति। पूर्वं व्याख्यातमिदं पद्यम्। ओज इति। ओजःप्रकाशकैः ओजोगुणव्यञ्जकैः, वर्णैः, उपलक्षितः, आडम्बरः—उद्भटः, गाढः, बन्धः—रचना, दर्पणे—साहित्यदर्पणे, गौडी—गौडीन म्नी रीतिः, समुदीरिता—कथिता। सा च समासबहुला—चतुर-

---

प्रकार काव्य के देह रूप शब्दों और अर्थों का भी संगठन होता है इसी संगठन का नाम 'रीति' है।

### वैदर्भी रीति का स्वरूप

माधुर्य इति। माधुर्य व्यञ्जक वर्णों से युक्त ललित (मधुर) रचना को वैदर्भी रीति कहते हैं, इसमें समास या तो होते ही नहीं या बहुत छोटे होते हैं। उदाहरण जैसे 'तदिदं क्रियताम्' इत्यादि [पृ० १६८] में कहा है।

### गौड़ी का स्वरूप

ओज-गुण के व्यञ्जक वर्णों से युक्त गाढ़ (उद्धत) रचना को गौड़ी वृत्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



बन्धः—रचना। आडम्बरः—गाढः। यथा—"चञ्चद्भुजभ्रमित" (१७० पृष्ठे) इत्यादि पूर्वमुक्तम्।

इति रीतिविवेचनं नाम सप्तमशिखा।

---

धिकसमस्तपदा, भवतीति शेषः। उदाहरति—चञ्चद्भुजेति। इदमपि पुरस्ताद् व्याख्यातम्। अवशिष्टयोः पाञ्चालीलाट्योर्लक्षणं यथा दर्पणे—

समस्तपञ्चपपदो बन्धः पाञ्चालिका मता।
लाटी तु रीतिर्वैदर्भीपाञ्चाल्योरन्तरे स्थिता॥

अन्तरे—मध्ये। तदुभयलक्षणाक्रान्तेत्यर्थः। तत्र पाञ्चाल्या उदाहरणं यथा—

मधुरया मधुबोधितमाधवीमधुसमृद्धिसमेधितमेधया।
मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मदध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे॥

लाट्या उदाहरणं यथा—

अयमुदयति मुद्राभञ्जनः पद्मिनीनामुदयगिरिवनालीबालमन्दारपुष्पम्।
विरहविधुरकोकद्वन्द्वबन्धुर्विभिन्दन् कुपितकपिकपोलक्रोडताम्रस्तमांसि॥

इति श्रीद्रोणाश्रमाभिजन–श्रीमदच्युतानन्दनन्दन–श्रीपरमेश्वरानन्दशर्मकृतायां बालबोधिन्यां काव्यदीपिकाव्याख्यायां रीतिविवेचननाम्नी सप्तमशिखा समाप्ता।

---

कहते हैं। इसमें समास अधिक होते हैं। उदाहरण जैसे [पृ० १७० पर] 'चञ्चद्भुज' इत्यादि।

रीतिविवेचन नामक सप्तमशिखा समाप्त।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

# अष्टमशिखा

## अलङ्कारस्वरूपमाह—

"काव्यशोभाकरान् धर्मानलङ्कारान् प्रचक्षते"। [ दण्डी ]

## अलङ्कारविभागः—

ते च द्विविधाः—शब्दगताः अर्थगताश्च।

## अथ शब्दालङ्काराः—

शब्दगताः—अनुप्रासयमकाऽऽदयः।

## तत्र अनुप्रासः—

"अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्"। [ विश्वनाथः ]

---

## अष्टमशिखा

अथालङ्कारनिरूपणप्रक्रमे प्रथममलङ्कारसामान्यलक्षणमाह—काव्यशोभेति।

**काव्यशोभाकरान्**-काव्यस्य शोभां चमत्कारित्वातिशयम्, कुर्वन्ति जनयन्ति, तादृशान्। **धर्मान्, अलङ्कारान्, प्रचक्षते**-कथयन्ति, साहित्यविद इति शेषः। अयं भावः—अलंक्रियत एभिरित्यलङ्काराः। करणे घञ्। यथा लौकिकानि कटककुण्डलादीनि शरीरस्य शोभामभिवर्धयन्ति तदलङ्करणानीत्युच्यन्ते, तथैव काव्यशरीरभूतयोः शब्दार्थयोः शोभामतिशाययन्तो धर्मास्तदलङ्कारा इत्युच्यन्ते। तद्विभागमाह **ते** चेति। शब्दार्थगतत्वं चैतेषां तत्तदन्वयव्यतिरेकानुविधानादवबोध्यम्। यत्र शब्दाः पर्यायपरिवृत्तिं न सहन्ते तत्र शब्दगतत्वम्। यत्र तु तां ( पर्यायपरिवृत्तिम् ) सहन्ते तत्रार्थगतत्वमिति भावः।

शब्दालङ्कारान् नामतो निर्दिशति **अनुप्रासे**ति। तत्रानुप्रासलक्षणं यथा—**अनुप्रास** इति। **स्वरस्य**-अकारादेः, **वैषम्येऽपि**-वैसादृश्येऽपि, आवृत्त्यभावेऽपि **यत्**, शब्दस्य व्यञ्जनमात्रस्येत्यर्थः,

---

## अष्टमशिखा

**काव्य** इति। काव्य की शोभा बढ़ानेवाले धर्मों को 'अलङ्कार' कहते हैं।

### अलङ्कार के भेद

वे अलङ्कार दो प्रकार के हैं—शब्दगत और अर्थगत, अर्थात् शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार।

### शब्दालङ्कार—

**शब्द** इति। अनुप्रास, यमक आदि शब्दगत अलङ्कार ( शब्दालङ्कार ) माने जाते हैं।

### अनुप्रास का लक्षण

**अनुप्रास** इति। **स्वर** इति। स्वर-वर्णों की असमानता रहने पर भी केवल व्यञ्जन-वर्णों की समानता को 'अनुप्रास' कहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



६. स्वरवैसादृश्येऽपि व्यञ्जनमात्रसादृश्यम् अनुप्रासः; स च रसानुगुणो वर्णानां प्रकर्षेण न्यासः। यथा—

"लताकुञ्जं गुञ्जन्मदवदलिपुञ्जं चपलयन्
समालिङ्गन्नङ्गं द्रुततरमनङ्गं प्रबलयन्।
मरुन्मन्दं मन्दं दलितमरविन्दं तरलयन्
रजोवृन्दं विन्दन् किरति मकरन्दं दिशि दिशि" ॥ १ ॥ [विश्वनाथः]

---

साम्यम्—सादृश्येन आवृत्तिः, तद् अनुप्रासः, उच्यत इति शेषः। वैषम्येऽपीत्यत्र अपिशब्दात् स्वरसाम्यस्यापि समुच्चयो बोध्यः। तथा चानुप्रासे प्रायः स्वरस्य साम्यमसाम्यं वा किमपि विशिष्य नापेक्ष्यते व्यञ्जनसाम्यन्त्वावश्यकम्। यमकादौ तु स्वरसाम्यमप्यावश्यकं भवति। इदं तु बोध्यं यत् स्वरसाम्यसहितं यद् व्यञ्जनसाम्यं तदधिकं हृदयग्राहि भवति। स्वरमात्रसादृश्यं तु न तथा चमत्कारीत्युपेक्षितम्। अनुप्रासशब्दस्य अवयवार्थमाह—स चेति। अनुशब्दोऽनुगुणार्थः, प्रशब्दः-प्रकर्षार्थः, आसशब्दो न्यासार्थ इति भावः। **रसानुगुणः**—प्रतिपाद्यरसानुकूलः।

उदाहरति—**लताकुञ्जमिति**। वासन्तिकपवनवर्णनमिदम्। **गुञ्जन्मदवदलिपुञ्जम्**—गुञ्जन् शब्दायमानः, मदवान् सौरभेण मत्तः, अलीनां भ्रमराणाम्, पुञ्जः समूहो यत्र, तादृशम्, **लताकुञ्जम्**—लतागृहम्, **चपलयन्**—चञ्चलं कुर्वन्, **अङ्गम्**—शरीरम्, **समालिङ्गन्**—आश्लिष्यन् [हेतौ शतृप्रत्ययः] अङ्गालिङ्गनहेतुनेत्यर्थः, **द्रुततरम्**—अतिशीघ्रम्, **अनङ्गम्**—कामविकारम्, **प्रबलयन्**—प्रवर्धयन्, **दलितम्**—विकसितम्, **अरविन्दम्**—कमलम्, **तरलयन्**—कम्पयन्, **रजोवृन्दम्**—पुष्पाणां परागसमूहम्, **विन्दन्**—प्राप्नुवन्, पुष्पपरागसंभृत इति यावत्, **मरुत्**—पवनः **दिशि दिशि**—प्रतिदिशम्, **मकरन्दम्**—पुष्परसम्, **मन्दं मन्दम्**—शनैः शनैः, **विकिरति** विक्षिपति। अत्र कुञ्जगुञ्जपुञ्जादिषु मधुररसानुकूलं स्वरसाम्यसहितं व्यञ्जनसाम्यमस्तीत्यनुप्रासः।

स्वरसाम्यरहितं व्यञ्जनसाम्यस्योदाहरणं यथा—

आदाय बकुलगन्धानन्धीकुर्वन् पदे पदे भ्रमरान्।
अयमेति मन्दमन्दं कावेरीवारिपावनः पवनः॥

अत्र गन्धानन्धीत्यादिषु न स्वरसाम्यम्, किन्तु व्यञ्जनमात्रसाम्यम्। अस्यानुप्रासस्य च्छेकवृत्त्यादिभेदेनानेके भेदा भवन्ति, ते साहित्यदर्पणादितोऽवगन्तव्याः।

---

### अनुप्रास शब्द का अक्षरार्थ

**स च इति**। रस (भाव आदि) के अनुकूल अक्षरों का उत्कृष्ट (मनोहर) सन्निवेश—जमाव 'अनुप्रास' शब्द का अर्थ है।

**जैसे लता इति**। गुञ्जारते हुए मस्त भ्रमरपुञ्जों से युक्त लताओं के झुरमुट को हिलाता हुवा, शरीर का आलिङ्गन करके अतिशीघ्र काम (अनङ्ग) को उद्दीप्त करता हुवा, खिले हुए कमल को धीरे धीरे कम्पित करता हुवा और पुष्परज को लिये हुए मन्द-मन्द बहता हुआ यह पवन चारों ओर पुष्प-रस को छिटका रहा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



### यमकम्—

"सत्यर्थे पृथगर्थायाः स्वरव्यञ्जनसंहतेः।
क्रमेण तेनैवाऽऽवृत्तिर्यमकं विनिगद्यते" ॥ २ ॥ [ विश्वनाथः ]

अत्र द्वयोरपि वर्णसङ्घातयोः क्वचित् सार्थकत्वं क्वचिन्निरर्थकत्वम्। क्वचिदेकस्य सार्थकत्वम् अपरस्य निरर्थकत्वम्; अत उक्तं "सत्यर्थे" इति। तेनैव क्रमेणेति "दमो मोदः" इत्यादेर्विविक्तविषयत्वम्। एतच्च पदपादाऽऽद्यावृत्तित्वेन प्रभूततमभेदम्। दिङ्मात्रम् उदाह्रियते—

---

यमकं लक्षयति—**सत्यर्थे** इति। **अर्थे सति**—यद्यर्थो भवेत्तर्हीत्यर्थः, **पृथगर्थायाः**—पृथग्-विभिन्नः, अर्थो यस्यास्तादृश्याः, **स्वरव्यञ्जनसंहतेः**—स्वराणां व्यञ्जनानां च, संहतिः—समुदायः, तस्याः,**तेनैव**—प्रथमोक्तेनैव, **क्रमेण आवृत्तिः**—पुनरुच्चारणम्, **यमकम्** इति, **विनिगद्यते**—कथ्यते। लक्षणकारिकायां '**सत्यर्थे**' इति विशेषणस्य फलमाह—**अत्र द्वयोरिति**। अयं भावः—यमकालङ्कारे सदृशौ स्वरव्यञ्जनसमुदायावर्थवन्तावेव स्यातां निरर्थकावेव वा, एवं द्वयोरेकतरस्यैव अर्थवत्त्वम्, इतरस्य तु निरर्थकत्वमिति वा न कोऽपि नियमः। उभावप्यर्थवन्तौ निरर्थकौ च भवितुमर्हतः एवमेकतरस्य कस्याप्यर्थवत्त्वं निरर्थकत्वं च भवितुमर्हति। परमेष तु नियमो यद्यदि तावर्थवन्तौ भवेतां तर्हि ताभ्यां भिन्नार्थाभ्यामेव भवितव्यम्। समानार्थत्वे तु यमकालङ्कारो न स्यात्। स हि लाटानुप्रासस्य विषयः। तदेतदुदाहरणसमये स्फुटीकरिष्यामः। **क्रमेण तेनैवे**त्यस्य व्यावर्त्यमाह **दमो मोद** इति। यद्यपीह उभावपि समुदायौ समानस्वरव्यञ्जनौ, तथापि न समानक्रमौ, पूर्वसमुदाये दकार आदौ, द्वितीये चान्ते तिष्ठति। तथा चात्र क्रमभेदान्न यमकम्। किन्तु वर्णसाम्यरूपोऽनुप्रास एव। **विविक्तविषयत्वम्**—विविक्तः भिन्नः, विषयो यस्य तत्, तस्य भावस्तत्त्वम्।

कियद्भेदमिदं यमकमित्याह—**एतच्चेति**। **पदपादाद्यावृत्तित्वेन**—पदस्य, पादस्य श्लोकचतुर्थांशस्य, आदिपदेन श्लोकार्धस्य पूर्णश्लोकस्य च, आवृत्तित्वेन। **प्रभूततमभेदम्**—बहुविधम्।

---

### यमक का लक्षण

**सत्यर्थे** इति। यदि अर्थवान् हो तो भिन्न अर्थवाले स्वर-व्यञ्जन-समुदाय की उसी क्रम से आवृत्ति को 'यमक' कहते हैं। [ जिस समुदाय की आवृत्ति की गई है, वह यदि अनर्थक भी हो तो कोई आपत्ति नहीं, किन्तु उसके सार्थक होने पर आवृत्त समुदाय को भिन्नार्थक ही होना चाहिये यह नियम है। ]

**अत्र** इति। यमक में कहीं दोनों वर्णसमुदाय सार्थक होते हैं, और कहीं निरर्थक। कहीं एक सार्थक होता है, दूसरा निरर्थक। इसीलिये ( लक्षण में ) 'सत्यर्थे' ( यदि अर्थवान् हो तो ) ऐसा कहा।

**तेनैव** इति। 'तेनैव क्रमेण' ( उसी क्रम से ) ऐसा कहकर 'दमो मोदः' इत्यादिकों से यमक का विषय भिन्न है यह बात सूचित की। [ क्योंकि यहाँ स्वर और व्यञ्जन तो समान हैं परन्तु क्रम बदल गया है, इसलिये यमक नहीं, किन्तु अनुप्रास है। ] **एतच्च** इति। इस यमक के पदावृत्ति, पादावृत्ति आदि बहुत अधिक भेद होते हैं। संक्षेप से उदाहरण देते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri


"नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपङ्कजम् ।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत् स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः" ॥ २ ॥ [ माघः ]

प्रथमे पादे द्वयोरपि, द्वितीये प्रथमस्यैव, तृतीये च द्वितीयस्यैव सार्थकत्वम्, चतुर्थे द्वयोरपि "रभिंसु" "रभिंसु" इत्येतयोर्निरर्थकत्वम् ।

---

**दिङ्मात्रम्**–संक्षेपेण प्रकारमात्रमित्यर्थः । तत्र पूर्वं पदावृत्तेरुदाहरणमाह—**नवपलाशेति** । शिशुपालवधे षष्ठे वसन्तवर्णनमिदम् । **सः**–हरिः, **पुरः**–अग्रे, प्रथमं वा **नवपलाशपलाशवनम्**–नवानि, पलाशानि पत्राणि, येषु तादृशानि, पलाशानां किंशुकानाम्, वनानि, यस्मिंस्तादृशम्, **स्फुटपरागपरागतपङ्कजम्**–स्फुटानि विकचानि, परागैः रजोभिः, परागतानि व्याप्तानि, पङ्कजानि, यस्मिंस्तादृशम्, **मृदुलतान्तलतान्तम्**–मृदुलाः कोमलाः, अत एव तान्ताः आतपम्लानाः, लतान्ताः पल्लवाः यत्र तादृशम्; **सुमनोभरैः**–सुमनसां पुष्पाणाम्, भरैः समूहैः, **सुरभिम्**—सुगन्धिम्, **सुरभिम्**–वसन्तम्, **अलोकयत्**–अपश्यत् । इह प्रतिपाद प्रथमाक्षरद्वयादारभ्य पलाश-पराग-लतान्तरभिंस्विति स्वरव्यञ्जनसंहतिरूपाणां पदानामावृत्तिः । इह कतरस्य समुदायस्यार्थवत्त्वमनर्थकत्वं चेति विवरीतुमाह—**प्रथमे पाद** इति । पादावृत्तेरुदाहरणं शिशुपालवध एकोनविंशे यथा—

रामे रिपुः शरानाजिमहेष्वास विचक्षणे । कोपादथैनं शितया महेष्वा स विचक्षणे ॥

अत्र द्वितीयपादस्य चतुर्थ आवृत्तिः । श्लोकार्धावृत्तिस्तत्रैव यथा—

अयशोभिदुरालोके कोपधाम-रणादृते । अयशोभिदुरालोके कोपधा मरणादृते ॥

श्लोकावृत्तिर्यथा—

'सकलशं सकपालमलंकृतप्रमदमस्थिरसं मदनाशनम् ।
भवमदभ्रमहानिधने हितं शमनमञ्जनमानमताल्यम् ॥ १ ॥
सकल-शंसक-पालमलं कृतप्रमदमस्थिर-संमद-नाशनम् ।
भव-मद-भ्रम-हानिधनेहितं शम-नमञ्जन-मान-मताऽऽलयम् ॥ २ ॥

'स्मेरराजीवनयने नयने किं निमीलिते' इत्यादौ स्वरव्यञ्जनसंहतेस्तेनैव क्रमेण आवृत्तावपि उभयोः समुदाययोः समानार्थत्वान्न यमकम् । एतादृशस्थले तु लाटानुप्रासो नामानुप्रासभेदः स्वीक्रियते तदुक्तम्—

'शब्दार्थयोः पौनरुक्त्यं भेदे तात्पर्यमात्रतः लाटानुप्रास इत्युक्तः' इति ।

---

नव इति । जिसमें टेसुओं ( ढाक ) का वन नवीन पल्लवों से युक्त हो गया है, पुष्प-रज से भरे हुए कमल खिले हुए हैं, जिसमें लताओं के किसलय कोमल होने के कारण म्लान हो गए हैं, जो फूलों की अधिकता से सुगन्धित है, ऐसे वसन्त ऋतु को श्रीकृष्ण ने देखा । ( यहाँ पदावृत्ति यमक है । ) **प्रथमे** इति । पहले पाद में दोनों शब्द, दूसरे में पहला ही, तीसरे में दूसरा ही सार्थक है । चौथे पाद में 'रभिंसु' 'रभिंसु' ये दोनों ही निरर्थक हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



श्लेषः—

"श्लिष्टैः पदैरनेकार्थाभिधाने श्लेष इष्यते"। [ विश्वनाथः ]

स च वर्णप्रत्ययप्रकृतिपदाऽऽदिश्लेषाद् बहुविधः; यथा—

"प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता।
अवलम्बनाय दिनभर्तुरभून्न पतिष्यतः करसहस्रमपि" ॥ ४ ॥ [ माघः ]

अत्र "विधौ" इत्यत्र विध-विधिशब्दयोरुल्कारेकारयोर्वर्णयोरौकाररूपत्वाद् वर्णश्लेषः। "कर" इत्यत्र प्रकृतिश्लेषोऽपि।

---

श्लेपालङ्कारमाह—**श्लिष्टैरिति**। **श्लिष्टैः**—भिन्नार्थतया परस्परं भिन्नैरपि युगपत समानप्रयत्नोच्चार्यत्वाद् अपह्नुतभेदैः, **पदैः**—सुप्तिङन्तरूपैः, **अनेकार्थाभिधानम्**—अनेकस्य अर्थस्य, अभिधानम् अभिधया प्रतिपादनम्, **श्लेषः**—श्लेपालङ्कारः, **इष्यते**।

श्लेषभेदानाचष्टे—**सचेति**। आदिपदेन लिङ्ग-विभक्ति-वाचन-भाषाणां संग्रहो बोध्यः। यत्र विभिन्नौ वर्णौ ऐकरूप्यमापद्य स्वकीयभिन्नरूपमपह्नवाते, स वर्णश्लेपः।

तदुदाहरणं यथा—**प्रतिकूलतामिति**। शिशुपालवधे नवमे सूर्यास्तवर्णनमिदम्। **विधौ**—दैवे चन्द्रे च, [ दैवचन्द्रवाचिनोर्विधिविधुशब्दयोः सप्तम्यां विधाविति रूपं भवति ] **प्रतिकूलताम्**—विपरीतताम्, उदयदिग्गामित्वं च, **उपगते**—प्राप्ते सति, **बहुसाधनता**—उपायानां बाहुल्यमपि, **विफलत्वम्**—नैष्फल्यम्, **एति**—प्राप्नोति, हिरिति निश्चये। विधौ विपरीते महत्यपि साधनसंपद् विफलैवेति भावः। एतत् समर्थयते **पतिष्यतः**—अस्तं गमिष्यतः, **दिनभर्तुः**—दिनाधिपतेः सूर्यस्य **करसहस्रमपि**—कराणां किरणानां हस्तानां च, सहस्रमपि [बलिहस्तांशवः कराः—इत्यमरः] **अवलम्बनाय**—अवष्टम्भनाय-पतनवारणायावलम्बनं प्रदातुमिति भावः, **न अभूत्**—न जातम्।

लक्षणसमन्वयं करोति—**अत्रेति**। **औकाररूपत्वादिति**। 'अच्च घेः' 'वृद्धिरेचि' इत्यनुशासनबलादिति भावः।

अत्रैव पद्ये प्रकृतिश्लेषोदाहरणमप्याह—**करेति**। अयं भावः यस्मात् प्रत्ययो विधीयते सा प्रकृतिरित्युच्यते। प्रत्ययश्च प्रातिपदिकाद् वा धातोर्वा विधीयत इति सैव प्रकृतिः। तत्र 'कर-

---

श्लेष का लक्षण—

श्लिष्ट पदों से अनेक अर्थों का अभिधान होने पर श्लेपालङ्कार होता है। **स च इति**। और वह वर्णश्लेष, प्रत्ययश्लेष, प्रकृतिश्लेष, पदश्लेष आदि भेद से बहुत प्रकार का होता है। जैसे **प्रतिकूलताम्** इति। विधि ( दैव ) अथवा विधु ( चन्द्र ) के प्रतिकूल होने पर ( विपरीत दिशा में उदित होने पर ) सब साधन निष्फल हो जाते हैं। डूबने ( गिरने ) के समय सूर्य के हजार कर ( किरण अथवा हाथ ) भी सहारे के लिये पर्याप्त न हो सके।

**अत्र इति**। इस पद्य के 'विधौ' शब्द में विधु और विधि शब्दों के ( अन्तिम ) वर्ण उकार और इकार ( सप्तमी होने से ) औकार के रूप में आ गए हैं, अतः उक्त दोनों वर्णों का यहाँ वर्णश्लेष है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


"पृथुकार्त्तस्वरपात्रं भूपितनिःशेपपरिजनं देव!।
विलसत्करेणुगहनं सम्प्रति सममावयोः सदनम्" ॥ ५ ॥

अत्र पदश्लेपः।

---

सहस्रम्' इत्यत्र प्रातिपदिकप्रकृतिश्लेपः। अत्र हि करशब्दे किरणहस्तार्थिके द्वे प्रातिपदिकप्रकृती श्लिष्यतः। करशब्दाज्जायमाना षष्ठी विभक्तिस्तु सैवेति नायं पदश्लेपः। विभक्तिवैलक्षण्ये तु पदश्लेपोऽनुपदमेवोदाहरिष्यते। धातुप्रकृतिश्लेपो यथा—

अयं सर्वाणि शास्त्राणि हृदि ज्ञेपु च वक्ष्यति।
सामर्थ्यकृदमित्राणां मित्राणां च नृपात्मजः॥

अत्र हि वक्ष्यतीत्यत्र वहिवच्योः, सामर्थ्यकृदित्यत्र कृन्ततिकरोत्योर्धातुप्रकृत्योः श्लेपः। पदश्लेपमुदाहरति–**पृथुकार्त्तस्वर**मिति। राजानं प्रति कस्यचिद् दरिद्रस्योक्तिरियम्। **हे देव! संप्रति**—इदानीम्, मयि नितान्तं दारिद्र्यकवलित इति भावः। **आवयोः**–तव मम चेत्यर्थः, **सदनम्**—वासस्थानम्, **पृथुकार्त्तस्वरपात्रम्**–राजपक्षे-पृथूनि महान्ति कार्तस्वरस्य-सुवर्णस्य, सुवर्णनिर्मितानीत्यर्थः, पात्राणि यत्र तादृशम्। दरिद्रपक्षे–पृथुकानां शिशूनाम्, आर्तस्वरस्य अशनवसनाद्यलाभेन आर्तक्रन्दनस्य, पात्रम् आश्रयः, **भूपितनिःशेपपरिजनम्**—राजपक्षे–भूपिताः सद्वस्त्राभरणादिभिरलंकृताः, निःशेपाः सकलाः, परिजनाः परिवारपुरुषा यत्र तादृशम्। दरिद्रपक्षे–भुवि शय्यादिशून्यनग्नभूतले, उपिताः स्थिताः, निःशेपाः, परिजना यत्र तादृशम्। **विलसत्करेणु-गहनम्** राजपक्षेविलसन्त्यः शोभमानाः, करेणवो हस्तिन्यः, ताभिर्गहनं निविडम्, दरिद्रपक्षे—विलेपु सीदन्तीति विलसदः, विलसद एव विलसत्काः, मूपिका इत्यर्थः, [ स्वार्थे कः ] तेपां रेणुभिः रजोभिः, मूपिककृतविलोत्पन्नधूलिभिरित्यर्थः, गहनं व्याप्तमिति भावः, सत्, **समम्**–तुल्यम्, अस्तीति शेपः। राज्ञो दरिद्रसाम्यमयशस्करम्। अतस्त्वया मम दारिद्र्यमपनीय तदपहरणीयमिति भावः।

अत्र पदभङ्गे विभक्तिसमासयोरपि वैलक्षण्यात् पदानां श्लेपः। तदुक्तं रुद्रटेन—

यस्मिन् विभक्तियोगः समासयोगश्च जायते विविधः।
पदभङ्गेपु विभक्तौ विज्ञेयोऽसौ पदश्लेपः॥

---

**कर इति**। 'कर' इस शब्द में प्रकृतिश्लेप भी है। **पृथु इति**। हे राजन्! इस समय हम दोनों का (आपका और मेरा) घर एक जैसा ही है। आपके घर में पृथु (बड़े २) कार्तस्वर (स्वर्ण) के पात्र हैं और मेरा घर पृथुकों (बच्चों) के आर्तस्वर-दीनता भरी रोने की आवाज का पात्र (स्थान) बना हुवा है, इसलिये दोनों ही 'पृथुकार्तस्वरपात्र' हैं। आपके घर में निःशेष परिजन-सारे घर के लोग भूपित-भूपणों से सजे-धजे हैं, और मेरे घर में निःशेप परिजन—सारा कुटुम्ब भूपित (भू+उपित) नङ्गी जमीन पर पड़ा हुवा है, इसलिये दोनों ही 'भूपितनिःशेप-परिजन' हैं। आपका सदन (महल) विलसत्—विशेप रूप से सजी हुई करेणुओं-हथिनियों से गहन-भरा हुआ है, और मेरी झोपड़ी (सदन) विलसत्क-विल में रहने वाले चूहों की खोदी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



## अथ अर्थालङ्काराः—

**अर्थालङ्काराः—स्वभावोक्तिरुपमाऽऽदयश्च। तत्र स्वभावोक्तेर्वस्तुस्वभाववर्णनस्वरूपत्वात् स्वभाववर्णनञ्च वस्तूनां प्रकृतञ्चेत् तद्वस्तूनि प्रत्यक्षमिव दर्शयित्वा सहृदयमनांसि नितरामाकर्षतीति तस्या अतीव चमत्कारित्वात् तामेव प्रथममाह—**

---

लिङ्गादिश्लेषोदाहरणानि दर्पणादितोऽवगन्तव्यानि।

अर्थालङ्कारानुपक्रमते—**अर्थालङ्कार** इति। स्वभावोक्तेः सर्वतः प्रथममुपवर्णने हेतुमाह—तत्रेति। अयं भावः—आचार्यरुद्रटेन—

अर्थस्यालङ्कारा वास्तवमौपम्यमतिशयः श्लेषः।
एषामेव विशेषा अन्ये तु भवन्ति निःशेषाः॥

इत्येवम् [ वास्तवम्–वस्तुस्वभाववर्णनात्मिका स्वभावोक्तिः, औपम्यम्—उपमा, अतिशयः अतिशयोक्तिः, श्लेषः प्रसिद्धः ] स्वभावोक्त्यादयश्चत्वारोऽलङ्काराः सर्वालङ्कारबीजतयोपन्यस्ताः। तत्र पूर्वं वास्तवमिति पदेन स्वभावोक्तिरेव तेन वर्णनं कृतमिति तन्मतानुसारेण दीपिकाकृतापि स्वभावोक्तिरेव प्रथममुपक्रान्ता। किं च स्वभावोक्तिरियमिदं प्रथमतया अलङ्कारपरिचयमिच्छतां बालानां झटित्यनायासं बुद्धिमारोहतीत्यपि तस्याः प्रथमोपादाने हेतुः। वास्तवस्वरूपं च तेनैव वर्णितम्। यथा—

वास्तवमिति तज्ज्ञेयं क्रियते वस्तुस्वरूपकथनं यत्।
पुष्टार्थमविपरीतं निरुपममनतिशयमश्लेषम्॥

तन्मूलालङ्कारास्तेनैव वर्णिताः यथा—

तस्य सहोक्ति-समुच्चय-जाति-यथासंख्य-भाव-पर्य्यायाः।
विषमानुमान-दीपक-परिकर-परिवृत्ति-परिसंख्याः ॥ १ ॥
हेतुः कारणमाला-व्यतिरेकोऽन्योन्यमुत्तरं सारम्।
सूक्ष्मं लेशोवसरो मीलितमेकावली भेदाः॥ २ ॥

**वस्तुस्वभाववर्णनरूपत्वात्**—वस्तुनः स्वभावस्य वर्णनं स्वरूपं यस्याः, तस्या भावस्तत्त्वम्।

---

हुई रेणु-मिट्टी से भरी हुई है, इसलिये दोनों ही 'विलसत्करेणुगहन' हैं। अत्र इति। यहाँ पदों का श्लेष है।

### अर्थालङ्कार—

**अर्थालङ्कारा** इति। स्वभावोक्ति और उपमा आदि अर्थालङ्कार हैं। तत्र इति। किसी वस्तु का स्वभाव का वर्णन करना ही स्वभावोक्ति है। यदि वस्तु के स्वभाव का वर्णन प्रस्तुत हो तो वह ( वस्तु-स्वभाव-वर्णन ) वस्तुओं को मानो प्रत्यक्ष दिखाकर सहृदय पुरुषों के चित्त को अत्यन्त आकृष्ट कर लेता है, इसलिये अत्यधिक चमत्कारी होने से 'स्वभावोक्ति' को ही पहले लिखते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


## स्वभावोक्तिः—

"स्वभावोक्तिरसौ चारु यथावद्वस्तुवर्णनम्"।

यथा अभिज्ञानशाकुन्तले—

"ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने बद्धदृष्टिः
पश्चार्द्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकायम्।
शष्पैरर्द्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा
पश्योदग्रप्लुतत्वाद् वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति ॥ ६ ॥

---

**प्रकृतम्**—प्रक्रान्तम्, वर्णनीयतया विवक्षितम् इति भावः। **स्वभावोक्तिरिति**। **चारु**—सुन्दरम्, चमत्कृतिजनकम्, **यथावत्**—अन्यूनानधिकम्, यद् **वस्तुवर्णनम्**—वस्तुनः वस्तुस्वभावस्य, वस्तुगतक्रियारूपादेरित्यर्थः, वर्णनम्, **असौ, स्वभावोक्तिर्नामालङ्कारः**।

उदाहरणं यथा **ग्रीवाभङ्गेति**। शाकुन्तले प्रथमाङ्के मृगहननाय धावितरथस्य राज्ञो दुष्यन्तस्य स्वसूतं प्रत्युक्तिरियम्। हे सूत! **पश्य, अनुपतति**—अनुधावति, **स्यन्दने**—अस्मद्रथे, **ग्रीवाभङ्गाभिरामम्**—ग्रीवायाः भङ्गेन वक्रीभावेन, अभिरामं मनोहरं यथा स्यात् तथा, ग्रीवां वक्रीकृत्येत्यर्थः, **मुहुः**—भूयोभूयः, **बद्धदृष्टिः**—दत्तदृष्टिः, [ भीतेन भयहेतोस्तथा दर्शनं स्वभावः ] तथा **शरपतनभयात्**—बाणपातभीत्या, **पश्चार्द्धेन**—स्वशरीरापरार्धेन, **भूयसा**—अत्यधिकमिति भावः, **पूर्वकायम्**—स्वशरीरपूर्वार्धम्, **प्रविष्टः**, बाणपातभयेन संकुचच्छरीर इति भावः, [ इयमपि अनुधाव्यमानस्य प्रहारपातादिभीत्या पलायमानस्य प्रकृतिः ] **श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः**—श्रमेण पलायनजन्यश्रान्त्या, विवृताद् उद्घाटिताद् मुखाद्, भ्रश्यन्ति पतन्तीति तथाभूतैः, **अर्धावलीढैः**—अर्धचर्वितैः, **शष्पैः**—तृणैः, **कीर्णवर्त्मा**—कीर्णम् आच्छादितम्, वर्त्म मार्गो येन तादृशः, अयं मृगः, **उदग्रप्लुतत्वाद्**—उदग्रम्, उत्कटमत्यधिकम्, प्लुतमुच्छलनं यस्य, तस्य भावस्तत्त्वम्, तस्मात्, **वियति**—व्योम्नि, **बहुतरम्**—अत्यधिकम्, **उर्व्याम्**—भूमौ, **स्तोकम्**—अल्पम्, **प्रयाति**—धावति। [ भयेनोत्प्लुत्य धावनं मृगाणां स्वभावः। ] अत्र भीतमृगस्वभाववर्णनात् स्वभावोक्तिः।

---

## स्वभावोक्ति—

**स्वभावोक्ति इति**। किसी वस्तु के ठीक-ठीक ( जैसी उसकी चेष्टा या स्वभाव हो उसके अनुसार ) मनोहर वर्णन को 'स्वभावोक्ति' कहते हैं, जैसे अभिज्ञानशाकुन्तल में **ग्रीवा इति**। हे सारथि! देखो, यह मृग अपने पीछे दौड़ते हुए रथ को खूबसूरती के साथ गर्दन मोड़कर बार-बार देखता है। बाण लगने के डर से इसके शरीर का पिछला हिस्सा अत्यधिक रूप में ( मानों ) अगले हिस्से में प्रविष्ट हो गया है—अर्थात् बाण लगने के डर से इसने शरीर को अत्यन्त संकुचित कर लिया है। इसने आधे चबाए हुए और थकान के कारण खुले हुए मुँह से गिरने वाले तिनकों से मार्ग को व्याप्त किया हुवा है, यह ऊँची छलाँग मारने के कारण आकाश में अधिक और धरती पर कम दौड़ रहा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


यथा वा—तत्रैव पञ्चमाङ्कादौ कञ्चुकिनो जरावर्णनम्। तत्रैव च सप्तमे नृपशिशोः सिंहशावकाऽऽस्कन्दनविक्रान्तिवर्णनम्।

उपमास्वरूपमुक्तमादर्शे—

उपमा—

"प्रस्फुटं सुन्दरं साम्यमुपमेत्यभिधीयते"।

प्रस्फुटमिति रूपकाऽऽदेर्गम्यसाम्याद्भेदाय। सुन्दरं—वैचित्र्यजनकम्, तेन

---

उदाहरणान्तरमाह—यथा वा तत्रैवेति। तत्रैव शाकुन्तले। कञ्चुकिनो जरावर्णनं यथा—

आचार इत्यवहितेन मया गृहीता, या वेत्रयष्टिरवरोधगृहेषु राज्ञः।
काले गते बहुतिथे मम सैव जाता, वृद्धस्य विप्लवगतेरवलम्बनार्था॥

सिंहेत्यादि–सिंहशावकस्य आस्कन्दने या विक्रान्तिः पराक्रमः, सर्वदमनस्य दुष्यन्त-शिशोरिति शेषः, तस्य वर्णनम्। तद्यथा—

अर्धपीतस्तनं मातुरामर्दक्लिष्टकेसरम्। प्रक्रीडितुं सिंहशिशुं बलात्कारेण कर्षति॥

पूर्वपद्ये जराजीर्णस्य कञ्चुकिनः स्वभाववर्णनम्, द्वितीये तु शिशोः।

'पश्य चायं बलीवर्दो घासमत्ति मुखेन तु' इत्यादौ तु नायमलङ्कारः। अचारुत्वात्।

स्वभावोक्त्यनन्तरं रुद्रटेन 'उपमा' अनेकालङ्कारबीजतयोपन्यस्तेति तदनुपमां वर्णयितु-मुपक्रमते—उपमास्वरूपमिति।

उपमाया अनेकालङ्कारबीजत्वं चित्रमीमांसायामप्पय्यदीक्षितेनेत्थमुपश्लोकितम्—

उपमैका शैलूषी संप्राप्ता चित्रभूमिकाभेदान्। रञ्जयति काव्यरङ्गे नृत्यन्ती तद्विदां चेतः॥
तदिदं चित्रं विश्वं ब्रह्मज्ञानादिवोपमाज्ञानात्। ज्ञातं भवतीत्यादौ निरूप्यते निखिलभेदसहिता सा॥

तन्मूला अलङ्कारा रुद्रटोक्ता यथा—

उपमोत्प्रेक्षा रूपकमपह्नुतिः संशयः समासोक्तिः। मतमुत्तरमन्योक्तिः प्रतीपमर्थान्तरन्यासः॥
उभयन्यास-भ्रान्तिमदाक्षेप-प्रत्यनीक-दृष्टान्ताः। पूर्वसहोक्ति-समुच्चय-साम्यस्मरणानि तद्भेदाः॥

आदर्श इति। काव्यादर्शे दण्डिकृते। उपमां लक्षयति—प्रस्फुटमिति। प्रस्फुटम्—स्पष्टम्, वाच्यमिति यावत्। सुन्दरम्—चमत्कृतिजनकम्, साम्यम्—सादृश्यम्, उपमानोपमेययोरित्यर्थः। उपमा, इति अभिधीयते—व्यपदिश्यते। प्रस्फुटमिति विशेषणस्य प्रयोजनमाह प्रस्फुटमिति।

---

यथा वा इति। अथवा जैसे उसी (अभिज्ञानशाकुन्तल) के पाँचवें अङ्क के प्रारम्भ में कञ्चुकि का (अपने) बुढ़ापे का वर्णन। और वहाँ (शाकुन्तल में ही) सातवें अङ्क में राजा के शिशु (सर्वदमन) का शेर के बच्चे को पकड़ने का पराक्रम।

उपमा—

उपमा इति। उपमा का स्वरूप काव्यादर्श में यों लिखा गया है—प्रस्फुट (अभिधा-वृत्ति से प्रतिपाद्य) और चमत्कारजनक (उपमान और उपमेय के) सादृश्य को 'उपमा' कहते हैं।

प्रस्फुटम् इति। उपमा के लक्षण में 'प्रस्फुटम्' यह पद रूपक से उपमा का भेद दिखाने के लिये दिया गया है। रूपक में साम्य व्यङ्ग्य (गम्य) रहता है, और उपमा में वाच्य (प्रस्फुट)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


**"गौरिव गवयः"** इत्यत्र नायमलङ्कारः। साम्यं—सादृश्यम्; साम्यञ्च—क्रियागतम्, गुणगतम्, उभयगतञ्चेति त्रिविधम्। क्रमेणोदाहरणानि। तत्र क्रियागतं यथा—

> "क्षणात् प्रबोधमायाति लङ्घ्यते तमसा पुनः।
> निर्वास्यतः प्रदीपस्य शिखेव जरतो मतिः" ॥ ७ ॥ [ शाकु० ]

अत्र "आयाति" "लङ्घ्यते" इति च क्रियाद्वयस्य उपमेये उपमाने च साम्यम्।

गुणगतं यथा—

---

**गम्यसाम्याद्**—गम्यं व्यङ्ग्यं साम्यं यत्र तस्माद्। अयं भावः—'मुखं चन्द्रः' इत्यादौ रूपकेऽपि चन्द्रमुखयोरुपमानोपमेययोर्यद्यपि साम्यं प्रतीयते, तथाप्यत्र न तद् वाच्यमपि तु व्यङ्ग्यम्। तथा च रूपकादिष्वतिव्याप्तिवारणाय प्रस्फुटमिति पदं बोध्यम्। रूपकादेरित्यादिपदात् परिणामादेर्ग्रहणम्। साम्यस्य भेदमाह—**साम्यं** चेति। **उभयगतम्**—क्रियागुणोभयगतमित्यर्थः। **जरतः**—वृद्धस्य पुरुषस्य, **मतिः**—बुद्धिः, **निर्वास्यतः**—निर्वाणं गमिष्यतः, **प्रदीपस्य**, **शिखेव**—ज्वालेव, **क्षणात्**, **प्रबोधम्**—स्मृतिमिति यावत्, पक्षे प्रकाशम्, **आयाति**—प्राप्नोति, **पुनः**—क्षणादनु, **तमसा**—मोहेन, विस्मृत्या, पक्षे अन्धकारेण, **लङ्घ्यते**—आक्रम्यते। अत्र प्रदीपशिखा उपमानम्, जरन्मतिरुपमेया, क्षणेन प्रबोधप्राप्तिः क्षणेन च तमसाक्रान्तिरुभयोः साम्यम्, इवशब्दः साम्यवाचकः। अतः साम्यमत्र वाच्यम्। क्रियागतं साम्यं लक्ष्ये संगमयति—**अत्रे**ति। सादृश्यप्रतियोगित्वमुपमानत्वम्, सादृश्यानुयोगित्वमुपमेयत्वम्। अथवा यस्य साधर्म्यमन्यत्र प्रतिपाद्यते तदुपमानम्, यत्र प्रतिपाद्यते तदुपमेयम्। यथा निरुक्ते पद्ये प्रदीपशिखायाः साधर्म्यं जरन्मतौ प्रतिपाद्यते, अतः प्रदीपशिखोपमानम्, जरन्मतिरुपमेया। यद्यपि उपमेये प्रबोधप्राप्तिः स्मृत्युद्भवः, तमसाक्रान्तिश्च विस्मरणम्, उपमाने च प्रबोधप्राप्तिः प्रकाशाधिक्यम्, तमसाक्रान्तिश्च अन्धकारावरणमल्पप्रकाशनं वेति न क्रियासाम्यमत्र वक्तुं शक्यम्। तथापि समानशब्दोपात्तत्वेन तयोरभेदाध्यवसायान्न दोषः।

---

**सुन्दरम्** इति। 'सुन्दरम्' पद का अर्थ है—विच्छित्ति का जनक, अर्थात् चमत्कारी। इसलिये 'गौ के समान गवय' इस वाक्य में (उपमा) अलङ्कार नहीं माना जाता। (क्योंकि इसमें कोई चमत्कार नहीं है, केवल गौ गवय की समानता दिखाई गई है)। **साम्यमिति**। साम्य का अर्थ है सादृश्य। सादृश्य तीन प्रकार का होता है, क्रियागत गुणगत और क्रियागुणोभयगत—अर्थात् क्रिया की समानता, गुणों की समानता और क्रिया और गुण दोनों की समानता।

**तत्र** इति। क्रिया की (क्रियागत) समानता का उदाहरण जैसे **क्षणात्** इति। बूढ़े मनुष्य की बुद्धि बुझते हुए दीप की ज्वाला की तरह पल में जग जाती है, पल में मन्द पड़ जाती है।

**अत्र** इति। यहाँ उपमेय (बूढ़े की बुद्धि) और उपमान (दीपशिखा) में 'आयाति' (प्रबोधमायाति—जगना) और 'लङ्घ्यते' (तमसा लङ्घ्यते-मन्द पड़ना) इन दोनों क्रियाओं की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



"हरस्तु किञ्चित्परिलुप्तधैर्य्यश्चन्द्रोदयाऽऽरम्भ इवाम्बुराशिः।
उमामुखे बिम्बफलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि" ॥ ८ ॥ [ कुमारसं० ]

अत्र परिलुप्तधैर्य्यत्वं गुण उभयत्रापि समानः।

उभयगतं यथा—

"स्नपयति हृदयेशं स्नेहनिष्यन्दिनी ते।
धवलबहलमुग्धा दुग्धकुल्येव दृष्टिः" ॥ [ उत्तरच० ]

अत्र "स्नपयति" इति क्रियासाम्यम् "स्नेहनिष्यन्दिनी" "धवलबहलमुग्धा" इति गुणसादृश्यञ्च।

---

गुणसाम्यमुदाहरति—**हरस्त्विति**। कुमारसंभवे तृतीये वसन्तप्रासावन्येषां चेष्टायां वर्णितायां हरस्य चेष्टावर्णनमिदम्। **चन्द्रोदयारम्भे**—चन्द्रोदयस्य, आरम्भे, **अम्बुराशिरिव**—समुद्रवत् **किंचित्परिलुप्तधैर्यः**—किञ्चिद् ईषत्, परिलुप्तं च्युतम्, धैर्यं यस्य, तादृशः, **बिम्बफलाधरोष्ठे**—बिम्बफलवद्, अधरोष्ठौ यत्र तादृशे; **उमामुखे**—उमायाः पार्वत्याः, मुखे **विलोचनानि**—नेत्राणि, **व्यापारयामास**—संचारयामास। उत्कण्ठातिशयो व्यज्यते।

अत्र अम्बुराशिरुपमानम्, शिव उपमेयः, परिलुप्तधैर्यत्वं गुणः सादृश्यम्, इवशब्दः सादृश्यवाचकः। गुणसाम्यं संगमयति—**अत्रेति**। **उभयत्रापि**—उपमाने उपमेये चेति।

क्रियागुणोभयसाम्यं निदर्शयति—**स्नपयतीति**। **स्नेहनिष्यन्दिनी**—स्नेहः प्रणयः, तस्य निष्यन्दिनी निर्झरिणी, प्रणयवर्षिणीति यावत्। पक्षे—स्नेहो नवनीतम्, तत्प्रकाशिनीत्यर्थः। **धवलबहलमुग्धा**—धवला शुभ्रा, बहलमुग्धा च असिमनोहरा च [ उभयत्र समानम् ] **ते**—तव, **दृष्टिः**, **दुग्धकुल्येव**—दुग्धस्य कुल्येव अल्पसरिदिव, **हृदयेशम्**—प्राणेश्वरम्, **स्नपयति**—आर्द्रयति, प्रणयनिमग्नं करोतीत्यर्थः।

अत्र दुग्धकुल्या उपमानम्, दृष्टिरुपमेया। स्नपनम्, स्नेहः धावल्यम् मुग्धत्वं चोभयोः साम्यम्। तत्र स्नपनं क्रिया स्नेहादयश्च गुणाः अतः क्रियागुणोभयसाम्यमत्र। इवशब्दश्च साम्यवाचकः। क्रियागुणसाम्यं संगमयति—**अत्रेति**।

---

समानता है। गुण की समानता, जैसे **हरस्तु** इति। चन्द्रोदय के आरम्भ में समुद्र के समान कुछ क्षुब्ध होकर महादेव जी ने बिम्बफल के सदृश होंठ वाले पार्वती जी के मुँह की ओर दृष्टि फेरी।

**अत्र** इति। यहाँ परिलुप्तधैर्यत्व अर्थात् क्षोभरूप गुण दोनों जगह ( उपमान और उपमेय में ) समान ही है।

क्रिया और गुण दोनों की समानता, जैसे **स्नपयति** इति। दूध की नहर की तरह स्नेह बहाने वाली, शुभ्र और अत्यन्त मनोहर तुम्हारी दृष्टि तुम्हारे हृदय के स्वामी ( प्रिय ) को स्नान करा रही है।

**अत्र** इति। यहाँ 'स्नान करवाना' ( स्नपयति ) क्रिया का साम्य है, और स्नेह शुभ्रता और मनोहरता ( स्नेहनिष्यन्दिनी, धवलबहलमुग्धा ) इन गुणों का साम्य है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri



मालोपमा—

"मालोपमा यदेकस्योपमानं बहु दृश्यते।" । [ विश्वनाथः ]

यथा—

"प्रभामहत्या शिखयेव दीपस्त्रिमार्गयेव त्रिदिवस्य मार्गः।
संस्कारवत्येव गिरा मनीषी तया स पूतश्च विभूषितश्च" ॥ ९ ॥ [ कुमारसं० ]

---

उदाहरणान्तरं यथा—

गुणदोषौ बुधो गृह्णन्निन्दुक्ष्वेडाविवेश्वरः।
शिरसा श्लाघते पूर्वं परं कण्ठे नियच्छति ॥

क्ष्वेडो विषम्। इतरत् सुगमम्। "अत्र यद्यप्युपमानोपमेययोर्नैकः साधारणो धर्मः; उपमाने ईश्वरे चन्द्रगरलयोर्ग्रहणम्, उपादानम्, तयोर्मध्ये पूर्वस्य चन्द्रस्य शिरसा श्लाघनम्—वहनम्, उत्तरस्य गरलस्य कण्ठे नियमनम्—संस्थापनम्, उपमेये बुधे गुणदोषयोर्ग्रहणम्—ज्ञानम्, तयोर्मध्ये पूर्वस्य गुणस्य शिरसा श्लाघनम्—शिरःकम्पनेनाभिनन्दनम्, उत्तरस्य दोषस्य कण्ठे नियमनम्—कण्ठादुपरिवाचानुद्घाटनम् इति भेदात्। तथापि चन्द्रगरलयोर्गुणदोषयोश्च बिम्बप्रतिबिम्बभावेन अभेदाद्, उपादानज्ञानादीनां च गृह्णन्नित्येकशब्दोपादानेन अभेदाध्यवसायात् साधारणधर्मतेति पूर्वस्माद् विशेषः।" इत्यप्पय्यदीक्षिताः। बिम्बप्रतिबिम्बभावस्वरूपं च तैरेव इत्थं विवृतम्—"वस्तुतो भिन्नयोरप्युपमानोपमेययोः परस्परसादृश्यादभिन्नयोः पृथगुपादानं बिम्बप्रतिबिम्बभावः" इति।

मालोपमामाह—**मालोपमेति**। **यद् एकस्योपमेयस्य**, **बहु**—अनेकम्, **उपमानम्**, **दृश्यते**, तन् **मालोपमा** उच्यत इति शेषः। यथा मालायामेकसूत्रेऽनेकानि पुष्पाणि ग्रथितानि भवन्ति, तथैवात्राप्येकस्मिन्नुपमेये अनेकान्युपमानानि। अतो मालासादृश्यादस्य मालोपमात्वम्।

उदाहरणमाह—**प्रभामहत्येति**। कुमारसंभवे प्रथमे पार्वत्या वर्णनमिदम्। **प्रभामहत्या**—प्रभया प्रकाशेन, महती अधिका, तया अधिकप्रकाशयेत्यर्थः, **शिखया**—ज्वालया, [ शिखादीपयोरवयवावयविभावाद् भेदेन व्यपदेशः ] **त्रिमार्गया**—मन्दाकिन्या, **त्रिदिवस्य**—स्वर्गस्य, **मार्ग इव**, **संस्कारवत्या**—संस्कारो व्याकरणजन्या शुद्धिः, तद्वत्या, **गिरा**—वाचा, **मनीषीव**—विद्वानिव, **तया**—पार्वत्या, **सः**—हिमवान्, **पूतश्च**—पवित्रितश्च, **विभूषितश्च**—अलङ्कृतश्च, बभूवेति शेषः।

---

मालोपमा—

**मालोपमा** इति। यदि एक उपमेय के अनेक उपमान हों तो 'मालोपमा' होती है। जैसे **प्रभा** इति। जिस तरह अधिक प्रकाशयुक्त ज्वाला से दीपक, आकाशगङ्गा से आकाश और संस्कारयुक्त वाणी से विद्वान् पवित्र और अलंकृत होता है उसी तरह उस पार्वती से वह पर्वतराज ( हिमालय ) पवित्र और अलंकृत था। [ यहाँ एक उपमेय पार्वती के दीपशिखा, आकाशगङ्गा और वाणी ये अनेक 'उपमान' हैं। इसी प्रकार एक उपमेय हिमालय के दीपक, आकाश, मनीषी ये अनेक उपमान हैं। ]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



रूपकम्—

"तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः" । [ मम्मटः ]

उपमानं चन्द्रादि, उपमेयं मुखादि । प्रकाशितविभिन्नस्वरूपयोरपि उपमानोपमेययोरतिसाम्यप्रदर्शनाय काल्पनिकोऽभेदाऽऽरोपो रूपकमित्यर्थः । यथा—

"पर्याप्तपुष्पस्तवकस्तनाभ्यः स्फुरत्प्रवालोष्ठमनोहराभ्यः ।
लतावधूभ्यस्तरवोऽप्यवापुर्विनम्रशाखाभुजबन्धनानि" ॥ १० ॥ [ कुमारसं० ]

---

अत्रैकस्या उपमेयभूताया पार्वत्याः, तथैवैकस्योपमेयभूतस्य हिमवतः, क्रमशः शिखादीनि, त्रिदिवमार्गादीनि चानेकान्युपमानानि । अत इयं मालोपमा ।

रूपकमाह—**तद्रूपकमिति** । **यः, उपमानोपमेययोः अभेदः, तद्रूपकमित्यन्वयः** । **उपमानमिति** । उपमानोपमेययोर्लक्षणं प्रागुपमालक्षणव्याख्यायां प्रतिपादितम् । ननु अपह्नुत्यलङ्कारेऽपि उपमानोपमेययोरभेदादतिप्रसङ्ग इत्यत आह—**प्रकाशितेत्यादि** । प्रकाशिते शब्देन चन्द्रत्वमुखत्वादिपुरस्कारेण बोधिते, अत एव विभिन्ने-विविक्ते, अनपह्नुतभेदे-स्वरूपे ययोस्तादृशयोरित्यर्थः । अपह्नुतौ तु 'नेदं नभोमण्डलमम्बुराशिः' इत्यादौ भेदस्य नञादिना अपह्नवान्न दोषः । ननवनपह्नुतभेदयोरुपमानोपमेययोरभेदोऽसंगत इत्यत आह—**काल्पनिक इति** । **काल्पनिकः**—स्वयं कल्पितः, न तु परमार्थतः । अत एव 'कपाले मार्जारः पय इति कराँल्लेढि शशिनः' इत्यादौ भ्रान्तिमदलङ्कारे अभेदज्ञानस्य पारमार्थिकत्वान्न दोषः । अभेदारोपे हेतुमाह—**अतिसाम्यप्रदर्शनायेति** । उदाहरति—**पर्याप्तेति** । कुमारसंभवे तृतीये वसन्तवर्णनम् । **पर्याप्तपुष्पस्तवकस्तनाभ्यः**—पर्याप्ताः प्रभूताः, पुष्पाणां स्तवका गुच्छा एव स्तनाः, यासां ताभ्यः, **स्फुरत्प्रवालोष्ठमनोहराभ्यः**—स्फुरन्तः स्पन्दमानाः, प्रवाला नवपल्लवा एव, ओष्ठाः, तैर्मनोहराभ्यः, **लतावधूभ्यः**—लता एव वध्वः, ताभ्यः सकाशात्, **तरवोऽपि**—वृक्षा अपि, **विनम्रशाखाभुजबन्धनानि**—विनम्राः शाखा एव भुजाः, तैः, बन्धनानि आलिङ्गनानि, **अवापुः**—प्राप्तवन्तः । यत्र जडप्रायाणां तरूणामपि मदनविकारोऽभूत्, तत्र चेतनानां स इत्यत्र किमु वक्तव्यमिति भावः ।

---

रूपकम्—

**तद्रूपकम्** इति । उपमान और उपमेय के अभेद को 'रूपक' कहते हैं ।

**उपमानम्** इति । चन्द्रमा आदि उपमान कहे जाते हैं, मुख आदि उपमेय । **प्रकाशित** इति । उपमान और उपमेय का भिन्न-भिन्न स्वरूप प्रकाशित कर देने पर भी उनमें ( उपमान और उपमेय में ) परस्पर अत्यन्त समता दिखाने के लिये काल्पनिक अभेद का आरोप ही रूपक है ।

जैसे **पर्याप्त** इति । वृक्षों ने भी [ अपनी ] झुकी हुई शाखा रूपी भुजाओं के द्वारा अत्यधिक पुष्पगुच्छरूपी स्तनों वाली, नवपल्लव रूपी होंठों से मनोहर, लता रूपी वधुओं का आलिङ्गन प्राप्त किया ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अत्र लतासु वधूनाम्, पुष्पस्तवकाऽऽदिषु च स्तनाऽऽदीनामभेदारोपः।

उत्प्रेक्षा—

"सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्"। [दण्डी]

प्रकृतस्य—उपमेयस्य, समेन—उपमानेन, सम्भावनञ्च-उत्कटकोटिकः संशयः; अप्रस्तुतकोटेरुत्कटत्वञ्च प्रस्तुतकोटेरुत्कटत्वञ्च प्रस्तुतकोटेर्निगरणेन जायते, निगरणञ्च प्रस्तुतस्य क्वचिदनुपादानेन क्वचिदुपात्तस्याप्यधःकरणेन भवति। यदुक्तम्—

निगीर्णलक्षणम्—

"विषयस्यानुपादानेऽप्युपादने च सूरयः।

---

लक्ष्यसमन्वयं करोति—अत्रेति। उत्प्रेक्षां लक्षयति—संभावनमिति। उपमेयस्योपमानरूपेण यत् संभावनं सा उत्प्रेक्षेत्यर्थः, संभावनशब्दार्थमाह—संभावनं चेति। उत्कटकोटिकः—उत्कटा प्रबला, कोटिः उपमानकोटिर्यत्र स इत्यर्थः। अयं भावः—रज्जुः सर्पो वेत्यादिसंदेहे रज्ज्वादिकोटेः सर्पादिकोटेश्च समत्वमेव भवति। नत्वेकतरस्या उत्कटत्वम्। द्वयोरेव समानरूपेणानिश्चयात्। उत्प्रेक्षायां तु उपमानकोटेरेवोत्कटत्वम्, तत्रैव प्राधान्येन संदेहप्रतीतेः, उपमेयकोटिस्तु तत्र निश्चितत्वादनुत्कटा। नन्वेवमेकतरस्योपमेयस्य निश्चये कथमुपमानसंदेहः, एकतरनिश्चयस्य संशयप्रतिबन्धकत्वात् इति चेत्, सत्यं तत्र पारमार्थिकः संदेहो नोत्पत्तुमर्हति परमाहार्य [काल्पनिकः] स्तु स तत्राप्यस्त्येव। तथा च उपमेयस्योपमानरूपेण य आहार्यः सन्देहः स उत्प्रेक्षेति भावः। उत्प्रेक्षायामुपमानकोटेरुत्कटत्वे हेतुमाह—अप्रस्तुतेति। अप्रस्तुतकोटेः—उपमानकोटेरित्यर्थः। प्रस्तुतकोटेः—उपमेयकोटेः। प्रकृत-प्रस्तुत-वर्ण्यप्रभृतयः शब्दा उपमेयार्थाः, अप्रकृताप्रस्तुतावर्ण्यप्रभृतयस्तूपमानार्थाः। निगरणेन—अधःकरणं निगरणम्, तेन। निगरणपदार्थमाह—निगरणं चेति। उपात्तस्य शब्देनोपात्तस्य। अधःकरणेन—अपकर्षमात्रेण। अपकर्षश्च चमत्कारं प्रत्यप्रयोजकत्वाद् भवति। उक्तमर्थं दण्ड्युक्त्या समर्थयते—विषयस्येति। सूरयः—साहित्या-

---

अत्र इति। यहाँ लताओं में वधुओं का, पुष्पस्तवक (फूलों का गुच्छा) आदि में स्तन आदि का अभेद आरोपित हुआ है।

उत्प्रेक्षा—

उपमेय की उपमानरूप से संभावना को 'उत्प्रेक्षा' कहते हैं। लक्षण में 'प्रकृतस्य' का अर्थ है 'उपमेय की'। और 'समेन' का अर्थ है 'उपमानरूप से'। संभावनम् इति। संभावन शब्द का अर्थ है—ऐसा संदेह जिसमें कोई एक पक्ष उत्कट-प्रबल रहे। (उत्प्रेक्षा में) अप्रस्तुत (उपमान) पक्ष ही प्रबल रहता है, इसका कारण है प्रस्तुत (उपमेय) पक्ष का निगरण। प्रस्तुत (उपमेय) का निगरण दो तरह से होता है—कहीं उसका (प्रस्तुत का) नाम न लेने से और कहीं नाम लेने पर भी उसके असली स्वरूप को दबा देने से। (उत्प्रेक्षा में उपमेय के असली स्वरूप को दबा देने से ही निगरण होता है।)

जैसा कि कहा भी है—विषयस्य इति। साहित्यशास्त्र के विद्वान् केवल नाम न लेने से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अधःकरणमात्रेण निगीर्णत्वं प्रचक्षते" ॥ ११ ॥ [ दण्डी ]

विषयः—प्रस्तुतम् । क्रमेणोदाहरणम्—

"लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः ।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विफलतां गता" ॥ ११ ॥ [ मृच्छ० ]

अत्र तमसः प्रसरसम्पाताऽऽदिरूपो विषयो नोपात्तः ।

"समयः स वर्तत इवैष यत्र मां समनन्दयत् सुमुखि ! गौतमार्पितः ।

---

चार्याः, विषयस्य प्रस्तुतस्य, अनुपादाने–शब्देनाग्रहणे, उपादानेऽपि–ग्रहणेऽपि, अधःकरणमात्रेण–चमत्काराप्रयोजकत्वहेतुकेन अपकर्षमात्रेण, निगीर्णत्वम्–निगरणम्, प्रचक्षते–कथयन्ति ।

लिम्पतीति । मृच्छकटिके प्रथमेऽङ्के तमोवर्णनमिदम् । तमः–अन्धकारः, अङ्गानि–पाणिपादाद्यवयवान्, लिम्पतीव–लिप्तानि करोतीव, नभः–आकाशम्, अञ्जनम्–कज्जलम्, वर्षतीव–विकिरतीव । दृष्टिः–नेत्रम्, असत्पुरुषसेवेव–असतः पुरुषस्य, सेवेव, निष्फलताम्, गता–प्राप्ता । अस्य पद्यस्य पूर्वार्धमेवोत्प्रेक्षाया उदाहरणम् । उत्तरार्धे तूपमालङ्कृतिः । अत्र प्रकृतस्य तमोव्यापनस्य अङ्गलेपनरूपतया, तमःसंपातस्य च अञ्जनवर्षणतया संभावनाद् उत्प्रेक्षालङ्कारः । तमोव्यापनसंपातौ च विषयौ शब्देन नोपात्तौ । अत्रेति । प्रसरसन्पातेत्यत्र प्रसरो व्यापनम् ।

विषयस्य शब्देनोपादाने उदाहरणं यथासमय इति । उत्तरचरिते प्रथमाङ्के वीथ्यामालिखितं वैवाहकालिकमात्मनः सीतायाश्च चित्रमवलोक्य सीतां प्रति रामस्योक्तिरियम् । सुमुखि–शोभनानने ! सीते !, एषः, सः–अतीतोऽस्माभिः सुखमनुभूतः, समयः, वर्तत इव–विद्यत इव, यत्र–यस्मिन् समये, गौतमार्पितः–गौतमेन जनकपुरोहितेन शतानन्देन, अर्पितः दत्तः, मम

---

अथवा नाम लेने पर भी तिरस्कारमात्र से अर्थात् उसके असली स्वरूप को दबा देने से प्रस्तुत वस्तु ( विषय ) का 'निगरण' होना बताते हैं ।

उत्प्रेक्षा का उदाहरण जैसे लिम्पतीव इति । मानों अन्धकार अङ्गों को लीपे देता है, आकाश काजल की वर्षा-सी कर रहा है । दुष्ट पुरुष की सेवा की तरह दृष्टि निष्फल हो गई है । [ यहाँ अन्धकार का फैलना और संपात प्रस्तुत हैं, उनकी अप्रस्तुत 'अङ्ग लीपना' रूप से और 'अञ्जनवर्षण' रूप से संभावना की गई है । इसलिये उत्प्रेक्षा है ] । अत्र इति । ( परन्तु ) यहां तम का फैलना और संपातरूप विषय ( प्रस्तुत वस्तु ) का नाम नहीं लिया गया है ।

समय इति । हे सुमुखि ! यह तो मानों वही समय उपस्थित है, जब ( विवाह के अवसर पर ) शतानन्द जी के द्वारा मेरे हाथ पर रखे हुए मनोहर कङ्कण पहने हुए मानों मूर्तिमान् आनन्द स्वरूप इस तेरे हाथ ने ( मुझे ) आनन्दित किया था । [ यहाँ भी प्रस्तुत सीता के हाथ की अप्रस्तुत मूर्तिमान आनन्द के रूप में संभावना होने से उत्प्रेक्षालङ्कार है । अत्र इति । यहाँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri


अयमागृहीतकमनीयकङ्कणस्तव मूर्तिमानिव महोत्सवः करः"॥ १३॥
[ उत्तरच० ]

अत्र विषयः करं उपात्तोऽपि मूर्तिमन्महोत्सवरूपेणाधःकृतः।

उत्प्रेक्षाबोधकशब्दाः—

"मन्ये शङ्के ध्रुवं प्रायो नूनमित्येवमादिभिः।
उत्प्रेक्षा व्यज्यते शब्दैरिवशब्दोऽपि तादृशः"॥ १४॥ [ दण्डी ]

अतिशयोक्तिः—

"सिद्धत्वेऽध्यवसायस्यातिशयोक्तिर्निगद्यते"। [ विश्वनाथः ]

प्रकृतस्य निगरणेनाभेदज्ञानमप्रकृतस्य अध्यवसायः, तस्य च उत्प्रेक्षायामप्रस्तुतस्यानिश्चितत्वेन निर्देशाद् साध्यत्वम्; इह तु निश्चितत्वेनैव प्रतीतिरिति सिद्धत्वमित्य-

---

पाणौ स्थापितः, आगृहीतकमनीयकङ्कणः—आगृहीतं धृतम्, कमनीयम् कङ्कणं कटकं मङ्गलसूत्रं वा येन तादृशः, [ आगृहीताः कमनीयाः कंकणाः स्वेदबिन्दवः शृङ्गारसात्त्विकभावरूपा येन तादृश इत्यपि व्याख्येयम् ] अयम्, तव—भवत्याः, करः, मूर्तिमान्—शरीरधारी, महोत्सव इव, माम्—रामम्, समनन्दयत्—अत्यन्तमहर्षयत्। अत्र प्रस्तुतस्य सीताकरस्य मूर्तिमन्महोत्सवरूपतया संभावनादुत्प्रेक्षा। विषयस्य करस्य चात्रशब्देनोपादानम्। विषयनिगरणं संगमयति—अत्रेति। अधःकृतः—निगीर्ण इत्यर्थः।

उत्प्रेक्षाबोधकान् शब्दानाह मन्य इति। तादृशः—उत्प्रेक्षाव्यञ्जकः, अन्यत् स्पष्टम्।

अतिशयोक्तिं लक्षयति—सिद्धत्व इति। सिद्धत्वे—निश्चितत्व इत्यर्थः। अध्यवसायपदार्थमाह—प्रकृतस्येति। प्रकृतस्य—उपमेयस्य। निगरणेन—अधःकरणेन, तच्च विषयस्योपादाने-

---

विषय 'हाथ' यद्यपि शब्द द्वारा बता दिया गया है तथापि 'मानों मूर्तिमान् आनन्दरूप' ऐसा कहने से उसका अधःकरण निगरण हो गया है।

उत्प्रेक्षाबोधक शब्द—

**मन्ये** इति। मन्ये, शङ्के, ध्रुवम्, प्रायः, नूनम् इत्यादि शब्दों से 'उत्प्रेक्षा' सूचित होती है, 'इव' शब्द भी ऐसा ही ( उत्प्रेक्षा का सूचक ) है।

अतिशयोक्ति—

**सिद्धत्वे** इति। अध्यवसाय के सिद्ध होने पर 'अतिशयोक्ति' अलङ्कार होता है।

**प्रकृतस्य** इति। प्रकृत ( उपमेय ) का निगरण करके अप्रकृत ( उपमान ) के साथ उसके ( उपमेय के ) अभेदज्ञान को 'अध्यवसाय' कहते हैं। **तस्य च** इति। और वह ( अध्यवसाय ) उत्प्रेक्षालङ्कार में अप्रस्तुत ( उपमान ) के अनिश्चित रूप से निर्दिष्ट होने के कारण 'साध्य' होता है। और यहाँ ( अतिशयोक्ति ) में अप्रस्तुत की निश्चित रूप से ही प्रतीति होती है, इसलिये अध्यवसाय 'सिद्ध' होता है। यही इन दोनों ( उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति ) का भेद है। ( प्रस्तुत का ) निगरण दोनों जगह समान ही है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizaqtion by eGangotri


नयोर्भेदः। निगरणञ्च उभयत्रापि समानमेव। यथा—

"अकालजलदाऽऽवली किरतु नाम मुक्ताऽऽवली-
रपर्वणि विधुन्तुदस्तुदतु हन्त! शीतद्युतिम्।
इदन्तु महदद्भुतं यदनपायिविद्युल्लता-
ऽवलम्बि कनकाचलद्वयमधोमुखं नृत्यति" ॥ १५ ॥

अत्र केशादेर्जलदाऽऽवल्यादिरूपेणाध्यवसानम्।

---

ऽनुपादाने चोभयथापि भवतीति प्रागुक्तम्। **अप्रकृतस्य**—उपमानस्य। **उभयत्रापि**—उत्प्रेक्षातिशयोक्त्योः। उदाहरति—**अकालेति**। स्नानादचिरनिवृत्ताया जलक्लिन्नान् केशान् पृष्ठतो विपरिवर्त्य मुखाग्रे प्रसार्य शोषयन्त्या किञ्चिदानम्य तिष्ठन्त्याः कस्याश्चित्तरुण्या वर्णनमिदम्। **अकालजलदावली**—अकाले असमये प्रावृडभावेऽपि, जलदानां मेघानाम्, आवली पंक्तिः, **मुक्तावलीः**—मौक्तिकसमूहान्, **किरतु**—वर्षतु, **नाम**। मेघरकाले वर्षणं मौक्तिकानां वर्षणं च नाधिकमाश्चर्यकरमिति भावः। **हन्त! विधुन्तुदः**—राहुः, **अपर्वणि**—अपूर्णिमारात्रावपि, **शीतद्युतिम्**—चन्द्रमसम्, **तुदतु**—ग्रसताम्। अपूर्णिमारात्रावपि चन्द्रस्य राहूपरागो न तथाश्चर्यकर इति भावः। किं तु, **इदं**—वक्ष्यमाणम्, **महत्**—अत्यधिकम्, **अद्भुतम्**—अदृष्टचरमाश्चर्यकरं वृत्तम्, **यद्, अनपायिविद्युल्लतावलम्बि**—अनपायिन्याम् अपायरहितायां सदाप्रकाशमानायाम्, विद्युल्लतायाम्—तडिद्रूपायां वल्ल्याम्, अवलम्बते, इति तादृशम्, **कनकाचलद्वयम्**—कनकाचलयोर्हेमाद्र्योः, द्वयम्, **अधोमुखम्**—अधः नीचैः, मुखम्, यस्य तादृशं सत्, **नृत्यति**—कम्पत इत्यर्थः। अत्र प्रथमे पादे प्रकृतानां केशानां जलबिन्दूनां च अप्रकृतया जलदावल्या मौक्तिकावल्या च, द्वितीये प्रकृतस्य केशकलापस्य मुखस्य च अप्रकृतेन विधुन्तुदेन विधुना च, तृतीये चतुर्थे च प्रकृतयोः नायिकायाः शरीरयष्टिस्तनद्वययोरप्रकृताभ्यां विद्युल्लताकनकाचलद्वयाभ्याम् अध्यवसानादतिशयोक्तिः। **अध्यवसानम्**—विषयिणा विषयतिरोभावः।

---

जैसे **अकाल** इति। (हो सकता है कि) असामयिक मेघमाला मोतियों की वर्षा करे, पूर्णिमा (पर्व) के अभाव में भी राहु चन्द्रमा को ग्रस लें; परन्तु यह तो एकदम अनहोनी बात है कि स्थिर रहनेवाली विद्युल्लता में लटके हुए औंधे मुँह दो कनकाचल डोल रहे हैं।

[कोई स्त्री स्नान करने के बाद अपने केशों को सुखाने के लिये उन्हें कमर की ओर से उलट कर और मुँह के आगे फैला कर सूर्य के सामने झुक कर खड़ी हुई है—उसका यह वर्णन है। मुँह पर फैले हुए उसके काले-काले बालों से पानी की बूँदें टपक रही हैं—मानों बादल बरस रहे हैं और मोती बरसा रहे हैं। उसके गोरे चेहरे पर बिखरे हुए काले बाल ऐसे विदित होते हैं मानों चन्द्रमा को राहु ग्रस रहा है। वह जरा झुकी हुई है; इसलिये उसके स्तनों का मुँह नीचे की ओर हो गया है, ऐसा विदित होता है मानों बिजली पर लटके हुए औंधे मुँह दो सुमेरु पर्वत डोल रहे हैं।]

**अत्र** इति। यहाँ (नायिका के) केश आदि का मेघावली आदि से अध्यवसान (अभेद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यथा वा—

"दृष्टिस्तृणीकृतजगत्त्रयसत्त्वसारा धीरोद्धता नमयतीव गतिर्धरित्रीम्।
कौमारकेऽपि गिरिवद् गुरुतां दधानः वीरो रसः किमयमेत्युत दर्प एव ?" ॥ १६ ॥

[ उत्तरच० ]

अत्र कुशस्य वीररसरूपेण दर्परूपेण चाध्यवसानम्। प्रथमे विषयः केशाऽऽदिर्नोपात्तः, द्वितीये "अयम्" इत्यनेनोपात्तोऽप्यधःकृतः।

अन्यरूपा अतिशयोक्तिः—

"प्रस्तुतस्य यदन्यत्वं यद्यर्थोक्तौ च कल्पनम्।
कार्य्यकारणयोर्यश्च पौर्वापर्य्यविपर्य्ययः ॥ १७ ॥

---

अस्या एव द्वितीयमुदाहरणं यथा—दृष्टिरिति। उत्तरचरिते पञ्चमाङ्के सक्रोधमाततज्यं कुशमायान्तं दृष्ट्वा रामस्योक्तिरियम्। अस्य दृष्टिः–अवलोकनम्, तृणीकृतजगत्त्रयसत्त्वसारा–तृणीकृतः तृणवत् तुच्छतया मतः, जगतां त्रयस्य, सत्त्वसारः बलोत्कर्षो यया तादृशी, अस्तीति शेषः। धीरोद्धता–धीरा धैर्ययुक्ता, उद्धता उच्छृङ्खलता च गतिः–चलनम् धरित्रीम्–पृथ्वीम्, नमयतीव–नीचैर्नयतीव। कौमारकेऽपि–बाल्यावस्थायामपि, गिरिवत्–पर्वतवद्, गुरुताम्–गौरवम्, भारत्वम्, दधानः–धारयन्, अयम्–कुशः, किम्, वीरो रसः–मूर्तिमान् उत्साहः, एति–आगच्छति, उत–अथवा, दर्प एव–मूर्तिमान् अभिमान एव एति। अत्र प्रकृतस्य कुशस्य वीररसतया दर्पतया चाध्यवसानादतिशयोक्तिः। रसालम्बने रसत्वारोपाद् हेत्वलङ्कारोऽन्नेति श्रीवीरराघवः। वीरो वायं दर्पो वेति संदेहात्ससंदेहोऽयमिति श्रीजीवानन्दः।

उभयोरुदाहरणयोर्भेदं दर्शयति—प्रथम इति। मम्मटोक्त्या अतिशयोक्तिभेदान्तरमाह—प्रस्तुतस्येति। प्रस्तुतस्य–प्रकृतस्य वर्ण्यमानस्य, अन्यत्वम्–अनन्यस्यापि अन्यत्वेन वर्णनम्,

---

ज्ञान ) कराया गया है। अतः अतिशयोक्ति है। अथवा जैसे—दृष्टि इति। इसकी दृष्टि तीनों लोकों के बल और उत्साह को तृण के समान तुच्छ समझ रही है, धीरता से भरी इसकी गर्वीली चाल पृथ्वी को भी नीचे धँसाए देती है। कुमारावस्था होने पर भी यह पर्वत के समान गौरव को धारण किये हुए है। क्या यह ( मूर्तिमान् ) वीर रस ही चला आ रहा है ? अथवा साक्षात् दर्प ही है ?

अत्र इति। यहाँ कुश का 'वीर' रस के और 'दर्प' के रूप में अध्यवसान हुआ है। प्रथमे इति। पहले उदाहरण में केश आदि विषय का शब्द के द्वारा ग्रहण नहीं हुआ है। दूसरे में यद्यपि 'अयम्' इस शब्द से विषय का ग्रहण हुआ है तथापि [ साक्षात् वीर रस ही आ रहा है अथवा दर्प है ऐसा कहने से ] उसका अधःकरण निगरण हो गया है।

अतिशयोक्ति के दूसरे भेद—

प्रस्तुतस्य इति। प्रस्तुत वस्तु का अभेद होने पर भी भेद बताने में, 'यदि' शब्दार्थ के कहने पर ( अर्थात् किसी शर्त के साथ ) किसी असंभव अर्थ की कल्पना में, और कारण और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विज्ञेयाऽतिशयोक्तिः सा" ऽप्यन्यैव प्रथमोक्ततः । [ मम्मटः ]

क्रमेणोदाहरणम्—

"अन्यदेवाङ्गलावण्यमन्याः सौरभसम्पदः ।
तस्याः पद्मपलाशाक्ष्याः सरसत्वमलौकिकम्" ॥ १८ ॥

यदिशब्देन, तत्पर्य्यायान्तरेण वा यद्यर्थस्य कथनेऽसम्भविनोऽर्थस्य कल्पनमित्यर्थः । यथा—

"पुष्पं प्रवालोपहितं यदि स्यान् मुक्ताफलं वा स्फुटविद्रुमस्थम् ।

---

सा, द्वितीया, अतिशयोक्तिः, विज्ञेया। किं च, यद्यर्थोक्तौ–यद्यर्थस्य यदिशब्दार्थस्य, उक्तौ सत्याम्, यत्। कल्पनम्–असंभविनोऽर्थस्यु प्रकल्पनम्, सा तृतीया। किं च यः कार्यकारणयोः पौर्वापर्यविपर्ययः–पौर्वापर्यस्य कारणानन्तरं कार्यं भवतीत्येवं प्रसिद्धस्य कारणकार्ययोः पूर्वापरभावस्य, विपर्ययः कार्यानन्तरं कारणस्य तयोः समकालत्वस्य वा वर्णनरूपं वैपरीत्यम्, सा चतुर्थी, अतिशयोक्तिर्विज्ञेयेत्युभयमत्र योज्यम्। एषा अतिशयोक्तित्रयी, प्रथमोक्ततः–पूर्वोक्ताया अध्यवसायनिश्चयात्मिकाया अतिशयोक्तेः अन्यैव–भिन्नैव । न तु तदन्तर्गता, अन्यथा पृथग्वचनासंगतेः।

तत्र द्वितीयातिशयोक्तेरुदाहरणं यथा—अन्यदेवेति। पद्मपलाशाक्ष्याः–पद्मस्य पलाशं दलमिति यावत्, तद्वद् अक्षिणी नेत्रे यस्यास्तादृश्याः कमलनयनायाः। तस्याः–प्रक्रान्तायाः सुन्दर्याः, अङ्गलावण्यम्–अङ्गानां पाणिपादादिशरीरावयवानाम्, लावण्यम्—

मुक्ताफलेपुच्छायाया तरलत्वमिवान्तरा। प्रतिभाति यदङ्गेषु लावण्यं तदिहोच्यते॥

इत्येवं लक्षितः कान्तिविशेषः, अन्यदेव–लोकप्रसिद्धाद् भिन्नमेव किञ्चिद् अद्भुतम्, सौरभसम्पदः–शरीरसौगन्ध्यानि, गुणश्रिय इति केचित्। अन्या एव–भिन्ना विलक्षणा एव, सरसत्वम्–रसिकत्वमपि, अलौकिकम्–लोकातिशायि, अस्तीति, सन्तीति वा यथायथं सर्वत्र शेषः। अत्र प्रकृतानां प्रसिद्धलावण्यादीनामनन्यत्वेपि अन्यत्वं वर्णितम्।

कारिकोक्तं तृतीयातिशयोक्तिलक्षणं व्याचष्टे—यदिशब्देनेति । तत्पर्यायान्तरेण–यदिशब्दसमानार्थकेन चेदिति शब्देनेत्यर्थः। उदाहरति–पुष्पमिति। कुमारसंभवे प्रथमे पार्वत्याः

---

कार्य के पौर्वापर्य-नियम को भङ्ग कर देने में—अर्थात् कार्य का पहले कारण का पीछे वर्णन करने में, या दोनों को एक साथ बताने में भी अतिशयोक्ति अलङ्कार समझना चाहिये। ये भेद पहली अतिशयोक्ति से भिन्न हैं।

अन्य इति। उस कमलनयनी के अङ्गों की सुन्दरता कुछ और ( विलक्षण ) ही है, उसके मुख की सुगन्धि भी कुछ अनोखी ही है, उसकी रसिकता भी दुनिया से निराली है। [ यहाँ यद्यपि नायिका के प्रस्तुत लावण्य आदि वही हैं जो साधारणतया लोक में हुवा करते हैं, दूसरे नहीं, परन्तु उन्हें 'अन्यदेव' इत्यादि कह कर कुछ दूसरा ही बताया गया है। इसलिये अतिशयोक्ति है। ]

यदि इति। इसका अर्थ 'प्रस्तुतस्य' इत्यादि कारिका की हिन्दी व्याख्या में देखो। जैसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri


ततोऽनुकुर्य्याद्विशदस्य तस्यास्ताम्रौष्ठपर्य्यस्तरुचः स्मितस्य" ॥ १९ ॥ [ कुमारसं० ]

कार्य्यकारणयोः पौर्वापर्य्यविपर्य्ययश्च द्विधा भवति, कारणात् पूर्वं कार्य्यस्य भावे, द्वयोः समकालत्वे च । क्रमेण यथा—

"उदेति पूर्वं कुसुमं ततः फलं घनोदयः प्राक् तदनन्तरं पयः ।
निमित्तनैमित्तिकयोरयं क्रमस्तव प्रसादयस्य पुरस्तु सम्पदः" ॥ २० ॥

[ अभि० शाकु० ]

---

सौन्दर्यवर्णनमिदम् । **पुष्पम्**–पुण्डरीकादिकम्, **प्रवालोपहितम्**–प्रवाले बालपल्लवे, उपहितं निहितम्, **स्याद्**–भवेत्, **यदि वा**–अथवा, **मुक्ताफलम्**–मौक्तिकम्, **स्फुटविद्रुमस्थम्**–स्फुटे निर्मले, विद्रुमे, तिष्ठतीति तादृशम्, स्याद् यदीति शेषः, **ततः**–तर्हि, तत्, **विशदस्य**—शुभ्रस्य, **ताम्रोष्ठपर्यस्तरुचः**–ताम्रे, अरुणे, ओष्ठे, पर्यस्ताः प्रसृताः, रुचः कान्तयः, यस्य तादृशस्य, **तस्याः**–पार्वत्याः, **स्मितस्य**–मन्दहासस्य, **अनुकुर्यात्**–सदृशीभवेदित्यर्थः । अत्र यद्यर्थबलेन पुष्पप्रवालयोः मुक्ताविद्रुमयोश्च असंभविनः सम्बन्धस्य कल्पनादतिशयोक्तिरिति मल्लिनाथाभिप्रायः । केचित्तु पुष्पमुक्ताफलाभ्यां पार्वतीस्मितस्य साम्यसंभव्येवात्र कल्प्यत इत्यतिशयोक्तिरित्याहुः । काव्यप्रदीपोद्योतकारमते तु यद्यर्थोक्तौ च कल्पनमिति असम्बन्धे सम्बन्धबोधनरूपायाः सम्बन्धे असम्बन्धबोधनरूपायाश्च अतिशयोक्तेर्बोधकम् । तथा च तन्मते पूर्वार्धे असम्बन्धे सम्बन्धरूपातिशयोक्तिः, उत्तरार्धे तु सम्बन्धेऽसम्बन्धरूपा ।

चतुर्थातिशयोक्तिं विभजते—**कार्यकारणयोरिति** । उदाहरति—**उदेतीति** । शाकुन्तलस्य सप्तमे मारीचं प्रति राज्ञो दुष्यन्तस्योक्तिः । **पूर्वम्**–प्रथमम्, **कुसुमम्**–पुष्पम्, **उदेति**–प्रादुर्भवति, **ततः**–कुसुमोदयानन्तरम्, **फलम्**, उदेतीति शेषः । एवमेव **प्राक्**–पूर्वम्, **घनोदयः**–घनानां मेघानाम्, उदयः आविर्भावः, **तदनन्तरम्**–तस्य घनोदयस्य, अनन्तरम्–पश्चात्, **पयः**–जलम्, जलवृष्टिरित्यर्थः, आविर्भवतीति शेषः । पुष्पफलयोर्मेघजलयोश्च कारण कार्यभावात्, पूर्वं कारणरूपयोः पुष्पमेघयोराविर्भावः, तदनु तत्कार्ययोः फलजलयोरुत्पत्तिरिति भावः । **अयम्**–पूर्वनिर्दशितः, **निमित्तनैमित्तकयोः**–कारणकार्ययोः **क्रमः**–पौर्वापर्यम्, न कदाचिदपि व्यभिचरतीति शेषः । किं तु, **तव**–भवतः, **प्रसादस्य**–कारणरूपस्य, **पुरः**–पूर्वमेव,

---

**पुष्पम्** इति । ताजे निकले हुए ( लाल-लाल ) पत्ते पर यदि ( कोई शुभ्र ) पुष्प खिला हो, या स्वच्छ मूँगे के ऊपर मोती जमा हुआ हो तो वह कदाचित् उस ( पार्वती ) के लाल होठों पर सुशोभित होने वाली शुभ्र मुस्कराहट की समता प्राप्त कर सकता है । ( यहाँ यदि शब्द कह कर प्रवाल के साथ पुष्प के और विद्रुम के साथ मोती के असंभाव्य सम्बन्ध की कल्पना की गई है इसलिये अतिशयोक्ति है । )

**कार्यं** इति । कार्य और कारण के क्रम में ( पौर्वापर्य में ) विपरीतता दो तरह से होती है—कार्य के कारण से पहले ही हो जाने पर, या दोनों के एक साथ ( एक समय में ) होने पर । क्रमशः उदाहरण जैसे **उदेति** इति । पहले फूल उगता है फिर फल । पहले बादल प्रगट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri


"सममेव समाक्रान्तं द्वयं द्विरदगामिना।
तेन सिंहाऽऽसनं पित्र्यमखिलञ्चारिमण्डलम्" ॥ २१ ॥ [ रघु० ]

व्यतिरेकः—

"उपमानाद् यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः" । [ मम्मटः ]
अन्यस्य—उपमेयस्य, व्यतिरेकः—आधिक्यम्, स एव व्यतिरेकालङ्कारः। यथा—

---

तत्कार्यभूताः सम्पदः—ऐश्वर्याणि, आविर्भवन्ति। त्वत्प्रसादसम्पदौ कारणकार्यभावापन्ने अतः पूर्वोक्तनियमानुसारेण पूर्वं कारणरूपेण तव प्रसादेन भाव्यमभूत्, पश्चात् तत्फलरूपया संपदा। इह तु विपरीतमित्यहो ते प्रसादस्य महिमेति भावः। अत्र कारणकार्ययोः पौर्वापर्यविपर्ययाद् अतिशयोक्तिः।

द्वितीयं भेदमुदाहरति—सममेवेति। रघुवंशे चतुर्थे रघुवर्णनमिदम्। द्विरदगामिना—गजगामिना [ द्विरद इव द्विरदैश्च गच्छतीति द्विरदगामी तेनेत्युभयथा विग्रहः ] तेन—रघुणा, पित्र्यम्—पितुः प्राप्तम्, [ पितुरागतमिति विग्रहे यत् ] सिंहासनम्—राजासनम्, राजत्वमिति भावः, अखिलम्—संपूर्णम्, अरिमण्डलं च—अरीणां शत्रूणाम्, मण्डलं राष्ट्रं च, इति द्वयम्, सममेव—युगपदेव, समाक्रान्तम्—अधिष्ठितम्। रघुणा राजासनप्राप्तिः शत्रुपरिभवश्च, युगपत् कृताविति भावः। अत्र राजासनप्राप्तिशत्रुपरिभवयोः कारण कार्ययोर्युगपद् वर्णनेन पौर्वापर्यव्यतिक्रमादतिशयोक्तिः।

व्यतिरेकं लक्षयति—उपमानादिति। यद्, उपमानात्—उपमानापेक्षयेत्यर्थः, अन्यस्य—उपमेयस्य, व्यतिरेकः—आधिक्यम्, आधिक्यवर्णनमिति भावः, सः—व्यतिरेकः, स एव—व्यतिरेक एव व्यतिरेकाख्योऽलङ्कार इति भावः।

---

होते हैं फिर जल। ( यद्यपि ) कारण और कार्य का यही ( जगत्प्रसिद्ध ) क्रम है, किन्तु सम्पत्तियाँ तुम्हारी प्रसन्नता से पहले ही उपस्थित हो जाती हैं। अर्थात् आप जिस पर प्रसन्न होना चाहते हैं कि उस पर पहले ही से सम्पत्ति बरसने लगती है। [ यहाँ चौथे पाद में सम्पत्ति का होना पहले बताया है और प्रसन्नता का होना पीछे। चाहिये तो ये था कि प्रसन्नता पहले बताई जाय, क्योंकि प्रसन्नता सम्पत्ति का कारण है, सम्पत्ति कार्य है, इसलिये अतिशयोक्ति है। ]

**सममेव** इति। गजगामी राजा रघु एक साथ ही अपने पिता के राजसिंहासन और सारे शत्रुओं पर आरूढ़ हुआ।

( राजसिंहासन पर आरूढ़ होना शत्रुओं पर आरूढ़ होने का कारण है, इसलिये राजसिंहासन पर आरूढ़ होना पहले और शत्रुओं पर आरूढ़ होना पीछे बताया जाना चाहिये, परन्तु यहाँ एक साथ ही बताया गया है, इसलिये अतिशयोक्ति है। )

व्यतिरेक—

**उपमानात्** इति। उपमान की अपेक्षा उपमेय का आधिक्य-उत्कर्ष बताने में 'व्यतिरेक' अलङ्कार होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizaqtion by eGangotri


"चन्द्रं गता पद्मगुणान् न भुङ्क्ते पद्माऽऽश्रिता चान्द्रमसीमभिख्याम्।
उमामुखन्तु प्रतिपद्य लोला द्विसंश्रयां प्रीतिमवाप लक्ष्मीः" ॥ २२ ॥

[ कुमारसं० ]

अत्र उपमानभूतचन्द्राद्यपेक्षया उपमेयस्य उमामुखस्य अधिकगुणवत्त्वकथनम्।
यथा वा—

"दिशि मन्दायते तेजो दक्षिणस्यां रवेरपि।
तस्यामेव रघोः पाण्ड्याः प्रतापं न विषेहिरे" ॥ २३ ॥ [ रघु० ]

अत्र उपमानभूतात् सूर्य्यादपि रघोः प्रतापातिशयवर्णनम्।

---

उदाहरति—चन्द्रमिति। कुमारसंभवे प्रथमे पार्वतीवर्णनमिदम्। लोला—चञ्चला, लक्ष्मीः—कान्त्यभिमानिनी देवता, चन्द्रम्, गता—प्राप्ता, सती, पद्मगुणान्—सौगन्ध्यादीन्, न भुङ्क्ते—नानुभवति। पद्माश्रिता, सती, चान्द्रमसीम्—चन्द्रमः संबन्धिनीम्, अभिख्याम्—शोभाम् न भुङ्क्ते। किं तु, उमामुखम्—उमायाः पार्वत्याः, मुखम्, प्रतिपद्य—आश्रित्य, द्विसंश्रयाम्—द्वे चन्द्रपद्मे, संश्रयः कारणम्, यस्यास्ताम् प्रीतिम्—आनन्दम्, अवाप—प्राप। लक्षणमुदाहरणे संगमयति—अत्रेति।

अस्यैव स्पष्टप्रतिपत्तये द्वितीयमुदाहरणमुपन्यस्यति—दिशीति। रघुवंशचतुर्थे दिग्विजयप्रसङ्गे पद्यमिदम्। दक्षिणस्याम्, दिशि—दक्षिणायने सतीति भावः। रवेरपि—प्रतापिनः सूर्यस्यापि, तेजः—प्रतापः, मन्दायते—मन्दतां गच्छति, परन्तु तस्यामेव—दक्षिणस्यामेव दिशि, पाण्ड्याः—पाण्डूनां जनपदानां राजानः, [ पाण्डोर्ड्यण् ] रघोः, प्रतापम्—कोपदण्डजं तेजः, [ स प्रभावः प्रतापश्च यत्तेजः कोपदण्डजम्। इत्यमरः ] न विषेहिरे—न सोढवन्तः। सूर्यविजयिनोऽपि दाक्षिणात्यान् स विजिग्य इति रघोरुत्कर्षो व्यज्यते। लक्ष्यसमन्वयं करोति—अत्रेति।

---

जैसे चन्द्रम् इति। चञ्चल लक्ष्मी—( रात्रि में ) चन्द्राश्रित होने पर कमल के गुणों ( सौरभ आदि ) से वञ्चित रहती है, और ( दिन में ) पद्माश्रित होने पर चन्द्रमा की शोभा का उपभोग नहीं कर पाती, किन्तु पार्वती के मुख को प्राप्त करके उसे दोनों जगह ( चन्द्र और कमल में ) निवास करने का सुख मिल गया। तात्पर्य यह हुआ कि चन्द्रमा में केवल चाँदनी शीतलता आदि गुण हैं, सौरभ आदि गुण नहीं हैं; कमल में भी सौरभादि ही हैं, चाँदनी आदि नहीं। परन्तु उमा के मुख में ये दोनों बातें हैं। इसलिये उमा का मुँह इन दोनों से बढ़कर है।

अत्र इति। यहाँ उपमान चन्द्र और पद्म की अपेक्षा उपमेय उमा के मुख में अधिक गुणों का सम्बन्ध अर्थात् उत्कर्ष बताया गया है, इसलिये व्यतिरेक है।

अथवा जैसे दिशि इति। दक्षिण दिशा में ( दक्षिणायन होने पर ) सूर्य का तेज भी मन्द हो जाता है; परन्तु उसी दक्षिण दिशा में पांड्य देश के राजा रघु के प्रताप को नहीं सह सके। अत्र इति। यहाँ उपमानरूप सूर्य की अपेक्षा रघु के प्रताप का आधिक्य बताया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


प्रतिवस्तूपमा—

"प्रतिवस्तूपमा सा स्याद्वाक्ययोर्गम्यसाम्ययोः।
एकोऽपि धर्मः सामान्यो यत्र निर्दिश्यते पृथक्॥ २४ ॥ [ विश्वनाथः ]

प्रतीयमानसादृश्ययोरेकस्यापि धर्मस्य पौनरुक्त्यभिया शब्दान्तरेण निर्देशः प्रतिवस्तूपमा। यथा—

"मधुश्च ते मन्मथ! साहचर्य्यादसावनुक्तोऽपि सहाय एव।
समीरणो नोदयिता भवेति व्यादिश्यते केन हुताशनस्य?" ॥ २५ ॥
[ कुमारसं० ]

अत्र अनुक्तस्यापि सहजसहायस्य स्वत एव साहाय्यसम्पादने प्रवृत्तिरित्येक एवार्थः शब्दान्तरेण निर्दिष्टः।

---

प्रतिवस्तूपमां लक्षयति—प्रतिवस्तूपमेति। यत्र गम्यसाम्ययोः—गम्यं प्रतीयमानम्, न तु 'यथा' 'इव' इत्यादिपदैः वाच्यम्, साम्यं सादृश्यं यत्र तादृशयोः वाक्ययोः—उपमानोपमेयवाक्ययोः, एकोऽपि—अभिन्नोऽपि, सामान्यः—साधारणः, धर्मः, पृथक्—विभिन्नशब्दाभ्यामित्यर्थः, निर्दिश्यते—बोध्यते, सा, प्रतिवस्तूपमा—प्रतिवस्तूपमा नाम अलङ्कारः। अयं स्पष्टो भावः—यत्रोपमानोपमेययोः साधारणो धर्म उपमानवाक्ये च पृथक् पृथङ् निर्दिश्यते, सा प्रतिवस्तूपमा। व्याचष्टे प्रतीयमानेति। पौनरुक्त्यभिया—कथितपदत्वदोषशङ्कया।

उदाहरति—मधुश्चेति। कुमारसंभवे तृतीये मन्मथं प्रतीन्द्रस्योक्तिः। मन्मथ! हे कामदेव! असौ, मधुश्च—वसन्तोऽपि, ते—तव, साहचर्यात्—सहचरत्वाद्, अनुक्तोऽपि—अप्रेरितोऽपि, सहाय एव—सहकार्येव। तथाहि, समीरणः—वायुः, त्वम्, हुताशनस्य—अग्नेः, नोदयिता—प्रेरकः, प्रज्वलक इति यावत्, भव, इति—एवम्, केन, अनुशासकेन, व्यादिश्यते—अनुशिष्यते-प्रेर्यते। न केनापीत्यर्थः। समीरणः प्रकृत्यैवाग्नेः सहाय इति भावः। अत्र प्रेरणमन्तरेण सहायताकरणरूपः समानो धर्मः उपमेयवाक्ये 'अनुक्तोऽपि सहाय एव' इत्यनेन, उपमानवाक्ये च नोदयिता भवेति केन व्यादिश्यते' इत्यनेन पृथङ् निर्दिष्ट इति प्रतिवस्तूपमा। लक्ष्ये संगमयति—अत्रेति। अनुक्तस्यापि—अप्रेरितस्यापि, सहजसहायस्य—सहजस्य स्वाभाविकस्य, सहायस्य। निर्दिष्ट इत्यस्योपमेयोपमानवाक्ययोरिति शेषः। समीरणो हुताशनस्येव मधुस्ते प्रकृत्या सहाय इत्येवं सादृश्यमत्र गम्यम्।

---

प्रतिवस्तूपमा—

प्रतिवस्तूपमा इति। प्रतीयमान इति। जिन दो वाक्यों के अर्थों में सादृश्य व्यङ्ग्य हो—वाच्य न हो, उनमें एक ही साधारणधर्म पुनरुक्ति ( कथितपदत्वदोष ) से बचने के लिये यदि पृथक्-पृथक् शब्दों से कहा जाय तो 'प्रतिवस्तूपमा' अलङ्कार होता है।

जैसे मधुश्च इति। हे अनङ्ग! यह वसन्त ऋतु ( तेरा ) सहचारी होने के कारण विना कहे भी अवश्य तेरी सहायता करेगा। वायु से कौन कहता है कि 'तू अग्नि का प्रेरक बन—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



यथा वा—

"धन्याऽसि वैदर्भि ! गुणैरुदारैर्यया समाकृष्यत नैषधोऽपि ।
इतः स्तुतिः का खलु चन्द्रिकाया यदब्धिमप्युत्तरलीकरोति ?" ॥ २६ ॥

[ नैषधच० ]

अत्र समाकर्षणरूप एक एव धर्मः भङ्ग्यन्तरेण पृथङ् निर्दिष्टः ।

निदर्शना—

"अभवन् वस्तुसम्बन्ध उपमापरिकल्पकः" ।
निदर्शना भवेत् सेयं मम्मटेन यथोदिता ॥ २७ ॥

उपमापरिकल्पकः—पर्य्यवसाने साम्यबोधकः । यथा—

---

उदाहरणान्तरं निर्दिशति—धन्यासीति । नैषधचरिते दमयन्तीं प्रति हंसस्योक्तिरियम् । वैदर्भि—हे विदर्भराजपुत्रि दमयन्ति !, त्वम्, धन्या, असि । यया त्वया, उदारैः—महद्भिः, गुणैः—रूपलावण्यादिभिः, नैषधोऽपि—अतिधीरो निषधराजो नलोऽपि, समाकृष्यत—आकृष्टः । चन्द्रिकायाः—चन्द्रज्योत्स्नायाः, इतः—अस्मादधिका, स्तुतिः—प्रशंसनम्, का खलु, न कापीत्यर्थः, यत्, सा, अब्धिम्—प्रशान्तगम्भीरं समुद्रमपि,—उत्तरलीकरोति—चञ्चलति । अत्र समाकर्षणमुत्तरलीकरणं च धर्म एक एव, केवलं कथितपदत्वनिरासाय पृथक्शब्दाभ्यामुपात्तः, अतः प्रतिवस्तूपमा । लक्ष्ये संगमयति अत्रेति । भङ्ग्यन्तरेण—शब्दान्तरेणेति भावः । चन्द्रिका समुद्रमिव भवती नलमुत्तरलीकरोतीत्येवं सादृश्यमत्र गम्यम् ।

निदर्शनां लक्षयति—अभवन्निति । यत्र वस्तुसंबन्धः—वस्तुनोः वाक्यार्थयोः पदार्थयोर्वा, सम्बन्धः परस्परसमन्वयः, अभवन्—असंभवन् सन्, उपमापरिकल्पकः—उपमायाः सादृश्यस्य, परिकल्पकः, भवति, उपमायां पर्यवस्यतीति भावः, सा निदर्शना—निदर्शना नामालङ्कारः, भवेत् । यथा, मम्मटेन, उदिता—कथिता । मम्मटानुसारेणेदं निदर्शनाया लक्षणमिति तात्पर्यम् ।

---

अग्नि को दहका' । अत्र इति । यहाँ 'स्वाभाविक मित्र की विना कहे भी—अपने आप ही, सहायता करने में प्रवृत्ति होती है' यह एक ही बात भिन्न-भिन्न शब्दों से कही गई है ।

अथवा जैसे धन्या इति । हे विदर्भराजपुत्रि ! दमयन्ति ! तू धन्य है । जिसने अपने उदार गुणों से निषधदेश के राजा नल को भी आकृष्ट कर लिया । चन्द्रिका की इससे अधिक और क्या स्तुति हो सकती है कि वह ( प्रशान्त ) समुद्र को भी चञ्चल ( क्षुब्ध ) कर देती है ।

अत्र इति । इस पद्य में 'समाकर्षण' रूप एक ही धर्म प्रकारान्तर से 'समाकृष्यत' और 'उत्तरलीकरोति' इन पदों से पृथक् निर्दिष्ट हुआ है ।

निदर्शना—

अभवन् इति । जहाँ दो वाक्यार्थों या पदार्थों का परस्पर सम्बन्ध असंगत होने के कारण उपमा ( सादृश्य ) की कल्पना ( आक्षेप ) करावे वहाँ मम्मट के कथनानुसार 'निदर्शना' अलङ्कार होता है । पर्यवसाने साम्यबोधकः—अन्त में सादृश्य का बोधक ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



"क्व सूर्यप्रभवो वंशः ? क्व चाल्पविषया मतिः ? ।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्" ॥ २८ ॥ [ रघु० ]

अत्र मन्मत्या सूर्य्यवंशवर्णनमुडुपेन सागरतरणमिव इत्युपमायां पर्य्यवस्यति ।

यथा वा—

"अभ्युन्नताङ्गुष्ठनखप्रभाभिर्निक्षेपणाद् रागमिवोद्गिरन्तौ ।
आजह्रतुस्तच्चरणौ पृथिव्यां स्थलारविन्दश्रियमव्यवस्थाम्" ॥ २९ ॥ [कुमारसं०]

---

उदाहरति—क्व सूर्येति । रघुवंशे प्रथमे कव्युक्तिरियम् । **सूर्यप्रभवः**—सूर्यः, प्रभवः उत्पत्तिहेतुर्यस्य तादृशः, **वंशः** कुलम्, क्व ?, अतिमहानिति भावः । **अल्पविषया**—अल्पः, विषयः ज्ञेयोऽर्थो यस्याः सा, **मतिः**—प्रज्ञा, ममेति शेषः, क्व ?, अनयोर्महदन्तरम्, सूर्यवंशमाकलयितुमेव न प्रभवामि, तद्विषयप्रबन्धनिरूपणं तु दूरापास्तमिति भावः । अहम्, **मोहाद्**—अज्ञानाद्, **दुस्तरम्**—कृच्छ्रेण तरितुं शक्यम्, **सागरम्, उडुपेन**—अल्पीयसा प्लवेन, **तितीर्षुः**—तरितुमिच्छुः, **अस्मि** । अल्पसाधनैरधिकारम्भो न सुकर इति भावः ।

अत्र पूर्वोत्तरवाक्यार्थयोः संबन्धोऽसंभवन् अल्पविषयया मन्मत्या सूर्यवंशवर्णनमुडुपेन सागरतरणमिवेत्युपमां परिकल्पयतीति निदर्शनेयम् ।

पदार्थनिदर्शनामुदाहरति—**अभ्युन्नतेति** । कुमारसंभवे प्रथमे पार्वतीवर्णनमिदम् । **अभ्युन्नताङ्गुष्ठनखप्रभाभिः**—अभ्युन्नतयोः, अङ्गुष्ठनखयोः, प्रभाभिः, [ प्रकृत्यादित्वात् तृतीया ] **निक्षेपणात्**—निर्भरन्यासाद्, **रागम्**—अन्तर्गतं लौहित्यम्, **उद्गिरन्तौ इव**—वमन्ताविव, बहिः प्रकटयन्ताविव स्थिताविति भावः । **तच्चरणौ**—तस्याः पार्वत्याः, चरणौ **पृथिव्याम्, अव्यवस्थाम्**—व्यवस्थारहिताम्, सञ्चारिणीमिति भावः, **स्थलारविन्दश्रियम्**—स्थलारविन्दस्य स्थलकमलस्य, श्रियं शोभाम्, **आजह्रतुः**—आहृतवन्तौ, प्राप्तवन्तावित्यर्थः । अत्र अन्यधर्मस्य अन्येनाधारणात्

---

जैसे **क्व** इति । कहाँ सूर्य से उत्पन्न ( विशाल ) सूर्यवंश और कहाँ मेरी मति जिसकी गति बहुत थोड़ी है । मैं तो अज्ञानवश ( छोटे से ) डोंगे ( नाव ) के द्वारा दुस्तर सागर को पार करना चाह रहा हूँ । **अत्र** इति । यहाँ ( पूर्वोत्तर वाक्यार्थों का परस्पर सम्बन्ध विवक्षित तो है, परन्तु बनता नहीं, इसलिये ) 'मेरी मति से सूर्यवंश का वर्णन करना ऐसा है जैसे डोंगे से समुद्र पार करना' इस प्रकार उपमा में पर्यवसान होता है ।

अथवा जैसे **अभ्युन्नत** इति । पृथ्वी पर कदम रखते समय ( दबाव के कारण ) अधिक ऊपर उठे हुए अँगूठों के नखों की लाल कान्ति से पार्वती के चरण ऐसे प्रतीत होते थे मानों लाली ( राग ) उगल रहे हों, और ( उस लाली के कारण ) वे चलते-फिरते स्थल कमल जैसे शोभित होते थे । **अत्र** इति उपमानधर्म स्थलारविन्द की शोभा उपमेय रूप पार्वती के चरणों में असम्भव है । ( क्योंकि स्थलारविन्द की शोभा स्थलारविन्द में रह सकती है, दूसरी जगह नहीं ) इसलिये यहाँ 'पार्वती के चरणों ने स्थलारविन्द शोभा के सदृश शोभा को धारण किया' इस रूप से उपमा में ही पर्यवसान होता है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अत्र उपमानधर्मस्य अरविन्दश्रियश्चरणयोरुपमेयभूतयोः असम्भवादरविन्दश्रियमिव श्रियमित्युपमायां पर्य्यवसानम् ।

**दृष्टान्तः—**

**"दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्" । [ विश्व० ]**

**सधर्मस्य—समानधर्मस्य, वस्तुनः—विषयस्य; प्रतिबिम्बनं—प्रणिधानेन गम्यसाम्यत्वम् । प्रतिवस्तूपमायामेकस्यैव धर्मस्य भङ्ग्यन्तरेण निर्देशः, इत्यस्माद्भेदः । यथा—**

---

चरणयोः स्थलारविन्दश्रीसम्बन्धोऽसंभवन् स्थलारविन्दश्रियमिव श्रियमित्युपमायां पर्यवस्यतीतीयमपि निदर्शनैव । **उपमानधर्मस्य अरविन्दश्रियः**—अरविन्दमुपमानम्, तद्गता श्रीश्चोपमानधर्मः ।

दृष्टान्तं लक्षयति—**दृष्टान्त** इति । **सधर्मस्य**—धर्मसहितस्य, **वस्तुनः**—प्रकृतवाक्यार्थघटकोपमानोपमेयादेः, यत् **प्रतिबिम्बनम्**—बिम्बप्रतिबिम्बभावः, तद् **दृष्टान्तः**—दृष्टान्तालङ्कार इत्यर्थः । उपमानादेस्तद्धर्मस्य च बिम्बप्रतिबिम्बभावे दृष्टान्तो भवतीति भावः । वस्तुतो भिन्नयोर्धर्मयोः परस्परसादृश्याद् अभिन्नतयाध्यवसितयोर्द्विरुपादानं बिम्बप्रतिबिम्बभावः । सधर्मस्येत्यत्र 'तेन सहेति तुल्ययोगे' इत्यनेन बहुव्रीहिः । 'धर्मादनिच् केवलात्' इत्यनिच् प्रत्ययस्तु समासान्तविधेरनित्यत्वान्न कृत इति कथंचित् समाधेयम् । लक्षणे सधर्मस्येति पदं व्याचष्टे—**समानधर्मस्येति** । इदं 'धर्ममात्रस्यैव बिम्बप्रतिबिम्बभावे दृष्टान्तो भवति' इत्येतन्मतान्तरानुरोधेन । यथा प्रतिवस्तूपमायां धर्ममात्रस्यैव वस्तुप्रतिवस्तुभावः, तथैवात्रापि धर्ममात्रस्यैव बिम्बप्रतिबिम्बभाव इति भावः । सधर्म इत्यत्र तु समानो धर्मः, इति कर्मधारयः, समानस्येति योगविभागात् समानस्य सः । अत्र पक्षे बहुव्रीह्यभावादनिच्प्रत्ययाभावो न्याय्य एव । **वस्तुन** इति व्यधिकरणषष्ठी । **विषयस्य**—उपमानादेरित्यर्थः । प्रतिबिम्बनपदं व्याचष्टे—**प्रणिधानेनेति** । अयं भावः—दृष्टान्ते धर्मसहितस्योपमानादेः केवलस्य धर्मस्य वा साम्यं प्रणिधानेन निपुणनिध्यानेन, गम्यते प्रतीयते । गम्यं साम्यं यस्य तद् गम्यसाम्यम्, तस्य भावस्तत्त्वम् । दृष्टान्तात् प्रतिवस्तूपमाया भेदं दर्शयति—**प्रतिवस्तूपमेति** । **भङ्ग्यन्तरेण**—प्रकारान्तरेण, शब्दान्तरेणेत्यर्थः । **अस्माद्**—दृष्टान्तात् । अयं भावः—दृष्टान्ते भिन्नयोरुपमानोपमेयधर्मयोर्द्विरुपादानम्, प्रतिवस्तूपमायां तु एकस्यैव धर्मस्य सम्बन्धिभेदेन द्विरुपादानम् । एतदेव वस्तुप्रतिवस्तुभाव

---

**दृष्टान्त—**

**दृष्टान्त** इति । धर्मसहित उपमान और उपमेय के प्रतिबिम्ब ( बिम्बप्रतिबिम्बभाव ) को 'दृष्टान्त' कहते हैं । **प्रतिबिम्बनमिति** । सादृश्य के अवधान के द्वारा गम्य होने को 'प्रतिबिम्बन' कहते हैं—अर्थात् दृष्टान्त में उपमान उपमेय और उनके धर्मों का परस्पर सादृश्य जरा ध्यान देने से प्रतीत होता है, शब्दद्वारा निर्दिष्ट नहीं होता ।

**प्रतिवस्तूपमा** इति । प्रतिवस्तूपमा में एक ही धर्म का पृथक्-पृथक् शब्दों से निर्देश होता है । यही दृष्टान्त से 'प्रतिवस्तूपमा' का भेद है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



"नैतल्लघ्वपि भूयस्या वचो वाचाऽतिशय्यते।
इन्धनौघधगप्यग्निस्त्विषा नात्येति पूपणम्" ॥ ३० ॥ [ माघः ]

अर्थान्तरन्यासः—

"सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।
यत्र सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा" ॥ ३१ ॥ [ मम्मट ]

साधर्म्येण वैधर्म्येण वा सामान्यं विशेषेण, विशेषो वा सामान्येन यत् समर्थ्यते— सोपपत्तिकतया दृढः क्रियते, सोऽर्थान्तरन्यासः।

---

इत्यप्युच्यते। उदाहरति—नैतदिति। शिशुपालवधस्य द्वितीये कृष्णवाक्यं समर्थयमानस्य बलस्योक्तिरियम्। लघ्वपि—संक्षिप्तमपि, एतत्—कृष्णोक्तम्, वचः—वाक्यम्, शिशुपालामिषेणनपरम् इति शेषः। भूयस्या—अतिविस्तृतयापि, वाचा, न, अतिशय्यते—अतिक्रम्यते, गुर्वर्थत्वादिति भावः। इममेवार्थं दृष्टान्तेन पुष्णाति—अग्निः, इन्धनौघधगपि—इन्धनानां काष्ठानाम्, ओघं समुदायम्, दहति ज्वलयतीति, तादृशोऽपि सन्, भूयानपीति भावः, त्विषा—कान्त्या, तेजसा, पूपणम्, सूर्यम्, अल्पिष्ठतया दृश्यमानमपि, नात्येति—नातिक्रामति। 'तेजसः प्रभावत्त्वमिव वचसोऽर्थवत्त्वमनलङ्घ्यत्वहेतुरित्यर्थः, अत्र समानधर्मविम्बतया दृष्टान्तालङ्कारः' इति मल्लिनाथः, वस्तुतस्तु अत्र अग्निविस्तृतवाचोः सूर्यसंक्षिप्तकृष्णवचसोश्चोपमानोपमेयभावो विवक्षितः। तयोश्च समानो धर्मः क्रमशः अनतिक्रामकत्वमनतिक्रमणीयत्वं चैक एव। तस्य चैकस्यैव द्वयोर्वाक्ययोर्नातिशय्यते 'नात्येति' इति द्विरुपादानादत्र प्रतिवस्तूपमैव। न दृष्टान्तः। तथाचेदमत्रोदाहर्तव्यम्—

सत्पूरुषः खलु हिताचरणैरमन्दमानन्दयत्यखिललोकमनुक्त एव।
आराधितः कथय केन करैरुदारैरिन्दुर्विकासयति कैरविणीकुलानि॥

अत्र उभयोर्वाक्ययोः सत्पूरुषचन्द्रयोः हिताचरणोदारकराणाम्, लोककैरविणीकुलयोः आनन्दनविकासनयोश्च धर्मयोर्विम्बप्रतिविम्बभावः।

अर्थान्तरन्यासमाह—सामान्यमिति। यत्र—यस्मिन्नलङ्कार इत्यर्थः। कारिकार्थो ग्रन्थकृतैव स्पष्टीकृत इति पुनरुक्ताद् विरम्यते। अर्थान्तरन्यासस्य दृष्टान्ताद् भेदमुपपादयति

---

जैसे नैतद् इति। श्रीकृष्ण के ये वचन यद्यपि अतिसंक्षिप्त हैं, तथापि अतिविस्तृत वाणी भी इनसे बढ़कर नहीं हो सकती। ईंधन का ढेर जलाने वाली भी आग अपनी कान्ति से सूर्य को अतिक्रमण नहीं कर सकती। (इस उदाहरण से हमारा मतभेद है, क्यों है? दूसरा उदाहरण कौन-सा है? इत्यादि संस्कृतटीका में देखिये।)

अर्थान्तरन्यास—

सामान्यम् इति। साधर्म्येण इति। साधर्म्य द्वारा या वैधर्म्य द्वारा सामान्य का विशेष से और विशेष का सामान्य से समर्थन—उपपत्तिद्वारा दृढ़ीकरण—होने पर 'अर्थान्तरन्यास' अलङ्कार होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



समर्थ्यसमर्थकवाक्ययोः सामान्यविशेषभावे अर्थान्तरन्यासः, दृष्टान्तस्तु न तथा, इत्यनयोर्भेदः।

सामान्यं विशेषेण यथा—

"बृहत्सहायः कार्य्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति।
सम्भूयाम्भोधिमभ्येति महानद्या नगाऽऽपगा" ॥ ३२ ॥ [ माघः ]

अत्र द्वितीयार्द्धगतेन विशेषेणार्थेन पूर्वार्द्धगतः सामान्योऽर्थः समर्थ्यते।

विशेषः सामान्येन यथा—

"यावदर्थपदां वाचमेवमादाय माधवः।
विरराम महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः" ॥ ३ ॥ [ माघः ]

---

समर्थ्येति। तथा—सामान्यविशेषभावयुक्तः। दृष्टान्त उभयोरपि विशेषत्वमेव भवति, इति भावः। सामान्यस्य विशेषेण समर्थनमुदाहरति—बृहदिति। शिशुपालवधस्य द्वितीय उद्धवोक्तिरियम्। क्षोदीयानपि—अतिशयेन क्षुद्रोऽपि, जनः बृहत्सहायः—बृहन् महान्, सहायः साहाय्यकरः, यस्य तादृशः सन्, कार्यान्तम्—कार्यस्य, अन्तं पारम्, कार्यसिद्धिमिति यावत्, गच्छति—प्राप्नोति। तथाहि—नगापगा—[ अपां समूहः आपम्, तेन गच्छतीत्यापगा, नदीत्यर्थः नगस्य पर्वतस्य, आपगा ] क्षुद्रा गिरिणदी, महानद्या—महत्या नद्या गङ्गादिकया सह [ विनापि तद्योगं तृतीया ] संभूय—मिलित्वा, अम्भोधिम्—समुद्रम्, अभ्येति—अभिगच्छति, प्राप्नोतीत्यर्थः लक्ष्यसमन्वयं करोति—अत्रेति।

विशेषस्य सामान्येन समर्थनं यथा—यावदिति। शिशुपालवधस्य द्वितीये कवेरुक्तिरियम्। माधवः—श्रीकृष्णः, एवम्—उक्तप्रकारेण, यावदर्थपदाम्—यावन्तोऽर्थास्तावन्ति पदानि—इति यावदर्थम्, [ 'यावदवधारणे' अव्ययीभावः ] यावदर्थं पदानि यत्र ताम्, विवक्षितार्थसम्मिताक्षराम्, वाचम्—वाणीम्, आदाय—गृहीत्वा उक्त्वेत्यर्थः, विरराम—तूष्णीं बभूव। तथाहि—

---

अर्थान्तरन्यास और दृष्टान्त का भेद—

समर्थ्य इति। समर्थ्य और समर्थक वाक्यों में यदि सामान्यविशेष भाव हो तब अर्थान्तरन्यास होता है। अर्थात् अर्थान्तरन्यास में दो वाक्यों में से एक वाक्य को सामान्यार्थबोधक होना चाहिये और दूसरे को विशेषार्थबोधक, यह नियम है। किन्तु दृष्टान्त अलङ्कार ऐसा नहीं है। (उसमें दोनों वाक्य विशेष बोधक ही होते हैं।)

सामान्य का विशेष से समर्थन, जैसे बृहत् इति। बड़ों की सहायता से छोटा भी (अपना) कार्य सिद्ध कर लेता है। पहाड़ी (छोटी) नदी महानदी से मिलकर समुद्र तक पहुँच जाती है। अत्र इति। यहाँ उत्तरार्ध में कहे हुए विशेष अर्थ के द्वारा पूर्वार्धोक्त सामान्य अर्थ का समर्थन किया गया है।

विशेष का सामान्य से समर्थन, जैसे यावद् इति। जिसमें शब्द और अर्थ नपे-तुले हैं; ऐसी वाणी को बोलकर श्रीकृष्णजी चुप हो गए। बड़े लोग स्वभाव से ही मितभाषी होते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अत्र द्वितीयार्द्धगतेन सामान्येनार्थेन प्रथमार्द्धगतो विशेषोऽर्थः समर्थ्यते।

वैधर्म्येण यथा—

"इत्थमाराध्यमानोऽपि क्लिश्नाति भुवनत्रयम्।
शाम्येत् प्रत्यपकारेण नोपकारेण दुर्जनः" ॥ ३४ ॥ [ कुमारसं० ]

अत्र द्वितीयार्द्धगतेन सामान्येनार्थेन प्रथमार्द्धगतो विशेषोऽर्थो वैधर्म्येण समर्थ्यते।

तुल्ययोगिता—

"पदार्थानां प्रस्तुतानामन्येषां वा यदा भवेत्।
एकधर्माभिसम्बन्धः स्यात्तदा तुल्ययोगिता" ॥ ३५ ॥ [ विश्वनाथः ]

केवलं प्रस्तुतानामप्रस्तुतानां वा एकधर्मसम्बन्धः तुल्ययोगिता।

यथा—

"यं सर्वशैलाः परिकल्प्य वत्सं मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे।

---

**महीयांसः**—उत्तमाः, **प्रकृत्या**—स्वभावेन, **मितभाषिणः**—मितं यावदपेक्षितम्, भाषन्त इति तादृशाः, भवन्ति। वृथाभाषणस्य निषिद्धत्वादिति भावः लक्ष्ये संगलक्ष्यं संगमयति—**अत्रेति**। इमे उभे अप्युदाहरणे साधर्म्येण समर्थनस्य। अथ वैधर्म्येणोदाहरति—**इत्थमिति**। कुमारसंभवस्य द्वितीये तारकासुरवर्णनमिदम्। **इत्थम्**—उक्तप्रकारेण, रवि-शशि-पवन-सरित्पति-सर्पसुरेन्द्रैः, **आराध्यमानोऽपि**—प्रसाद्यमानोऽपि, तारकासुरः, **भुवनत्रयं क्लिश्नाति**—पीडयति, **दुर्जनः**, **प्रत्यपकारेण**—अपकारस्य विनिमये अपकरणं प्रत्यपकारः, तेन, दण्डेनेति भावः, **शाम्येत्**—शान्तो भवेत्, **उपकारेण**—तदनुकूलाचरणेन, न शाम्येदिति शेषः। प्रत्युताधिकं शिरस्यारोहति। अत्र शमनं क्लेशनाद् विरुद्धमिति वैधर्म्येण समर्थनस्योदाहरणमिदम्। लक्ष्यसंगतिं दर्शयति—**अत्रेति**।

तुल्ययोगितां लक्षयति—**पदार्थानामिति**। **प्रस्तुतानाम्**—वर्ण्यानाम्, **वा**—अथवा, **अन्येषाम्**—अप्रस्तुतानामवर्ण्यानाम्, **यदा**, **एकधर्माभिसंबन्धः**—एकेन समानेन, धर्मेण, अभिसंबन्धः, **भवेत्**, **तदा**, **तुल्ययोगिता**, **स्यात्**। तुल्येन धर्मेण योगात् तुल्ययोगितेति भावः।

---

**अत्र** इति। यहाँ उत्तरार्धोक्त सामान्य अर्थ के द्वारा पूर्वार्धगत विशेष अर्थ का समर्थन किया गया है।

वैधर्म्य से समर्थन का उदाहरण, जैसे **इत्थम्** इति। हे ब्रह्मा जी! इस प्रकार आराधना करने पर भी वह दुष्ट (तारकासुर) तीनों लोकों को दुःखी कर रहा है। दुर्जन प्रत्यपकार से (ही) शान्त होता है, उपकार से नहीं। **अत्र** इति। यहाँ उत्तरार्धोक्त सामान्य अर्थ से पूर्वार्धगत विशेष अर्थ का वैधर्म्य द्वारा समर्थन किया गया है। (पूर्वोक्त दोनों उदाहरण साधर्म्य द्वारा समर्थन के हैं।)

तुल्ययोगिता—

**पदार्थानामिति**। **केवलमिति**। जब केवल प्रस्तुतों का अथवा केवल अप्रस्तुतों का एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


भास्वन्ति रत्नानि महौषधींश्च पृथूपदिष्टां दुदुहुर्धरित्रीम्'' ॥ ३६ ॥ [ कुमारसं० ]

अत्र हिमवद्वर्णनस्य प्रकृतत्वात् तद्गतौषधिरत्नानां द्वयानामपि प्रकृतत्वम्, तेषां दोहनक्रियारूपैकसमानधर्मसम्बन्धाद् औपम्यस्य गम्यत्वात् केवलप्राकरणिकविषयोऽयमलङ्कारः।

"नागेन्द्रहस्तास्त्वचि कर्कशत्वादेकान्तशैत्यात् कदलीविशेषाः।
लब्ध्वाऽपि लोके परिणाहि रूपं जातास्तदूर्वोरुपमानबाह्याः'' ॥ ३७ ॥ [ कुमारसं० ]

---

तुल्यधर्मयोगाच्चात्र तयोर्गिनामौपम्यं व्यज्यते। कारिकायां वा शब्दो विकल्पार्थ इत्यत आह केवलमिति। उदाहरति—यमिति। कुमारसंभवस्य प्रथमे हिमाद्रिवर्णनमिदम्। **सर्वशैलाः**—सर्वे, शैलाः पर्वताः, **यम्**—हिमालयम्, **वत्सम्**, **परिकल्प्य**—विधाय, **दोहदक्षे**—दोहे दोहनकर्मणि, दक्षे समर्थे, **मेरौ**—सुमेरुपर्वते, **दोग्धरि**—दोहनकर्तरि, **स्थिते**—सति, **पृथूपदिष्टाम्**—पृथुना तन्नामकेन वेनसुतेन राज्ञा, उपदिष्टाम् ईदृक्तया प्रदर्शिताम्, **धरित्रीम्**—पृथ्वीम्, गोरूपधरामिति शेषः, 'गौर्भूत्वा तु वसुंधरा' इति विष्णुपुराणात्। [ धरित्रीशब्दस्य अकथितं चेत्यपादानत्वाविवक्षायां कर्मद्वितीयान्तत्वम् ] पृथूपदिष्टाया धरित्र्या इति भावः। **भास्वन्ति**—द्युतिमन्ति, [ रत्नमहौषधीनां साधारणविशेषणमिदम्, भास्वन्ति रत्नानि, भास्वत्य ओषधय इति भास्वन्ति, तानि, नपुंसकमनपुंसकेनेति नपुंसकैकशेषः ] **रत्नानि**—श्रेष्ठवस्तूनि [ रत्नं श्रेष्ठे मणावपि-इति विश्वः ] **महौषधींश्च**—संजीवनीप्रभृतीर्महतीरोषधींश्च, **दुदुहुः**—दुग्धवन्तः। लक्ष्यसंगमनं करोति **अत्रेति**। **केवलप्राकरणिकविषयः**—प्रस्तुतमात्रविषयकः। वत्सत्वाद्यारोपणाद् रूपकादिशङ्का तु नात्र कार्या। हिमहेमाचलादिषु वत्सत्वदोग्धृत्वादीनामागमसिद्धत्वेन अनारोप्यमाणत्वादिति श्रीमल्लिनाथः।

अप्रस्तुतविषयां तुल्ययोगितामुदाहरति—**नागेन्द्रेति**। कुमारसंभवस्य प्रथमे पार्वत्या वर्णनमिदम्। **नागेन्द्रहस्ताः**—नागेन्द्राणाम् ऐरावतादीनाम्, हस्ताः कराः **त्वचि**—चर्मणि, **कर्कशत्वात्**—काठिन्यात्, **कदलीविशेषाः**—राजरम्भादयः, **एकान्तशैत्याद्**—एकान्तेन नियमेन,

---

धर्म से सम्बन्ध हो तब 'तुल्ययोगिता' अलङ्कार होता है। जैसे **यम्** इति। सारे पर्वतों ने जिस हिमालय पर्वत को बछड़ा बनाकर, दोहन-क्रिया में चतुर मेरु पर्वत के दुहने वाले के रूप में विद्यमान रहने पर, पृथुराजा के द्वारा निर्दिष्ट पृथ्वी से दीप्तिमान् रत्नों और महौषधियों को दुहा था। **अत्र** इति। यहा हिमालय का वर्णन प्रस्तुत है, अतः उसमें रहने वाली औषधियाँ और रत्न भी प्रस्तुत ही हैं। उसका 'दोहनक्रियारूप' एक तुल्य धर्म के साथ सम्बन्ध होने के कारण यहाँ केवल प्रस्तुत विषयक तुल्ययोगिता अलङ्कार है। एक धर्म के साथ सम्बन्ध होने से ही यहाँ औषधि और रत्नों का सादृश्य भी व्यङ्ग्य है।

**नागेन्द्र** इति। संसार में विशालरूप प्राप्त करके भी ऐरावत आदि दिग्गजों की सूँड़ त्वचा की कठोरता के कारण और राजकदली आदि विशेष प्रकार के कदली स्तम्भ सदा शीतल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अत्र नागेन्द्रहस्तानां कदलीविशेषाणाञ्च द्वयानामप्यप्रस्तुतानां परिणाहिरूपलाभ-क्रियायाः समानधर्मस्य सम्बन्धात् केवलाप्राकरणिकविषयकमिदमुदाहरणम् ।

दीपकम्—

"अप्रस्तुतप्रस्तुतयोर्दीपकन्तु निगद्यते"। [विश्वनाथः]

अप्रस्तुतप्रस्तुतयोः एकधर्माभिसम्बन्धो दीपकम् । यथा—

"बलावलेपादधुनाऽपि पूर्ववत् प्रबाध्यते तेन जगज्जिगीषुणा ।
सती च योषित् प्रकृतिश्च निश्चला पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि" ॥ ३८ ॥ [माघः]

अत्र प्रस्तुतायाः निश्चलायाः प्रकृतेरप्रस्तुतायाः पतिव्रतायाश्च जन्मान्तरेऽपि स्व-कीयपुरुषानुगमनरूपैकक्रियासम्बन्धः ।

---

शैत्याद्, हेतोः, लोके, परिणाहि—वैपुल्ययुक्तम्, रूपम्, लब्ध्वापि, तदूर्वोः—तस्याः पार्वत्याः, ऊर्वोः, उपमानबाह्याः—उपमानक्रियानर्हाः, जाताः—बभूवुः। तदूर्वोर्न कार्कश्यं नाप्येकान्त-शैत्यमिति भावः।

लक्ष्ये संगमयति—अत्रेति। अप्रस्तुतानामिति, पार्वत्या ऊर्वोरत्र प्रस्तुतत्वादिति भावः। 'लाभक्रियायाः' 'समानधर्मस्य' इति समानाधिकरणषष्ठ्यौ! परिणाहिरूपलाभक्रियारूपस्य समानधर्मस्येति भावः। वस्तुतस्तु उपमानबाह्यत्वं धर्मस्तुल्ययोगिताप्रयोजकतयात्र कवेर्विवक्षितः। तेनैव पार्वत्यूरूत्कर्षस्य प्रत्ययात्। परिणाहिरूपलाभस्तु प्रस्तुतयोरूर्वोः अप्रस्तुतानां करीन्द्र-करकदलीविशेषाणां च समान एव। अपिशब्दस्याप्यत्रैव स्वारस्यम्। करीन्द्रकरादीनां परि-णाहिरूपयोगेन कथंचित् तदुपमानताप्राप्तिसंभावनायामपि; कार्कश्यादेकान्तशैत्याच्चोपमान-बाह्यतैवेत्यभिप्राय इत्यलं व्याख्येयग्रन्थदूषणोत्प्रेक्षणेन। केवलाप्राकरणिकविषयकम्—अप्रस्तुत-मात्रविषयकमित्यर्थः।

दीपकं लक्षयति—अप्रस्तुतेति। एकधर्माभिसम्बन्ध इत्यनुवर्तते। व्याचष्टे—अप्रस्तुतेति। उदाहरति—बलावलेपादिति। माघे प्रथमे शिशुपालवर्णनमिदम्। जिगीषुणा—जेतुमिच्छुना, नित्योत्साहवता, तेन—शिशुपालेन, बलावलेपाद्—बलस्य, अवलेपाद् गर्वाद्, अधुनापि, पूर्ववत्—पूर्वजन्मनीव, जगत्—लोकः, प्रबाध्यते—प्रकर्षेण पीड्यते। तथाहि—सती—पतिपरायणा, योषित्—स्त्री च, निश्चला—दृढा, प्रकृतिश्च—स्वभावश्च, भवान्तरेष्वपि—जन्मान्तरेष्वपि, पुमांसम् अभ्येति—प्राप्नोति। लक्ष्ये संगमयति—अत्रेति। अत्र सामान्येन विशेषसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासोऽपि।

---

होने के कारण पार्वती के ऊरुओं (जाँघों) की उपमा के योग्य नहीं थे। अत्र इति। यहाँ हाथियों की सूँड़ और कदली वृक्ष दोनों ही अप्रस्तुत हैं। इनका 'विशालरूप की प्राप्ति' रूप समानधर्म के साथ सम्बन्ध होने से यह उदाहरण अप्रस्तुतविषयक तुल्ययोगिता का है।

दीपक—

अप्रस्तुतप्रस्तुतयोरिति। जहाँ अप्रस्तुत और प्रस्तुत का एक धर्म के साथ सम्बन्ध हो उसे 'दीपक' कहते हैं। जैसे बला इति। विजयाभिलाषी वह—शिशुपाल—आज भी अपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अन्यरूपं दीपकम्—

"अथ कारकमेकं स्यादनेकासु क्रियासु चेत्"। [ विश्वनाथः ]

तदापि दीपकमेव। यथा—

"विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा
प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्पः किमु मदः।
तव स्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणो
विकारश्चैतन्यं भ्रमयति च सम्मीलयति च ॥ ३९ ॥ [ उत्तरच० ]

अथ भ्रमयति सम्मीलयति चेत्युभयोः क्रिययोः कर्तृकारकमेकं विकार इति, कर्मकारकञ्चैकं चैतन्यमिति।

---

दीपकान्तरं लक्षयति—अथ कारकमिति। चेत्—यदि, अनेकासु क्रियासु, एकम्—एकमेव, कारकम्, स्यात् तदापि दीपकालङ्कारो भवतीत्यर्थः।

उदाहरति—विनिश्चेतुमिति। हे सीते! तव स्पर्शे स्पर्शे—त्वदीययावत्स्पर्शेषु, परिमूढेन्द्रियगणः—परिगूढः स्वस्वविषयग्रहणासमर्थः, इन्द्रियगणः चक्षुरादीन्द्रियसमूहः, यस्य तादृशः, मम—रामस्य, विकारः—आन्तरावस्थाविशेषः, चैतन्यम्—मदन्तरात्मानम्, भ्रमयति च—अस्थिरं करोति च, [ प्रतिकूलतया भासमानः सन् क्षुब्धं करोतीति वीरराघवः ] संमीलयति च—आवृणोति च, [ अनुकूलतया भासमानः सन्नुल्लासयतीति वीरराघवः ] तथापि—अयं विकारः, सुखमिति वा—इदं सुखमस्तीत्येवं वा, दुःखमिति वा—इदं दुःखमस्तीत्येवं वा, विनिश्चेतुम्—विशिष्य निर्णेतुम्, न शक्यः दुष्कर इति भावः, प्रमोहः—मूर्च्छा वा, निद्रा वा—सुषुप्तिर्वा इत्येवमपि विनिश्चेतुं न शक्यः। विषविसर्पः—विषस्य गरलस्य, विसर्पः संचारः, किमु? मदः—उन्मादः, किमु? शरीरे गरलसंचारजन्यो वायं विकारः, उन्मादो वेति विनिश्चेतुं न शक्य इति भावः। अन्तरात्मनः स्थैर्ये प्रसादे चैकतरनिश्चयो भवति। अत्र तु तदभाव इति भावः। लक्ष्यसमन्वयं करोति—अत्रेति।

---

बल के अभिमान से पहले की तरह ही संसार को सता रहा है। पतिव्रता नारी और दृढ़प्रकृति दूसरे जन्म में भी ( अपने पूर्वाश्रित ) पुरुष को प्राप्त कर लेती हैं। अत्र इति। यहाँ निश्चलप्रकृति प्रस्तुत है, और पतिव्रता स्त्री अप्रस्तुत है, इन दोनों का 'जन्मान्तर में भी अपने पुरुष का अनुगमन करना' रूप एक क्रिया के साथ सम्बन्ध है, अतः यहाँ दीपक है।

दूसरा दीपक—

अथ इति। यदि अनेक क्रियाओं का एक ही कारक हो तब भी 'दीपक' होता है।

जैसे विनिश्चेतुम् इति। हे सीते! तेरे प्रत्येक स्पर्श से होने वाले मनोविकार ने मेरी इन्द्रियों को विषय ग्रहण करने में असमर्थ बना दिया है, ( इतना ही नहीं ) यह विकार मेरी आत्मा को क्षुब्ध और आवृत कर रहा है, यह सुख है या दुःख? मूर्च्छा है या निद्रा? किसी विष का प्रभाव है या उन्माद? यह निश्चय करना कठिन है। अत्र इति। यहाँ 'भ्रमयति'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



### सन्देहः—

"सन्देहः प्रकृतेऽन्यस्य संशयः प्रतिभोत्थितः"। [ विश्वनाथः ]
भेदोक्तौ तदनुक्तौ च द्विधाऽसौ परिकीर्त्तितः ॥ ४० ॥

प्रकृते—उपमेये, अन्यस्य—उपमानस्य, प्रतिभा—कविप्रौढोक्तिः, तथा उत्थितः; तेन "स्थाणुर्वा पुरुषो वा" इति सन्देहे नायमलङ्कारः। भेदः—वैधर्म्यम्।

भेदोक्तौ यथा—

"अयं मार्त्तण्डः किं ? स खलु तुरगैः सप्तभिरितः
कृशानुः किं ? सर्वाः प्रसरति दिशो नैष नियतम्।

---

संदेहं लक्षयति—**संदेह** इति। **प्रकृते**-उपमेये, **अन्यस्य**-उपमानस्य, उपमानविषयक इति यावत्, **प्रतिभोत्थितः**-प्रतिभाया नवनवोन्मेषशालिन्याः कवेः प्रज्ञायाः, उत्थित उद्भूतः, चमत्कारजनक इति यावत्। **संशयः**-विरुद्धानेककोटिकं ज्ञानम्, **संदेहः**-संदेहाख्योऽलङ्कारः, भवतीति शेषः। तस्य प्रकारद्वयमाह—**असौ**-संदेहः, **द्विधा**-द्वाभ्यां प्रकाराभ्याम्, **परिकीर्तितः**-वर्णितः, **भेदोक्तौ**-भेदस्य वैधर्म्यस्य, उक्तौ सत्यामेकः, **तदनुक्तौ च**-तस्य भेदस्य, अनुक्तौ सत्यां च, अपरः भवतीति शेषः। यो भेदोक्तिगर्भितः, स निश्चयगर्भ इत्युच्यते, तत्र वैधर्म्येण कथंचिद् निश्चयस्यापि सत्त्वात्, परं संदेहस्तु न निवर्तते। यस्तु भेदानुक्तिगर्भितः, स शुद्ध इत्युच्यते। वैधर्म्यानुक्त्या निश्चयसम्पर्काभावादस्य शुद्धत्वम्। **कविप्रौढोक्तिः**-चमत्कारिणी कविकल्पना। प्रतिभोत्थित इति विशेषणस्य व्यावर्त्यमाह—**स्थाणुर्वेति**। **नायमिति**। कविप्रतिभानुत्थितत्वेन चमत्काराभावादिति भावः।

तत्र निश्चयगर्भं संदेहमुदाहरति **अयमिति**। राजानं प्रति कस्यचिदुक्तिरियम्। हे राजन्! **प्रतिभटाः**-परपक्षयोद्धारः, **त्वाम्**, **आजौ**-संग्रामे, **समालोक्य**-सम्यग् दृष्ट्वाऽपि, **इति**-एवंविधान्, **विकल्पान्**-संशयान्, **चिरम्**-बहुकालम्, यथा स्यात्तथा, **विदधति**-कुर्वन्ति, विकल्पविधामाह—**अयमिति**। **अयम्**-पुरो दृश्यमानः पदार्थः, **मार्तण्डः**-भूलोकमवतीर्णः सूर्यः, **किम्** ? दुर्निरीक्ष्यत्वसाम्यान्मार्तण्डसंशयः। **सः**-प्रसिद्धः सूर्यः, **सप्तभिः**-सप्तसंख्याकैः, **तुरगैः**-अश्वैः, **इतः**-प्राप्तः, युक्त इति यावत्। **खलु**-निश्चयेन, अयं तु न तथेति नायं सूर्यो

---

और 'संमीलयति' इन दोनों क्रियाओं का कर्त्ता कारक 'विकार' एक ही है, और 'चैतन्यम्' यह कर्म कारक भी एक ही है।

#### संदेह

**सन्देह** इति। उपमेय में उपमान के संशय को 'संदेह' अलङ्कार कहते हैं। यह संशय अलङ्कार तभी माना जाता है जब कविकल्पित ( अर्थात् चमत्कार युक्त ) होता है, अन्यथा नहीं। इसीलिये 'यह स्थाणु ( ठूंठ ) है या पुरुष' इस संशय में संदेहालङ्कार नहीं माना जाता। क्योंकि इसमें कोई चमत्कार नहीं है।

**भेदोक्तौ** इति। यह संदेह दो प्रकार का होता है; एक वह जिसमें भेद बता दिया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


कृतान्तः किं साक्षात् ? महिषवहनोऽसाविति चिरं
समालोक्याऽऽजौ त्वां विदधति विकल्पान् प्रतिभटाः" ॥ ४१ ॥

भेदानुक्तौ यथा—
"अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रदः ?
शृङ्गारैकरसः स्वयं नु मदनो मासो नु पुष्पाऽऽकरः ? ।

---

भवितुमर्हति। कृशानुः—अग्निः, किम् ? किमयमग्निरस्तीति भावः। दुर्धर्षत्वसाम्यादग्नित्वसंशयः। नेत्याह—एषः—अग्निः, सर्वाः, दिशः, न प्रसरति—नाभिगच्छति, इति नियतम्—निश्चितम्, ऊर्ध्वगामी वा पवनानुसृतदिग्गामी वा भवतीति भावः। अयं तु सर्वदिग्गामीति नाग्निर्भवितुमर्हति। तर्हि साक्षात्—यमलोकादवतीर्णः प्रत्यक्षगोचरः, कृतान्तः—यमः, किम् ? किमयं यमराज इति भावः। सकलसंहारकर्तृत्वसाम्यात्कृतान्तत्वसंशयः। नेत्याह, असौ—कृतान्तः, महिषवहनः—महिषो वहनं वाहनं यस्य तादृशो भवति, अयं तु न तादृशोऽवलोक्यते, अतो यमोऽपि नायम्। अत्र सप्ततुरगसंबन्धादिवैधर्म्योक्त्या मार्तण्डाद्यभावनिश्चयेऽपि पर्यन्ततः संदेहानिवृत्तेर्भेदोक्तिनिबन्धनो निश्चयगर्भः संदेहालङ्कारः।

द्वितीयमुदाहरति—अस्याः इति। विक्रमोर्वशीये प्रथमाङ्के उर्वशीं प्रकृत्य पुरूरवस उक्तिरियम्। अस्याः—सुन्दर्याः, उर्वश्याः, सर्गविधौ—सृष्टिविधाने, उत्पादने, कान्तिप्रदः—कान्तिदायकः, चन्द्रः, प्रजापतिः—स्रष्टा, अभूत्, नु—अभूत् किम् ? नुशब्दः प्रश्नार्थकः। [ 'नुप्रश्नेऽनुनये' इति हेमचन्द्रकोशः ] शृङ्गारैकरसः—शृङ्गार एवैको रसो यस्य तादृशः, मदनः—कामः, स्वयम्—आत्मनैव, 'प्रजापतिरभून्नु' इति शेषः एवमन्यत्रापि। 'चित्तोन्मादरसः' इति

---

जाता है, दूसरा वह जिसमें भेद नहीं बताया जाता। भेद शब्द का अर्थ है वैधर्म्य अर्थात् विरुद्ध धर्म।

भेदोक्ति में संदेह का उदाहरण, जैसे अयम् इति। क्या यह सूर्य है ? वह ( सूर्य ) तो सात घोड़ों से युक्त होता है, ( यह तो एक ही घोड़े पर सवार है। ) तब क्या यह आग है ? आग भी सब दिशाओं में नहीं फैलती, यह निश्चित है इसका तेज तो चारों ओर फैल रहा है। तो क्या यह साक्षात् यमराज है ? यमराज भी भैंसे पर सवार रहता है। ( यह तो ऐसा नहीं दीखता ) इस प्रकार हे राजन् ! आप को युद्ध के मैदान में देखकर प्रतिपक्षी योद्धा लोग अनेक संदेह करते हैं। [ यहाँ राजा उपमेय है, उसमें उपमान सूर्य आदि का संदेह हुवा है, इसलिये संदेहालङ्कार है। 'वह सात घोड़ों से युक्त है' इत्यादि वाक्यों द्वारा दोनों का भेद भी बता दिया गया है, इसलिये भेदोक्ति में संदेह है, अर्थात् निश्चयगर्भ संदेह है। ]

भेद की अनुक्ति में संदेह का उदाहरण, जैसे अस्या इति। इस उर्वशी की रचना के समय सृष्टिकर्ता ( प्रजापति ) क्या कान्तिदाता चन्द्रमा था ? अथवा शृङ्गार का एकमात्र अनुरागी स्वयं कामदेव ? या फिर वसन्त ऋतु ? वेदाभ्यास के कारण जड़, सांसारिक विषयों से बिल्कुल विमुख, अत्यन्त वयोवृद्ध मुनि, ब्रह्माजी ऐसा मनोहर रूप कैसे बना सकते हैं ? [ यहाँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



वेदाभ्यासजडः कथं नु विषयव्यावृत्तकौतूहलो
निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः ?" ॥ ४२ ॥ [ विक्रमो० ]

भ्रान्तिमान्—

"साम्यादतस्मिंस्तद्बुद्धिर्भ्रान्तिमान् प्रतिभोत्थिता" । [ विश्वनाथः ]

प्रतिभोत्थितेति "शुक्तिकायां रजतम्" इति भ्रान्तिर्नास्य अलङ्कारस्य विषयः। यथा—

"महाराज ! श्रीमन् ! जगति यशसा ते धवलिते
पयःपारावारं परमपुरुषोऽयं मृगयते ।

---

पाठे तु 'चित्तोन्मादं चित्तोन्मादजननं, रसोऽनुरागः, यस्य सः' इति व्याख्येयम्। पुष्पाकरो मासः—मधुमासः वसन्तर्तुरिति यावत्, प्रजापतिरभूत् किम्? ननु प्रसिद्धो ब्रह्मा कुतो न प्रजापतिरित्याह—वेदाभ्यासेति। वेदाभ्यासजडः—वेदाभ्यासेन, जडः कुण्ठितधीः, विषयव्यावृत्तकौतूहलः—विषयेभ्यो वनितादिभ्यः, व्यावृत्तं निवृत्तम्, कौतूहलम् औत्सुक्यं यस्य तादृशः, पुराणः—अतिवृद्धः, मुनिः—मुनिव्रतः, ब्रह्मा, इदम्—पुरोवर्ति, मनोहरम्—रमणीयम्, रूपम्, निर्मातुम्—स्रष्टुम्, कथं नु—केन प्रकारेण, न कथमपीत्यर्थः, प्रभवेत्—समर्थः स्यात्। अत्र चन्द्रो वा मदनो वा वसन्तो वाऽस्या रचयितेति संदेहात् संदेहालङ्कारः, वैधर्म्यानुक्तेर्निश्चयाभावाद् भेदानुक्तिनिबन्धनः शुद्धसंदेहोऽयम्।

भ्रान्तिमन्तं लक्षयति—साम्यादिति। साम्यात्—सादृश्याद् हेतोः, अतस्मिन्—तद्भिन्ने, प्रतिभोत्थिता—कविप्रौढोक्तिसमुल्लासिता, चमत्कारिणीति यावत्। तद्बुद्धिः—तद्विषयकं ज्ञानम्, भ्रान्तिमान्, इत्युच्यत इति शेषः। प्रतिभोत्थितेति विशेषणस्य व्यावर्त्यमाह—शुक्तिकायामिति। अयं भावः—यद्यपि चाकचक्यसाम्यादेव शुक्तिकायां रजतभ्रान्तिरुत्पद्यते, तथापि न तस्या अलङ्कारत्वम्, कविप्रतिभोत्थितत्वाभावेन चमत्काराजननात्। उदाहरति—महाराजेति। हे श्रीमन्! महाराज! जगति—संसारे, ते—तव, यशसा—कीर्त्या, धवलिते—श्वेततां प्रापिते सति [ कीर्तेः श्वेतत्ववर्णनं कविसंप्रदायसिद्धम् ] अधुना—इदानीम्, अयम्—जगत्पालकतया

---

उर्वशी के रचयिता में चन्द्र आदि का संदेह हुवा है, इसलिये संदेहालंकार है, चन्द्र आदि का भेद ( वैधर्म्य ) नहीं बताया गया है, इसलिये यहाँ भेद की अनुक्ति होने से शुद्ध संदेह ]

भ्रान्तिमान्

साम्याद् इति। यदि सादृश्य के कारण किसी वस्तु में किसी दूसरी वस्तु का ज्ञान हो जाय, तब 'भ्रान्तिमान्' अलङ्कार होता है। ( इसका दूसरा नाम 'भ्रान्ति' भी है ) यह 'भ्रान्ति' कवि-प्रतिभा से कल्पित होनी चाहिये; तभी 'अलङ्कार' मानी जायगी। इसीलिये सीप में 'यह चाँदी है' इस भ्रान्ति ज्ञान को अलङ्कार नहीं मानते। ( क्योंकि यह भ्रान्ति कविकल्पित नहीं है। )

जैसे महाराज इति। हे महाराज! आपकी कीर्ति से श्वेत हुए इस जगत में इस समय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


कपर्दी कैलासं करिवरमथायं कुलिशभृत्
कलानाथं राहुः कमलभवनो हंसमधुना" ॥ ४३ ॥ [ महापद्मम् ]

अत्र भोजराजस्य यशसा धवलीकृते जगति सर्वत्रापि परमपुरुषाऽऽदीनां समुद्राऽऽदिभ्रान्तिः कविप्रतिभोत्थितेति भ्रान्तिमानलङ्कारः ।

## अपह्नुतिः—

"प्रकृतं प्रतिषिध्यान्यस्थापनं स्यादपह्नुतिः" । [ विश्वनाथः ]

इहापि कविप्रौढोक्तिसिद्धमेव ।

---

प्रसिद्धः, **परमपुरुषः**–नारायणः, **पयःपारावारम्**–क्षीरसागरम्, **मृगयते**–अन्विष्यति, शयनार्थमिति शेषः । **कपर्दी**–शम्भुः, **कैलासम्**–कैलासाख्यं स्वनिवासस्थानभूतं गिरिम्, मृगयत इति शेषः । **अयम्, कुलिशभृत्**–वज्रधारी, इन्द्रः **करिवरम्**–ऐरावतनामानं स्ववाहनभूतं हस्तिनम्, मृगयते । **राहुः**–राहुनामकश्छायारूपो ग्रहः **कलानाथम्**–चन्द्रमसम्, मृगयते, ग्रासार्थमिति शेषः । **कमलभवनः**–स्वयोनिर्ब्रह्मा, **हंसम्**–स्ववाहनम्, मृगयते । सर्वस्य जगतो राजकीर्त्या श्वेतत्वे तदन्तर्वर्तिनां श्वेतानां क्षीरसागरादीनां पार्थक्येनालक्षिततया नारायणादिभिस्तदन्वेषणं क्रियत इति भावः । लक्ष्यलमन्वयं करोति—**अत्रे**ति । वस्तुतस्तु नात्र भ्रान्तिमदलङ्कारः । 'कपाले मार्जारः पय इति कराँल्लेढि शशिनः' इत्यादिभ्रान्त्युदाहरणवदत्र भ्रान्त्यधिष्ठानस्यानिर्देशात्, निरधिष्ठानाया भ्रान्तेरसंभवात् । न च जगदेवाधिष्ठानमस्तु, तस्य मार्गणाधिष्ठानत्वेनोपादानात्, नतु भ्रान्त्यधिष्ठानत्वेन । न ह्यत्र नारायणादेर्जगति समुद्रत्वादिभ्रमः, किन्तु जगद्वस्तूनां सारूप्याद् मिथो भेदानवभासः । तथा चात्र मीलितालङ्कारः । तदुक्तं चन्द्रालोके—

मीलितं यदि सादृश्याद् भेद एव न लक्ष्यते ।
रसो नालक्षि लाक्षायाश्चरणे सहजारुणे ॥

भ्रान्त्युदाहरणं त्विदं विज्ञेयम्—

'अयं प्रमत्तमधुपस्त्वन्मुखं वेत्ति पंकजम् ।'

अत्र सादृश्याद् अतस्मिन् पंकजभिन्ने नायिकाया मुखे, तद्बुद्धिः पंकजबुद्धिर्भ्रान्तिः, सा च कविप्रौढोक्तिसिद्धत्वाच्चमत्कारिणीत्यलंकारः । अत्र मुखं भ्रमस्याधिष्ठानम्, पंकजं च तद्विषयः । यथा वा—

पलाशमुकुलभ्रान्त्या शुकतुण्डे पतत्यलिः ।
सोऽपि जम्बूफलभ्रान्त्या तमलिं धर्तुमिच्छति ॥

---

विष्णु भगवान् क्षीरसागर को, शिवजी कैलास को, इन्द्र ऐरावत हाथी को, राहु चन्द्रमा को और ब्रह्माजी ( अपनी सवारी ) हंस को ढूँढ़ रहे हैं । अत्र इति । यहाँ भोजराज के यश से श्वेतरूपता को प्राप्त हुए जगत् में सब जगह नारायण आदि को समुद्र आदि की भ्रान्ति हुई है, और यह भ्रान्ति कवि प्रतिभा से कल्पित है, इसलिये 'भ्रान्तिमान्' अलङ्कार है । ( हमारे मत से भ्रान्ति का यह उदाहरण ठीक नहीं, इसके लिये संस्कृत टीका देखिये ) ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



**यथा—**

**"नेदं नभोमण्डलमम्बुराशिर्नैताश्च तारा नवफेनभङ्गाः।**
**नायं शशी कुण्डलितः फणीन्द्रो नासौ कलङ्कः शयितो मुरारिः" ॥ ४४ ॥**

**अत्र प्रस्तुतानां नभोमण्डलाऽऽदीनां प्रतिषेधेन अम्बुराशिप्रभृतीनामप्रस्तुतानां स्थापनम्। यथा वा—**

**"दशाननकिरीटेभ्यस्तत्क्षणं राक्षसश्रियः।**
**मणिव्याजेन पर्य्यस्ताः पृथिव्यामश्रुबिन्दवः" ॥ ४५ ॥ [ रघु० ]**

---

अपह्नुतिं लक्षयति—**प्रकृतमिति**। **प्रकृतम्**—प्रस्तुतम्, उपमेयम्, **प्रतिषिध्य**—असत्यं कृत्वा, **अन्यस्थापनम्**—अन्यस्य अप्रस्तुतस्य, उपमानस्य, स्थापनम् सत्यतया व्यवस्थापनम्, **अपह्नुतिः**, इत्युच्यते। इदमपि कविप्रौढोक्तिसिद्धमेवालंकारत्वं भजत इत्याह—**इहापीति**।

उदाहरति—**नेदमिति**। **इदम्**—उपरि दृश्यमानम्, **नभोमण्डलम्**—आकाशमण्डलम्, **न**—नास्ति, किन्तु **अम्बुराशिः**—समुद्रः। किंच **एताः**—उपरि स्फुरन्त्यः, **ताराः**—नक्षत्राणि, **न**—न सन्ति; किन्तु **नवफेनभङ्गाः**—नवस्य नवोद्गतस्य, फेनस्य, भङ्गाः शकलानि। **अयम्**—उपरि प्रकाशमानः, **शशी**—चन्द्रमाः, **न**—नास्ति, किन्तु **कुण्डलितः**—कुण्डलाकारेण अवस्थितः, **फणीन्द्रः**—शेषनागः। **असौ**—चन्द्रमसि निरीक्ष्यमाणः, **कलङ्कः**—लाञ्छनम्, **न**, किन्तु **शयितः**—सुप्तः, **मुरारिः**—विष्णुः अस्ति, लक्ष्यसमन्वयं करोति—**अत्रेति**।

अपह्नुतेर्द्वितीयमुदाहरणमुपन्यस्यति—**दशाननेति**। रघुवंशे दशमे रामोत्पत्तिसमयवर्णनमिदम्। **तत्क्षणम्**—तस्मिन् क्षणे, रामोत्पत्तिसमये, **राक्षसश्रियः**—राक्षसानां राजलक्ष्म्याः, **अश्रुबिन्दवः**—नेत्रजलकणाः, **दशाननकिरीटेभ्यः**—दशाननस्य रावणस्य, किरीटेभ्यः—मुकुटेभ्यः, **मणिव्याजेन**—मणीनां व्याजेन च्छलेन, **पृथिव्याम्, पर्य्यस्ताः**—पतिताः। रामोदये सति तद्वध्यस्य रावणस्य किरीटमणिभ्रंशलक्षणं दुर्निमित्तमभूदित्यर्थः। लक्ष्यसंगमनं करोति—

---

**अपह्नुति—**

**प्रकृतम्** इति। उपमेय का निषेध करके यदि उपमान का स्थापन (आरोप) किया जाय तब 'अपह्नुति' अलङ्कार होता है। **इह** इति। यहाँ भी उपमान का स्थापन कविकल्पित ही होना चाहिये।

जैसे **नेदम्** इति। यह आकाश नहीं है, किन्तु समुद्र है। ये तारागण (नक्षत्र) नहीं हैं, किन्तु ताजे फेन के खण्ड हैं। यह चन्द्रमा नहीं है, किन्तु कुण्डल मारकर बैठे हुए शेषनाग हैं। यह (काला चिह्न) कलङ्क नहीं है किन्तु (शेष पर) सोए हुए विष्णु भगवान हैं। **अत्र** इति। यहाँ प्रस्तुत (उपमेय) आकाशमण्डल आदि का निषेध करके (उनमें) अप्रस्तुत (उपमानभूत) समुद्र आदि की स्थापना (आरोप) की गई है।

अथवा जैसे **दशानन** इति। उसी (राम-जन्म के) समय रावण के मुकुटों से मणियों के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अत्र प्रस्तुतानां मणीनां प्रतिषेधेन अश्रुबिंदूनां स्थापनम् ।

समासोक्तिलक्षणमुक्तमाग्नेये—

"यत्रोक्ताद् गम्यतेऽन्योऽर्थस्तत्समानविशेषणः ।
सा समासोक्तिरुदिता सङ्क्षेपार्थतया बुधैः" ॥ ४६ ॥

तत्समानविशेष इत्युपलक्षणम्, तेन तत्समानकार्य्यैः, तत्समानलिङ्गैश्च गृह्यते । यत्र समैर्विशेषणैः कार्य्यैर्लिङ्गैश्च उक्तात्—प्रस्तुताद् अप्रस्तुताद्वा, अन्यः—यथाक्रममप्रस्तुतः प्रस्तुतो वा, अर्थः गम्यते—बोध्यते, सा सङ्क्षेपोक्तिस्वरूपत्वात्, "समासेन—सङ्क्षेपेण उक्तिः" इति व्युत्पत्त्या—समासोक्तिः कथिता । सङ्क्षेपश्च एकस्य वचनेनोभयप्रतिपत्तिरिति । आदर्शे—"अप्रस्तुताद् वाच्यात् प्रस्तुतस्य गम्यत्वे समासोक्तिः" इत्यभिहितम्; नव्यास्तु तद्वैपरीत्येन—"प्रस्तुतादप्रस्तुतप्रतीतौ समासोक्तिः, अप्रस्तुतात्

---

अत्रेति । पूर्वपद्ये प्रकृतनिषेधो नञा कृतः, अतस्तत्र शुद्धापह्नुतिः । द्वितीयस्मिँस्तु व्याजशब्देन प्रकृतनिषेध इति कैतवापह्नुतिः ।

समासोक्तिं लक्षयति—यत्रोक्तादिति । कारिकार्थो ग्रन्थकृतैव सुस्पष्टं व्याख्यात इति नास्माभिर्व्याख्यानेन पुनरुक्तिर्विधीयते । तत्समानविशेषण इति पदे विशेषणपदं कार्यलिङ्गयोरप्युपलक्षकमित्यत आह—तत्समानविशेषण इति । कारिकार्थमाह—यत्रेति । समैः-तुल्यैः, लिङ्गैः-पुंस्त्वादिभिः, यथाक्रमम्-क्रमेण, प्रस्तुताद् अप्रस्तुतः, अप्रस्तुतात्प्रस्तुत इति भावः । बोध्यते-व्यज्यते । एकस्येति । प्रस्तुताप्रस्तुतयोर्मध्ये एकतरस्य कस्याप्युक्त्या, उभयस्य प्रस्तुताप्रस्तुतयोः प्रतिपत्तिर्ज्ञानम् । मतान्तरमाह—आदर्श इति । दण्डिकृते काव्यादर्शे इत्यर्थः ।

वाच्य इति । तदुक्तं साहित्यदर्पणे—

समासोक्तिः समैर्यत्र कार्यलिङ्गविशेषणैः । व्यवहारसमारोपः प्रस्तुतेऽन्यस्य वस्तुनः ॥

---

बहाने राक्षसों की लक्ष्मी के आसुओं की बूँदें पृथ्वी पर गिरीं । अत्र इति । यहाँ ( व्याज शब्द से ) प्रस्तुत मणियों का निषेध करके, ( उनमें ) अश्रुबिन्दुओं का आरोप ( स्थापना ) किया गया है ।

अग्निपुराणोक्त समासोक्ति का लक्षण

यत्र इति । तत्समान इति । लक्षण में 'तत्समानविशेषणः'—उसके समान विशेषणों वाला' यह पद केवल उपलक्षण है, इसलिये 'तत्समानविशेषणः' इस पद से 'तत्समानकार्यः—उसके समान कार्य वाला' और 'तत्समानलिङ्गः—उसके समान लिङ्गवाला' भी लिया जाता है। ऐसा करने से जो तात्पर्य निकला; उसे कहते हैं—यत्र इति । जहाँ समान विशेषणों समान कार्यों और समान लिङ्गों के द्वारा प्रस्तुत या अप्रस्तुत अर्थ से क्रमशः अप्रस्तुत या प्रस्तुत अर्थ की प्रतीति होती है उसे—संक्षिप्त उक्ति होने के कारण—समासोक्ति कहते हैं । 'समासोक्ति' शब्द की व्युत्पत्ति है 'समास से-संक्षेप से-उक्ति' ।

संक्षेपश्च इति । एक अर्थ की उक्ति से दो अर्थों की प्रतीति होना ही यहाँ संक्षेप है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri



प्रस्तुतप्रतीतावप्रस्तुतप्रशंसा" इत्याहुः। "वाच्ये प्रस्तुतेऽप्रस्तुतव्यवहारसमारोपः समासोक्तिः" इति विश्वनाथाऽऽदयः। वस्तुतस्तु—उभयत्रापि समासोक्तेरेवाभ्युपगमस्यौचित्यादनुगुणमेव प्राचीनरीत्या लक्षणमुक्तमस्माभिः। उदाहरणं क्रमेण—

"श्रुतिसुखभ्रमरस्वनगीतयः कुसुमकोमलदन्तरुचो बभुः।
उपवतान्तलताः पवनाऽऽहतैः किसलयैः सलयैरिव पाणिभिः" ॥४७॥ [ रघु० ]

अत्र विशेषणसाम्यात् कार्य्यसाम्याच्च प्रस्तुताद्वनलतारूपार्थादप्रस्तुतो नर्त्तकीरूपोऽर्थः प्रतीयते।

---

स्वमतं समर्थयते—वस्तुतस्त्विति। उभयत्रापि—प्रस्तुतादप्रस्तुतस्य प्रतीतावि अप्रस्तुतात् प्रस्तुतस्य प्रतीतावपि। औचित्यादिति। प्रस्तुताप्रस्तुतयोः संक्षेपेणोक्तिरूपस्य साम्यस्योभयत्र समानत्वादिति भावः। समासोक्तौ विशेषण एव श्लेषः, अप्रस्तुतप्रशंसायां तु विशेष्येऽपि स इत्यनयोर्भेद एवेति नवीनाः।

क्रमशः उदाहरति—श्रुतिसुखेति। रघुवंशे नवमसर्गे वसन्तवर्णनमिदम्। श्रुतिसुखभ्रमरस्वनगीतयः—श्रुतिसुखाः कर्णमधुराः, भ्रमराणां स्वना गुञ्जितान्येव, गीतयो गानानि यासां ताः, कुसुमकोमलदन्तरुचः—कुसुमान्येव, कोमलाः, दन्तरुचो दन्तकान्तयः यासां ताः, अनेन सस्मितत्वं विवक्षितम्। उपवनान्तलताः—उपवनान्ता उपवनप्रदेशाः तेषु लता वल्लयः, पवनाहतैः—पवनेन, आहतैः कम्पितैः, किसलयैः—नवपल्लवैः, सलयैः—साभिनयैः [ लयशब्देन लयानुगतोऽभिनयो लक्ष्यते ] पाणिभिरिव—हस्तैरिव, बभुः—शुशुभिरे। लक्ष्यसमन्वयं करोति—अत्रेति। विश्वनाथादिमतेऽपि प्रस्तुतासु लतासु अप्रस्तुताना नर्तकीनां व्यवहारस्य गानाभिनयरूपस्य समारोपात् समासोक्तिरक्षतैवात्र।

---

आदर्शे इति। काव्यादर्श में 'अप्रस्तुत वाच्यार्थ से प्रस्तुत अर्थ के व्यञ्जित होने में समासोक्ति होती है' ऐसा कहा है।

नव्या इति। इसके विपरीत नवीन आलङ्कारिक प्रस्तुत से अप्रस्तुत की प्रतीति में 'समासोक्ति' और अप्रस्तुत से प्रस्तुत की प्रतीति में 'अप्रस्तुतप्रशंसा' ऐसा कहते हैं। वाच्ये इति। प्रस्तुतवाच्य अर्थ में अप्रस्तुत अर्थ के व्यवहार का आरोप समासोक्ति कहलाता है, यह विश्वनाथ आदि का मत है। वस्तुतस्तु इति। वास्तव में दोनों जगह ( प्रस्तुत से अप्रस्तुत की और अप्रस्तुत से प्रस्तुत की प्रतीति में ) समासोक्ति ही मानना चाहिये। अतः इस सिद्धान्त के अनुकूल ही हमने प्राचीन रीति से ( समासोक्ति का ) लक्षण लिखा है। क्रमशः उदाहरण जैसे श्रुति इति। भ्रमरों की गुञ्जार के रूप में कर्ण-सुखद गीत गाने वाली, पुष्परूपी कोमल दाँतों की शोभा वाली, उपवन की लताएँ वायु से कम्पित, मानों अभिनय करते हुए, नवीनपल्लवरूपी हाथों से सुशोभित हो रही थीं। अत्र इति। यहाँ विशेषणों की और कार्यों की समानता के कारण प्रस्तुत वनलतारूप अर्थ से अप्रस्तुत नर्तकीरूप अर्थ प्रतीत होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


"चातकस्त्रिचतुरान् पयःकणान् याचते जलधरं पिपासितः।
सोऽपि पूरयति भूयसाऽम्भसा चित्रमत्र महतामुदारता" ॥ ४८ ॥

[ पूर्वंचातकाष्टक० ]

अत्र अप्रस्तुताच्चातकाज्जलधराच्च कार्य्यसाम्यात् प्रस्तुतो याचकः, उदाराऽऽशयो धनपतिश्च बोध्यते।

अप्रस्तुतप्रशंसा—

"अप्रस्तुतप्रशंसा स्यादप्रक्रान्तेषु या स्तुतिः।
तन्मुखेन प्रस्तुतस्य निन्दा यत्र प्रतीयते" ॥ ४९ ॥ [ दण्डी ]

अप्रक्रांतेषु—अप्रस्तुतेषु—अप्रस्तुतानामित्यर्थः, षष्ठ्यर्थे सप्तमी। यथा—

"पादाऽऽहतं यदुत्थाय मूर्द्धानमधिरोहति।
स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद्वरं रजः" ॥ ५० ॥ [ माघः ]

---

स्वमतेन अप्रस्तुतात् प्रस्तुतोक्तिरूपां समासोक्तिमुदाहरति—चातक इति। पिपासितः—पिपासया युक्तः, चातकः, जलदम्—मेघम् [ अकथितकर्मत्वाद् द्वितीया ] जलदादिति भावः। त्रिचतुरान्—त्रयो वा चत्वारो वा त्रिचतुराः, तान् [ त्र्युपाभ्यां चतुरोजिष्यते ] पयःकणान्—जलविन्दून्, याचते—भिक्षते। सोऽपि—जलदोऽपि, भूयसा—अपेक्षितादत्यधिकेन, अम्भसा—पयसा, पूरयति, तद्याचनामिति शेषः। अत्र—जगति, महताम्—महात्मनाम्, उदारता—वदान्यता, चित्रम्—आश्चर्यम्, आश्चर्यकरीत्यर्थः। लक्ष्यसमन्वयं करोति—अत्रेति।

अप्रस्तुतप्रशंसां लक्षयति—अप्रस्तुतप्रशंसेति। यत्र, अप्रक्रान्तेषु—अप्रस्तुतेषु, विषयसप्तमीयम्। अप्रस्तुतविषया इति भावः, या, स्तुतिः—प्रशंसनम्, तन्मुखेन—अप्रस्तुतस्तुतिद्वारा—प्रस्तुतस्य, निन्दा, प्रतीयते, सा अप्रस्तुतप्रशंसा, स्यात्। अप्रस्तुतानाम्—अप्रस्तुतसम्बन्धिनी तद्विषयेति भावः।

उदाहरति—पादाहतमिति। शिशुपालवधे द्वितीये बलस्योक्तिरियम्। यद्, रजः—धूलिः, पादाहतम्—पादेन, आहतं ताडितं सत्, उत्थाय—उड्डीय, मूर्धानम्—आहन्तुः शिरः, अधिरोहति—आक्रामति, तद्—रजः, अपमानेऽपि—तिरस्कारे सत्यपि, स्वस्थात्—कामपि लज्जादिरूपां विकृतिमननुभवतः, देहिनः—देहधारिणश्चेतनाद्, वरम्—श्रेष्ठम्, अस्तीति शेषः।

---

चातक इति। प्यासा चातक मेघ से पानी की तीन चार बूँदें माँगता है, परन्तु वह ( मेघ ) भी ( आवश्यकता से ) अधिक जल के द्वारा ( चातक की इच्छा ) पूरी करता है। बड़ों की उदारता आश्चर्यजनक ही होती है। अत्र इति। यहाँ अप्रस्तुत चातक और मेघ से कार्य की समानता के कारण प्रस्तुत याचक और उदार धनी पुरुष की प्रतीति होती है।

अप्रस्तुतप्रशंसा—

अप्रस्तुत इति। जहाँ अप्रस्तुत की स्तुति हो और उससे प्रस्तुत की निन्दा प्रतीत होवे, वहाँ 'अप्रस्तुतप्रशंसा' होती है। जैसे पादाहतम् इति। अपमान होने पर भी चुपचाप रहने-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अत्र अप्रस्तुतस्य रजसः प्रशंसामुखेन प्रस्तुतस्य अपमानसहिष्णोर्निन्दा प्रतीयते।

यथा वा—

"सुखं जीवन्ति हरिणा वनेष्वपरसेविनः।
अन्नैरयत्नसुलभैस्तृणदर्भाङ्कुराऽऽदिभिः" ॥ ५१ ॥

अत्र मृगाणां सुखजीवनस्याप्रस्तुतस्य प्रशंसया प्रस्तुतस्य राजानुवृत्तिजीवनस्य निन्दा प्रतीयते।

व्याजस्तुतिः—

"व्याजस्तुतिर्मुखे निन्दा स्तुतिर्वा रूढिरन्यथा"। [ मम्मटः ]

मुखे—आपाततः, अन्यथा—यथाक्रमं स्तुत्यां निन्दायां वा, रूढिः—पर्य्यवसानम्। स्तुतिपर्य्यवसायिनी निन्दा, निन्दापर्य्यवसायिनी स्तुतिश्च व्याजस्तुतिरिति फलितम्। निन्दायाः स्तुतिरूपेण पर्य्यवसाने व्याजरूपा स्तुतिः। क्रमेण यथा—

---

लक्ष्यसमन्वयं करोति—अत्रेति। मल्लिनाथस्त्वत्र देहिनमपेक्ष्य रजस आधिक्यवर्णनाद् व्यतिरेकमाह।

उदाहरणान्तरं दर्शयति—सुखमिति। वनेषु—काननेषु, अपरसेविनः—न परान् सेवन्त इति तादृशाः, अपराधीनाः स्वतन्त्रा इति यावत्, हरिणाः—मृगाः, अयत्नसुलभैः—यत्नं विनैव सुप्रापैः, तृणदर्भाङ्कुरादिभिः, अन्नैः—तृणादिरूपैरन्नैरित्यर्थः, सुखम्—सानन्दनम्, जीवन्ति—ध्रियन्ते। गोधूमाद्यनेकविधस्वाद्वन्नभोजिभ्योऽपि पराधीनेभ्यः पुरुषेभ्यस्तृणभक्षिणो वन्या एव सुखजीविनः, स्वतन्त्रत्वात्, तज्जीवनसामग्र्या अयत्नसुलभत्वाच्चेति भावः। लक्ष्यसंगमनं करोति अत्रेति।

व्याजस्तुतिरिति। यदा मुखे—आपाततः निन्दा स्तुतिर्वा, भवेत्, परं रूढिः—पर्यवसानम्, अन्यथा—आपातप्रतीतिवैपरीत्येन, क्रमशः स्तुतौ निन्दायां वा भवेत्, तदा

---

वाले व्यर्थ पुष्ट ( देही ) मनुष्य की अपेक्षा वह धूल अच्छी है जो पाँवों से ठुकराई जाने पर ( ठुकराने वाले के ) सिर पर चढ़ जाती है।

अत्र इति। यहाँ अप्रस्तुत धूल की प्रशंसा के द्वारा प्रस्तुत अपमानसहिष्णु पुरुष की निन्दा प्रतीत होती है।

अथवा जैसे सुखम् इति। जङ्गलों में दूसरों की सेवा न करने वाले ( स्वतन्त्र ) हरिण ही विना यत्न के सुलभ तृण, कुशा, अङ्कुर आदि रूपी अन्नों से सुखपूर्वक जीवन निर्वाह करते हैं। अत्र इति। यहाँ अप्रस्तुत—मृगों के सुखपूर्वक जीवन—की प्रशंसा के द्वारा प्रस्तुत—राजसेवा के द्वारा जीवननिर्वाह—की निन्दा प्रतीत होती है।

व्याजस्तुति—

व्याजस्तुतिरिति। जहाँ प्रारम्भ में निन्दा और अन्त में स्तुति प्रतीत हो अथवा प्रारम्भ में स्तुति और अन्त में निन्दा प्रतीत हो, उसे 'व्याजस्तुति' कहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


"त्यक्त्वा राज्यं गिरमनुसरन् स्त्रीवशान्मूढबुद्धे
राज्ञो भ्रान्त्वा गहनविपिने हारयन् मुग्धकान्ताम्।
सख्यं बद्ध्वा कपिभिरसमं लङ्घयन् कीर्तिमग्र्यां
पूर्वेषां वो विलयमनयो हेमलङ्कां किमेतत् ?" ॥ ५२ ॥

---

व्याजस्तुतिरलंकारः। यत्र निन्दायाः स्तुतौ पर्यवसानम्, स्तुतेश्च निन्दायां पर्यवसानं तत्र व्याजस्तुतिरलंकार इति भावः। फलितार्थमाह—**स्तुतिपर्यवसायिनीति**। स्तुतौ पर्यवस्यति विश्राम्यतीति विग्रहः। एवमन्यत्र।

व्याजस्तुरिति संज्ञाया अन्वर्थत्वं प्रतिपादयति—**निन्दाया** इति। ननु यत्र निन्दया स्तुतिः प्रतीयते यत्र व्याजेन (निन्दाव्याजेन) स्तुतिर्व्याजस्तुतिरिति संज्ञाशब्दार्थः साधु संगच्छते, स्तुत्या तु निन्दायाः प्रतीतौ न सोऽर्थः संघटते, तत्र हि न व्याजेन स्तुतिरपितु निन्दा तथा च तादृशस्थले व्याजनिन्दा नाम अलङ्कारान्तरमभ्युपेयमित्यत आह—**स्तुतेर्निन्दारूपेणेति**। **व्याजरूपा स्तुतिः**—निन्दायां पर्यवसानात् स्तुतेर्व्याजरूपत्वम्, मिथ्यात्वमिति भावः। ननु पूर्वोक्ताया अप्रस्तुतप्रशंसाया अस्याः को भेदः तत्रापि स्तुतेर्निन्दायाः प्रतीतेरिति चेदुच्यते। दण्डयुक्तायामप्रस्तुतप्रशंसायां स्तुतिनिन्दयोः पृथग्विषयत्वाद् वैयधिकरण्यम्, व्याजस्तुतौ तु समानविषयत्वात् समानाधिकरण्यम्।

उदाहरति—**त्यक्त्वेति**। कश्चिद् रामं निन्दाव्याजेन स्तौति। हे राम!, **स्त्रीवशात्** स्त्र्यधीनत्वात् [कैकेयीं प्रति बद्धप्रतिज्ञत्वात्] **मूढबुद्धेः**—मूढा विवेकशून्या, बुद्धिर्यस्य तादृशस्य मूर्खस्येत्यर्थः [मूढा मोहमुपगता, मूर्च्छां प्राप्ता, बुद्धिर्मनो यस्य तादृशस्य रामप्रवासनरूपमनभिमतं कैकेयीवचनं श्रुत्वा प्राप्तमूर्च्छस्येत्यर्थः, अथवा मूढा रामप्रवासनरूपामतर्कितोपनतां विपदमाकर्ण्य किंकर्तव्यविमूढा, बुद्धिर्यस्य तादृशस्य] **राज्ञः**—नृपतेः, [पितुर्महाराजदशरथस्य] **गिरम्**—वाचम्, आज्ञाम्, कैकेयीं प्रति कृतां तद्वचनपूर्तिरूपां प्रतिज्ञाम्] **अनुसरन्**—पालयन्, [सत्यापयन्] **राज्यम्**—राजकार्यम्, [अयोध्याधिपत्यम्] **त्यक्त्वा**, **गहनविपिने**—गहने दुर्गमे, विपिने कानने, **भ्रान्त्वा**—परिभ्रम्य, **मुग्धकान्ताम्**—मुग्धां मनोहराम्, कान्तां स्वस्त्रियम्, सीताम्, **हारयन्**—परैरपहारयन्, **कपिभिः**—वानरैः सह, **असमम्**—अनुचितम्, राजायोग्यम्, **सख्यम्**—साहचर्यम्, **बद्ध्वा**—कृत्वा [कपिजातीयेन सुग्रीवेण राज्ञा अनुपमं सौहार्दं विधाय] **वः**—युष्माकम्, स्वस्येत्यर्थः **पूर्वेषाम्**—पूर्वजानाम्, [सगरसुतानाम्] **अग्र्याम्**—श्रेष्ठाम्, **कीर्तिम्**—यशः [सागररूपं यशः, पुरा श्रीरामचन्द्रपूर्वजैः सगरसुतैरश्वमेधाश्वमन्वेषयद्भिः पृथ्वीभिमामवदार्य समुद्र उत्पादितः, अत एवाद्यापि स सागर इति तन्नामसम्बन्धेनैव व्यपदिश्यत इत्यैतिहासिकाः] **लङ्घयन्**—कलुषयन्, [सेतुबन्धेन तरन्] **हेमलङ्काम्**—स्वर्णमयीं पुरीम्,

---

जैसे त्यक्त्वा इति। हे राम! तुमने स्त्री के कारण मूढबुद्धि राजा के वचन से राज्य छोड़कर जङ्गल में भटकते हुए (अपनी) मनोहर स्त्री को लुटवाकर, बन्दरों के साथ अनुचित मित्रता जोड़कर, अपने पूर्वजों की श्रेष्ठ कीर्ति को लाँघ कर सोने की लङ्कापुरी को विध्वस्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अत्र स्त्रीवशवर्तिनो मूढधियो नरपतेर्वचनप्रतिपालनम्, पूर्वेषां सगरसुतानां कीर्तिलङ्घनाऽऽदिकञ्चाऽऽपाततो निन्देव प्रतिभाति, चरमे तु पितुः प्रतिज्ञा संरक्षिता, दुस्तरं तोयनिधिमुत्तीर्य्य दुःसहप्रतापो वनिताऽपहारी दशाननो विजितः, समूलमुन्मूलितश्चेत्यहो ! दुष्करं कृतमिति सर्वमेव स्तुत्यां पर्य्यवस्यतीति निन्दायाः स्तुतिरूपेण पर्य्यवसाने व्याजस्तुतिः ।

"युक्तं तवैतत् रघुवंशभूपते ! सतां हि सख्युः परिपालनं व्रतम् ।
इतः स्तुतिः का जगदीश ! निर्मला भवान् यदर्थं न्यवधीन्निरागसम् ? ॥ ५२ ॥

अत्र प्रियबन्धोः संरक्षणमुचितमिति तव सुग्रीवसहायत्वं युक्तमेवेत्यापाततः स्तुति-

---

[ स्ववनितापहारिणो रावणस्य लङ्कानाम्नीं नगरीम् ] विलयम्—ध्वंसम्, अनयः—प्रार्थितवानसि । एतत् किम्—एतत् किमुचितं न इति भावः । लक्ष्यसमन्वयं करोति—अत्रेति । चरमे—पर्यवसाने । एवम्—

'कः स्वर्धुनि विवेकस्ते पापिनो नयसे दिवम् ।'

इत्यादावपि 'गङ्गा सुकृतिवदेव महापातकादि कृतवतोऽपि स्वर्गं नयति' इति व्याजरूपया निन्दया तत्प्रभावातिशयस्तुतिः ।

स्तुतिव्याजेन निन्दाप्रतीतिमुदाहरति—युक्तमिति । रामं प्रति सुग्रीवभ्रातुर्वालिन उक्तिरियम् । रघुवंशभूपते—हे रघुकुलोत्पन्ननृपते ! राम ! एतत्—सुग्रीवरक्षणम्, तवः—भवतः, युक्तम्—उचितमेव । हि—यतः, सख्युः—सुहृदः, परिपालनम्—रक्षणम्, सताम्—उत्तमपुरुषाणाम्, व्रतम्—नियमः, अस्तीति शेषः । इतः—अस्मात् सखिपरिपालनरूपादधिका, निर्मला—निर्दोषा, का—कतमा, स्तुतिः, तवास्तीति शेषः, यदर्थम्—यस्य कृते, जगदीश—हे जगत्प्रभो [ सोल्लुण्ठोक्तिरियम् ] भवान्, निरागसम्—निरपराधम्, मामिति शेषः, न्यवधीत्—मारितवान् । लक्ष्यसमन्वयं करोति—अत्रेति ।

---

किया, यह क्या बात है ? अत्र इति । यहाँ स्त्री के अधीन मूढबुद्धि राजा की आज्ञा मानना, ( अपने ) पूर्वज सगर राजा के पुत्रों की कीर्ति का उल्लङ्घन करना आदि प्रारम्भ में निन्दा जैसी प्रतीत होती है, परन्तु अन्त में 'तुमने पिता की प्रतिज्ञा की रक्षा की, और दुस्तर समुद्र को लाँघ कर दुर्धर्ष प्रताप वाले स्त्री का अपहरण करने वाले रावण को जीतकर उसका समूल विनाश करके आश्चर्यकारी दुष्कर कार्य किया' इस रूप में सारा ( श्लोकार्थ ) स्तुतिरूप में ही पर्यवसित हो जाता है । यह निन्दा का स्तुति में पर्यवसान होने पर 'व्याजस्तुति' है ।

युक्तम् इति । हे रघुकुल के राजा ! राम ! तुम्हारे लिये यह उचित ही था । मित्र की रक्षा करना सज्जनों का व्रत है । जिसके कारण आपने एक निरपराध ( तक ) को मार डाला । हे जगत् के स्वामिन् ! आपकी इससे अधिक निर्दोष प्रशंसा क्या हो सकती है ? अत्र इति । यहाँ 'प्रिय बन्धु की रक्षा करना उचित है, इसलिये तुम्हारा सुग्रीव की सहायता करना ठीक ही था' इस प्रकार प्रारम्भ में यद्यपि स्तुति प्रतीत होती है, तो भी 'केवल मित्रकार्य के लिये वृद्ध-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


रपि, मित्रकार्यार्थं निरपराधस्य जीर्णकलेवरस्य शाखामृगस्य मे हननं सर्वथा गर्हितमेवेति चरमे निन्दायां पर्य्यवस्यतीति स्तुतेर्निन्दायां पर्य्यवसाने व्याजस्तुतिः।

प्रतीपम्—

"प्रसिद्धस्योपमानस्योपमेयत्वप्रकल्पनम्।
निष्फलत्वाभिधानं वा प्रतीपमिति कथ्यते" ॥ ५४ ॥ [ विश्वनाथः ]

क्रमेण यथा—

"यत् त्वन्नेत्रसमानकान्ति सलिले मग्नं तदिन्दीवरं
मेघैरन्तरितः प्रिये! तव मुखच्छायाऽनुकारी शशी।
येऽपि त्वद्गमनानुसारिगतयस्ते राजहंसा गता-
स्त्वत्सादृश्यविनोदमात्रमपि मे दैवेन न क्षम्यते" ॥ ५५ ॥ [ महाना० ]

---

प्रतीपं लक्षयति—प्रसिद्धस्येति। **प्रसिद्धस्य उपमानस्य**—उत्कृष्टगुणत्वेन उपमानतया प्रसिद्धस्य चन्द्रेन्दीवरादेः, **उपमेयत्वप्रकल्पनम्**—उपमेयत्वेन, प्रकल्पनं कथनम्, **प्रतीपम्**, इति **कथ्यते**।

द्वितीयं प्रतीपमाह—निष्फलत्वेति। पूर्वलक्षणाद् उपमानस्येत्यनुवर्तते। तथा च उपमानस्य, **निष्फलत्वाभिधानं वा**—निष्फलत्वेन निष्प्रयोजनतया, अभिधानं वर्णनं च, **प्रतीपमिति कथ्यते**। अयं भावः—यत्रोपमानमुपमेयतया वर्ण्यते तत् प्रथमं प्रतीपम्। यत्र च उपमानप्रयोजनस्योपमेयेनैव सिद्धौ सत्यां तस्य [ उपमानस्य ] नैष्फल्यं प्रतिपाद्यते तद् द्वितीयं प्रतीपम्। प्रतीपं प्रतिकूलमुच्यते। उपमानप्रातिकूल्यादस्य प्रतीपत्वं बोध्यम्।

उदाहरति—यदिति। माल्यवत्पर्वते वर्षासु विरहिणो रामस्योक्तिरियम्। **प्रिये!** हे सीते! **त्वन्नेत्रसमानकान्ति**—त्वन्नेत्रयोः, समाना साधारणी, कान्तिर्यस्य तादृशम्, **यद्**, **इन्दीवरम्**—नीलोत्पलम् आसीत्, **तत्**, **सलिले**—जले, **मग्नम्**—लीनम्, वर्षर्तुना जलवृद्धेः। **तव**, **मुखच्छायानुकारी**—मुखस्य, छायां शोभाम्, अनुकरोति, तादृशः, **शशी**—चन्द्रमाः, **मेघैः**, **अन्तरितः**—आच्छादितः, वर्तते इति शेषः। **त्वद्गमनानुसारिगतयः**—त्वद्गमनस्य, अनुसारिणी सदृशी, गतिर्येषां तादृशाः, **ये**, **राजहंसाः**, आसन्, **तेऽपि**, **गताः**—मानसं याताः। वर्षासु हंसा मानसं गच्छन्तीति कविसमयप्रसिद्धिः। **दैवेन**—दुर्विधिना, **मे**—मम, रामस्य **त्वत्सादृश्यविनोदमात्रमपि**—तव सादृश्येन त्वदङ्गसदृशवस्तुदर्शनेनेति भावः, विनोदः

---

शरीर मुझ बानर को मारना सर्वथा निन्दनीय ही है' इस प्रकार अन्त में निन्दा ही फलित होती है। यह स्तुति का निन्दा में पर्यवसान होने पर व्याजस्तुति है।

प्रतीप—

**प्रसिद्धस्य** इति। प्रसिद्ध उपमान को उपमेय बना देना, या उपमान की निरर्थकता बताना 'प्रतीप' कहलाता है।

जैसे **यत्** इति। हे प्रिये! तेरे नेत्रों के समान कान्ति वाले नीलकमल जल में डूब गये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri



"मुखं यदि किमिन्दुना? यदि चलाञ्चले लोचने
किमुत्पलकदम्बकैः? यदि तरङ्गभङ्गी भ्रुवौ।
किमात्मभवधन्वना? यदि सुसंयताः कुन्तलाः
किमम्बुवहडम्बरैः? यदि तनूरियं किं श्रिया?" ॥ ५६ ॥ [वीरच०]

---

त्वद्वियोगजनितचित्ताशान्ति निवारणम्, तन्मात्रमपि, न क्षम्यते–न सह्यते। विरहिणः प्रियासादृश्यदर्शनमात्रेणापि कथंचिज्जीवनं यापयन्ति, मम तु दुर्दैवशात्तदपि नष्टमिति भावः। अत्र प्रसिद्धानामिन्दीवरादीनामुपमेयत्वप्रकल्पनात् प्रतीपम्। ननु उपमानादुपमेयस्याधिक्यवर्णनरूपाद् व्यतिरेकादस्य को विशेष इति चेदुच्यते। व्यतिरेके वैधर्म्यप्रयुक्तमुपमेयस्याधिक्यम्, इह तु उपमानीकरणेन साधर्म्यमात्रप्रयुक्तम्।

द्वितीयं प्रतीपमुदाहरति—**मुखमिति**। वीरचरिते सीतां विभाव्य रावणस्योक्तिरियम्। **यदि, मुखम्**–सीताया आननम्, अस्ति, तर्हि **इन्दुना**–चन्द्रमसा, **किम्?** प्रकाशरूपस्य चन्द्रकार्यस्य सीताननेनैव कृतत्वाद् व्यर्थ एवायं चन्द्र इति भावः। **यदि, चलाञ्चले**–चले चञ्चले, अञ्चले अपाङ्गौ, प्रान्तभागौ ययोस्तादृशे, लोचने [सीताया इति सर्वत्राध्याहार्यम्] स्तः, **तर्हि, उत्पलकदम्बकैः**–उत्पलानामिन्दीवराणाम्, कदम्बकैः समूहैः **किम्**–न किमपीत्यर्थः। तत्कार्यस्य नेत्रोत्सवस्याभ्यामेव कृतत्वादिति भावः। **यदि, तरङ्गभङ्गी**–तरङ्गस्य वीचेः, भङ्गिरिव वक्रिमेव, भङ्गिर्ययोस्तादृश्यौ [सप्तम्युपमानपूर्वपदस्य बहुव्रीहिरुत्तरपदलोपश्चेत्यनेन समासोत्तरपदलोपौ, पूर्वपदलाक्षणिको वा बहुव्रीहिर्वा] **भ्रुवौ**, स्तः तर्हि, **आत्मभवधन्वना**–आत्मभवस्य कामस्य, धन्वना धनुषा, **किम्?** व्यर्थमित्यर्थः, तत्कार्यस्य जगज्जयस्य अस्या भ्रूभ्यामेव सुकरत्वात्। **यदि सुसंयताः**–सुष्ठुतया बद्धाः, **कुन्तलाः**–केशाः, सन्ति, तर्हि **अम्बुवहडम्बरैः**–अम्बुवहानां मेघानाम्, डम्बरैः, समूहैः, **किम्?** तत्कार्यस्य विरहोद्दीपनवाष्पच्छलजलवर्षण-मयूरनर्तनादेरेतैरेव साधुकृतत्वाद् व्यर्था एव इति भावः। **यदि, इयम्**–पुरोदृश्यमाना, **तनूः**–शरीरयष्टिः, अस्ति, तर्हि **श्रिया**–अन्यया जडीभूतया लक्ष्म्या, **किम्?**–न किमपि प्रयोजनम्। अत्र इन्द्वादीनामुपमानानां किंशब्देन निष्फलत्वाभिधानात् प्रतीपम्।

---

हैं, तेरी मुख शोभा की नकल करने वाला चन्द्र भी मेघों से आच्छादित हो गया है, तेरी जैसी चाल वाले राजहंस भी (वर्षा के कारण मानसरोवर को) चले गए हैं। विधाता को इतना भी सह्य नहीं है कि मैं केवल तेरे सादृश्य से (तुझ जैसी वस्तुओं को देखकर ही) अपना जी बहला सकूँ।

**मुखम्** इति। यदि (यह) मुख है तो चन्द्रमा से फिर क्या प्रयोजन? यदि चञ्चल (प्रान्तभागों से) युक्त (ये) नेत्र हैं तो इन नील कमलों से क्या लाभ है? यदि तरङ्ग के समान टेढ़ी ये भौंहें विद्यमान हैं तो कामदेव का धनुष व्यर्थ ही है। अच्छी तरह बँधे हुए इन केशों की विद्यमानता में बादलों का जमघट भी निष्फल है, यदि यह (शोभायुक्त) शरीर है तो लक्ष्मी से क्या प्रयोजन है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



प्रथमे प्रसिद्धानामुपमानवस्तूनामिन्दीवराऽऽदीनामुपमेयत्वप्रकल्पनम्, द्वितीये इन्दुप्रभृतीनां निष्फलत्वकथनम्।

अथ श्लेषः—

"शब्दैः स्वभावादेकार्थैः श्लेषोऽनेकार्थवाचनम्"। [ विश्वनाथः ]

स्वभावादेकार्थैःरिति शब्दश्लेषात्, वाचनमिति च ध्वनेर्व्यवच्छेदः। यथा—

"खलस्य कण्टकस्येव द्विविधैव प्रतिक्रिया।
उपानहा वक्त्रभङ्गो दूरतो वा विवर्जनम्"॥ ५७॥

---

लक्ष्यसमन्वयं करोति—**प्रथम** इति।

अर्थश्लेषं लक्षयति—**शब्दैरिति**। **श्लेषः**–अर्थश्लेषः। अन्यद् निगदव्याख्यातम्। पदकृत्यमाह—**स्वभावादिति**। **शब्दश्लेषादिति**। व्यवच्छेद इत्यग्रिमेणान्वयः। अयं भावः–'शब्दैरनेकार्थवाचनं श्लेषः' इत्येतावति लक्षणे शब्दश्लेषेऽतिव्याप्तिः स्यात्, तत्राप्यनेकार्थवाचनस्य सत्त्वात्। 'स्वभावादेकार्थैः' इत्युक्तौ तु तत्र शब्दानां स्वभावतोऽनेकार्थत्वान्न दोषः। अनेकार्थवाचनमित्यत्र वाचनमभिधया बोधनमित्यत आह—**वाचनमिति**। ध्वनिस्थले तु कस्यचिद् वाचनं कस्यचिद् व्यञ्जनमिति न दोषः। ननु एकार्थैः शब्दैः कथमनेकार्थप्रतिपादनमिति चेदुच्यते। एकार्थैरित्यस्य सामान्यरूपैकार्थाभिधायकैरित्यर्थः। तथा च सामान्यरूपैकार्थाभिधायिभिः शब्दैः एकधर्मपुरस्कारेण नानार्थविशेषप्रतिपादनस्य संभवान्न दोषः। उदाहरति—**खलस्येति**। **खलस्य**–दुर्जनस्य, **कण्टकस्येव**–कण्टकवत्, **उपानहा**–पादत्राणेन, **वक्त्रभङ्गः**–वक्त्रस्य मुखस्य, भङ्गस्ताडनम्, दण्डेन दमनमिति यावत्, कण्टकपक्षे वक्त्रस्य निशिताग्रभागस्य, भङ्गो मर्दनम्, त्रोटनमिति यावत्, **वा**–अथवा, **दूरतः**–दूरादेव, **विवर्जनम्**–त्यागः तदन्तिकागमनमिति भावः, इति **द्विविधैव**–द्विप्रकारैव, **प्रतिक्रिया**–प्रतीकारः, अस्तीति शेषः।

---

**प्रथमे** इति। पहले उदाहरण में इन्दीवर आदि प्रसिद्ध उपमानों को (नेत्र आदि का) उपमेय बनाया गया है। दूसरे उदाहरण में चन्द्र आदि (प्रसिद्ध उपमानों) में निष्फलत्व बताया गया है।

अर्थश्लेष—

यदि शब्द स्वभाव से एकार्थक हों परन्तु उनके द्वारा अनेक अर्थों का (अभिधावृत्ति से) कथन हो तो 'श्लेष' अलङ्कार होता है।

**स्वभावाद्** इति। लक्षण में 'स्वभावाद् एकार्थैः' इन शब्दों से शब्दश्लेष से अर्थश्लेष का भेद किया है। [ शब्दश्लेष में शब्द स्वभावतः एकार्थक नहीं होते हैं; किन्तु अनेकार्थक होते हैं ] 'वाचनम्' इस पद के द्वारा ध्वनि से अर्थश्लेष का भेद बताया है। [ ध्वनि में दूसरे अर्थ का वाचन नहीं होता किन्तु व्यञ्जन होता है। ]

जैसे **खलस्य** इति। दुष्ट पुरुष और काँटे के केवल दो ही प्रतीकार हैं—या तो जूते से मुख भञ्जन कर देना या फिर दूर से ही उसका त्याग कर देना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri



सहोक्तिः—

"सा सहोक्तिः सहार्थस्य बलादेकं द्विवाचकम्"।

यथा—

"पुरोपनीतं नृप ! रामणीयकं द्विजातिशेषेण यदेतदन्धसा।
तदद्य ते वन्यफलाशिनः परं परैति कार्श्यं यशसा समं वपुः" ॥ ५८ ॥

अत्र वपुर्यशश्चोभयमपि क्षीयते इति सहार्थबलाद्बोध्यते।

काव्यलिङ्गम्—

"हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गमुदाहृतम्"। [ विश्वनाथः ]

---

अत्रोत्तरार्धे वचनभङ्गादिसामान्यशब्दैरनेकार्थप्रतिपादनार्थश्लेषः, शब्दानां परिवृत्तिसहत्वादप्यस्यार्थत्वं विज्ञेयम्। प्रकृताप्रकृतोभयाश्रित उपमासंकीर्णोऽयं भेदः। प्रकृतमात्राश्रितोऽर्थश्लेषो यथा रसगङ्गाधरे—

अर्जुनस्य गुरुर्मायामनुजः परमः पुमान्। गुञ्जापुञ्जधरः पायादपायादिह कोऽपि वः ॥

अत्र कृष्णदत्तात्रेयावुभावपि प्रकृतौ।

सहोक्तिं लक्षयति—**सा सहोक्तिरिति**। **एकम्**—एकपदार्थान्वय्यर्थाभिधायकम्। **द्विवाचकम्**—पदार्थद्वयान्वय्यर्थाभिधायकम्। इतरत् स्पष्टम्। उदाहरति—**पुरोपनीतमिति**। किरातार्जुनीये प्रथमे युधिष्ठिरं प्रति द्रौपद्युक्तिरियम्। **नृप !**—हे राजन् ! **यत्, एतत्**—पुरोवर्ति, **वपुः**—शरीरम्, **पुरा, द्विजातिशेषेण**—द्विजभुक्तावशिष्टेन **अन्धसा**—अन्नेन, **रमणीयकम्**—मनोहरत्वम्, **उपनीतम्**—प्रापितम्, **अद्य, वन्यफलाशिनः**—वन्यानि वनोत्पन्नानि, फलानि, अश्नाति भुङ्क्ते, इति तथाभूतस्य, **ते**—तव, **तद्**—वपुः, **यशसा**—कीर्त्या, **समम्**—सह, **परम्**—अतिमात्रम्, **कार्श्यम्**—कृशत्वम्, **परैति**—प्राप्नोति। वपुरिव तव यशोऽपि क्षयोन्मुखमिति भावः। अत्र यद्यपि शब्दमर्यादया 'कार्श्यं परैति' इति पदद्वयं वपुषैवान्वेति, तथापि सहार्थसामर्थ्याद् यशसाऽपि तदन्वयो जायत इति सहोक्तिरलङ्कारः।

काव्यलिङ्गमाह—**हेतोरिति**। **हेतोः**—स्वतोऽनुपपद्यमानार्थोपपादकहेतोः, **वाक्यपदार्थत्वे**—

---

सहोक्ति—

जहाँ एक शब्द 'सह' शब्दार्थ के बल से दो अर्थों का बोधक हो जाता है वहाँ 'सहोक्ति' अलङ्कार होता है।

जैसे **पुरोपनीतम्** इति। हे राजन् ! युधिष्ठिर ! जो तुम्हारा यह शरीर पहले ब्राह्मणों को देने के बाद बचे हुए अन्न से मनोहर कान्तियुक्त था; आज वही तुम्हारा शरीर जंगली फल खाकर यश के साथ-साथ अत्यन्त कृश हो रहा है। **अत्र** इति। यहाँ 'सह' शब्दार्थ के बल से (ही) 'शरीर और यश दोनों क्षीण हो रहे हैं' यह अर्थ बोधित होता है।

काव्यलिङ्ग—

**हेतोरिति। वाक्यस्य** इति। जहाँ वाक्यार्थ का या पदार्थ का (किसी वस्तु के प्रति)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



**वाक्यस्य पदार्थस्य वा हेतुरूपेणोक्तौ काव्यलिङ्गम् । यथा—**

**"रे हस्त ! दक्षिण ! मृतस्य शिशोर्द्विजस्य**
**जीवातवे विसृज शूद्रमुनौ कृपाणम् ।**
**रामस्य गात्रमसि दुर्भरगर्भखिन्न-**
**सीताप्रवासनपटोः करुणा कुतस्ते ?" ॥ ५९ ॥ [ उत्तरच० ]**

**अत्र करुणाया अभावे "रामस्य गात्रमसि" इति वाक्यम् "दुर्भरगर्भखिन्नसीता-प्रवासनपटोः" इति पदार्थश्च हेतुः ।**

---

वाक्यं च पदं च वाक्यपदे, तयोरर्थौ, वाक्यपदार्थौ, तयोर्भावः, तस्मिन्, वाक्यार्थत्वे पदार्थत्वे उभयार्थत्वे वा सतीत्यर्थः । **काव्यलिङ्गं** नाम अलङ्कारो भवति । अयं भावः—यत्र कंचन उपपत्तिसापेक्षमर्थमुपपादयितुं वाक्यार्थः, पदार्थस्तदुभयार्थौ वा हेतुत्वेनोपन्यस्यते तत्र काव्यलिङ्गं नाम अलङ्कारो भवति । काव्यं कविविवक्षितोऽर्थो लिङ्ग्यते ज्ञाप्यते उपपाद्यतेऽनेनेति योगार्थः । अर्थान्तरन्यासे तु उपपन्न एवार्थः समर्थ्यत इति नातिप्रसङ्गः । केचित्तु निर्हेतुकार्थप्रतिपादनस्य दोषत्वेनाभिधानाद् दोषाभावरूपोऽयं न पृथगलङ्कार इत्याहुः । व्याचष्टे—**वाक्यस्येति** ।

उदाहरति—**रे हस्तेति** । उत्तरचरिते शूद्रमुनिं जिघांसतो रामस्योक्तिरियम् । **रे दक्षिण ! हस्त ! मृतस्य द्विजस्य**—ब्राह्मणस्य, **शिशोः**, **जीवातवे**—जीवनाय, **शूद्रमुनौ**—शम्बूकनाम्नि कस्मिँश्चित् स्ववर्णप्रतिकूलतपश्चर्यारते शूद्रे, **कृपाणम्**—असिम्, **विसृज**—पातय, शूद्रमुनिं कृपाणेन जहीत्यर्थः । हे हस्त ! **त्वम्, दुर्भरगर्भखिन्नसीताप्रवासनपटोः**—दुर्भरेण पूर्णतया दुर्वहेन, गर्भेण, खिन्नायाः श्रान्तायाः, सीतायाः प्रवासने गृहान्निर्वासने, पटोर्दक्षस्य, दयनीयेऽपि स्वजने नितान्तं दयाशून्यस्येति भावः । **रामस्य**—मम, **गात्रम्**—अङ्गम्, **असि** । **ते**—तव, **कुतः**—कस्मात्, **करुणा**—दया, संभवेदिति शेषः, निष्करुणजनावयवे त्वयि कारुण्याभाव उचित एवेति भावः । लक्ष्यसमन्वयं करोति—**अत्रेति** 'करुणाया अभावे' इत्यस्य 'दक्षिणहस्तस्य' इत्यादिः । वस्तुतस्तु 'दुर्भरगर्भखिन्नसीताप्रवासनपटो रामस्य गात्रमसि' इति सविशेषणवाक्यार्थमात्रहेतुकं काव्यलिङ्गमिदम् । उभयार्थहेतुकमुदाजिहीर्षितं चेद् इदमुदाहार्यम्—

चिकुरप्रकरा जयन्ति ते विदुषी मूर्धनि यान् बिभर्ति सा ।
पशुनाप्यपुरस्कृतेन तत्तुलनामिच्छतु चामरेण कः ॥

नैषधे दमयन्तीवर्णनपरमिदं पद्यम् । अत्र चामरस्य दमयन्तीकुन्तलभारसाम्याभावे 'विदुषी

---

कारणरूप से कथन हो वहाँ 'काव्यलिङ्ग' अलंकार होता है ।

जैसे **रे हस्त** इति । हे ( मेरे ) दाहिने हाथ ! मृत ब्राह्मण बालक के जीवन के लिये शूद्र मुनि ( शम्बूक ) पर तलवार चला । तू भी तो दुर्वहगर्भभार से श्रान्त सीता को भी घर से बाहर कर देने वाले राम का ( ही ) अङ्ग है, तुझे दया क्यों आवे ? । **अत्र** इति । यहाँ करुणा के न होने में 'रामस्य गात्रमसि' इस वाक्य का अर्थ और 'दुर्भरगर्भखिन्न' इत्यादि पद का अर्थ हेतु है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri



### विभावना—

"विभावना विना हेतुं कार्य्योत्पत्तिर्यदुच्यते" । [ विश्वनाथः ]

यथा—

"अपमेघोदयं वर्षमदृष्टकुसुमं फलम् ।
अतर्कितोपपन्नं वा दर्शनं प्रतिभाति मे" ॥ ६० ॥ [ कुमारसं० ]

**अत्र मेघोदयकुसुमरूपकारणयोरभावेऽपि वर्षफलरूपकार्य्ययोरभिधानम् ।**

---

मूर्धनि यान् बिभर्ति सा' इति वाक्यार्थः, 'पशुनाप्यपुरस्कृतेन' इति पदार्थश्चेत्युभयं मिलितं हेतुः। केवलपदार्थहेतुकं यथा—

भस्मोद्धूलन ! भद्रमस्तु भवते, रुद्राक्षमाले ! शुभं
हा सोपानपरम्परे ! गिरिसुताकान्तालयालङ्कृते !
अद्याराधनतोषितेन विभुना युष्मत्सपर्यासुखा-
लोकोच्छेदिनि मोक्षनामनि महामोहे निलीयामहे ॥

अत्र मोक्षस्य महामोहत्वमुपपत्तिसापेक्षं युष्मत्सपर्यासुखालोकोच्छेदित्वेन पदार्थेनोपपाद्यते ।

विभावनां लक्षयति—**विभावनेति** । कारणाभावेऽपि कार्योत्पत्तिवचनं विभावनेति भावः। इदं तु बोध्यम्—न खल्वत्र कारणमात्रस्याभावो विवक्षितः, अपि तु प्रसिद्धस्य कारणस्य । कारणमात्राभावे तु कार्योत्पत्तिवचनमेवासङ्गतमापद्येत । उदाहरति—**अपेति** । कुमारसंभवे षष्ठे गगनादवतीर्णान् मुनीन् प्रति गिरिराजोक्तिरियम् । **अतर्कितोपपन्नम्**—अतर्कितमविचारितमेव, उपपन्नमुपगतम्, अत्यन्तासंभावितमित्यर्थः, **वः**—युष्माकं मुनीनाम्, **दर्शनम्**—साक्षात्कारः । **मे**—मम हिमालयस्य कृते [ सम्बन्धसामान्ये षष्ठी ] **अपमेघोदयम्**—अपगतो मेघानां जलदानाम्, उदयो यस्मात्, तादृशम्, **वर्षम्**—वृष्टिः, अनभ्रा वृष्टिरिति यावत्, **अदृष्टकुसुमम्**—न दृष्टम्, कुसुमं पुष्पं यस्य तादृशम्, **फलम्, प्रतिभाति**—प्रतीयते । अद्याकस्माद् भवद्दर्शनेन अनभ्रवृष्टिवद् अकुसुमफलवच्चातिदुर्लभो लाभो मे संजात इति भावः । लक्ष्ये संगमयति—**अत्रेति** । अस्या एव उदाहरणान्तरं—

अनायासकृशं मध्यमशंकरतले दृशौ । अभूषणमनोहारि वपुस्तस्या मृगीदृशः ॥

---

विभावना—

**विभावना** इति । विना कारण के कार्य की उत्पत्ति बताने में 'विभावना' अलंकार होता है ।

जैसे **अप** इति । अचानक प्राप्त हुआ आपका दर्शन मेरे लिये विना मेघ की वृष्टि तथा विना पुष्प के फल के सदृश है । **अत्र** इति । यहाँ मेघोदय और पुष्परूप कारणों के विना भी वर्षा और फलरूप कार्य की उत्पत्ति बताई गई है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



विशेषोक्तिः—

"सति हेतौ फलाभावे विशेषोक्तिः" त्रिधा च सा।
उक्त्यनुक्त्योर्निमित्तस्याप्यचिन्त्यत्वे च कुत्रचित्॥ ६१॥

उक्तनिमित्ता, अनुक्तनिमित्ता, अचिन्त्यनिमित्ता चेति सा त्रिधा। क्रमेण यथा—

"धनिनोऽपि निरुन्मादा युवानोऽपि न चञ्चलाः।
प्रभवोऽप्यप्रमत्तास्ते महामहिमशालिनः"॥ ६२॥

अत्र धनाऽऽदिरूपहेतुसत्त्वेऽपि उन्मादादिरूपफलाभावः, महामहिमशालित्वञ्चात्र निमित्तमुक्तम्। अत्रैव चतुर्थपादे "क्रियन्तः सन्ति भूतले" इति पाठे-निमित्तमनुक्तंभवति।

---

अत्र मृगीदृशः कश्यादौ कार्श्यादिकम् आयासादिप्रसिद्धकारणं विनैव प्रतिपादितमिति विभावना।

विशेषोक्तिं लक्षयति—सति हेताविति। हेतौ विद्यमानेऽपि कार्यानुत्पत्तिप्रतिपादनं विशेषोक्तिरिति भावः। तस्या भेदानाह—त्रिधेति। सा–विशेषोक्तिः, निमित्तस्य–कारणसत्त्वेऽपि। कार्यानुत्पत्तिहेतोः कार्योत्पत्तिप्रतिबन्धकस्येति भावः। उक्त्यनुक्त्योः–वचने, अवचने चेत्यर्थः, कुत्रचिद्, अचिन्त्यत्वे च–अतर्कणीयत्वे च सति, त्रिधा–त्रिप्रकारा भवतीति शेषः। नामतः स्पष्टयति—उक्तनिमित्तेति।

उदाहरति—धनिन इति। ये धनिनोऽपि–धनवन्तोऽपि, निरुन्मादाः–उन्मादरहिताः, युवानोऽपि–यौवनं प्राप्ता अपि, नचञ्चलाः–चाञ्चल्याभाववन्तः [ नैकधेत्यादिवद् न शब्दस्य चञ्चलशब्देन सह समासः, अत एव नलोपो न। नञो नलोपस्य विधानात्। अथवा 'चञ्चला न' इति योजना कर्तव्या। ] प्रभवोऽपि–प्रभुत्वयुक्ता अपि, निग्रहानुग्रहसमर्था अपीति भावः, अप्रमत्ताः–प्रमादाभाववन्तः, सदा सावधाना इति भावः, भवन्ति। ते, सत्यं महामहिमशालिनः–महता, महिम्ना शालन्ते शोभन्त इति तथाभूताः, महाप्रभावाः सन्तीति भावः। लक्ष्यसमन्वयं करोति–अत्रेति। निमित्तम्–कार्योत्पत्तिप्रतिबन्धनिमित्तम्। अनुक्तनिमित्तामुदाहर्तुमाह—अत्रैवेति।

---

विशेषोक्ति—

सति इति। कारण के होने पर भी यदि कार्य का अभाव बताया जाय तब 'विशेषोक्ति' अलंकार होता है। त्रिधा इति। कारण की विद्यमानता में भी कार्य के न होने का कोई न कोई कारण अवश्य होना चाहिये। यदि वह कारण बता दिया जाय तब 'उक्तनिमित्ता' विशेषोक्ति होती है, न बताया जाय तो 'अनुक्तनिमित्ता' यदि वह कारण ऐसा हो कि विचार में भी न आ सके तो 'अचिन्त्यनिमित्ता'। इस प्रकार विशेषोक्ति तीन तरह की है।

जैसे धनिनोऽपि इति। जो पुरुष धनी होते हुए भी उन्माद रहित हैं, जवान होते हुए भी चञ्चल नहीं हैं, प्रभु ( शासक ) होते हुए भी प्रमाद नहीं करते हैं, वे बड़ी महिमावाले हैं। अत्र इति। यहाँ धन आदि हेतुओं की विद्यमानता में भी उन्माद आदि फल ( कार्य ) का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri



"स एकस्त्रीणि जयति जगन्ति कुसुमायुधः।
हरताऽपि तनुं यस्य शम्भुना न बलं हृतम्॥" २॥

अत्र तनुहरणेऽपि बलाहरणे निमित्तमचिन्त्यम्।

## विरोधः—

"विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः"। [ मम्मटः ]

वस्तुतोऽविरोधेऽपि विरुद्धयोरिव धर्मयोर्यदभिधानम्, स विरोधः। अयमेव विरो-

---

अचिन्त्यनिमित्तामुदाहरति—**स एक** इति। **सः**—प्रसिद्धः, **कुसुमायुधः**—कुसुमान्येव आयुधमस्त्रं यस्य तादृशः, कामः, **एकः**—एकाकी सन्, **त्रीणि, जगन्ति**—भुवनानि, **जयति**—स्वायत्तीकरोति। **यस्य**—कामस्य, **तनुम्**—स्थूलशरीरम्, **हरतापि**—विनाशयतापि, **शम्भुना, बलम्**—जगद्वशीकरणसामर्थ्यम्, **न हृतम्** न विनाशितम्, विनाशयितुं न पारितमिति भावः। अत्र शरीरनाशरूपे हेतौ सत्यपि तत्कार्यस्य बलविनाशस्य अवचनाद् विशेषोक्तिः। अस्या अचिन्त्यनिमित्तत्वं समर्थयते—अत्रेत्यादिना। अयं भावः—यद्यप्यनुक्तत्वाविशेषाद् अचिन्त्यनिमित्ताप्यनुक्तनिमित्तैव भवितुमर्हति, तथाप्यनुक्तनिमित्तायां ज्ञातमेव निमित्तं नोच्यते। अचिन्त्यनिमित्तायां तु निमित्तस्य दुरूहत्वादज्ञातस्यैवानुक्तिरिति पृथगुक्तिः।

विरोधं लक्षयति—**विरोध** इति। **अविरोधेऽपि**—वस्तुगत्या विरोधाभावेऽपि, **विरुद्धत्वेन**—विरोधप्रतिभाप्रयोजकरूपेण **यद्, वचः**—उक्तिः, **सः विरोध** इत्युच्यते। व्याचष्टे **वस्तुत** इति। **विरुद्धयोरिव**—व्यधिकरणत्वमेवात्र विरुद्धत्वम्, तथा च अव्यधिकरणयोरपि व्यधिकरणतया प्रतिभासमानयोरित्यर्थः। **अभिधानम्**—एकाधिकरणतया प्रतिपादनम्। लक्षणे अविरोधेऽपीत्युक्त्या विरोधस्याभासत्वमुक्तं भवतीत्यत आह—**अयमेवेति**। आ ईषद् भापत इत्याभासः, विरोधश्चासावाभासो विरोधाभासः। अत्र हि—आपाततः प्रतीयमानोऽपि विरोधो झटिति बाधबुद्धया

---

अभाव बताया गया है। और ( उन्माद आदि कार्य की अनुत्पत्ति का ) निमित्त 'महामहिमशालित्व' यहाँ बता दिया गया है। **अत्रैव** इति। इसी पद्य के चतुर्थ पाद में यदि 'कियन्तः सन्ति भूतले' ( पृथ्वी में ऐसे पुरुष कितने हैं ) इस प्रकार पाठ बदल दें तो उन्माद आदि कार्य का निमित्त अनुक्त हो जाता है।

**स एक** इति। वह पुष्पधन्वा ( कामदेव ) अकेला ही त्रिभुवन का विजय करता है, जिसके शरीर का ध्वंस करते हुए भी शंकर ने ( जिसके ) बल का ध्वंस नहीं किया। **अत्र** इति। यहाँ शरीर का ध्वंस करने पर भी ( उसके ) बल का ध्वंस न करने में हेतु अचिन्त्य है।

## विरोध—

**विरोध** इति। **वस्तुत** इति। वास्तव में विरोध न होने पर भी विरुद्ध जैसे प्रतीत होने वाले दो धर्मों का ( एक अधिकरण में ) कथन करने पर 'विरोध' अलंकार होता है। इसे ही 'विरोधाभास' भी कहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



धाऽऽभास इत्यप्युच्यते। व्यधिकरणयोरिव धर्मयोः सामानाधिकरण्येन निर्देशो विरोधः। धर्मश्चात्र जातिगुणक्रियाद्रव्यरूपः। उदाहरणम्—

"अजस्य गृह्णतो जन्म निरीहस्य हतद्विषः।
स्वपतो जागरूकस्य याथार्थ्यं वेद कस्तव ?" ॥ ६४ ॥ [ रघु० ]
"जगद्योनिरयोनिस्त्वं जगदन्तो निरन्तकः।

---

प्रतिहतो न प्ररोहतीति भावः। फलितार्थमाह—**व्यधिकरणयोरिवेति**। आपाततो विभिन्नाधिकरणतया प्रतीयमानयोरित्यर्थः। **सामानाधिकरण्येन**—एकाधिकरणवृत्तितया।

उदाहरति—**अजस्येति**। रघुवंशे दशमे योगनिद्रोत्थितस्य विष्णोः सुरकृता स्तुतिरियम्। हे भगवन्! **अजस्य**—न जायत इत्यजः, तस्य, जन्मशून्यस्यापि, **जन्म**—मत्स्य-कूर्म-वराहादि-शरीरसम्बन्धम्, **गृह्णतः**—स्वीकुर्वतः, जायमानस्येत्यर्थः, **निरीहस्य**—निश्चेष्टस्यापि, **हतद्विषः**—हताः, द्विषः शत्रवो येन तादृशस्य शत्रुघातिनः, **स्वपतः**—योगनिद्रामनुभवतोऽपि, **जागरूकस्य**—सर्वसाक्षितया नित्यप्रबुद्धस्य, **तव**—भवतः, **याथार्थ्यम्**—तत्त्वम्, **कः**, **वेद**—जानाति ? न कोऽपीत्यर्थः। अत्र प्रथमे पादे अजत्वगुण-जन्मग्रहणक्रिययोः, द्वितीये निरीहत्वगुण-शत्रुहननक्रिययोः, तृतीये च निद्रारूपस्वापगुण-जागरणक्रिययोश्च व्यधिकरणतया विरुद्धयोरपि ऐकाधिकरण्यं प्रतिपादितमिति विरोधः भगवतः प्रभावस्यातिशयित्वात्, समस्तजगदाधारस्य भगवतो जगदन्तर्भूतविरुद्धपदार्थाधारत्वस्याप्यबाधाद् वा विरोधस्याभासत्वं बोध्यम्। यद्यपि तृतीये पादे स्वापो जागरणं च कालभेदेनैकत्र संभवत इति नास्ति विरोधः, तथापि स्वपत इति वर्तमानकालविहितेन शतृप्रत्ययेन जागरणस्य स्वापकालिकत्वप्रतिपादनेन अस्त्येव विरोधः। तयोरैकाधिकरण्यस्य युगपददर्शनात्।

द्वितीयमुदाहरति—**जगद्योनिरिति**। कुमारसंभवे द्वितीये इन्द्रपुरोगैर्देवैर्ब्रह्मणः स्तुतिरियम्। हे भगवन्!, **त्वम्**, **जगद्योनिः**—जगतां योनिः कारणमपि, **अयोनिः**—न योनिः, अकारणमिति विरोधः, वस्तुतो न योनिः कारणं यस्य, तादृशः, स्वयमकारण इत्यर्थः, स्वयंभूरसीति भावः। **जगदन्तः**—जगताम्, अन्तः संहर्ता, अपि, **निरन्तकः**—असंहर्तेति विरोधः,

---

**व्यधिकरणयोरिति**। जो धर्म ऊपर से देखने में भिन्न-भिन्न आधारों में रहने वाले जैसे प्रतीत होते हैं उनका यदि समान आधार में रहना बताया जाय, तब 'विरोध' होता है। **धर्म** इति। धर्म से यहाँ जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य से अभिप्राय है।

उदाहरण जैसे **अजस्य** इति। हे देव! अजन्मा होने पर भी जन्मग्रहण करने वाले, निरीह होने पर भी शत्रुओं का नाश करने वाले, सोते हुए भी जागने वाले आप के यथार्थ स्वरूप को कौन जानता ?। [ यहाँ अजत्व आदि धर्मों का जन्मग्रहण आदि धर्मों के साथ विरोध है। ये दोनों बातें एक आधार में नहीं रह सकतीं। ]

**जगद्** इति। हे भगवन्! आप जगत् की योनि ( कारण ) होते हुए भी अयोनि हैं, ( कारण नहीं हैं—आप का कोई कारण ( योनि ) नहीं है ) जगत् का अन्तक ( संहार करने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri



जगदादिरनादिस्त्वं जगदीशो निरीश्वरः" ॥ ६५ ॥ [ कुमारसं० ]

प्रथमे भगवतः प्रभावस्यातिशयित्वादापाततः प्रतीयमानस्य विरोधस्य समाधानम् । द्वितीये नञ्तत्पुरुषसमासे विरोधः, बहुव्रीहिणा परिहारः ।

विषमम्—

"गुणक्रिये वा यत् स्यातां विरुद्धे हेतुकार्य्ययोः ।
यद्वाऽऽरब्धस्य वैफल्यमनर्थस्य च सम्भवः ॥ ६६ ॥

---

वस्तुतस्तु निर्गतः अन्तको यस्य, अन्तकाद् निष्क्रान्तो वा, तादृशः, अन्तरहितत्वाद् नित्य इति यावत् । **त्वम्, जगताम्, आदिः**—पूर्ववर्त्यपि सन्, [ सदेव सौम्येदमग्र आसीदिति श्रुतेः ] **अनादिः**—न आदिरिति विरोधः, वस्तुतस्तु न आदिर्यस्य तादृशः, स्वयमादिरहितः, त्वत् प्राक् किमपि नासीदिति भावः । **जगदीशः**—जगताम्, ईशः नियन्ताऽपि, **निरीश्वरः**—अनीश्वरः अनियन्ता इति विरोधः, वस्तुतस्तु निर्गत ईश्वरो यस्य तादृशः, स्वयं केनाप्यनियम्य इति भावः, असीति सर्वत्र शेषः कल्पनीयः । अत्रापि जगद्योनित्वादरयोनित्वादिभिः समानाधिकरण्यं विरुध्यते । तेषां वैयधिकरण्यात् । व्याख्योक्तमार्गेण विरोधस्याभासत्वं बोध्यम् । उभयोः पद्ययोर्विरोधं परिहरति—**प्रथम** इत्यादिना । **समाधानम्**—परिहरः, आभासीकरणमिति यावत् । 'नञ्तत्पुरुषसमासे' इत्यस्य 'अयोनिरि' त्यादौ इत्यादि ।

विषमं लक्षयति—**गुणक्रिये** इति । **यत्, हेतुकार्ययोः**—हेतोः कार्यस्य च, **गुणक्रिये**—गुणः क्रिया च, **विरुद्धे**—परस्परविपरीते, **स्याताम्,** तद्, **विषमम्**—विषमालङ्कारः, **मतम्**—इष्टम् । अयं स्पष्टो भावः—यत्र कार्यस्य गुणः कारणगुणाद् विपरीतः, यत्र वा कार्यस्य क्रिया कारणक्रियातो विपरीता, तत्र प्रथमो विषमालङ्कारः । द्वितीयमाह—**यद्वे**ति । **वा**—अथवा **यद्, आरब्धस्य**—कृतस्य कर्मणः, **वैफल्यम्**—निष्फलत्वम्, यत्फलाशया कर्म कृतं तत्फलस्यालाभ इति

---

वाले ) होते हुए भी आप निरन्तक हैं ( अन्तक नहीं हैं—आप का अन्त करने वाला कोई नहीं है । ) जगत् के आदि ( पूर्ववर्ती ) होते हुए भी, आप अनादि हैं ( आदि नहीं हैं—आदि रहित हैं ) जगत् के ईश्वर ( शासक ) होते हुए भी आप निरीश्वर हैं ( ईश्वर नहीं हैं—आपका ईश्वर—शासक कोई नहीं है ) । [ यहाँ योनित्व आदि और अयोनित्व आदि धर्मों का परस्पर विरोध है । जहाँ योनित्व है वहाँ अयोनित्व नहीं रह सकता । ]

**प्रथमे** इति । पहले पद्य में ऊपर से प्रतीत होने वाले विरोध का भगवान् के माहात्म्य के अतिशय से समाधान हो जाता है । [ अर्थात् भगवान् की ऐसी अलौकिक महिमा है कि वे अजन्मा आदि होते हुए भी जन्मग्रहण आदि भी कर सकते हैं । ] दूसरे पद्य में 'अयोनि' इत्यादि पदों में 'न योनिः' इस प्रकार नञ्तत्पुरुषसमास मानने से विरोध प्रतीत होता है । 'न योनिः कारणं यस्य सः' इस प्रकार बहुव्रीहि मानने से विरोध का परिहार हो जाता है ।

विषम—

**गुणक्रिये** इति । **यत्र** इति । जहाँ कारण के गुण से विपरीत कार्य का गुण हो अथवा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



विरूपयोः सङ्घटना या च तद्विषमं मतम्" । [ विश्वनाथः ]

यत्र कारणगुण एकः, कार्य्यगुणस्तद्विपरीतः, क्रिया वा द्वयोर्विरुद्धा, यत्र न केवलमारब्धस्य वैफल्यम्, अनर्थाऽऽपत्तिश्च, यद् विषमयोर्मेलनञ्च भवेत्, तदेवं चतुर्द्धा विषमम् । क्रमेण यथा—

"सद्यःकरस्पर्शमवाप्य चित्रं रणे रणे यस्य कृपाणलेखा ।
तमालनीला शरददिन्दुपाण्डु यशस्त्रिलोक्याभरणं प्रसूते" ॥ ६७ ॥

अत्र कारणरूपासिलतायाः "कारणगुणाः कार्य्यगुणानारभन्ते" इति स्थितेर्विरुद्धा शुक्लयशस उत्पत्तिः ।

---

यावत् । न केवलमफलत्वम्, किं तु **अनर्थस्य**–अनिष्टस्यार्थस्य, **संभवश्च**–उत्पत्तिश्च, भवेत्, तदपि विषमं मतम् । स द्वितीयो विषमालंकार इति भावः । तृतीयमाह—**विरूपयोरि**ति । किं च, **या, विरूपयोः**–परस्पराननुरूपयोः, अन्योऽन्यसंसर्गायोग्ययोरिति यावत्, **संघटना**–संसर्गः, सापि विषमं मतम् । तृतीयो विषमालंकार इति भावः । व्याचष्टे—**यत्रे**ति । **एकः**–अन्यः, **द्वयोः**–कारणकार्ययोः । **विषमयोः**–विरूपयोः **चतुर्धे**ति । कार्यगतगुणक्रिययोर्वैपरीत्यस्य पृथक् पृथग् गणनायामिदम् । कार्यवैपरीत्यमात्रं त्वादाय त्रित्वमेव ।

उदाहरति—**सद्य** इति । पद्मगुप्तप्रणीते नवसाहसांकचरिते प्रथमसर्गे पद्यमिदम् । **तमालनीला**–तमालः कालस्कन्धः [ आवनूस इति लोके प्रसिद्धः ] तद्वद् नीला श्यामा, **कृपाणलेखा**–खड्गः, [ रेखाकारत्वाल्लेखा रेखा वेत्युच्यते, रलयोरभेदात् ] **यस्य**–राज्ञः, **करस्पर्शम्**–हस्तसम्बन्धमात्रम्, **अवाप्य**–प्राप्य, **सद्यः**–तत्कालमेव, **रणे रणे**–सर्वत्र संग्रामे, **शरददिन्दुपाण्डु**–शरदिन्दुवत् शरत्कालचन्द्रवत्, पाण्डु शुभ्रम्, **त्रिलोक्याभरणम्**–त्रिलोक्या लोकत्रयस्य, आभरणम् अलंकारभूतम्, **यशः**–कीर्तिम्, **प्रसूते**–जनयति, एतत् **चित्रम्**–आश्चर्यम् । 'कारणगुणाः कार्यगुणानारभन्ते' इति दार्शनिकसिद्धान्तानुसारेण श्यामखड्गप्रसूतया कीर्त्यापि श्यामयैव भवितव्यमासीत्, परमत्र तु कार्ये कारणगुणविपरीतगुणोत्पत्तिरित्ययमेवाश्चर्यहेतुः । गुणवैपरीत्यलक्षणोऽयं विषमालंकारः । लक्ष्यसमन्वयं करोति—**अत्रे**ति । **स्थितेः**–वस्तुस्थितेः ।

---

कारण की क्रिया से विपरीत कार्य की क्रिया हो, जहाँ आरम्भ किया हुवा काम केवल निष्फल ही न हो; किन्तु साथ कुछ अनर्थ भी हो जाय, या ऐसे दो पदार्थों का—जिनका परस्पर सम्बन्ध योग्य न हो—सम्बन्ध बता दिया जाय वहाँ विषम अलंकार होता है । उपर्युक्त क्रम से विषम चार प्रकार का होता है ।

जैसे **सद्य** इति । आबनूस के सदृश श्यामवर्ण की तलवार, जिसके हाथ का स्पर्शमात्र प्राप्त करके प्रत्येक संग्राम में त्रिभुवन को अलंकृत करने वाले, शरत्काल के चन्द्रमा के तुल्य, शुभ्र यश को उत्पन्न करती है, यह आश्चर्य है । **अत्र** इति । यहाँ 'कारण के गुण कार्य के गुणों को उत्पन्न करते हैं' इस नियम के विरुद्ध कारणरूप ( श्यामवर्ण की ) तलवार से शुक्ल यश की उत्पत्ति बताई गई है । [ नियमानुसार काली तलवार से पैदा होने वाला यश काला ही होना चाहिये था ] ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



'आनन्दममन्दमिमं कुवलयदललोचने! ददासि त्वम्।
विरहस्त्वयैव जनितस्तापयतितरां शरीरं मे'' ॥ ६८ ॥

अत्र त्वमानन्दं ददासि, त्वज्जनितो विरहस्तु तापयतितरामिति हेतकार्य्ययो-र्विरुद्धा क्रिया।

"अयं रत्नाऽऽकरोऽम्भोधिरित्यसेवि धनाऽऽशया।
धनं दूरेऽस्तु वदनमपूरि क्षारवारिभिः'' ॥ ६९ ॥

अत्र न केवलं काङ्क्षितधनलाभो मा भूत्, प्रत्युतक्षारवारिभिर्वदनपूरणरूपा-नर्थपातः।

"अनृतां गिरं न गदसीति जगति पटहैर्विघुष्यसे।

---

क्रियावैपरीत्यलक्षणं विषयमुदाहरति—**आनन्दमिति**। रुद्रटालंकार उदाहृतं पद्यमिदम्। **कुवलयदललोचने!**—कुवलयस्य कमलस्य, दलवल्लोचने नेत्रे यस्यास्तादृशि! हे इन्दीवराक्षि! **त्वम्, इमम्**—अनुभूयमानम्, **अमन्दम्**—अनल्पम्, **आनन्दम्, ददासि**। परन्तु **त्वयैव, जनितः विरहः** वियोगः, **मे**—मम, **शरीरम्, तापयतितराम्**—अत्यर्थं तापयति, व्यथयतीत्यर्थः। अत्र कारणरूपाया नायिकायाः क्रिया आनन्ददानम्; नायिकाकार्यस्य विरहस्य तु शरीरतापनं तद्विरुद्धमिति विषमम्। लक्ष्यसमन्वयं करोति—**अत्रेति**।

द्वितीयमुदाहरति—**अयमिति**। **अयम्**—पुरोवर्ती, **अम्भोधिः**—समुद्रः, **रत्नाकरः**—रत्नानाम्, आकरः खनिः, अस्ति, इति **धनाशया**—धनेच्छया, **असेवि**—सेवितः, मयेति शेषः। किन्तु **धनम्,** धनप्राप्तिरिति भावः, **दूरे, अस्तु**—तिष्ठतु, अनेन **क्षारवारभिः**—क्षारैर्लवणमिश्रैः वारिभिर्जलैः **वदनम्**—मुखम्, **अपूरि**—पूरितम्। लक्ष्यसमन्वयं करोति—**अत्र नेति**। **मा भूत्**—न जातः।

तृतीयमुदाहरति—**अनृतामिति**। शिशुपालवधे शिशुपालस्य युधिष्ठिरं प्रत्युपालम्भवचनमिदम्। हे युधिष्ठिर! **त्वम्, अनृताम्**—असत्याम्, **गिरम्, न गदसि**—नोच्चारयसि,

---

**आनन्दमिति**। हे नीलोत्पलनयने! तू (यद्यपि) यह महान् आनन्द देती है, परन्तु तेरे द्वारा जनित यह विरह मेरे शरीर को अत्यधिक तपाता है।

**अत्र इति**। यहाँ 'तू आनन्द देती है किन्तु तेरा पैदा किया हुआ विरह अधिक दुःख देता है' इस प्रकार कारण और कार्य की (आनन्द देना और दुःखी करना) ये परस्पर विरुद्ध क्रियाएँ बताई गई हैं।

**अयम् इति**। यह (समुद्र) रत्नों के आकर (खान) है यह समझ कर धन की आशा से इसकी सेवा की थी, परन्तु धन तो दूर रहा, यहाँ उल्टा खारे पानी से मुँह भर गया। **अत्र इति**। यहाँ धन का लाभ नहीं हुआ केवल यही नहीं किन्तु खारे जल से मुँह का भर जाना रूप अनर्थ की भी प्राप्ति हुई है।

**अनृताम् इति**। हे युधिष्ठिर! लोग ढोल पीटकर (तेरे विषय में) यह घोषणा करते हैं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



निन्द्यमथ च हरिमर्चयतस्तव कर्मणैव विकसत्यसत्यता" ॥ ७० ॥ [ माघः ]

अत्र सत्यप्रख्यापनासत्यसमाचरणयोर्विरूपयोः सङ्घटना ।

असङ्गतिः—

"कार्य्यकारणयोर्भिन्नदेशतायामसङ्गतिः" । [ विश्वनाथः ]

---

इति जगति, पटहैः—वाद्यविशेषैः [ करणैः ] 'ढोल' इति लोके प्रसिद्धैः, पटहवादनपुरस्सरमिति भावः, विघुष्यसे—उद्घोष्यसे । लोकैरिति शेषः । लोकास्त्वां डिण्डमनादेन उच्चैः सत्यवादिनमुद्घोषयन्तीति भावः । अथ च—तथापीति भावः, निन्द्यम्—निन्दार्हम्, हरिम्—वासुदेवम्, अर्चयतः—पूजयतः, तव—भवतः, सत्यव्रतस्य, कर्मणैव—अपूज्यपूजाविधानेनैव, असत्यता—सत्यहीनता, विकसति—प्रकाशते । यद्यपि लोकास्त्वां सत्यवादिनमाचक्षते यथापि त्वदाचरणं तवासत्यपक्षपातित्वमेव प्रत्याययति । तथा हि निन्द्ये निन्दाया एव स्तुत्ये च स्तुतेरेव प्रयोगः सत्यः । परन्तु त्वं निन्द्ये निन्दामप्रयुज्य स्तुतिं प्रयोजयसीति विपरीताचरणात् तव सत्यहीनता स्पष्टेति भावः । अत्र सत्यवाधसत्यतयोरन्योन्यसंसर्गायोग्ययोः संसर्गबोधनाद् विषमालङ्कारः । लक्ष्यसमन्वयं करोति—अत्र सत्येति ।

क्व शुक्तयः क्व वा मुक्ताः क्व पङ्कः क्व च पङ्कजम् ।
क्व मृगाः क्व च कस्तूरी धिग्विधातुर्विदग्धताम् ॥

अत्र शुक्तिमुक्तादीनां परस्परसंसर्गायोग्यानां संसर्गः प्रतिपाद्यते, अत एवात्रापि विषमः । कपर्देश्च अन्योन्यसंसर्गायोग्यत्वं बोध्यते । केचित्तु वस्तुकथनमात्रमिदं नालङ्कारः । वस्तुवृत्तस्य लोकसिद्धत्वेन अलङ्कारत्वायोगात् । तन्मते—

क्व सा कुसुमसाराङ्गी सीता चन्द्रकलोपमा । क्व रक्षःखदिराङ्गारमध्यसंवासवैशसम् ॥

इत्युदाहार्यम् । अत्र कुसुमसाराङ्ग्याः सीतायाः खदिराङ्गाररूपाणां रक्षसां च मिथः संगर्गस्यानुरूपस्य प्रतिपादनाद् विषमः ।

असङ्गतिमाह—कार्यकारणयोरिति । भिन्नदेशतायाम्—वैयधिकरण्ये । इतरत् स्पष्टम् । अयं भावः—आपाततो विरुद्धत्वेन भासमानं कार्यकारणयोर्वैयधिकरण्यमसङ्गतिरलङ्कारः । विरोधालङ्कारे व्यधिकरणधर्मयोः सामानाधिकरण्यं प्रतिपाद्यते । असङ्गतौ तु तद्विपरीतं समानाधिकरणयोर्वैयधिकरण्यं प्रतिपाद्यते इत्युभयोर्भेदः ।

---

कि झूठ नहीं बोलता है, परन्तु निन्दा के योग्य कृष्ण की पूजा करने वाले तेरे कार्य से ही तेरी असत्यता-असत्यवादिता प्रकट हो रही है ।

अत्र इति । यहाँ सत्यवादिता की प्रसिद्धि करना और असत्य का आचरण करना इन दो विरूप पदार्थों का सम्बन्ध बताया गया है ।

असंगति—

कार्यं इति । कार्य और कारण यदि भिन्न-भिन्न देशों ( स्थानों ) में हों तो असंगति अलंकार होता है । जैसे—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



यथा—

"अहो ! खलभुजङ्गस्य विचित्रोऽयं वधक्रमः।
अन्यस्य दशति श्रोत्रमन्यः प्राणैर्विमुच्यते" ॥ ७१ ॥

कारणमाला—

"परं परं प्रति यदा पूर्वपूर्वस्य हेतुता।
तदा कारणमाला स्याद्" दर्पणे समुदीरिता ॥ ७२ ॥

यथा—

"जितेन्द्रियत्वं विनयस्य कारणं गुणप्रकर्षो विनयादवाप्यते।
गुणप्रकर्षेण जनोऽनुरज्यते जनानुरागप्रभवा हि सम्पदः" ॥ ७२ ॥

---

उदाहरति—**अहो** इति। **खलभुजङ्गस्य**—खल एव, भुजङ्गः सर्पः, तस्य [ वधकर्तरि षष्ठी ] **अयम्**—वक्ष्यमाणः, **वधक्रमः**—हननप्रकारः, **अहो !** [ आश्चर्यद्योतकमव्ययम् ] **विचित्रः**—अदृष्टपूर्वः, अस्तीति शेषः। तमेव विचित्रं क्रमं दर्शयति—सः **अन्यस्य**, **श्रोत्रम्**—कर्णम्, **दशति**, **अन्यः**—अपरः, अदष्टश्रोत्रः, **प्राणैः**, **विमुच्यते**—वियुज्यते, म्रियत इति भावः। अत्र भुजङ्गदशनं कारणम्, मरणं च कार्यम्, तयोः समानाधिकरण्येन भाव्यम्। य एव दश्यते स एव म्रियते। परमिह तयोर्विभिन्नदेशत्वं प्रतिपादितमित्यसंगतिः। सा चेयमसंगतिरापाततः प्रतीयते, यतः पर्यवसाने कर्णदशनम्—पैशुन्यं परदोषसूचनम्। तथा च नासंगतिः।

कारणमालां लक्षयति—**परं परं प्रतीति**। **परं परं प्रति**—उत्तरोत्तरं प्रति। इतरत् स्पष्टम्।

उदाहरति—**जितेन्द्रियत्वमिति**। **जितेन्द्रियत्वम्**—जितानि वशीकृतानि, इन्द्रियाणि चक्षुरादीनि, येन, तस्य भावस्तत्त्वम्, इन्द्रियदमनमिति यावत्, **विनयस्य**—नम्रतायाः, **कारणम्**—हेतुः, अस्तीति शेषः। **विनयाद्**, **गुणप्रकर्षः**—गुणानाम्, प्रकर्षः उत्कर्षः, **अवाप्यते**—अधिगम्यते। **गुणप्रकर्षेण**, **जनः अनुरज्यते** अनुरक्तो भवति, गुणप्रकर्षवतीति शेषः, **सम्पदः**—ऐश्वर्याणि, **जनानुरागप्रभवाः**—जनानामनुरागः प्रीतिः, प्रभवः कारणं यासां तादृश्यः भवन्तीति शेषः अत्रोत्तरोत्तरं विनयादिकं प्रति पूर्वपूर्वस्य जितेन्द्रियत्वादेर्हेतुत्वात् कारणमाला। इदं तु बोध्यम्—इह यथादौ कारणोक्तिः प्रस्तूयते तदा पुनस्तस्य कारणं तस्यापि कारणमिति, तत्क-

---

**अहो** इति। खलरूपी सर्प का मारने का ढंग अनोखा ही है। किसी दूसरे के कान को डसता है और कोई दूसरा ही प्राणों से वियुक्त हो जाता है।

कारणमाला—

**परमिति**। यदि अगले-अगले पदार्थ के प्रति पूर्व-पूर्व पदार्थ हेतु हो तो 'कारणमाला' अलंकार होता है।

जैसे **जितेन्द्रिय** इति। जितेन्द्रियता विनय का कारण है, विनय से गुणों का उत्कर्ष प्राप्त होता है, गुणों के उत्कर्ष से लोग ( गुणी पुरुष पर ) अनुराग करते हैं, लोगों के अनुराग से ही ऐश्वर्य प्राप्त होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



**सारः—**

"उत्तरोत्तरमुत्कर्षो भवेत् सारः परावधिः" । [ मम्मटः ]

यथा—"राज्ये सारं वसुधा, वसुधायां पुरं, पुरे सौधम् ।
सौधे तल्पं, तल्पे वाराङ्गनाऽनङ्गसर्वस्वम्" ॥ ७४ ॥

---

स्यचित् कारणं तदपि कस्यचिदिति वा कारणमाला युक्ता। यदा तु कार्योक्तिरादौ तदा तस्य कार्यम्, तस्यापि कार्यमिति, तत्कस्यचित् कार्यम्, तदपि कस्यचिदिति वा कारणमाला युक्ता। सर्वथैव यः शब्दः कार्यकारणतोपस्थापक आदौ प्रयुक्तः, स एव निर्वाह्यः। एवं क्रमेण निबन्धनमाकाङ्क्षानुरूपत्वाद् रमणीयं भवति। अन्यथा तु भग्नप्रक्रमं स्यात्। यथा पूर्वोक्तोदाहरणे जितेन्द्रियत्वमित्यादौ। तथा हि तत्र जितेन्द्रियत्वं विनयस्य कारणं श्रुत्वा जितेन्द्रियत्वस्यापि किं कारणमिति, विनयः कस्य कारणमिति वा आकाङ्क्षोदेति। कारणस्यैव श्रुतिवशात् पूर्वमुपस्थितेः। एवं च विनयः कस्य कारणमित्याकङ्क्षायाः 'गुणप्रकर्षो विनयादवाप्यते' इति वाक्यं यद्यपि फलतः परिपूरकं भवति, तथापि न साक्षादित्यहृदयंगममेव। एवमग्रेऽपि बोध्यम्। तथा चेदमत्रोदाहार्यम्—

लभ्यते पुण्यैर्गृहिणी मनोज्ञा तया सुपुत्राः परितः पवित्राः।
स्फीतं यशस्तैः समुदेति नूनं तेनास्य नित्यः खलु नाकलोकः॥
स्वर्गापवर्गौ खलु दानलक्ष्मीर्दानं प्रसूते विपुला समृद्धिः।
समृद्धिमल्पेतरभागधेयं भाग्यं च शंभो! तव पादभक्तिः॥

अत्र यद्यपि कारणानामिव कार्याणामपि माला विद्यते तथापि कारणगुण वर्णनस्यैव कविसंरम्भगोचरत्वात् कारणमालेत्यभिधानं बोध्यम्।

सारं लक्षयति—**उत्तरोत्तरमिति**। **उत्तरोत्तरम्**—पूर्वापेक्षया उत्तरस्य, तदपेक्षयापि तदुत्तरस्येत्येवं क्रमेण, **परावधिः**—पर्यन्तवर्णितः, अवधिश्चरमसीमा, यस्य तादृशः, **उत्कर्षः**, **सारः**—साराख्योऽलङ्कारः, **भवेत्**। यत्र उत्तत्तरं धाराधिरोहितया वर्धमान उत्कर्षः प्राप्तचरमसीमतया वर्ण्यते तत्र सारालङ्कार इति भावः।

उदाहरति—**राज्य** इति। रुद्रटालङ्कारे पद्यमिदम्। **राज्ये वसुधा**—नानाविधवसुदात्री इयं पृथ्वी, **सारम्**—श्रेष्ठं वस्तु, अस्तीति सर्वत्र शेषः कल्पनीयः। **वसुधायाम्**—पृथिव्यामपि, **पुरम्**—नगरम्, इयं राजधानीति यावत्। **पुरे**—राजधानीनगरेऽपि, **सौधम्**—प्रासादः। **सौधे**—प्रासादेऽपि, **तल्पम्**—शय्या। **तल्पे**—शय्यायामपि, **अनङ्गसर्वस्वम्**—कामसर्वस्वभूता, **वाराङ्गना**—

---

**सार—**

**उत्तरोत्तर** इति। जहाँ उत्तरोत्तर वस्तु का उत्कर्ष ( श्रेष्ठता ) बताया जाय और अन्तिम वस्तु में उत्कर्ष की धारा समाप्त हो जाय—अर्थात् अन्तिम वस्तु सब से उत्कृष्ट हो, वहाँ 'सार' नामक अलंकार होता है।

जैसे **राज्ये** इति। राज्य में सारभूत पृथ्वी है, पृथ्वी में सारभूत नगर है, नगर में महल,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



एकावली—

"पूर्वं पूर्वं प्रति विशेषणत्वेन परं परम्।
स्थाप्यतेऽपोह्यते वा चेत् स्यात्तदैकावली द्विधा" ॥ ७५ ॥ [ विश्वनाथः ]

पूर्वं पूर्वं प्रति यथोत्तरस्य वस्तुनो विशेषणत्वेन यत् स्थापनं निषेधो वा सम्भवति, सा द्विधा बुधैरेकावली कथ्यते। क्रमेणोदाहरणम्—

"सरो विकसिताम्भोजमम्भोजं भृङ्गसङ्गतम्।
भृङ्गा यत्र ससङ्गीताः तङ्गीतं मधुवर्षि च" ॥ ७६ ॥

अत्र सरसोऽम्भोजम्, तस्य भृङ्गः, इत्यादिक्रमेण विशेषणं विधीयते।

---

रमणीया रमणी। अत्र वसुधादिपूत्तरोत्तरं वर्धमान उत्कर्षो वाराङ्गनायां विश्राम्यति, तदपेक्षयान्यस्योत्कृष्टवस्तुनोऽवर्णनादिति साराल्ङ्कारः। इममेव सारं केचन 'उदार' मित्याचक्षते।

एकावलीं लक्षयति—पूर्वं पूर्वं प्रतीति। चेत्—यदि पूर्वं पूर्वं प्रति परं परं विशेषणत्वेन स्थाप्यत—विधीयते, वा—अथवा, अपोह्यते—निषिध्यते, तदा द्विधा—द्विप्रकारा, विध्यात्मिका निषेधात्मिका चेति भावः एकावली—एकावलीनामाल्ङ्कारः स्यात्।

व्याचष्टे—पूर्वमिति। यथोत्तरस्येति। वीप्सायामव्ययीभावः, तस्याव्ययत्वात् षष्ठ्यत्र व्याकरणविरुद्धा। उत्तरस्योत्तरस्येत्यर्थः।

उदाहरति—सर इति। यत्र—शरदि, सरः—तडागः, विकसिताम्भोजम्—विकसितानि, अम्भाजानि कमलानि, यत्र तादृशम्, अस्तीति सन्तीति वा यथायथं सर्वत्र शेषः कल्पनीयः। अम्भोजम्—कमलम्, भृङ्गसङ्गतम्—भृङ्गैः भ्रमरैः, संगतं युक्तम्, भृङ्गाः, ससङ्गीताः—सङ्गीतसहिताः, कलगुञ्जितेन युक्ता इति भावः; सङ्गीतं च—भ्रमराणां कलगुञ्जितं च, मधुवर्षि—मधु माधुर्यम्, वर्षतीति तादृशम्, माधुर्ययुक्तमिति भावः। अत्र पूर्वपूर्वाणि सरोऽम्भोजभृङ्गसंगीतानि प्रति उत्तरोत्तरेषामम्भोज-भृङ्ग-संगीत-मधुवर्षणानां यथाक्रमं विशेषणत्वेन स्थापनादेकावली। एकावली हारविशेषः, यथा तत्र गुम्फितानां मुक्तानां प्रथमा द्वितीययोत्कृष्यते, द्वितीया तृतीययेत्येवं क्रमः, तथैवात्रापि पूर्वमुत्तरेण विशेष्यते, उत्तरं तदुत्तरेणेत्येवं क्रमोऽस्ति। तथा चैकावलीसादृश्यादयमलंकारोऽप्येकावलीत्युच्यते। लक्ष्यसमन्वयं करोति—अत्रेति। विधीयते—स्थाप्यते।

---

महल में पलङ्ग और पलङ्ग पर कामदेव की सर्वस्वभूत कामिनी। [ यहाँ पृथ्वी आदि में उत्तरोत्तर उत्कर्ष बताया गया है और 'वाराङ्गना' में उत्कर्ष की सीमा समाप्त हो जाती है। ]

एकावली—

पूर्वं पूर्वं प्रति। यदि पूर्व पूर्व वस्तु के प्रति आगे आगे की वस्तु का विशेषण रूप से विधान हो या निषेध हो तो पण्डित लोग उसे 'एकावली' कहते हैं। इसके दो भेद हैं—एक विध्यात्मक और दूसरा निषेधात्मक।

क्रमशः उदाहरण—जैसे सरो इति। सरोवर में कमल खिले हुए हैं, कमलों पर भौंरे बैठे हुए हैं, भौंरे गीत गा रहे हैं, ( गूँज रहे हैं ) और उनका गीत मधु बरसाने वाला है। अत्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



"न तज्जलं यन्न सुचारुपङ्कजं न पङ्कजं तद् यदलीनषट्पदम्।
न षट्पदोऽसौ न जुगुञ्ज यः कलं न गुञ्जितं तन्न जहार यन्मनः॥ ७१॥ [ भट्टिः ]

अत्र क्रमेण पूर्वपूर्वस्य निषेधः।

**अर्थापत्तिः—**

"दण्डापूपिकयाऽन्यार्थाऽऽगमोऽर्थापत्तिरिष्यते"।

मूषिकेण दण्डो भक्षित इत्यनेन तत्सहचरितापूपभक्षणम् अर्थादायातं भवतीत्येष न्यायो दण्डापूपिका, तयाऽर्थान्तरबोधनम् अर्थापत्तिः। यथा—

---

निषेधात्मिकामेकावलीमुदाहरति—**न तज्जलमिति**। भट्टिकाव्ये द्वितीयसर्गे शरत्काल-वर्णनमिदम्। तत्र **तत्**—तादृशम्, **जलम्**, न, आसीत्, **यद्**—जलम्, **सुचारुपङ्कजम्**—सुचारूणि अतिमनोहराणि, पंकजानि कमलानि, यत्र तादृशम्, न स्यात्। सर्वाणि जलानि तत्र मनोहरकमलयुक्तान्यासन्निति भावः। **तत्**—तादृशम्, **पङ्कजम्**—कमलमपि, न, अभवत्, **यद्**—**अलीनषट्पदम्**—न लीनाः मधुपानार्थं श्लिष्टाः, षट्पदा भ्रमरा यत्र तादृशम्, भवेत्। पङ्कजान्यपि तत्र भ्रमरयुक्तान्येवाभवन्निति भावः। **असौ**—एतादृशः, **षट्पदः**—भ्रमरोऽपि न आसीत्, **यः कलगुञ्जितः**—कलं मनोहरम्, गुञ्जितं गुञ्जारवो यस्य तादृशः, न, भवेत्। सर्वत्र कमलेषु भ्रमराः कलं गुञ्जन्ति स्मेति भावः। **गुञ्जितम्**—भ्रमरगुञ्जितमपि, **तत्**—तादृशम्, न आसीत्, **यद्**, **मनः**, श्रोतृणामिति शेषः, **न जहार**—नाचकर्ष। भ्रमराणां गुञ्जितं नियमेन श्रोतृणां मनांस्याचकर्षेवेति भावः। अत्र जले पङ्कजस्य, तत्र षट्पदानाम्, तत्र गुञ्जितस्य, तत्रापि मनोहारिताया विशेषणतया निषेध इत्येकावल्यलङ्कारः। लक्ष्यसमन्वयं करोति—**अत्रेति**। **पूर्वपूर्वस्येत्यत्र** उत्तरोत्तरस्येति वक्तव्यमासीत्। लक्षण उत्तरोत्तरनिषेधस्यैव वचनात्।

अर्थापत्तिं लक्षयति—**दण्डापूपिकेति**। **दण्डापूपिकया**—मूषिकेण दण्डस्य भक्षणे सिद्धे तत्सहचरितकोमलापूपानामपि भक्षणं यथा अर्थसिद्धं तद्वदित्यर्थः, [ एष एव येन कठोरो दण्डो भक्षितस्तेन तत्सहचरितानां कोमलापूपानां भक्षणं कृतमिति किमु वक्तव्यम् इत्येवं कैमुत्यन्यायोऽप्युच्यते ] **अन्यार्थागमः**—अन्यस्य, अर्थस्य, आगमः प्रतीतिः, **अर्थापत्तिः**—अर्थापत्तिर्नामालङ्कारः, इति।

---

यहाँ सरोवर के प्रति कमलों का और कमलों के प्रति भौंरों का, भौंरों के प्रति संगीत का, संगीत के प्रति मधुवर्षण का विशेषण रूप से विधान किया गया है।

**न तज्जलमिति**। कोई जल ऐसा नहीं था जहाँ मनोहर कमल न हों, ऐसा कोई कमल नहीं था जहाँ भौंरे न बैठे हों, ऐसा कोई भौंरा नहीं था जो सुन्दर गूँज न निकाल रहा हो, ऐसी कोई गूँज नहीं थी जो मन को न हरती हो। **अत्र इति**। यहाँ क्रमशः पङ्कज आदि आगे-आगे की वस्तुओं का विशेषण रूप से निषेध किया गया है।

**अर्थापत्ति—**

**दण्डा इति**। यदि 'दण्डापूपिका' न्याय से अन्य अर्थ का ज्ञान हो तब 'अर्थापत्ति' अलंकार होता है। **मूषिकेण इति**। "किसी ने कहा कि 'डण्डा चूहे ने खा लिया' तो इससे यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



"विललाप स वाष्पगद्गदं सहज मप्यपहाय धीरताम्।
अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु?" ॥ ७८ ॥ [ रघु० ]

अतिकठिनं लौहमपि तापेन गलितं भवतीति तदपेक्षया अतिसुकुमारस्य मनुष्यहृदयस्य गलनं सुतरामायातीत्यर्थापत्तिः।

इति अलङ्कारविवेको नाम अष्टमशिखा।

---

इष्यते। दण्डापूपिकाशब्दस्तु विद्वद्भिर्नैकधा निरुच्यते। दण्डश्चापूपश्च दण्डापूपौ, तयोर्भावो दण्डापूपिका, 'द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च' इति वुञ्। पृषोदरादित्वाद् वृद्ध्यभावः। अथवा दण्डापूपौ दृष्टान्ततया विधेते यस्यां नीतौ सा दण्डापूपिका, 'अत इनिठनौ' इति मत्वर्थीयष्ठन्। परे तु दण्डापूपाविवेति दण्डापूपिका, 'इवे प्रतिकृतौ' इति कन् इत्याहुः। दण्डापूपिकां व्याचष्टे—मूषिकेणेति।

उदाहरति—विललापेति। रघुवंशे अष्टमे इन्दुमतीविरहिणोऽजस्य विलपितमिदम्। सः-अजः, सहजामपि—स्वभाविकीमपि, धीरताम्—धैर्यम्, अपहाय—परित्यज्य, वाष्पगद्गदम्—वाष्पेण अश्रुणा, कण्ठगतेन, गद्गदं विशीर्णाक्षरम्, यथा स्यात्तथा, ध्वनिमात्रानुकारिगद्गदशब्दैरित्यर्थः, विललाप—परिदेवितवान्। अभितप्तम्—अग्निना संतप्तम्, अयोऽपि—अतिकठिनमचेतनं लौहमपि, मार्दवम्—मृदुत्वम्, द्रुतिमिति भावः, भजते—प्राप्नोति, शरीरिषु—शरीरधारिषु अनतिकठिनेषु चेतनेषु, शोकाग्निना अभिसंतप्तेष्विति शेषः, कैव, कथा—वार्ता, मार्दवप्राप्तेरिति शेषः। लक्ष्यसमन्वयं करोति—अतिकठिनमिति। गलितम्—द्रुतम्।

इति श्रीद्रोणाश्रमाभिजन-श्रीमदच्युतानन्दनन्दन-श्रीपरमेश्वरानन्दशर्मकृतायां बालबोधिन्यां काव्यदीपकाव्याख्यायां अलङ्कारविवेकनाम्नी अष्टमशिखा समाप्ता।

---

बात भी सिद्ध हो गई कि उस डण्डे के साथ बँधे हुए अपूप (पूए) भी वह चट कर गया। जिसने कठोर काठ तक नहीं छोड़ा वह भला कोमल मालपूए क्यों छोड़ता।" इसी को 'दण्डापूपिका' न्याय कहते हैं। इस न्याय के द्वारा अर्थान्तर का ज्ञान होने को 'अर्थापत्ति' अलङ्कार कहते हैं।

**विललाप** इति। वह (अज) अपने स्वाभाविक धैर्य को छोड़कर गद्गद स्वर से विलाप करने लगा। तपा हुवा लोहा भी नरम हो जाता है, शरीर-धारियों की तो कथा ही क्या है। **अतिकठिनम्** इति। अति कठोर लोहा भी जब ताप से पिघल जाता है उसकी (लोहे की) अपेक्षा अत्यन्त सुकुमार मनुष्य के हृदय का पिघलना तो अवश्यंभावी है, इस प्रकार यहाँ अर्थापत्ति अलङ्कार है।

अलङ्कार विवेक नामक अष्टमशिखा समाप्त।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग्रन्थपरिशिष्टरूपः

# अष्टमशिखाऽऽलोकः ।

## स्मरणम्—

"सदृशानुभवाद् वस्तुस्मृतिः स्मरणमुच्यते" । [ विश्वनाथः ]

अनुरूपस्य वस्तुनो दर्शनाऽऽदिना यस्य कस्यापि अन्यस्य वस्तुनः स्मरणं स्मरणं नाम अलङ्कारः ।

यथा—

"दिव्यानामपि कृतविस्मयां पुरस्ताद् अम्भस्तः स्फुरदरविन्दचारुहस्ताम् ।

---

( परिशिष्टव्याख्यानम् )

स्मरणालङ्कारं लक्षयति—सदृशेति । सदृशानुभवात्—सदृशस्य आकारेण गुणादिना वा तुल्यस्य वस्तुनः, अनुभवाद् ज्ञानात्, अनुभवशब्दोऽत्र ज्ञानसामान्यपरः, तेन स्मरणस्यापि संग्रहो बोध्यः । वस्तुस्मृतिः—वस्त्वन्तरस्य स्मरणम्, स्मरणम्—स्मरणालङ्कारः, उच्यते—व्यपदिश्यते । व्याचष्टे—अनुरूपस्येति । अनुरूपस्य—सदृशस्य । दर्शनादिना—आदिपदेन श्रवणादेर्ग्रहणम् । यस्य कस्यापि—अनुभूतेन सदृशस्य असदृशस्य वा । अयं भावः—स्मृतेः यत्किञ्चित्सादृश्यज्ञान-प्रयोज्यत्वमात्रं विवक्षितम्, न तु सादृश्ये स्मर्यमाणसम्बन्धित्वमपि ।

उदाहरति—दिव्यानामिति । शिशुपालवधस्याष्टमे जलविहारवर्णनप्रसङ्गे पद्यमिदम् । शौरिः—शूरसेनस्य गोत्रापत्यं श्रीकृष्णः, दिव्यानामपि—दिवि भवादिव्याः, तेषाम्, देवानामपि कृतविस्मयाम्—सौन्दर्यातिरेकेण जनिताद्भुतरसाम्, स्फुरदरविन्दचारुहस्ताम्—स्फुरद्भ्यां शोभनाभ्याम्, कमलाभ्यां, चारू मनोहरौ हस्तौ, यस्यास्ताम्, कमलहस्तामित्यर्थः,

---

## अष्टमशिखाऽऽलोक

### स्मरण—

सदृश इति । अनुरूपस्य इति । सदृश वस्तु के ज्ञान ( देखना, सुनना आदि ) से किसी भी अन्य वस्तु की स्मृति को 'स्मरण' अलङ्कार कहते हैं ।

जैसे दिव्यानाम्–इति । द्युलोकवासी देवताओं को भी विस्मित करने वाली, मनोहर हाथ में सुन्दर कमल लिये हुए, सामने जल से बाहर निकलती हुई, लक्ष्मी के समान किसी स्त्री को देखकर भगवान् श्रीकृष्ण को समुद्र-मन्थन का स्मरण हो आया । समुद्र-मन्थन के समय समुद्र-जल से हाथ में कमल लिए हुए लक्ष्मी प्रकट हुई थी । यह पौराणिक इतिहास प्रसिद्ध है । [ यहाँ जल से बाहर निकलती हुई, हाथ में कमल लिये हुये लक्ष्मी के सदृश स्त्री

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



उद्वीक्ष्य श्रियमिव काञ्चिदुत्तरन्तीम् अस्मार्षीज्जलनिधिमन्थनस्य शौरिः" ॥ १ ॥
[ माघः ]

परिकरः—

"विशेषणैर्यत् साकूतैरुक्तिः परिकरस्तु सः" । [ मम्मटः ]

साकूतैः—साभिप्रायैः, विशेषणैः यद् विशेष्यस्याभिधानम्, स परिकरो नाम अलङ्कारः । यथा—

---

पुरस्तात्—अग्रतः अम्भसः—जलात्, उत्तरन्तीम्—निष्क्रामन्तीम्, अत एव श्रियमिव—सामुद्रादम्भसो निस्सरन्तीं कमलहस्तां कमलामिव स्थिताम्, काञ्चित्—स्त्रियम्, उद्वीक्ष्य—उत्कण्ठया दृष्ट्वा, जलनिधिमन्थनस्य—पुरा वृत्तस्य समुद्रमन्थनकर्मणः, अस्मार्षीत्—स्मृतवान् । मन्थनस्येति मातुः स्मरतीतिवत् सम्बन्धसामान्ये, अधीगर्थदयेशामिति कर्मणि वा षष्ठी । अत्र श्रीसदृश्या जलनिःसृतपद्महस्तस्त्रियो दर्शनात् समुद्रमन्थनक्रियायाः स्मरणात् स्मरणालङ्कारः । यद्यपि स्मर्यमाणमन्थनस्य न स्त्रिया सह सादृश्यम्, तथापि मन्थनस्मृतेः सादृश्यप्रयोज्यत्वमक्षतमेव । स्त्रियां श्रीसादृश्यदर्शनादेव मन्थनस्मरणात् । केचित्तु सदृशानुभवप्रयोज्यं सदृशविषयकमेव स्मरणं स्मरणालङ्कारमाहुस्तन्मते स्मर्यमाणस्य मन्थनस्य स्त्रीसदृशत्वाभावान्नेदमुदाहरणम् । तत्रेदमुदाहार्यम्—

अरविन्दमिदं वीक्ष्य खेलत्खञ्जनमञ्जुलम् । स्मरामि वदनं तस्याश्चारुचञ्चललोचनम् ॥

खेलत्खञ्जनमञ्जुलम्—खेलद्भ्याम् खञ्जनाभ्यां खञ्जननामकपक्षिभ्याम्, मञ्जुलं मनोहरम्, इदम्—पुरोवर्ति, अरविन्दम्—कमलम्, वीक्ष्य—दृष्ट्वा, चारुचञ्चललोचनम्—चारुणी सुन्दरे, चञ्चले, लोचने नेत्रे यत्र तादृशम्, तस्याः, वदनम्—आननम्, स्मरामि । अत्र वदनसदृशस्य अरविन्दस्य अनुभवात्, तत्सदृशस्य वदनस्य स्मरणमिति स्मरणालङ्कारः सदृशस्मरणात् ।

स्मृतिर्यथा—

सन्त्येवास्मिन् जगति बहवः पक्षिणो रम्यरूपा स्तेषां मध्ये मम तु महती वासना चातकेषु ।
यैरध्यक्षैरथ निजसखं नीरदं स्मारयद्भिः, स्मृत्यारूढं भवति किमपि ब्रह्म कृष्णाभिधानम् ॥

अत्र 'एकसम्बन्धिज्ञानमितरसंबन्धिस्मारकम्' इति न्यायेन चातकदर्शनात्तत्सम्बन्धिनो भगवत्सदृशस्य जलधरस्य स्मृतिरुदेति । तथा च भगवतः कृष्णस्य स्मरणम् । सदृशानुभवादित्युक्त्या सादृश्यमूलकस्यैव चमत्कारिणः स्मरणस्यालंकारत्वमिष्टम् । न तु चिन्तादिप्रयोज्यस्यापीत्यलमतिप्रसङ्गेन ।

---

को देख कर पहले लक्ष्मी का स्मरण हुवा, फिर तत्सम्बन्धी समुद्रमन्थन का इसलिये यह स्मरण अलङ्कार है ]

परिकर—

विशेषणैरिति । साकूतैरिति । साभिप्राय विशेषणों के साथ विशेष्य की उक्ति को 'परिकर' अलङ्कार कहते हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri


"तव प्रसादात् कुसुमाऽऽयुधोऽपि सहायमेकं मधुमेव लब्ध्वा ।
कुर्य्यां हरस्यापि पिनाकपाणेः धैर्य्यच्युतिं के मम धन्विनोऽन्ये ?" ॥ २ ॥

अत्र कुसुमाऽऽयुध इति विशेषणं वक्तुर्निःसाराऽऽयुधत्वं द्योतयति, पिनाकपाणेरिति च रुद्रस्य महासाराऽऽयुधत्वम्, इत्युभयं साभिप्रायं विशेषणम् ।

अधिकम्—

"अधिकं पृथुलाऽऽधारादाधेयाऽऽधिक्यवर्णनम् ।

---

परिकरं लक्षयति—विशेषणैरिति । यत्र, साकूतैः-साभिप्रायैः, विशेषणैः, उक्तिः-पुष्टिः, प्रकृतार्थस्येति शेषः, सः, परिकरः-परिकरालंकार इत्यर्थः । विशेषणानां साभिप्रायत्वं च प्रकृतार्थोपपादकचमत्कारिव्यङ्ग्यकत्वम् । अयं भावः—यत्र विशेषणानि कंचन प्रकृतार्थोपपादकं चमत्कारिणं व्यङ्ग्यार्थं व्यञ्जन्ति तत्र परिकरालंकारो भवति ।

उदाहरति—तवेति । कुमारसंभवे तृतीये इन्द्रं प्रति कामस्योक्तिरियम् । हे इन्द्र ! तव, प्रसादाद्-अनुग्रहात्, कुसुमायुधोऽपि-कुसुमानि पुष्पाण्येव, आयुधम् अस्त्रम्, यस्य तादृशोऽपि, अतिदुर्बलास्त्रोऽपीति भावः, अहम् एकम्-केवलम्, मधुमेव-वसन्तमेव, सहायम्-साहाय्यप्रदम्, लब्ध्वा, पिनाकपाणेः-पिनाकः अजगवाख्यं धनुः, पाणौ यस्य तादृशस्य, सर्वधनुर्धारिणां गुरोः महावीरस्य हरस्यापि-हरति संहरति त्रिलोकीमिति हरस्तस्य; त्रिभुवनप्रलयहेतोः, धैर्यच्युतिम्-धैर्यहानिम्, कुर्याम्-कर्तुं शक्नुयाम् । अन्ये-पिनाकपाणेः हराद् इतरे, धन्विनः-धनुर्धराः, मम, अग्रे, के ? न केऽपि अतितुच्छा इति भावः । इन्द्रानुग्रहाद् वसन्तसाहाय्यमात्रेणाहं (कामः) हरमप्यधीरं विदधीय किमुतान्यान् साधारणान् भटान्' इति सरलो वाक्यार्थः । अत्र कामस्य हरविजये इन्द्रप्रसादो वसन्तसाहाय्यं च कविना अपेक्षणीयतया प्रतिपादितमिति तदुपपत्तये कामस्य निःसारायुधतया दुर्बलत्वबोधनाय कुसुमायुध इति, हरस्य सारायुधतया बलवत्त्वबोधनाय, पिनाकपाणेरिति विशेषणं साभिप्रायम्, दुर्बलस्य सबलेन साम्मुख्ये प्रसक्ते परेषामनुग्रहः साहाय्यं वा नियतमपेक्षणीय भवत्येव । लक्ष्यसमन्वयं करोति—अत्रेति । वक्तुः-कविनिबद्धवक्तुः कामस्येत्यर्थः, काव्यलिङ्गे समर्थको हेतुर्वाच्यः, परिकरे तु व्यङ्ग्य इत्यनयोर्भेदः ।

---

जैसे तव इति । यद्यपि (कोमल) पुष्प मेरे शस्त्र हैं, तथापि तुम्हारी कृपा से केवल अकेले बसन्त की सहायता प्राप्त करके (एक बार तो) पिनाकधारी रुद्र का भी धीरज छुड़ा सकता हूँ, अन्य धनुर्धारियों की तो मेरे सामने कथा ही क्या है । अत्र इति । यहाँ 'कुसुमायुध' इस विशेषण से प्रतीत होता है कि वक्ता (कामदेव) के आयुध निःसार हैं । और 'पिनाकपाणेः' इस विशेषण से प्रतीत होता है कि रुद्र का आयुध बड़ा दृढ़ है । इस प्रकार दोनों ही विशेषण विशेष अभिप्राय के सूचक हैं ।

अधिक—

अधिकम् इति । अतिविपुलस्य इति । यदि कवि अपनी प्रतिभा द्वारा अतिविपुल आधार की अपेक्षा (वस्तुतः अत्यन्त छोटे) आधेय में अथवा अतिमहान् आधेय की अपेक्षा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


पृथ्वाधेयाद् यदाधाराऽऽधिक्यं तदपि तन्मतम्" ॥ ३ ॥ [ चन्द्रालोकः ]

अतिविपुलस्य आधारस्य अपेक्षया आधेयस्य, अथवा अतिविपुलस्य आधेयस्य अपेक्षया आधारस्य आधिक्यं कविना स्वप्रतिभाद्वारा यदि आविष्क्रियते, तदा अधिकं नाम अलङ्कारः।

क्रमेण यथा—

"युगान्तकालप्रतिसंहृताऽऽत्मनो जगन्ति यस्यां सविकाशमासत।
तनौ ममुस्तत्र न कैटभद्विषस्तपोधनाभ्यागमसम्भवा मुदः" ॥ ४ ॥

---

अधिकं लक्षयति—अधिकमिति। पृथुलाधारात्-पृथुलाद् आधेयापेक्षया विशालाद्, आधाराद्, आधेयाधिक्यवर्णनम्-आधेयस्य, यद् आधिक्यम् अतिशयः, तद्वर्णनम्, अधिकम्-अधिकालङ्कारः, भवतीति शेषः। यत्, पृथ्वाधेयात्-पृथोराधेयात्, आधाराधिक्यम्-आधारस्य, आधिक्यम्, वर्ण्यते, तदपि, तद्-अधिकम्, मतम्-इष्टम्। व्याचष्टे—अतिविपुलस्येति।

आधारापेक्षया आधेयाधिक्यवर्णनात्मकमधिकमुदाहरति—युगान्त इति। शिशुपालवधे प्रथमे नारददर्शनहर्षातिरेकं प्राप्तवतो भगवतः कृष्णस्य वर्णनमिदम्। युगान्तकाले-युगस्य कृतत्रेतादेः, अन्तकाले प्रलयसमये, प्रतिसंहृतात्मनः-प्रतिसंहृताः आत्मनि उपसंहृताः, आत्मानो जीवाः, येन, तादृशस्य, कैटभद्विषः-कैटभं तन्नामकं दैत्यं द्वेष्टि, तादृशस्य, हरेः, यस्याम्, तनौ, जगन्ति-भुवनानि, सविकाशम्-सविस्तारम् असंबाधम्, आसत-अतिष्ठन्। तत्र-तस्याम्, हरेः, तनौ-शरीरे, तपोधनाभ्यागमसंभवाः-तपोधनस्य तप एव धनं यस्य तस्य, तपस्विनो नारदस्य, अभ्यागमेन आगमनेन, संभवन्तीति तादृश्यः [ पचाद्यच् ] मुदः-आनन्दाः, न ममुः-अत्यधिकत्वात् साकल्येन मातुं न शेकुरिति भावः। अत्र हरेस्तनुराधारः, मुदश्च आधेयाः, यद्यपि चतुर्दशभुवनभरणपर्याप्ततया आधार आधेयापेक्षया पृथुलः, तथापि तत्र पृथुल आधारे आधेयस्यामितिवर्णनाद् आधारापेक्षया आधेयस्याधिक्यं बोधितमित्यधिकमत्रालङ्कारः।

---

(वस्तुतः अत्यन्त छोटे) आधार में महत्त्व का प्रदर्शन करे तब 'अधिक' अलङ्कार माना जाता है।

क्रमशः जैसे—युगान्त इति। प्रलयकाल में समग्र जीवों का संहार करने वाले कैटभ नामक असुर के शत्रु भगवान् विष्णु के जिस शरीर में तीनों लोक खुले खुले (बिना भीड़ भाड़ के) समा गए, उस शरीर में तपस्वी नारद जी के आगमन से होने वाला हर्ष नहीं समा सका। [ यहाँ समस्त जगत् का आधार भगवान् का शरीर यद्यपि अतिविपुल है, तथापि उसकी अपेक्षा आधेय हर्ष को बड़ा बताया है, क्योंकि वह (हर्ष) उसमें नहीं समा सका। इसलिये यह 'अधिक' अलङ्कार है। ]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


"किमधिकमस्य ब्रूमो महिमानं वारिधेर्हरियंत्र ।
अज्ञात एव शेते कुक्षौ निक्षिप्य भुवनानि" ॥ ५ ॥ [ विश्वनाथः ]

विशेषः—

"विशेषः ख्यातमाधारं विनाऽप्याधेयवर्णनम् ।
विशेषः सोऽपि यद्येकं वस्त्वनेकत्र वर्ण्यते ॥ ६ ॥
किञ्चिदारम्भतोऽशक्यवस्त्वन्तरकृतिश्च सः" । [ चन्द्रालोकः ]

आधारसवर्णयित्वैव यदि आधेयं वर्ण्यते, यद्वा—यदि एकं यत् किमपि वस्तु अनेकत्र वर्ण्यते, अथवा—यस्य कस्यापि वस्तुनः आरम्भेण अन्यस्य अशक्यस्य वस्तुनः कृतिः—वर्णनया निर्माणमपि विशेषनामालङ्कारः । क्रमेणोदाहरणम्—

---

आधेयापेक्षयाधाराधिक्योदाहरणं यथा—किमधिकमिति । अस्य—जगत्प्रसिद्धस्य, वारिधेः—क्षीरोदधेरित्यर्थः, अधिकम्—अतिरिक्तम्, महिमानम्—महत्त्वम्, किं ब्रूमः—किं वर्णयामः, यत्र, हरिः—नारायणः, कुक्षौ—स्वोदरे, भुवनानि—अखिलान् लोकान्, निक्षिप्य—निवेश्य, अज्ञात एव—केनचिदप्यविदित एव, शेते—स्वपिति । अत्र हरिराधेयः, वारिधिश्च आधारः । यद्यपि अन्तर्निक्षिप्तनिखिललोकतया आधेय आधारापेक्षया पृथुलः, तथापि पृथुलस्यापि तस्याज्ञाततयैकदेशावस्थितिवर्णनेन तदपेक्षया आधारस्याधिक्यं बोधितमित्यत्राप्यधिकालङ्कृतिः ।

त्रिविधं विशेषं लक्षयति—विशेषमिति । ख्यातम्—प्रसिद्धम्, आधारम्, विनापि, प्रसिद्धस्य आधारस्याभावेऽपीति समस्तार्थः । आधेयवर्णनम्, विशेषः—विशेषनामालङ्कारः उक्त इति शेषः । अयं भावः—यस्य वस्तुनो य आधारः प्रसिद्धः, तदभावेऽपि तस्य वस्तुनो वर्णनं प्रथमो विशेषालङ्कारो भवति ।

द्वितीयं विशेषमाह—विशेष इति । यदि, एकम्, वस्तु, अनेकत्र—अनेकस्मिन्नाधारे वर्ण्यते, सोऽपि विशेषः, उच्यत इति शेषः । अपि-शब्दादस्य द्वितीयत्वं सूचितम् ।

तृतीयं विशेषं लक्षयति—किञ्चिदिति । किञ्चिदारम्भतः—कस्यचित् कर्मणः, आरम्भतः आरम्भेण, [ सार्वविभक्तिकस्तसिः ] अशक्यवस्त्वन्तरस्य—अशक्यस्य दुष्करस्य, वस्त्वन्तरस्य आरब्धादन्यस्य, कार्यस्य, कृतिश्च—करणं च, सः—विशेषः, उच्यत इति शेषः । अयं भावः—यदि एकं कार्यं कुर्वता जनेन तेनैव प्रयत्नेन अशक्यं कार्यान्तरमपि साध्यते तदा तृतीयो विशेष इति भावः । व्याचष्टे—आधारमिति । वर्णनयेति—निर्माणवर्णनमित्यर्थः । इतरत् सर्वं निगदव्याख्यातम् ।

---

किम् इति । इस समुद्र की महिमा के सम्बन्ध में अधिक क्या कहें, जहाँ भगवान् विष्णु समस्त भुवनों को अपनी कोख में डालकर शयन करते हैं और पता नहीं चलता कि समुद्र के किस कोने में पड़े हुए हैं ।

विशेष इति । अधारम् इति । यदि प्रसिद्ध आधार के बिना भी आधेय का वर्णन हो, अथवा एक वस्तु का अनेक आधारों में वर्णन किया जाय, अथवा किसी काम को प्रारम्भ करने से किसी दूसरे ही कठिन कार्य की सिद्धि बताई जाय तब 'विशेष' अलङ्कार होता है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



"दिवमप्युपयातानाम् आकल्पमनल्पगुणगणा येषाम् ।
रमयन्ति जगन्ति गिरः कथमिव कवयो न ते वन्द्याः ?" ॥ ७ ॥

[ अलंकारसर्वस्वम् ]

अत्राऽऽधारभूतकविजनानां स्वर्गंगतत्वेन तद्वर्णनं विनैव आधेयभूतानां तद्गिरां वर्णनम् ।

"कानने सरिदुद्देशे गिरीणामपि कन्दरे ।
पश्यन्त्यन्तकसङ्काशं त्वामेकं रिपवः पुरः" ॥ ८ ॥
"गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ ।
करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किं न मे हृतम् ?" ॥ ९ ॥ [ रघु० ]

---

क्रमशः उदाहरति—दिवमिति । दिवम्—स्वर्गम्, उपयातानामपि—गतवतामपि, मृतानामपीति भावः । येषाम्—कवीनाम्, अनल्पगुणगणाः—अनल्पा बहवः, गुणानां गणा यासु तादृश्यः गिरः—सूक्तयः, काव्यरूपाः, आकल्पम्—प्रलयकालपर्यन्तम्, जगन्ति—लोकानिति भावः, रमयन्ति—आनन्दयन्तीति भावः, ते—अतीता अपि वर्तमानवत् परानन्दहेतवः, कवयः—काव्यकर्तारः, इह, कथं न वन्द्याः—कुतो न नमस्कार्याः अवश्यं नमस्कार्या इति भावः । अत्र कवय आधारास्तद्गिरश्च आधेयाः । तथा चाधारं विनैवाधेयकीर्तनाद् विशेषालङ्कारः । लक्ष्यसमन्वयं करोति—अत्रेति । तद्वर्णनं विनैव—तदुच्चारणं विनैव, तेषां कवीनामभावेऽपीति तात्पर्यार्थः ।

द्वितीयं विशेषमुदाहरति—कानन इति । कस्यचिद् राज्ञः स्तुतिरियम् । हे राजन्! एकम्—एकाकिनमपि, त्वाम्, रिपवः—त्वदरयः, कानने—वने, सरिदुद्देशे—सरितां नदीनाम्, उद्देशे-प्रदेशे, गिरीणाम्—पर्वतानाम्, कन्दरेऽपि—गुहायामपि, पुरः—अग्रतः स्थितम्, अन्तकसंकाशम्—यमतुल्यम्, पश्यन्ति—साक्षात् कुर्वन्ति । त्वद्भीत्या पलाय्य काननादिपु निलीना अपि त्वच्छत्रवः सर्वत्र स्वनिलयनस्थानेपु त्वां मृत्युमिव स्वाग्रतः पश्यन्तीति भावः । अत्रैकस्य राजरूपस्याधेयस्य अनेकत्र काननाद्याधारेपु वर्णनाद् द्वितीयो विशेषः ।

तृतीयं विशेषमुदाहरति—गृहिणीति । व्याख्यातचरमिदं पद्यम् १७१ पृष्ठे । अत्रेन्दु-

---

क्रमशः उदाहरण जैसे दिवम् इति । वे कवि वन्दना के योग्य क्यों नहीं हैं ? जो ( स्वयं तो ) स्वर्ग चले गए, परन्तु अनेक गुणों से परिपूर्ण जिन की वाणी प्रलयकाल तक संसार को आनन्दित करती रहती है । अत्र इति । यहाँ ( वाणी ) के आधारभूत कविजनों के स्वर्गवासी होने के कारण उनकी अनुपस्थिति में भी आधेयरूप ( उन कवियों में रहने वाली ) उनकी वाणियों का वर्णन किया गया है ।

कानने इति । हे राजन् ! तेरे शत्रु जङ्गल में, नदियों के किनारे, पहाड़ों की गुफाओं में भी एक तुझे ही अपने सामने यमराज के सदृश ( खड़ा ) देखते हैं । [ यहाँ एक ही वस्तु ( राजा ) का-कानन आदि अनेक आधारों में रहना बताया गया है । ]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



परिवृत्तिः—

"अर्थानां यो विनिमयः परिवृत्तिस्तु सा स्मृता"। [ दण्डी ]

समस्य न्यूनस्य अधिकस्य वा पदार्थस्य समेन अधिकेन न्यूनेन वा पदार्थान्तरेण परिवर्त्तनं परिवृत्तिः। क्रमेण यथा—

"तदा भगवता तेन दृष्टिं दत्त्वा रणाङ्गणे।
गृहीतं जीवितं तेषामचिरात् परिपन्थिनाम्"॥ १०॥

[ सरस्वतीकण्ठाभरणम् ]

"किमित्यपास्याऽऽभरणानि यौवने धृतं त्वया वार्द्धकशोभि वल्कलम्?।

---

मतीहरणरूपमेकं कार्यं कुर्वता मृत्युना तेनैव यत्नेन अशक्यस्य गृहिण्यादिहरणरूपस्य कार्यान्तरस्य करणात् तृतीयो विशेषः।

परिवृत्तिं लक्षयति—अर्थानामिति। यः अर्थानाम्—वस्तूनाम्, विनिमयः—एकस्य दानेन अपरस्य ग्रहणरूपं परस्परपरिवर्तनम्, सा परिवृत्तिः—परिवृत्तिनामालङ्कारः स्मृता। व्याचष्टे—समस्येति। तदेवं त्रिधा परिवृत्तिरलङ्कारो व्यवतिष्ठते। समस्य समेन विनिमये प्रथमा। न्यूनस्य अधिकेन विनिमये द्वितीया। अधिकस्य न्यूनेन विनिमये तृतीया।

तत्र प्रथमामुदाहरति—तदेति। जरासन्धेन सह श्रीकृष्णस्य संग्रामवर्णनमिदम्। तदा—तदानीं संग्रामसमये। तेन भगवता—श्रीकृष्णेन, रणाङ्गणे—संग्रामभूमौ, दृष्टिम्, दत्त्वा, शत्रुषु दृष्टिनिक्षेपमात्रेणेति भावः। अचिरात्—शीघ्रमेव, तेषाम्, परिपन्थिनाम्—शत्रूणाम्, जीवितम्—प्राणा इत्यर्थः। [ जातावेकवचनम् ] गृहीतम्—स्वीकृतम्। शत्रवो मारिता इति भावः। अत्र समयोर्दृष्टिजीवितयोरेकस्य दानेनापरस्य ग्रहणात् परस्परविनिमयरूपा प्रथमा परिवृत्तिः।

द्वितीयामुदाहरति—किमित्येति। कुमारसंभवे पञ्चमे प्रच्छन्नवटोर्महादेवस्य पार्वतीं प्रत्युक्तिरियम्। हे गौरि! किमिति—केन हेतुना, यौवने, त्वया—पार्वत्या, आभरणानि—

---

गृहिणी इति। इसकी व्याख्या १७१ पृष्ठ पर देखो। [ यहाँ मौत के केवल इन्दुमती-हरणरूप कार्य से गृहिणी आदि सर्वस्वहरणरूप कठिन कार्य की सिद्धि बताई गई है। ]

परिवृत्ति—

अर्थानाम् इति। समस्य इति। वस्तुओं के परस्पर विनिमय (किसी को एक वस्तु देकर उससे दूसरा वस्तु लेने) का नाम 'परिवृत्ति' है। विनिमय तीन प्रकार से होता है—समान वस्तु का समान वस्तु से, न्यून (निकृष्ट) का अधिक (उत्कृष्ट) से और अधिक का न्यून से।

क्रमशः उदाहरण जैसे तदा इति। उस समय (जरासन्ध के साथ युद्ध के अवसर पर) उन भगवान् श्री कृष्ण ने रणभूमि में दृष्टि देकर (केवल दृष्टिपातमात्र से) शीघ्र ही उन शत्रुओं का जान ले लिया। [ यहाँ दृष्टि देकर जीवित (प्राण) लेने का वर्णन है, दृष्टि और जीवन दोनों समान हैं, इसलिये यह समान वस्तु से समान वस्तु की परिवृत्ति है। ]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



वद प्रदोपे स्फुटचन्द्रतारका विभावरी यद्यरुणाय कल्पते ?'' ॥ ११ ॥ [कुमारसं०]

तस्य च प्रवयसो जटायुपः स्वर्गिणः किमिव शोच्यतेऽधुना।
येन जर्जरकलेवरव्ययात् क्रीतमिन्दुकिरणोज्ज्वलं यशः'' ॥ १२ ॥
[अलंकारसर्वस्वम्]

---

भूपणानि, अपास्य–विहाय, वार्द्धकशोभि–वृद्धस्य भावो वार्द्धकम्, [मनोज्ञादित्वाद् वुञ्] तत्र वृद्धावस्थायाम्, शोभत इति तादृशम्, वल्कलम्–वृक्षत्वक्, धृतम्–परिहितम् ? प्रदोपे–रजनीमुखे, स्फुटचन्द्रतारका–स्फुटाः प्रकटाः, चन्द्रस्तारकाश्च, यत्र तादृशी, विभावरी–रात्रिः, अरुणाय–सूर्याय, अरुणं गन्तुमित्यर्थः, [क्रियार्थोपपदस्य इत्यादिना चतुर्थी] कल्पते यदि–कल्पते किम् ? वद–ब्रूहि। दीप्यमानशशाङ्कतारके प्रदोपे यद्यरुण उदेति ततस्ते विभूपणापासनं वल्कलधारणं च संघटत इति भावः। अत्र आभरणवल्कलयोर्विनिमयः। तत्राभरणमधिकम्, वल्कलं न्यूनम्। तथा च अधिकत्यागेन न्यूनस्वीकाररूपस्य विनिमयस्योदाहरणमिदम्। इद–मलङ्कारसर्वस्वकारानुरोधेन। तन्मते 'किंचित् त्यक्त्वा कस्यचिदादानम्' एतावन्मात्रस्यैव परिवृत्तिलक्षणत्वात्। रसगङ्गाधरकृतस्तु—

'परकीययत्किञ्चिद्वस्त्वादानविशिष्टं परस्मै स्वकीययत्किञ्चिद्वस्तुसमर्पणं परिवृत्तिः' इति परिवृत्तेर्लक्षणमुक्त्वा सोऽयं दानादानव्यवहारः कविप्रतिभाप्रसूतश्चेत्तदैव चमत्कृतिहेतुतया अलङ्कारत्वं भजत इत्याहुः। अत एव—

'क्रीणन्ति प्रविकचलोचनाः समन्ताद् मुक्ताभिर्वदरफलानि यत्र वालाः'

इत्यादौ वास्तव आदानप्रदाने नायमलङ्कारः। एवमेव प्रकृतपद्येऽपि आभरणत्याग–पूर्वकवल्कलादिग्रहणस्य वास्तवत्वेन कविकल्पितत्वाभावान्नालङ्कारत्वम्। तथा च तन्मतेन—

'मया तु हृदयं दत्त्वा गृहीतो मदनज्वरः'

इत्युदाहरणं बोध्यम्। अत्र अधिकस्य हृदयस्य दानेन न्यूनस्य मदनज्वरस्य ग्रहणम्। इत्यलं पल्लवितेन।

तृतीयामुदाहरति—तस्य चेति। येन–जटायुपा, जर्जरकलेवरव्ययात्–जर्जरस्य जरा–जीर्णस्य, नश्वरस्य, कलेवरस्य स्वशरीरस्य, व्ययाद् दानात्, इन्दुकिरणोज्ज्वलम्–इन्दुकिरण–वच्चन्द्ररश्मिवद्, उज्ज्वलं निर्मलम्, यशः–कीर्तिः, क्रीतम्–विनिमये गृहीतम्, तस्य,

---

किमिति इति। हे पार्वती ! तुमने इस युवावस्था में आभूपण छोड़ कर वृद्धावस्था के अनुरूप वल्कल क्यों धारण कर लिये ? भला तू ही बता कि क्या प्रदोप के समय प्रकाशमान चन्द्र और ताराओं से युक्त रात्रि के स्थान में अरुणोदय (प्रभात) होना योग्य है ?। [यहाँ आभूपणों के वदले वल्कल धारण किये, इसलिये परिवृत्ति है। आभूपण उत्कृष्ट (अधिक) हैं, और वल्कल निकृष्ट (न्यून) हैं, इसलिये यहाँ अधिक से न्यून की 'परिवृत्ति' है]।

तस्य इति। अव उस स्वर्गवासी वृद्ध जटायु का शोक क्यों करते हो। जिसने अपना जरा-जीर्ण शरीर देकर चन्द्र किरणों के समान उज्ज्वल यश खरीदा है। [यहाँ जीर्ण शरीर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



एषु उदाहरणेषु क्रमेण दृष्टिर्जीवितयोः समत्वेन, आभरणवल्कलयोरधिकन्यूनत्वेन, जर्जरकलेवरयशसोर्न्यूनाधिकत्वेन च विनिमयः।

पर्य्यायः—

"एकं क्रमेणानेकस्मिन् पर्य्यायोऽन्यस्ततोऽन्यथा"। [ मम्मटः ]

यत्र एकं वस्तु अनेकविधे वस्तुनि, अनेकविधं वा वस्तु एकस्मिन्। वस्तुनि भवति क्रियते वा, स पर्य्यायः। तथा च—एकस्य वस्तुनः अनेकगोचरभवनाऽऽत्मा, अनेकगोचरकरणाऽऽत्मा चेति द्विविधः पर्य्यायः, तथा अनेकस्य वस्तुनः एकगोचरभवनाऽऽत्मा, एकगोचरकरणाऽऽत्मा चेति द्विविधः, साकल्येन चतुर्विधः पर्य्याय इति हृदयम्। क्रमेण यथा—

"स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधराः पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिताः।

---

**प्रवयसः**—वृद्धस्य, **अधुना**—इदानीम्. **स्वर्गिणः**—स्वशुभकर्मणा प्राप्तस्वर्गस्य, **जटायुषः**—जटायुनाम्नो गृध्रस्य, विषये, **किमिव शोच्यते**—किमर्थं शोकः क्रियते। परोपकृतये क्षपितनश्वरजीवनस्य उत्तमपदं प्राप्तवतो जटायुषः शोको न कर्तव्य इति भावः। अत्र न्यूनेन नश्वरवपुषा चिरस्थायिन उत्तमस्य यशसो विनिमयः। लक्ष्यसमन्वयं करोति—**एष्विति**।

पर्यायं लक्षयति—**एकमिति**। यदि **एकम्**—वस्तु, **अनेकस्मिन्**—आधारे, **क्रमेण**—कालभेदेन, भवति क्रियते वा तर्हि **पर्यायो** नामालङ्कारो भवति। ततः—पूर्वोक्तात् प्रकारात्, **अन्यथा**—अन्येन प्रकारेण, अनेकस्य वस्तुन एकस्मिन्नाधारे क्रमेण भवने करणे वा इति भावः। **अन्यः** द्वितीयः पर्याय इत्यर्थः। व्याचष्टे—**यत्रेति**। **अनेकगोचरभवनात्मा**—अनेकस्मिन्, गोचरे आश्रये, भवनमवस्थानमेव, आत्मा स्वरूपं यस्य स इति विग्रहः। एवमन्यत्रापि विग्रहीतव्यम्।

उदाहरति—**यथेति**। **स्थिता इति**। कुमारसंभवे पञ्चमे पार्वतीतपस्यावर्णनपरं पद्यमिदम्।

---

से उज्ज्वल यश का परिवर्तन हुआ है, शरीर जीर्ण होने से निकृष्ट ( न्यून ) है और यश उज्ज्वल होने से उत्कृष्ट ( अधिक ) है। इसलिये यह न्यून से अधिक की परिवृत्ति' है।]

**एषु इति**। इन पंक्तियों का अभिप्राय क्रमशः पूर्वोक्त तीनों उदाहरणों के अन्त में लिख दिया गया है।

पर्याय—

**एकम् इति**। **यत्र इति**। जहाँ एक वस्तु क्रमशः अनेक स्थानों में हो या की जाय अथवा इसके विपरीत अनेक वस्तुएँ क्रमशः एक स्थान में हों या की जायँ वहाँ 'पर्याय' अलंकार होता है। पर्याय के भेद बताते हैं—**तथा च इति**।

एक वस्तु का अनेक आश्रयों में होना और अनेक आश्रयों में करना; इस प्रकार पर्याय के दो भेद बने।

इसी प्रकार अनेक वस्तुओं का एक आश्रय में होना और एक आश्रय में करना ये दो भेद हुये। सब मिलाकर पर्याय के चार भेद हुये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



वलीषु तस्याः स्खलिताः प्रपेदिरे क्रमेण नाभिं प्रथमोदबिन्दवः" ॥ १३ ॥
"विसृष्टरागादधरान्निवर्त्तितः स्तनाङ्गरागारुणिताच्च कन्दुकात्।
कुशाङ्कुराऽऽदानपरिक्षताङ्गुलिः कृतोऽक्षसूत्रप्रणयी तया करः" ॥ १४ ॥
[ कुमारसं० ]

---

तपस्यन्त्याः पार्वत्या ग्रीष्मर्तुरतीतः, वर्षाश्च प्रारब्धाः। **प्रथमोदबिन्दवः**–उदकस्य बिन्दव उदबिन्दवः 'मन्थौदन–' इत्यादिना उदकस्य उदादेशः। प्रथमे वर्षारम्भे प्रथमपतिताः, उदबिन्दवो जलकणाः, **तस्याः**–समाधिस्थायाः पार्वत्याः, **पक्ष्मसु–क्षणम्, स्थिताः**–स्थितिं गताः, स्थिता इत्यनेन पक्ष्मणां सान्द्रत्वं क्षणमित्यनेन स्नैग्ध्यं च गम्यते। अनन्तरं **ताडिताधराः**–ताडितः आहतः अधरोष्ठो यैस्तादृशाः, एतेन अधरस्य मार्दवं गम्यते। ततः **पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिताः**–पयोधरयोः स्तनयोः, उत्सेधे उपरिभागे, निपातेन पतनेन, चूर्णिताः जर्जरिताः, कुचकाठिन्यादिति भावः। तदनु **वलीषु**–उदररेखासु, स्खलिताः, निम्नोन्नतत्वादिति भावः। इत्थं **चिरेण** न तु शीघ्रम्, प्रतिबन्धबाहुल्यादिति भावः। **नाभिम्, प्रपेदिरे**–प्रविष्टाः, न तु निर्जग्मुः। एतेन नाभेर्गाम्भीर्यं गम्यते। अत्र बिन्दुरूपमेकं वस्तु क्रमशः पक्ष्माद्यनेकस्मिन्नाश्रये भवति। अत एवात्र पर्यायालङ्कारः।

द्वितीयपर्यायमुदाहरति—**विसृष्टेति**। इदमपि कुमारसंभवे पञ्चमे तपस्यन्त्याः पार्वत्या वर्णनम्। **तया**–पार्वत्या, **विसृष्टरागात्**–त्यक्तलाक्षारसरञ्जनात्, **अधरात्** अधरोष्ठात्, **निवर्त्तितः**, रागत्यागेन निष्प्रयोजनत्वादिति भावः। तथा **स्तनाङ्गरागारुणितात्**–स्तनाङ्गरागेण, अरुणिताद् अरुणीकृतात्, [ पतनसमये तस्य स्तनयोरुपरोधादिति भावः ] **कन्दुकाच्च**, निवर्तितः **कुशाङ्कु-**

---

क्रमशः उदाहरण जैसे **स्थिता** इति। वर्षा की पहली बूँदें पहले पार्वती की पलकों पर गिर कर वहाँ क्षणमात्र ठहरीं, फिर वहाँ से लुढ़क कर उन्होंने निचले होंठ को ताड़ित किया, वहाँ से भी स्तनों पर गिर कर चूर-चूर हो गईं, फिर पेट की सलवटों में जा घुसीं, इस प्रकार क्रमशः उसकी नाभि में जा पहुँचीं। [ यहाँ जल बिन्दु रूप एक वस्तु का क्रमशः पलक आदि अनेक आश्रयों में होना बताया गया है। ]

**विसृष्ट** इति। जिस पर राग ( लाक्षारस ) लगाना छोड़ दिया है, ऐसे होंठ से और स्तन में लगे हुये अङ्गराग के सम्बन्ध से जो लाल हो गया है ऐसे गेंद से हटाए हुये, कुशा के अङ्कुरों को लेते समय जिसकी उँगलियों में घाव लग गये हैं, ऐसे अपने हाथ को पार्वती ने ( अब केवल ) रुद्राक्षमाला का प्रेमी बना लिया है। [ अर्थात् पार्वती पहले जिस हाथ से अधरोष्ठ पर लाली लगा कर अपना श्रृंङ्गार करती थी, गेंद खेला करती थी, आज उस हाथ से शिव-पूजा के लिये कँटीली कुशा उखाड़ती है जिससे कि उसकी उँगलियों में घाव तक हो गये हैं, और आज उस हाथ में शिव का नाम जपने के लिये केवल रुद्राक्षमाला ही रहती है। यहाँ एक ही हाथ का क्रमशः अधरोष्ठ आदि अनेक आधारों के साथ सम्बन्ध किया गया है। ]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



मधुरिमरुचिरं वचः खलानाम् अमृतमहो ! प्रथमं पृथु व्यनक्ति ।
अथ कथयति मोहसेतुमन्तर्गतमिव हालहलं विषं तदेव" ॥ १५ ॥

[ मम्मटः ]

"तद्गेहं नतभित्ति, मन्दिरमिदं लब्धावकाशं दिवः
सा धेनुर्जरती, नदन्ति करिणामेता घनाऽऽभा घटाः ।

---

रादानपरिक्षिताङ्गुलिः–कुशाङ्कुराणाम्, आदानेन लवनेन, परिक्षता व्रणिताः, अङ्गुलयो यस्य तादृशः, करः–पाणिः अक्षसूत्रप्रणयी–अक्षमालासहचरः, कृतः । अत्रैक एव करः प्रथममधरकन्दुकयोः क्रियते, तदनु अक्षसूत्रे, इत्येकस्य अनेकगोचरकरणात्मा द्वितीयः पर्यायः ।

तृतीयमनेकस्यैकगोचरभवनात्मानं पर्यायमुदाहरति—मधुरिमेति । अहो–महदाश्चर्यम्, मधुरिमरुचिरम्–मधुरिम्णा माधुर्येण, रुचिरं मनोहरम्, खलानाम्–दुर्जनानाम्, वचः–वाक्यम्, प्रथमम्–पूर्वम्, पृथु–बहुलम्, अमृतम्, व्यनक्ति–प्रकाशयति, अथ–अनन्तरम्, विचार्यमाणमिति भावः, तदेव खलवचः, अन्तर्गतम्, मोहहेतुम्–मोहोत्पादकम्, हालहलमिव विषमिव, कथयति–सूचयति । अत्रामृतविषयरूपमनेकं वस्तु एकस्मिन् खलवचोरूप आधारे क्रमेण भवतीति तृतीयः पर्यायः ।

चतुर्थमनेकस्यैकगोचरकरणात्मानं पर्यायमुदाहरति—तद्गेहमिति । आनन्दवर्धनकृते ध्वन्यालोके उदाहृतं पद्यमिदम् । सुदाम्नो मन्दिरमालोक्य कस्यचिदुक्तिरियमिति सुधासागरे भीमसेनः । अयम्, द्विजः–सुदामा नाम ब्राह्मणः, दिवसैः, नतु मासैर्वर्षैर्वा, इयतीम्–इयदधिकम्, भूमिम्–समृद्धस्थितम्, समारोपितः–प्रापितः, इति, आश्चर्यम् । बहुसमयसाध्यसम्पदोऽत्यल्पकालेनैव सिद्धिराश्चर्यहेतुः । तथा हि—तद्–पूर्वदृष्टम्, गेहम्, नतभित्ति–नता नम्रा, भित्तिः कुड्यम्, यस्य तादृशम्, जीर्णप्रायमित्यर्थः, आसीदिति शेषः । इदानीं तु दिवः–गगनाद्, लब्धावकाशम्–लब्धः अवकाशः यस्य तादृशम्, गगनविस्तीर्णम् । इदम्, मन्दिरम्–राजनिवासोचितं गृहम्, जातमित्यर्थः । सा–पूर्वदृष्टा, जरती–वृद्धा, अत्यल्पदुग्धा, धेनुः–गौः, इदानीं तु एताः, घनाभाः–मेघवर्णाः, करिणाम्–गजानाम्, घटाः–श्रेणयः, नदन्ति–बृंहन्ति । पूर्वं

---

मधुरिम इति । आश्चर्य है कि मधुरता के कारण मनोहर दुष्टों की वाणी पहले तो खूब अमृत रस को अभिव्यक्त करती है, परन्तु बाद में वही वाणी मोह को उत्पन्न करने वाले–मानों अपने अन्दर भरे हुए-कालकूट विष को प्रकट करती है । [ यहाँ अमृत और विष इन अनेक वस्तुओं का क्रमशः खलवचन रूपी एक आधार में होना बताया गया है । ]

तद्गेहम् इति । पहले तो यह झोपड़ी थी जिसकी दीवारें भी झुक गई थीं, और अब यह गगनचुम्बी प्रासाद है । पहले एक बुढ़िया गाय थी, और अब ये मेघ के सदृश ( श्याम ) हाथियों के झुण्ड चिग्घाड़ रहे हैं । पहले ( धान कूटते समय की ) धीमी-धीमी मुसल की आवाज ( सुनाई देती ) थी, पर आज यहाँ नारियों का मनोहर संगीत हो रहा है । आश्चर्य है कि विधाता ने ( कुछ ही ) दिनों में ( थोड़े से ही समय में ) इस ब्राह्मण को इतनी उन्नत दशा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



स क्षुद्रो मुसलध्वनिः, कलमिदं सङ्गीतकं योषिताम्
आश्चर्यं दिवसैर्द्विजोऽयमियतीं भूमिं समारोपितः !!" ॥ १६ ॥

[ मम्मटः ]

परिसङ्ख्या—

"प्रश्नादप्रश्नतो वापि कथिताद्वस्तुनो भवेत्।
तादृगन्यव्यपोहश्चेच्छाब्द आर्थोऽथवा तदा ॥ १७ ॥
परिसङ्ख्या" चातुर्भेदा दर्पणे समुदीरिता ॥

प्रश्नं कृत्वा प्रश्नमकृत्वा वा शब्दसाहाय्येन अर्थसामर्थ्याद्वा कस्माचिद् वस्तुनः कस्यचिद् वस्तुनः व्यवच्छेदः यदा प्रदर्श्यते, तदा परिसङ्ख्या नाम अलंकारः। अयञ्च प्रश्नपूर्वकं कस्माच्चिद् वस्तुनः कस्यचिद् वस्तुनः शाब्दः व्यवच्छेदरूप इत्येकः, आर्थः पुनः द्वितीयः, एवं प्रश्नमन्तरा कस्माच्चिद् वस्तुनः कस्यचिद् वस्तुनः शाब्दः व्यवच्छेद-रूप इति तृतीयः, आर्थः पुनश्चतुर्थः साकल्येन चतुर्भेदः। क्रमेण यथा—

---

सः—बहुधा श्रुतः, क्षुद्रः, मुसलध्वनिः—मुसलस्य धान्यकुट्टनसाधनस्य अयोग्रस्य, ध्वनिः शब्दः, श्रूयते स्म, इदानीं तु कलम्—मधुरस्वरम्, योषिताम्—स्त्रीणाम्, संगीतकम्—नृत्यगीतवादित्र-ध्वनिजातं श्रूयते। अत्र नतभित्तिगृहगगनचुम्बिमन्दिरादीनामनेकेषां क्रमेणैकस्मिन् द्विजरूपाधारे (स्वामित्वसंबन्धेन) करणात् चतुर्थः पर्यायः।

परिसंख्यां लक्षयति—प्रश्नादिति। चेत्—यदि, प्रश्नात्—प्रश्नपूर्वकम्, अपि वा—अथवा, अप्रश्नात्—प्रश्नं विनैव, कथिताद्—वर्णिताद्, वस्तुनः—पदार्थात्, शाब्दः—साक्षाच्छब्द-प्रतिपाद्यः, आर्थो वा—अर्थसामर्थ्यगम्यो वा, तादृगन्यव्यपोहः—तादृशकथितवस्तुसदृशस्य, अन्यस्य अपरस्य, वस्तुनः, व्यपोहो व्यावृत्तिः, भवेत्, तदा, चतुर्भेदा—भेदचतुष्टयवती, परि-संख्या—परिसंख्यानामालङ्कृतिः, दर्पणे—साहित्यदर्पणनाम्नि ग्रन्थे, समुदीरिता—कथिता। विश्वनाथेनेति शेषः। व्याचष्टे—प्रश्नं कृत्वेति। शब्दसाहाय्येन—नञ्शब्देनेत्यर्थः। अर्थ-सामर्थ्याद्—नञ्शब्दं विनापीति भावः।

---

पर पहुँचा दिया। [यहाँ भी झुकी हुई दीवारों वाला घर' और 'गगनचुम्बी प्रासाद' आदि अनेक वस्तुओं का क्रमशः दरिद्र ब्राह्मण (सुदामा) रूपी एक आधार के साथ सम्बन्ध किया गया है।]

परिसंख्या—

प्रश्नाद् इति। यदि प्रश्न करके अथवा विना प्रश्न किये ही कही हुई किसी वस्तु से शब्द द्वारा अथवा अर्थ-बल से उस जैसी (कही हुई वस्तु के सदृश) किसी वस्तु की व्यावृत्ति (व्यवच्छेद) दिखाई जाय; तब 'परिसंख्या' अलङ्कार होता है। यह व्यावृत्ति चार प्रकार की है—प्रश्नपूर्वक किसी वस्तु की शब्द द्वारा व्यावृत्ति में पहली, अर्थद्वारा व्यावृत्ति में दूसरी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



"किं भूषणं सुदृढमत्र ? यशो न रत्नं
किं कार्य्यम् ? आर्य्यचरितं सुकृतं न दुष्टम् ।
किं चक्षुरप्रतिहतं ? धिषणा, न नेत्रं
जानाति कस्त्वदपरः सदसद्विवेकम् ?" ॥ १८ ॥

अत्र किमिति प्रश्नपूर्वकं यशआदेः रत्नाऽऽदेः व्यवच्छेदः शाब्दः, नञा साक्षात् तस्याभिधानात् ।

"किमासेव्यं पुंसां ? सविधमनवद्यं द्युसरितः,
किमेकान्ते ध्येयं ? चरणयुगलं कौस्तुभभृतः ।

---

तत्र प्रश्नपूर्वकशाब्दव्यावृत्तिरूपां प्रथमामुदाहरति—किं भूषणमिति । अत्र-संसारे, सुदृढम्—अतिस्थिरम्, अनपायीति यावत्, भूषणम्—आभरणम्, किम्—किमस्ति ? यशः—कीर्तिः, सुदृढं भूषणमस्तीति शेषः, रत्नम्, न । सुदृढं भूषणं नास्तीति भावः । एवमेव प्रश्नानुसारेण सर्वत्र वाक्यशेषः कल्पनीयः । कार्यम्—कर्तव्यम्, किम्—किमस्ति ? आर्यचरितम्—आर्यैः सद्भिः, चरितम् अनुष्ठितम्, सुकृतम्—सत्कर्म, कार्यमिति शेषः, दुष्टम्—असत्कर्म, न न कार्यम् । अप्रतिहतम्—अवतारितप्रसरम्, चक्षुः—दर्शनसाधनम्, किम्—किमस्ति ? धिषणा—बुद्धिः, अप्रतिहतं चक्षुरस्तीति शेषः, नेत्रम्—नेत्रपदव्यपदेश्यमव्यवहितादिस्थूलपदार्थग्राहि इन्द्रियम्, न—अप्रतिहतं चक्षुर्नास्ति । तस्य प्रायो वार्द्धके कदाचिदल्पे वयस्यपि प्रतिहतत्वदर्शनात् । प्रकृतिस्थस्यापि व्यवहित-विप्रकृष्ट-सूक्ष्मादिग्रहणासामर्थ्याच्च । इत्थमभिमतोत्तरप्राप्त्या प्रसन्नः—प्रश्नकर्ता उत्तरदातारं प्रशंसति—जानातीति । त्वत्—त्वत्तः, अपरः—भिन्नः, [ अथवा त्वदपर इत्येकं समस्तं पदम्, प्रत्ययोत्तरपदयोश्चेति त्वादेशः ] कः—कतमः पुरुषः, सदसद्विवेकम्—सदसतोः विवेकं भेदम्, जानाति—न कोऽपीत्यर्थः । लक्षणसमन्वयं करोति अत्रेति । यशआदेः, पञ्चमीयम् । कीर्त्यादित इत्यर्थः । व्यवच्छेदः—व्यावृत्तिः । तस्य—व्यवच्छेदस्य ।

प्रश्नपूर्वकार्थव्यावृत्तिरूपां द्वितीयां परिसंख्यामुदाहरति—किमसेव्यमिति । पुंसाम्—मनुष्याणाम्, आसेव्यम् सेवनीयम्, किम्—किं वस्तु अस्ति ? उत्तरति—सविधमिति । अनवद्यम्—अनिन्द्यम्, स्तुतियोग्यमिति यावत्, द्युसरितः—गङ्गायाः, सविधम्—समीप्यम्, तटमिति

---

इसी प्रकार प्रश्न के विना किसी वस्तु से किसी वस्तु की शब्दद्वारा व्यावृत्ति में तीसरी, अर्थ-बल से व्यावृत्ति में चौथी ।

क्रमशः जैसे किम् इति । इस संसार में सुदृढ़ भूषण क्या है ? कीर्त्ति, रत्न नहीं । कर्तव्य क्या है ? साधु पुरुषों से अनुष्ठित पुण्यकर्म, दुष्टकर्म नहीं । बे-रोक-टोक देखने वाली आँख कौन-सी है ? बुद्धि, प्रसिद्ध चर्मचक्षु नहीं । भले बुरे का भेद तुम से अतिरिक्त कौन जानता है ? ( अर्थात् कोई नहीं, केवल तुम्हीं विवेक ज्ञानी हो । ) अत्र इति । इस पद्य में 'किम्' इस प्रकार प्रश्न उठा कर यश आदि से रत्न आदि की शब्द द्वारा व्यावृत्ति की गई है । क्योंकि ( 'न रत्नम्' इस वाक्य में ) नञ् से साक्षात् ( शब्द द्वारा ) व्यावृत्ति बताई गई है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



किमाराध्यम् ? पुण्यं, किमभिलषणीयञ्च ? करुणा,
यदासक्त्या चेतो निरवधिविमुक्त्यै प्रभवति" ॥ १९ ॥
[ अलङ्कारसर्वस्वम् ]

अत्र प्रतिषेधकस्य नञः व्यवच्छेद्यस्य पानगोष्ठ्यादेश्च शब्देनानुपात्तत्वात् किम्पदेन प्रश्नपूर्वकम् आर्थो व्यपोहः।

"भक्तिर्भवे, न विभवे, व्यसनं शास्त्रे, न युवतिकामास्त्रे।
चिन्ता यशसि, न वपुषि, प्रायः परिदृश्यते महताम्" ॥ २० ॥

---

यावत्। आसेव्यमिति शेषः। न पुनस्तदतिरिक्तं पानगोष्ठ्यादिसविधमासेव्यमिति भावः। **एकान्ते**—रहसि, **ध्येयम्**—ध्यानयोग्यम्, वस्तु **किम्**—किमस्ति ? उत्तरति—**चरणेति**। **कौस्तुभभृतः**—कौस्तुभं तदाख्यं मणिं बिभर्तीति तादृशस्य नारायणस्य, **चरणयुगलम्**, ध्येयमिति शेषः, न पुनः शब्दादिविषयजातं ध्येयमिति भावः। **आराध्यम्**—अर्जनीयम् वस्तु **किम्**—कतमदस्ति ? उत्तरति—**पुण्यम्**,आराध्यमिति शेषः न पुनः पापमिति भावः। **अभिलषणीयम्**—अभिलाषयोग्यं वस्तु, **किम्**, अस्ति ? उत्तरति—**करुणा**—दया, दयाख्यं वस्त्वभिलषणीयम्, नान्यत् किञ्चित् स्त्रीसुखादिकम् इति भावः। गङ्गातटादौ आसेव्यत्वादेर्हेतुमाह—**यदेति**। **यदासक्त्या**—येषु द्युसरित्सविधादिषु आसक्त्या आसङ्गेन, प्रीत्या, **चेतः**—अन्तःकरणम्, **निरवधिविमुक्त्यै**—अवधेर्निष्क्रान्ता इति निरवधिः, तस्यै निरवधये अनन्तायै, विमुक्त्यै सर्वदुःखध्वंसरूपाय मोक्षाय, **प्रभवति**—समर्थं भवति। लक्षणसमन्वयं करोति—**अत्रेति**। **व्यपोहः**—व्यावृत्तिः।

अप्रश्नपूर्वकशाब्दव्यावृत्तिरूपां तृतीयां परिसंख्यामुदाहरति—**भक्तिरिति**। **महताम्**—महात्मनाम्, **भक्तिः**—अनुरागः, **प्रायः**—बाहुल्येन, **भवे**—जगदुत्पत्तिहेतौ, भगवति शंकर एव, **परिदृश्यते**, **विभवे**—लौकिकैश्वर्ये, न परिदृश्यत इति शेषः। 'महतां प्रायः परिदृश्यते' इति पदत्रयं सर्वत्र संबन्धनीयम्। **व्यसनम्**—नैसर्गिकप्रवृत्तिः, **शास्त्रे**—मोक्षशास्त्रविचारणायाम् एव, **युवतिकामास्त्रे**—युवतिरूपे, कामस्य अस्त्रे आयुधे अथवा युवतीनां दर्शनसंभाषणादिरूपं यत्

---

**किम्** इति। मनुष्यों को किसका सेवन करना चाहिये ? पवित्र गङ्गातट का। ( पान गोष्ठी आदि का नहीं )। एकान्त में किसका ध्यान करना चाहिये ? कौस्तुभधारी भगवान् के चरणयुगल का ( शब्द आदि विषयों का नहीं )। अर्जन करने योग्य वस्तु क्या है ? पुण्य ( पाप नहीं )। अभिलाषा के योग्य क्या वस्तु है ? दया, ( स्त्री सुखादि नहीं )। जिन ( पूर्वोक्त गङ्गातट आदि ) में आसक्ति ( प्रेम ) करने से चित्त अनन्त मुक्ति को प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है। **अत्र** इति। इस पद्य में व्यावृत्ति करने वाला नञर्थ और पानगोष्ठी आदि व्यावर्त्य ( जिनकी व्यावृत्ति की गई है ) साक्षात् शब्द द्वारा नहीं कहे गए हैं, किंतु 'किम्' पद के द्वारा प्रश्न करके अर्थाद् ( अर्थबल से ) व्यावृत्ति ( निषेध ) हुई है।

**भक्तिरिति**। महात्माओं का अनुराग प्रायः शिव में ही देखा जाता है, ( सांसारिक ) ऐश्वर्य में नहीं। शास्त्र में ही ( उनका ) व्यसन होता है, युवतिरूप कामदेव के अस्त्र में नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अत्र किमादेरभावात् प्रश्नाभावः अथापि विभवाऽऽदेर्व्यवच्छेदो यः, स शाब्दः, नञा तदभिधानात्।

"सोऽर्थो यो निजहस्ते, तन्मित्रं यन्निरन्तरं व्यसने।
तद्रूपं यत्र गुणाः, तद्विज्ञानञ्च यत्र धर्मः स्यात्" ॥ २१ ॥

अत्र व्यवच्छेद्यस्य व्यवच्छेदकस्य च अनुपादानाद् आर्थः।

· तद्गुणः—

"स्वमुत्सृज्य गुणं योगादत्युज्ज्वलगुणस्य यत्।

---

कामाख्रम्, [उद्दीपकत्वाद्] तत्र न। चिन्ता—अनुध्यानम्, यशसि—कीर्तिविषय एव। वपुषि—नश्वरे शरीरे, न। लक्षणसमन्वयं करोति—अत्रेति।

अप्रश्नपूर्वकार्थव्यावृत्तिरूपां चतुर्थीं परिसंख्यामुदाहरति—सोऽर्थं इति। सः—स एव, अर्थः—धनम्, अस्ति, यः, निजहस्ते—स्वाधिकार इत्यर्थः, स्यात्, नान्यः परहस्तगतः। तादृशस्य धनस्य सत्त्वासत्त्वयोः समानत्वात्। तद्—तदेव, मित्रम्—सुहृद्, अस्ति। यद्, व्यसने—विपत्तौ, निरन्तरम्—निर्गतमन्तरं व्यवधानं यस्मात् तादृशं सन्निहितमित्यर्थः, स्यादिति सर्वत्र संवध्यते। नत्वैश्वर्यसहचारि। तद्—तदेव, रूपम्—सौन्दर्यम्, अस्ति, यत्र, गुणाः—दयादाक्षिण्यादयः, स्युरिति शेषः। नान्यद् गुणविहीनम्। गुणविहीनस्य निर्गन्धकिंशुककुसुमवदनादरणीयत्वादिति भावः। तद्—तदेव, विज्ञानम्—वैदुष्यम्, अस्ति, यत्र, धर्मः—धर्मानुष्ठानम्, स्यात्। न तु धर्माचरणशून्यम्, धर्मरहितस्य विज्ञानस्य निष्फलत्वादिति भावः। लक्षणसमन्वयं करोति—अत्रेति। व्यवच्छेद्यस्य—व्यावर्तनीयस्य परहस्तगतादेः। व्यवच्छेदकस्य—नञः। केचित्तु व्यावृत्तेरार्थत्व एव परिसंख्याया अलङ्कारत्वम्। शाब्दां तु व्यावृत्तौ परिसंख्यामात्रम्, न त्वलङ्कारत्वमपि। अतो भेदद्वयमेवास्या आहुः। अपरे पुनः व्यावृत्तेरार्थत्वेऽपि कविप्रतिभानिर्मितत्वाभावे नालङ्कारत्वम्। अन्यथा 'पञ्च पञ्चनखा भक्ष्याः' इत्यादावपि आर्थ्यास्तस्याः सत्त्वेन अलङ्कारत्वं स्यादित्याहुः। तन्मतेन—

'कौटिल्यं कचनिचये करचरणाधरदलेषु रागस्ते।
काठिन्यं कुचयुगले तरलत्वं नयनयोर्वसति॥'

एवन् 'यस्मिन्शासति वसुमति पाकशासने महानसेषु संतापः, शरधिहृदयेषु सशल्यता,

---

उनकी चिन्ता यश के विषय में ही होती है, (नश्वर) शरीर के विषय में नहीं। अत्र इति। इस पद्य में 'किम्' आदि (प्रश्नवाचक शब्द) के न होने से प्रश्न नहीं है। और 'विभव' आदि की शाब्द व्यावृत्ति हुई है; क्योंकि न कार (नञ्) से उसका (व्यावृत्ति का) कथन हुआ है।

सोऽर्थ इति। वही धन है जो अपने हाथ में हो। वही मित्र है जो विपत्ति के समय नजदीक रहे। वही सौन्दर्य है जिसमें गुण हों। वही बुद्धिमत्ता है जहाँ धर्म (कर्तव्य) का पालन हो। अत्र इति। यहाँ व्यावर्त्य और व्यावर्त्तक (नकार) दोनों का ग्रहण नहीं है, इसलिये व्यावृत्ति आर्थ-अर्थ-बल से हुई है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri


वस्तु तद्गुणतामेति भण्यते स तु तद्गुणः ॥ २२ ॥ [ मम्मटः ]

कस्यचित् सम्बन्धेन आत्मगुणं परित्यज्य स्वापेक्षया उत्कृष्टस्य गुणं गृहीत्वा तथाभवनं तद्गुणः। यथा—

"जगाद वदनच्छद्मपद्मपर्यन्तपातिनः।
नयन् मधुलिहः श्वैत्यमुदग्रदशनांशुभिः" ॥ २३ ॥ [ शिशुपालवधम् ]

उदात्तम्—

"लोकातिशयसम्पत्तिवर्णनोदात्तमुच्यते।

---

मञ्जीरेषु मौखर्यम्, भेरीषु ताडनम्', इत्यादावेव यत्र श्लेषभित्तिकाभेदाध्यवसायमूलकातिशयोक्तिमूलकत्वं परिसंख्यायास्तत्रैवालङ्कारत्वं नान्यत्र। इत्यलं विस्तरेण।

तद्गुणं लक्षयति—स्वयमिति। वस्तु, स्वम्—स्वकीयम्। गुणम्—रूपमिति यावत्, उत्सृज्य—परित्यज्य, अत्युज्ज्वलगुणस्य—अत्युज्ज्वलः स्वापेक्षया अत्युत्कृष्टः, गुणो यस्य तादृशस्य वस्तुनः, योगात्—संबन्धात्, यत् तद्गुणताम्—तस्य अप्रकृतस्य अत्युज्ज्वलगुणवस्तुनः, गुणोऽस्यास्तीति तद्गुणः, अर्शआद्यच्। तस्य भावस्तत्ता, ताम्, एति—प्राप्नोति, सः, तद्गुणः—तद्गुणो नामालङ्कारः।

स्वगुणत्यागपूर्वकं स्वसन्निहितवस्त्वन्तरसंबन्धिगुणग्रहणं तद्गुणालङ्कार इति संक्षिप्तार्थः। व्याचष्टे—कस्यचिदिति। तथाभवनम्—तद्गुणीभवनम्।

उदाहरति—जगादेति। शिशुपालवधे द्वितीये श्रीकृष्णप्रस्तावे स्वमतमुपन्यसितुकामस्य बलस्य वर्णनमिदम्। वदनच्छद्मपद्मपर्यन्तपातिनः—वदनमेवच्छद्म कपटम्, यस्य तत्पद्मम्, वदनमेव मुखमेव पद्ममित्यर्थः, छद्मशब्देनासत्यत्वप्रतिपादनरूपापह्नवः। तस्य पर्यन्तपातिनः प्रान्तसंचारिणः, मधुलिहः—मधु, लिहन्ति आस्वादयन्तीति तादृशाः, तान् मधुपान्, उदग्रदशनांशुभिः—उदग्रैरुच्छ्रितैः, दशनानां दन्तानाम्, अंशुभिः किरणैः श्वैत्यम्—धावल्यम्, नयन्—प्रापयन्, एवम्, जगाद—उवाच। अत्र मधुकरैः स्वगुणं कृष्णरूपं परित्यज्य दशनांशुगुणं श्वेतरूपं गृहीतमिति तद्गुणालंकारः।

---

तद्गुण—

स्वम् इति। कस्यचिद् इति। जहाँ कोई भी वस्तु अपने से उत्कृष्ट गुण वाली वस्तु के संबन्ध से अपना गुण छोड़ कर उसका ( अपने से उत्कृष्ट गुणवाली वस्तु का ) गुण ग्रहण कर ले; वहाँ 'तद्गुण' अलंकार होता है।

जैसे जगाद इति। ( अपने ) मुखरूप कमल के आसपास मँडराने वाले भौंरों को ( अपने ) दाँतों की उज्ज्वल किरणों से श्वेत बनाते हुए बलराम जी बोले। [ यहाँ भौंरों ने अपना कृष्णता-गुण छोड़ कर दांतों की किरणों का श्वेत गुण ग्रहण किया है, इसलिये तद्गुण है। ]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri


यद्वापि प्रस्तुतस्याङ्गं महतां चरितं भवेत् ॥ २४ ॥ [ विश्व० ]

यद् अलौकिक्याः सम्पत्तेः वर्णनम्, यदि वा प्रस्तुतस्याङ्गं महात्मनां चरित्रं स्यात्, तदुभयविधम् उदात्तम् : क्रमेण यथा—

"मुक्ताः केलिविसूत्रहारगलिताः सम्मार्जनीभिर्हृताः
प्रातः प्राङ्गणसीम्नि मन्थरचलद्बालाऽङ्घ्रिलाक्षाऽरुणाः।
दूराद् दाडिमबीजशङ्कितधियः कर्षन्ति केलीशुकाः
यद्विद्वद्भवनेषु भोजनृपतेस्तत्त्यागलीलायितम्" ॥ २५ ॥

---

उदात्तं लक्षयति—लोकेति। लोकातिशयसम्पत्तिवर्णना–अतिशयनमतिशयः [ एरच् ] लोकादतिशयो यत्र सा लोकातिशया, [ 'अवर्ज्यो बहुव्रीहिर्जन्माद्युत्तरपदः' इति वामनवचनात् समासः ] अथवा अतिशेत इत्यतिशया, [ पचाद्यच् ] लोकस्यातिशया, लोकातिशया, लोकातिवर्तिनीत्यर्थः, तादृश्याः, सम्पत्तेः समृद्धेः, वर्णना, उदात्तम्–उदात्तनामालङ्कारः, उच्यते। वर्णनीयस्य वस्तुनः अलौकिकसम्पत्तिसम्बन्धश्चेत् प्रतिपाद्यते तदा प्रथम उदात्तलंकारो भवतीति भावः।

द्वितीयमुदात्तमाह—यद्वेति। अपि वा, महताम्–महात्मनाम्, चरितम्, यत्, प्रस्तुतस्य–प्रकृतस्यवर्ण्यवस्तुनः, अङ्गम्–उपकारकम्, उत्कर्षकमिति यावत्, भवेत्, तदपि उदात्तमुच्यते इति शेषः। व्याख्याति—यदिति। निगदव्याख्यातम्।

उदाहरति—मुक्ता इति। विद्वद्भवनेषु–विदुषां भवनेषु प्रासादेषु, केलिविसूत्रहारगलिताः–केलौ रतिक्रीडायाम्, विसूत्रात् छिन्नसूत्रात्, हाराद् मौक्तिकमालायाः, गलिताः पतिताः, संमार्जनीभिः–शोधनीभिः, हृताः–अपसारिताः, प्रातः, प्राङ्गणसीम्नि–अङ्गणप्रान्ते, मन्थरचलद्बालाङ्घ्रिलाक्षारुणाः–मन्थरं शनैः, चलन्तीनाम्, बालानां षोडशवर्षवयसां वनितानाम्, अङ्घ्रिलाक्षया चरणालक्तकेन, अरुणा रक्ताः, मुक्ताः–मौक्तिकानि, दूराद्, दाडिमबीजशङ्कितधियः–इमानि दाडिमबीजानीत्येवं दाडिमबीजविषयिणी शंका भ्रान्तिः, संजाता अस्या इति तादृशी धीर्येषां तादृशाः, दाडिमबीजभ्रान्त्येत्यर्थः। रक्तिमसादृश्यं दूरत्वहेतुकं विशेषादर्शनं च भ्रान्तिहेतुः। केलीशुकाः–क्रीडार्थं पालिताः शुकाः, कर्षन्ति–चञ्च्वा अपहरन्ति इति यत्, तत्, भोजनृपतेः–भोजराजस्य, त्यागलीलायितम्–त्यागो दानम्, तस्य

---

उदात्त—

लोकातिशय इति। यद् इति। अलौकिक सम्पत्ति के वर्णन को 'उदात्त' अलंकार कहते हैं। यदि महापुरुषों का चरित्र प्रस्तुत ( वर्णनीय ) वस्तु का अङ्ग हो; तब भी 'उदात्त' अलंकार होता है। इस प्रकार 'उदात्त' दो प्रकार का होता है।

[ क्रमशः उदाहरण जैसे मुक्ता इति। यह जो विद्वानों के घरों में खेल ( रतिक्रीड़ा ) में टूटे हुए हारों से गिरे हुए, बुहारी ( झाड़ू ) से समेटे हुए, प्रातःकाल आँगन में धीमे पाँव टहलने वाली बालाओं के लगे यावक ( लाक्षा ) रस के सम्बन्ध से लाली लिये हुए, मोतियों के दानों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



"नाभिप्ररूढाम्बुरुहाऽऽसनेन संस्तूयमानः प्रथमेन धात्रा।
अमुं युगान्तोचितयोगनिद्रः संहृत्य लोकान् पुरुषोऽधिशेते" ॥ २६ ॥ [ रघु० ]

सूक्ष्मम्—

"संलक्षितस्तु सूक्ष्मोऽर्थं आकारेणेङ्गितेन वा।
कयाऽपि सूच्यते भङ्ग्या यत्र सूक्ष्मं तदुच्यते" ॥ २७ ॥ [ विश्व० ]

यत्र आकारेण, कयाचिद् वा अन्यया चेष्टया सूक्ष्मरूपेण प्रतीतः अर्थः कयाऽपि भङ्ग्या पुनर् आविष्क्रियते; तत् सूक्ष्मम्। यथा—

"पिदधानमन्वगुपगम्य दृशौ व्रुवते जनाय वद को ऽयमिति।
अभिधातुमध्यवसितौ न गिरा पुलकैः प्रियं नववधून्यंगदत्" ॥ २८ ॥ [ माघः ]

---

लीलायितं लीलावदाचरितम्, क्रीडामात्रमित्यर्थः। अत्र विदुषामलौकिकसम्पत्तिवर्णनाद् उदात्तालंकारः।

द्वितीयमुदात्तमुदाहरति—नाभीति। रघुवंशे त्रयोदशसर्गे समुद्रवर्णनमिदम्। **युगान्तोचितयोगनिद्रः**—युगस्य कल्पस्य, अन्ते अवसाने, उचिता अभ्यस्ता, योगः स्वस्वरूपावस्थितिरेव, निद्रा, यस्य तादृशः, **पुरुषः**—नारायणः, **लोकान्**, **संहृत्य**, **नाभिप्ररूढाम्बुरुहासनेन**—नाभ्याम् स्वनाभ्याम्, प्ररूढमुत्पन्नम्, अम्बुरुहं कमलमेव आसनम्, यस्य तादृशेन, **प्रथमेन**—प्रथमोत्पन्नेन, **धात्रा**—ब्रह्मणा, [ यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वमित्यादिश्रुत्या ब्रह्मणः प्रथमत्वं बोध्यम् ] **संस्तूयमानः**—क्रियमाणस्तुतिः, **अमुम्**—समुद्रम्, **अधिशेते**—अधितिष्ठति। [ 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' इत्यनेन अमुमित्यत्र कर्मत्वेन द्वितीया। ] अत्र प्रस्तुतसमुद्राङ्गतया नारायणचरितस्य वर्णनादुदात्तालंकृतिः।

सूक्ष्मं लक्षयति—**संलक्षित** इति। **यत्र**, **आकारेण**—आकृत्या, अवस्था विशेषेण वा, **इङ्गितेन वा**—चेष्टाविशेषेण वा, **संलक्षितः**—सम्यक् तर्कितः, **सूक्ष्मः**—तीक्ष्णमतिसंवेद्यः, **अर्थः**, **यत्**, **कयापि भङ्ग्या**—केनापि प्रकारेण, **सूच्यते**—अन्यं प्रति पुनः प्रकाश्यते, **तत्**, **सूक्ष्मम्**—सूक्ष्मालङ्कारः, **उच्यते**। कारिकां व्याख्याति—**यत्रे**ति। सुगमम्।

उदाहरति—**पिदधानमिति**। शिशुपालवधस्य नवमे केलिवर्णनमिदम्। **नववधूः**—नवो-

---

को घरेलू तोते दूर से अनारदानों के भ्रम में पड़कर ( अपनी चोंचों से ) खींच रहे हैं, यह सब भोजराज के दान की लीला ( महिमा ) है।

**नाभि इति**। ( हे सीते ) प्रलय के समय योगनिद्रा में मग्न रहना जिनका स्वभाव है; ऐसे भगवान् विष्णु समस्त लोकों का संहार करके इसी समुद्र में शयन करते हैं। और उस समय नाभि से उत्पन्न कमल पर बैठे हुए आदि-ब्रह्मा जी उनकी स्तुति करते हैं।

सूक्ष्म—

**संलक्षित इति**। **यत्र इति**। जहाँ आकार से या चेष्टा से जानी हुई सूक्ष्म बात किसी भी युक्ति से प्रकट कर दी जाय वहाँ 'सूक्ष्म' अलंकार होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


भाविकम्—

"अद्भुतस्य पदार्थस्य भूतस्याथ भविष्यतः ।
यत् प्रत्यक्षायमाणत्वं तद् भाविकमुदाहृतम्" ॥ २९ ॥ [ विश्व० ]

---

व्रीडा चिल्लना, अन्वक्—पश्चाद्, उपगम्य—समीपमेत्य, दृशौ—नेत्रे, पिदधानम्—छादयन्तम्, प्रियम्—दयितम्, अयम्—ते दृष्टिच्छादकः, कः, अस्तीति, वद—ब्रूहि, इति ब्रुवते—पृच्छते, जनाय, गिरा—वाचा, अभिधातुम्—'दृष्टिच्छादको मे दयितः' इति बोधयितुम्, नाध्यवससौ—न उत्सेहे, लज्जयेति भावः, किन्तु, प्रियस्पर्शेन समुद्भूतैः, पुलकैः—रोमाञ्चैः, न्यगदत्—कथितवती। नायिकायाः पुलकोद्गमदर्शनेन पृच्छकस्य पुरुषस्येदं ज्ञानमभूद् यद् अयं तस्या दृष्टिच्छादकस्तत्प्रिय एव, नान्यः कश्चिदिति भावः। अत्र प्रियस्पर्शसुखप्रत्यभिज्ञानेन संलक्षितोऽर्थः स्वपुलकोद्गमनेन नायिकया प्रकाशित इति सूक्ष्मालङ्कारः। वस्तुतस्तुमल्लिनाथानुसारेणेदम्। तेन ह्यत्र सूक्ष्मालङ्कारं प्रतिपाद्य "असंलक्षितसूक्ष्मार्थप्रकाशः सूक्ष्म उच्यते" इति तल्लक्षणमुद्धृतम्। प्रकृतं तु सूक्ष्मलक्षणं नात्र सम्यग् घटते। एतदनुसारेण आकाराद् इङ्गिताद् वा प्रतीतस्य परवर्तिनः सूक्ष्मस्य अर्थस्य विज्ञात्रा यद् भङ्ग्यन्तरेण प्रकाशनं तदेव सूक्ष्मालङ्कारः। न ह्यत्र पृच्छकजनवर्ती कश्चित् सूक्ष्मोऽर्थो नायिकया तस्य ( पृच्छकस्य ) आकारेण चेष्टया वा विज्ञाय पश्चात् तं प्रतिभङ्ग्यन्तरेण बोधितः। तथा चेदमुदाहर्तव्यम्—

वक्त्रस्यन्दिस्वेदबिन्दुप्रबन्धैर्दृष्ट्वा भिन्नं कुङ्कुमं कापि कण्ठे।
पुंस्त्वं तन्व्या व्यञ्जयन्ती वयस्या स्मित्वा पाणौ खड्गलेखां लिलेख ॥

अत्र स्वेदजन्यकुङ्कुमभेदानुमितं नायिकायाः पुरुषायितं तां प्रति तत्पाणौ पुरुषोचितखड्गलेखनरूपेण भङ्ग्यन्तरेण तत्सख्या प्रकाशितम्। इदमाकारलक्षितस्य सूक्ष्मस्य भङ्ग्यन्तरेण प्रकाशन उदाहरणम्। इङ्गितलक्षितस्य सूक्ष्मस्य भङ्ग्यन्तरेण प्रकाशन उदाहरणम्। इङ्गितलक्षितस्य सूक्ष्मस्य भङ्ग्यन्तरेण प्रकाशन उदाहरणम्। इङ्गितलक्षितस्य सूक्ष्मस्य भङ्ग्यन्तरेण प्रकाशन उदाहरणं यथा—

'मयि पश्यति सा केशैः सीमन्तमणिमावृणोत्'।

अत्र कामुकस्यावलोकनेन तत्संकेतकालप्रश्नभावं ज्ञातवत्या नायिकायाश्चेष्टेयम्। केशैः सीमन्तमण्यावरणेन 'सूर्यास्तमयः संकेतकालः' इति सूचितम्।

भाविकं लक्षयति—अद्भुतस्येति। अद्भुतस्य—विस्मयोत्पादकस्य। प्रत्यक्षायमाणत्वम्—प्रत्यक्षवदाचरत् प्रत्यक्षायमाणम् तस्य भावस्तत्त्वम्, प्रत्यक्षवद् भासमानत्वमित्यर्थः। इतरत्

---

जैसे पिदधानम् इति। नव विवाहित वधू ने, पीछे से आकर आँख मीचने वाले, अपने प्रिय पति के सम्बन्ध में 'बताओ यह ( तुम्हारी ) आँख मींचने वाला' कौन है ? इस प्रकार पूछने वाले व्यक्ति के प्रति ( लज्जा के कारण ) वाणी से कहने का साहस नहीं किया, किन्तु ( पति के कर स्पर्श से उठे हुए ) रोमाञ्चों के द्वारा बताया कि यह मेरा प्रिय पति है। [ यहाँ 'यह मेरा पति है' इस जानी हुई बात को नायिका ने अपने रोमाञ्चों से प्रकट किया—इसलिये सूक्ष्म है। इस उदाहरण से हमारा मतभेद है, इसके लिये संस्कृत टीका देखिये। ]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



**भूतस्य भविष्यतो वा अद्भुतस्य वस्तुनः प्रत्यक्षवत्त्वेन वर्णनं भाविकं नामालङ्कारः।**

**यथा—**

**"मुनिर्जयति योगीन्द्रो महात्मा कुम्भसम्भवः।**
**येनैकचुलुके दृष्टौ दिव्यौ तौ मत्स्यकच्छपौ" ॥ ३० ॥**

---

सुगमं ग्रन्थकृता स्वयमेव स्पष्टीकृतं चेति न पिष्टपेषणं क्रियते। **प्रत्यक्षवत्त्वेन** प्रत्यक्षंप्रत्यक्षज्ञानविषयता तद् अस्य अस्तीति प्रत्यक्षवत्, तस्य भावस्तत्त्वम्। प्रत्यक्षविषयतयेत्यर्थः। अतीतानागतयोरद्भुतयोर्वस्तुनोः प्रत्यक्षवद् वर्णनं भाविकालङ्कार इति भावः।

उदाहरति—**मुनिरिति**। **येन**—मुनिना, **एकचुलुके**—एकस्मिन्नेव चुलुके, **दिव्यौ**—देवांशरूपौ, **तौ**—प्रसिद्धौ, **मत्स्यकच्छपौ**—मत्स्यकूर्मावतारौ, **दृष्टौ**—साक्षात् कृतौ, स **योगीन्द्रः**—समाधिमतां श्रेष्ठः, **महात्मा**, **कुम्भसम्भवः**—कुम्भात् संभव उत्पत्तिर्यस्य तादृशः, **मुनिः**—अगस्त्य इति यावत्, **जयति**—सर्वोत्कर्षेण वर्तते। अत्र अतीतस्याद्भुतस्य प्रत्यक्षवद् वर्णनमिति भाविकालङ्कारः। तर्कवागीशास्तु विश्वनाथोक्तमिदं भाविकलक्षणमन्यथैव व्याचक्षते। तन्मतेन कारिकायामद्भुतस्येति पदं 'भूतस्य' 'भविष्यतः' इत्येतत्पदद्वयवत् पदार्थस्य स्वतन्त्रं विशेषणम्। तथा च तदनुसारेण अद्भुतस्य पदार्थस्य प्रत्यक्षायमाणत्वे प्रथमं भाविकम्, भूतस्य तथात्वे द्वितीयम्, भविष्यतस्तादृशत्वे तृतीयमित्थं त्रिविधं भाविकं फलति। तत्रोपर्युक्तं मुनिर्जयतीत्युदाहरणमद्भुतस्य प्रत्यक्षायमाणत्वे विज्ञेयम्। भूतभविष्यतोस्त्विदमुदाहर्तव्यम्—

आसीदञ्जनमत्रेति पश्यामि तव लोचने। भाविभूषणसंभारां साक्षात् कुर्वे तवाकृतिम्॥

अत्र पूर्वार्धे भूतस्य अञ्जनस्य, उत्तरार्धे च भविष्यतः भूषणसंभारस्य 'पश्यामि' 'साक्षात् कुर्वे' इत्येवं प्रत्यक्षवत् प्रतिपादनाद् भाविकम्।

वस्तुतस्तु जयतीत्यादिपद्ये चुलुकस्थितमत्स्यकच्छपद्रष्टृतया विस्मयं परिपुष्णतोऽद्भुतस्यापि मुनेः प्रत्यक्षवदवर्णनाद् नास्ति भाविकालङ्कारः। न च जयतीति वर्तमानप्रयोगेण प्रत्यक्षायमाणत्वं वाच्यम्। तत्र वर्तमानकालस्याविवक्षितत्वाद् सर्वोत्कर्षमात्रप्रतिपादन एव कवेस्तात्पर्यात्, प्रकाशकारादिभिर्भूतभविष्यदर्थमात्रप्रत्यक्षवत्करणे भाविकालङ्कारस्वीकाराच्च। तदुक्तं काव्यप्रकाशे चन्द्रालोके च—

'प्रत्यक्षा इव यद्भावाः क्रियन्ते भूतभाविनः। भाविकम्।' इति।

भाविकं भूतभाव्यर्थसाक्षात्कारस्य वर्णनम्। अहं विलोकयेऽद्यापि युध्यन्तेऽत्र सुरासुराः॥ इति॥

---

**भाविकम्** इति। **भूतस्य** इति। भूत अथवा भविष्यद् अद्भुत वस्तु का प्रत्यक्ष वस्तु जैसा वर्णन करने में 'भाविक' अलङ्कार होता है।

जैसे **मुनिरिति**। कुम्भ से जिनकी उत्पत्ति हुई है; जिन्होंने (समुद्र का आचमन करते समय) एक चुल्लू में ही उन दोनों अद्भुत मत्स्य और कच्छप (मत्स्यावतार और कच्छपावतार) को देखा। ऐसे योगिराज महात्मा अगस्त्य मुनि जी सबसे उत्कृष्ट हैं। [ यहाँ भूतकालिक अगस्त्य मुनि का प्रत्यक्ष वस्तु के समान वर्णन है, इसलिये 'भाविक' है। ]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri


विनोक्तिः—

"विनोक्तिश्चेद्विना किञ्चित् प्रस्तुत हीनमुच्यते" [ चन्द्रालोकः ]

यदि विनार्थकेन पदेन किमपि प्रस्तुतं विहीनत्वेन वर्ण्यते, तर्हि विनोक्तिः। यथा—

"विनयेन विना का श्रीः ? का निशा शशिना विना ?।
रहिता सत्कवित्वेन कीदृशी वग्विदग्धता ?" ॥ २१ ॥

पर्य्यायोक्तम्—

"पर्य्यायोक्तं यदा भङ्ग्या गम्यमेवाभिधीयते"। [ विश्व० ]

---

विनोक्ति लक्षयति—विनोक्तिरिति । चेद्—यदि, प्रस्तुतम्—वर्ण्यम्, वस्तु किञ्चिद् विना—कस्यचिद् वस्तुनः अभावे, हीनम्—अशोभनम्, उच्यते—वर्ण्यते, तदा विनोक्तिः—विनोक्ति-नामालङ्कारः, भवतीति शेषः । व्याचष्टे—यदीति । विनार्थकेनेति । अयं भावः—नात्रालङ्कारे विनेतिशब्दप्रयोगो नियमेनापेक्ष्यते । अपि तु तदर्थसंबन्धमात्रम्, तथा च विनाशब्दसमानार्थके यस्मिन्कस्मिन्नपि शब्दे प्रयुज्यमान इयं भवत्येव ।

उदाहरति—विनयेनेति । विनयेन विना—विनयाभावे, श्रीः—लक्ष्मीः, सम्पदैश्वर्यमिति भावः, का ? न शोभनेत्यर्थः । शशिना विना—चन्द्रमसोऽभावे, निशा—रात्रिः, का ? कुत्सितेत्यर्थः । सत्कवित्वेन विना—सत्कवितााया अभावे, वाग्विदग्धता—वाक्चातुरी, कीदृशी ? अशोभनेति यावत् । अत्र विनयादिभिर्विना श्रयादीनां हीनत्वं वर्णितमिति विनोक्तिरलङ्कारः ।

यदि किञ्चिद् विना प्रस्तुतं वस्तु रमणीयमुच्यते तदापीयं भवति । तदुदाहरणं यथा—

पंकैर्विनासरो भाति सदः खलजनैर्विना । कटुवर्णैर्विना काव्यं मानसं विषयैर्विना ॥

अत्र पंकाद्यभावेन सरआदीनां रमणीयतावर्णनाद् विनोक्तिः ।

विनार्थकशब्दप्रयोगे यथा—

निर्गुणः शोभते नैव विपुलाडम्बरोऽपि ना ॥ आपातरम्यपुष्पश्रीशोभितः शाल्मलिर्यथा ॥

अत्र निर्गुणशब्दे निरुपसर्गो विनार्थकः । निर्गुण इत्यस्य गुणं विना इत्यर्थः ।

---

विनोक्ति—

विनोक्तिरिति । यदि किसी वस्तु के विना कोई प्रस्तुत ( वर्णनीय ) वस्तु हीन बताई जाय तब 'विनोक्ति' अलङ्कार होता है । काव्यदीपिकाकार ने विनोक्ति के लक्षण की व्याख्या दूसरे प्रकार से की है—जैसे यदि इति । यदि विनार्थक पद के द्वारा या साथ किसी वस्तु का हीन रूप से वर्णन किया जाय तब 'विनोक्ति' अलङ्कार होता है । ( इसका तात्पर्य हमने संस्कृत-टीका में अच्छी तरह लिख दिया है, वहाँ देखिये । ) जैसे—विनय के विना लक्ष्मी किस काम की । चन्द्रमा के विना रात कुछ नहीं, सत्कविता के विना वाक्चातुरी कैसी ( किसी काम की नहीं ) । [ यहाँ विनय आदि के विना प्रस्तुत श्री आदि का हीन रूप से वर्णन किया गया है, इसलिये 'विनोक्ति' है । ]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


भङ्ग्या—प्रकारान्तरेण गम्यमेव—व्यञ्जनाबोध्यमेव। यथा—

"स्पृष्टास्ता नन्दने शच्याः केशसम्भोगलालिताः।
सावज्ञं पारिजातस्य मञ्जर्यो यस्य सैनिकैः" ॥ [ हयग्रीववधे ]

व्याजोक्तिः—

"व्याजोक्तिर्गोपनं व्याजादुद्भिन्नस्यापि वस्तुनः"। [ विश्व० ]

परेण ज्ञायमानस्याप्यर्थस्य केनापि कपटेन गोपनं व्याजोक्तिः। यथा—

"आयान्तमालोक्य हरिं प्रतोल्याम् आल्याः पुरस्तादनुरागमेका।

---

पर्यायोक्तं लक्षयति—पर्यायोक्तमिति। यदा, गम्यमेव—व्यङ्ग्यमेव, भङ्ग्या—प्रकारान्तरेण, अभिधीयते—अभिधया प्रतिपाद्यते, तदा पर्यायोक्तम्—पर्यायोक्तनामालंकारः।

उदाहरति—स्पृष्टा इति। हयग्रीववधे हयग्रीवप्रतापवर्णनपरमिदं पद्यम्। यस्य—हयग्रीवस्य, सैनिकैः—भटैः, नन्दने—नन्दननाम्नि देवोद्याने, शच्याः—इन्द्राण्याः, केशसंभोगलालिताः—केशानां शिरोरुहाणाम्, संभोगाय प्रसाधनाय, लालिता रक्षिताः, ताः—दिव्यसौरभसौन्दर्यादिभिः प्रसिद्धाः, पारिजातस्य—पारिजातनाम्नो देववृक्षस्य, मञ्जर्यः—कुसुमानि, सावज्ञम्—सतिरस्कारम्, स्पृष्टाः—आमृष्टाः, अवचिताः। अत्र हयग्रीवेण स्वर्गो विजित इति प्रस्तुतमेव गम्यं कारणं सैनिकानां पारिजातमञ्जरीसावज्ञस्पर्शनरूपकार्यद्वारेणाभिहितम्।

व्याजोक्तिं लक्षयति—व्याजोक्तिरिति। उद्भिन्नस्यापि—केनचिद्धेतुना प्राकट्यं प्राप्तस्यापि, परैरवगतस्यापीति भावः, वस्तुनः, व्याजाद्—मिथ्याकारणान्तरोद्भावनेनेत्यर्थः गोपनं, व्याजोक्तिः—व्याजोक्तिनामालंकारः, भवतीति शेषः। व्याचष्टे—परेणेति।

उदाहरति—आयान्तमिति। श्रीकृष्णप्रणामव्याजेन सखीसमक्षं स्वानुरागचिह्नं गोपयन्त्याः

---

पर्यायोक्तम् इति। जब व्यङ्ग्यार्थ ही रूपान्तर से (दूसरे रूप से) अभिधावृत्ति द्वारा बता दिया जाता है तब 'पर्यायोक्त' अलङ्कार होता है।

जैसे स्पृष्टा इति। जिस (हयग्रीव) के सिपाहियों ने नन्दन वन में इन्द्राणी के केशों को सजाने के लिये सुरक्षित पारिजात वृक्षों की उन (प्रसिद्ध) मञ्जरियों को तिरस्कार के साथ तोड़ डाला (विध्वस्त कर दिया)। [ यहाँ 'हयग्रीव ने स्वर्ग को जीत लिया' यह अर्थ व्यङ्ग्य है, परन्तु इसी अर्थ को कवि ने हयग्रीव के सैनिकों के द्वारा पारिजातमञ्जरियों की लूट-खसोट के रूप में अभिधावृत्ति द्वारा बताया, इसलिये 'पर्यायोक्त' अलङ्कार है ]।

व्याजोक्ति—

व्याजोक्तिरिति। परेण इति। (किसी विशेष कारण से) दूसरों पर प्रकट हुई बात को किसी बहाने से छिपाना 'व्याजोक्ति' कहलाता है।

जैसे आयान्तम् इति। किसी स्त्री ने अपनी सखी के आगे रोमाञ्च, कम्प आदि (अनुभवों) के द्वारा प्रकट हुए (अपने प्रियतम विषयक) प्रेम को गली में से गुजरते हुए भगवान्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri


रोमाञ्चकम्पाऽऽदिभिरुच्यमानं बामा जुगूह प्रणमन्त्यथैनम्" ॥ ३३ ॥

[ कुवलया० ]

"वक्रोक्तिः श्लेषकाकुभ्यामपरार्थप्रकल्पनम्" । [ कुवलया० ]

श्लेषेण काका वा अभिहितस्य वाक्यस्य अभिप्रायान्तरपरतया योजनं वक्रोक्तिः । तथा चेयं श्लेषमूला, काकूक्तिमूला चेति द्विविधा क्रमेण यथा—

"अहो ! केनेदृशी बुद्धिर्दारुणा तव निर्मिता ? ।
त्रिगुणा श्रूयते बुद्धिर्न तु दारुमयी क्वचित्" ॥ ३४ ॥ [ कुवलया० ]

---

कस्याश्चिद् वामाया वर्णनमिदम्। प्रतोल्याम्—रथ्यायाम्, एका—काचिद्, वामा—स्त्री, आल्याः—सख्याः, पुरस्तात्—पुरः, समक्षे, रोमाञ्चकम्पादिभिः—रोमाञ्चः पुलकोद्गमः, कम्पो वेपथुः, तदादिभिः, अनुभावैः, उच्यमानम्—व्यज्यमानम्, अनुरागम्—स्वदयितविषयं प्रेम, (कर्म) आयान्तम्, हरिम्—श्रीकृष्णम्, आलोक्य—दृष्ट्वा, अथ—दर्शनानन्तरमेव, एनम्—हरिम्, प्रणमन्ती—नमस्कुर्वती, सती, [ हेतौ शतृप्रत्ययः, हरिप्रणामेनेत्यर्थः ] जुगूह—गोपितवती। अत्र हि अनुरागकृतस्य रोमाञ्चादिवस्तुतो भक्तिरूपहेत्वन्तरप्रत्यायकेन प्रणामेन गोपनं कृतम्।

वक्रोक्तिं लक्षयति—वक्रोक्तिरिति । श्लेषकाकुभ्याम्—श्लेषश्च काकुश्च, ताभ्याम्। तृतीयाद्विवचनम्, अपरार्थप्रकल्पने करणत्वेन हेतुत्वेन वान्वेति । अपरार्थप्रकल्पम्—अपरस्य विवक्षिताद् अर्थाद् भिन्नस्य, अर्थस्य, प्रकल्पनम् बोधनम्, वक्रोक्तिः, उच्यत इति शेषः। व्याचष्टे—श्लेषेणेति । अभिप्रायान्तरपरतया—अन्यार्थबोधकतया। योजनम्—व्याख्यानम्।

श्लेषमूलां वक्रोक्तिमुदाहरति—अहो इति। प्रश्नोत्तररूपमिदं पद्यम्। पूर्वार्द्धे कश्चित् कञ्चनाक्षिपति, उत्तरार्धे आक्षिप्तस्तं प्रत्याक्षिपति। तव, बुद्धिः, ईदृशी—एवंविधा, दारुणा—क्रूरा,

---

कृष्ण को देख कर उन्हें प्रणाम करके छिपाया। [ कृष्ण को प्रणाम करने वाली स्त्री का हृदयगत अभिप्राय यह है कि—'हे सखि ! तू मेरे रोमाञ्च, कम्प आदि देखकर यह न समझना कि मैं किसी पुरुष के प्रेम में फँसी हुई हूँ। यह मेरे रोमाञ्च आदि तो भगवद्भक्ति के कारण हुए हैं' यहाँ रोमाञ्च आदि कारणों से प्रकट हुए अनुराग को कृष्ण-प्रणाम का बहाना करके छिपाया गया है, इसलिये व्याजोक्ति है। ]

वक्रोक्ति—

वक्रोक्तिरिति। श्लेषेण इति। यदि (किसी के द्वारा) कहे हुए वाक्य का श्लेप या काकु से दूसरा ही (वक्ता के अभिप्राय से भिन्न) अभिप्राय कल्पित कर लिया जाय, तब 'वक्रोक्ति' अलङ्कार होता है। इस प्रकार वक्रोक्ति दो प्रकार की हुई—श्लेप-मूलक और काकु-मूलक।

जैसे अहो इति। आश्चर्य है ! तेरी ऐसी काठ (कठोर) बुद्धि किसने बनाई। (अरे भाई !) बुद्धि तो सत्त्व-रज-तम इन तीन गुणों वाली प्रकृति से बनी हुई सुनी जाती है, न कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



"गुरुपरतन्त्रतया वत ! दूरतरं देशमुद्यतो गन्तुम् ।
अलिकुलकोकिलललिते नैष्यति सखि ! सुरभिसमयेऽसौ ?" ॥ ३५ ॥

[ अलङ्कारसर्वस्वम् ]

आक्षेपः—

"आक्षेपः स्वयमुक्तस्य प्रतिषेधो विचारणात्" [ चन्द्रालोकः ]

---

केन—कर्त्रा, निर्मिता—रचिता ? नैतादृशी बुद्धिरन्यस्य कस्यचिदवलोक्यते, मन्येऽन्य एव प्रजापतिस्तेऽस्या दारुणाया बुद्धेर्निर्माताऽभवदिति भावः । अथवा केन कारणेनेत्येवं व्याख्यातव्यम् । अहो—आश्चर्यमस्तीति भावः । अपरः श्लेषेण दारुणेतिपदं दारुशब्दस्य तृतीयान्तं रूपं प्रकल्प्य प्रत्याक्षिपति—त्रिगुणेति । बुद्धिः त्रिगुणा—सत्त्वरजस्तमोरूपगुणत्रयोपादाना, श्रूयते—सांख्यादिशास्त्र इति शेषः । दारुमयी तु—दारुणा काष्ठेन निर्मिता बुद्धिस्तु, क्वचित्—कस्मिंश्चिदपि शास्त्रे, न श्रूयते इति शेषः । अत्र दारुणेति क्रूरार्थतया विवक्षितमपि श्लेषमाहात्म्यात् काष्ठार्थतया योजितमिति श्लेषवक्रोक्तिरियम् ।

काकुवक्रोक्तिमुदाहरति—गुरुपरेति । प्रवासं जिगमिषौ नायके नायिकायास्तत्सख्याश्च वचनप्रतिवचनरूपं पद्यमिदम् । हे सखि ! गुरुपरतन्त्रतया—गुरुः पित्रादिः, तत्परतन्त्रतया तदधीनतया, वतेति खेदे, दूरतरम्, देशम्, गन्तुम्—प्रस्थातुम्, उद्यतः—उद्युक्तः, असौ—कान्तः, अलिकुलकोकिलललिते—अलिकुलैर्भ्रमरसमूहैः कोकिलैश्च, ललिते मनोहरे, सुरभिसमये—वसन्ततौ, नैष्यति—नागमिष्यति । अत्र नैष्यतीति निषेधाभिप्रायेण नायिकयोक्तम् । पुनस्तदेवोत्तरयन्त्या सख्या तु 'न एष्यति ?' इति प्रश्नकाकुमुद्भाव्य 'अवश्यमेष्यति' इत्यर्थकतया योजितम् ।

आक्षेपं लक्षयति—आक्षेप इति । स्वयम्, उक्तस्य—वाचा प्रकाशितस्य, अर्थस्य, विचा-

---

काठ की वनी हुई । [ यहाँ 'दारुणा' पद में श्लेष है । कठोरार्थक 'दारुण' शब्द का स्त्रीलिङ्ग की प्रथमाविभक्ति में 'दारुणा' ऐसा रूप वनता है और लकड़ी वाचक 'दारु' शब्द का भी तृतीया विभक्ति में 'दारुणा' यही रूप वनता है । वक्ता ने 'कठोर' अर्थ को लेकर 'दारुणा', पद का प्रयोग किया दूसरे ने उसका 'लकड़ी' अर्थ कल्पना करके उत्तर दिया, इसलिये यह 'वक्रोक्ति' है । ]

गुरु इति । हे सखि ! वड़ा खेद है कि मेरे प्रियतम ( घर के ) बड़े-बूढ़ों के अधीन होने के कारण—अर्थात् उनकी आज्ञा से वहुत दूर परदेश जाने को तैयार हैं । वे भौंरों और कोयलों से मनोहर वसन्त ऋतु में ( घर नहीं ) लौटेंगे । सखी ने नायिका की इस उक्ति को ही काकु से वोल कर उत्तर दिया 'नैष्यति सखि ! सुरभिसमयेऽसौ ?' क्या वे वसन्त में नहीं लौटेंगे ? अर्थात् अवश्य लौटेंगे । यहाँ 'नहीं लौटेंगे' इस अभिप्राय से कहे गए 'नैष्यति' इन पदों का काकु से 'अवश्य लौटेंगे' यह दूसरा अर्थ कल्पित किया गया है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


स्वाऽऽत्मनैव कर्त्तव्यत्वेन उक्तस्य अर्थस्य विचारदशायां किञ्चित् प्रयोजनान्तर-मनुसन्धाय प्रतिषेध आक्षेपः। यथा—

"साहित्यपाथोनिधिमन्थनोत्थं कर्णामृतं रक्षत हे कवीन्द्राः!।
यत् तस्य दैत्या इव लुण्ठनाय काव्यार्थचोराः प्रगुणीभवन्ति ॥ ३६ ॥
गृह्णन्तु सर्वे यदि वा यथेच्छ नास्ति क्ष तेः क्वापिः कवीश्वराणाम्।
रत्नेषु लुप्तेषु बहुष्वमर्त्यैरद्यापि रत्नाऽऽकर एव सिन्धुः" ॥ ३७ ॥

[ युग्मकम् ] [ कुवलया० ]

इति अष्टमशिखाऽऽलोकः।

---

रणात्—किंचिन्निमित्तमभिसंधायेत्यर्थः, प्रतिषेधः आक्षेपः—आक्षेपाख्योऽलङ्कारः। भवतीति शेषः। व्याचष्टे—स्वात्मनैवेति।

उदाहरति साहित्येति। गृह्णन्त्विति। इदं पदद्वयं मिलित्वाक्षेपोदाहरणं बोध्यम्। हे कवीन्द्राः—कविवराः, साहित्यपाथोनिधिमन्थनोत्थम्—साहित्यपाथोनिधेः साहित्यसमुद्रस्य महाभारतादेः मन्थनाद् विलोडनात्, परिशीलनादिति यावत्, उत्थितं प्रादुर्भूतम् कर्णामृतं—कर्णाभ्यां पेयम्, अमृतम् अमृतवत् स्वादु, अथवा कर्णयोरमृतमिव आह्लादकम्, सदुक्तिरूपं काव्य-मिति यावत्, रक्षत—गोपायत। यत्—यस्मात् कारणात्, तस्य—सदुक्तिरूपस्य कर्णामृतस्य, लुण्ठनाय—प्रसह्य अपहाराय, दैत्या इव—दैत्यसदृशाः, काव्यार्थचोराः—काव्यरूपस्यार्थस्य वित्तस्य, चोरा अपहारकाः, प्रगुणीभवन्ति—बहुलीभवन्ति। यदि वा—अथवा सर्वे लोकाः, यथेच्छम्—स्वेच्छानुसारेण, गृह्णन्तु—अपहरन्तु, कर्णामृतमिति शेषः। कवीश्वराणाम्—कविवराणाम्, क्वापि—कुत्रापि, [ कापीति पाठश्चेत् साधुः, अल्पापीति तदर्थः ] क्षतिः—हानिः नास्ति। तथा हि—अमर्त्यैः—देवैः, बहुषु—अनेकेषु कौस्तुभादिरत्नेषु, लुप्तेष्वपि—अपहृतेष्वपि, सिन्धुः—समुद्रः, अद्यापि—अस्मिन्नपि समये, रत्नाकर एव—रत्नानाम् आकर एव खनिरेव। नैकरत्नापहारेऽपि यथा सिन्धो रत्नाकरत्वं नाद्यापि लुप्तम्, अक्षयस्तस्य रत्नराशिः तथैव साहित्यपाथोनिधिरप्ययं कर्णामृतस्याक्षयो निधिरिति भावः। अत्र पूर्वपद्ये कर्णामृतरक्षणस्य विधिः स्वयमेवोक्तः, परं

---

आक्षेप—

आक्षेप इति। स्वात्मनैवेति। किसी बात को कर्तव्य रूप से कह कर फिर विचार करके किसी विशेष प्रयोजन के कारण उस बात का स्वयं निषेध करने में 'आक्षेप' अलङ्कार होता है।

जैसे साहित्य इति। श्रेष्ठकवियों! साहित्य समुद्र को मन्थन करने से निकले हुए कर्णामृत ( कानों के द्वारा पेय काव्यरूपी अमृत ) की रक्षा करो, क्योंकि उस कर्णामृत को लूटने के लिये दैत्यों के सदृश काव्यार्थ-चोर बढ़ रहे हैं। अथवा सब लोग यथेच्छ इस कर्णामृत को लूट-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



द्वितीयस्मिन् कर्णामृतस्य समुद्रगतरत्नजालवदक्षयत्वं विचार्य तस्य निषेधः कृतः। अतोऽत्र आक्षेपालङ्कारः।

इति श्रीद्रोणाश्रमाभिजन-श्रीमदच्युतानन्दनन्दन-श्रीपरमेश्वरानन्दशर्मकृतायां बालबोधिन्यां काव्यदीपिकाव्याख्यायां ग्रन्थपरिशिष्टरूपोऽ-ष्टमशिखाऽऽलोकः समाप्तः।

समाप्तश्चायं ग्रन्थः।

लें, इसमें कवियों की कुछ भी हानि नहीं। (समुद्र-मन्थन के समय) देवताओं के द्वारा अनेक रत्नों के लूटे जाने पर भी समुद्र आज भी रत्नाकर—रत्नों का खजाना ही कहलाता है। [ यहाँ प्रथम पद्य में कर्णामृत की रक्षा को कर्तव्य रूप से बता कर फिर दूसरे पद्य में स्वयं उसका निषेध कर दिया। निषेध करने में विशेष अभिप्राय यही है कि समुद्र के रत्नों की तरह कर्णामृत भी अक्षय्य है, उसमें कभी कमी नहीं हो सकती। ]

अष्टमशिखाऽऽलोक समाप्त।

शुभमस्तु।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

### पिछले वर्षों के

## पञ्जाब यूनिवर्सिटि प्राज्ञ परीक्षा के

### काव्यदीपिका के प्रश्न

### सन् १९२३

**प्रश्न**—१. निम्नलिखित कारिका का भावार्थ लिखो—

मुख्यार्थबाधे तद्युक्तो ययाऽन्योऽर्थः प्रतीयते।
रूढेः प्रयोजनाद्वासौ लक्षणा शक्तिरर्पिता॥ ५

**उत्तर**—देखो १६ पृष्ठ पर।

**प्रश्न**—२. काव्य का लक्षण लिख कर उसके भेदों की संख्या तथा उनके नामों का निर्देश करो। ५

**उत्तर**—प्रश्न देखो ५, ३२ पृष्ठ पर।

**प्रश्न**—३. निम्नलिखित साहित्यभाषाओं के लक्षण लिखो— १०

(क) नाटकम्। (ख) उद्घात्यकम्। (ग) विष्कम्भः। (घ) प्रवेशकम्। (ङ) चम्पूः।

**उत्तर**—देखो पृष्ठ ६१, ६६, ७४, ७५, ८५ पर।

**प्रश्न**—४. दोष का सामान्य लक्षण लिखकर निम्नलिखित दोषों के विशेष लक्षण सोदाहरण लिखो—

(क) दुःश्रत्वम् (ख) अप्रतीतत्वम्। (ग) ख्यातिविरुद्धता।

**उत्तर**—देखो पृष्ठ ८६, ८९, ९५, ११८, पर। ७

**प्रश्न**—५. गुण कितने और कौन २ हैं? प्रत्येक का लक्षण लिख कर उदाहरण भी दो। ७

**उत्तर**—देखो पृष्ठ १२६ से १३० तक।

**प्रश्न**—६. निम्नलिखित पद्य ग्रन्थकर्ता ने किस २ विषय में उदाहरणतया उद्धृत किये हैं। समन्वय सहित प्रत्येक का लक्षण लिखो— १६

(क) उदेति पूर्वं कुसुमं ततः फलं घनोदयः प्राक् तदनन्तरं पयः।
निमित्तनैमित्तिकयोरयं विधिस्तव प्रसादस्य पुरस्तु सम्पदः॥

**उत्तर**—देखो पृष्ठ १५३ पर।

(ख) दिशि मन्दायते तेजो दक्षिणस्यां रवेरपि।
तस्यामेव रघोः पाण्ड्याः प्रतापं न विषेहिरे॥

**उत्तर**—देखो पृष्ठ १५५ पर।

(ग) बृहत्सहायः कार्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति।
सम्भूयाम्भोधिमभ्येति महानद्या नगापगा॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


उत्तर—देखो पृष्ठ १६१ पर।

(घ) धनिनोऽपि निरुन्मादा युवानोऽपि न चञ्चलाः ॥
प्रभवोऽप्यप्रमत्तास्ते महामहिमशालिनः ॥

उत्तर—देखो पृष्ठ १८३ पर।

## सन् १९२४

प्रश्न—१-(क) काव्य का लक्षण लिखो— २

उत्तर—देखो पृष्ठ ५ पर।

(ख) 'रिपुस्ते मृतः' 'पुत्रस्ते जातः' इत्यादि वाक्यों मे काव्यत्व व्यवहार होता है या नहीं ? यदि होता है तो कारण वताओ— ५

उत्तर—देखो पृष्ठ ६ पर।

(ग) वाक्य और पद का स्वरूप लिखो— ८

उत्तर—देखो १०, ११ पृष्ठ पर।

(घ) शब्द कितने प्रकार का होता है ? २

उत्तर—देखो पृष्ठ ११ पर।

(ङ) वाचक शब्द का स्वरूप सोदाहरण लिखो— २

उत्तर—देखो पृष्ठ १२ पर।

प्रश्न—२-(क) रस कितने हैं और उनके नाम क्या हैं ? ३

उत्तर—देखो पृष्ठ ३९ पर।

(ख) दोष कितने प्रकार के होते हैं ? ५

उत्तर—देखो पृष्ठ ८६ पर।

(ग) केवल पद में रहने वाले दोष कौन २ हैं ? ५

उत्तर—देखो पृष्ठ ८७ पर।

प्रश्न—३-(क) नीचे लिखे पद्य में कौनसा गुण है ? उसका लक्षण लिखो— ७

गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।
करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किं न मे हृतम् ? ॥

उत्तर—देखो पृष्ठ १२९ पर। ७

(ख) रीति कितनी हैं ? उनमें से गौड़ी रीति का लक्षण क्या है ? उदाहरण में घटाकर दिखलाओ—

उत्तर—देखो पृष्ठ १३१ और १३२ पर।

प्रश्न—४-नीचे लिखे पद्यों में अलङ्कार वताओ और उनके लक्षण लिखो १०

(क) प्रभामहत्या शिखयेव दीपस्त्रिमार्गयेव त्रिदिवस्य मार्गः।
संस्कारवत्येव गिरा मनीषीं तया स पूतश्च विभूषितश्च ॥

उत्तर—देखो पृष्ठ १४५ पर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

(ख) लि... तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विफलतां गता॥

उत्तर—देखो पृष्ठ १४७ पर।

## सन् १९२५

प्रश्न—१-(क) काव्यदीपिका शब्द का अर्थ लिखो— २

उत्तर—देखो पृष्ठ २ की संस्कृत टीका।

(ख) काव्य के निर्माण से क्या २ फल होता है? २

उत्तर—देखो पृष्ठ २ पर।

(ग) काव्य कितने प्रकार के हैं? उनके उदाहरण लिखो— ६

उत्तर—देखो पृष्ठ ३२ से ५४ तक।

(घ) पद की वृत्ति कितने प्रकार की है? उनके उदाहरण लिखो— ६

उत्तर—देखो पृष्ठ ११ पर।

(ङ) अनेकार्थ शब्दों का शक्तिनियामक कौन है? उदाहरण लिखो— ६

उत्तर—देखो पृष्ठ २३ से २७ तक 'संयोगो......हेतवः'।

(च) गुण कितने हैं? उनके लक्षण उदाहरण लिखो— ३

उत्तर—देखो १२६, १२७, १२९ पृष्ठ पर।

(छ) दोष कितने हैं? उनके लक्षण उदाहरण लिखो— ६

उत्तर—देखो पृष्ठ ८६ पर।

(ज) शब्दालङ्कार अर्थालङ्कार कितने हैं? उनके लक्षण लिखो— ६

उत्तर—देखो पृष्ठ १३४ पर।

(झ) इन दोनो श्लोको में अलङ्कार लक्षणसमन्वय करो १३

युक्तं तवैतद् रघुवंशभूपते। सतां हि सख्युः परिपालनव्रतम्।
इतः स्तुतिः का जगदीश! निर्मला भवान् यदर्थं न्यवधीन् निरागसम्॥ १॥

उत्तर—देखो पृष्ठ १७६ पर।

पुरोपनीतं नृप! रामणीयकं द्विजातिशेषेण यदेतदन्धसा।
तदद्य ते वन्यफलाशिनः परं परैति कार्श्यं यशसा समं वपुः॥ २॥

उत्तर—देखो पृष्ठ १८० पर।

## सन् १९३१

प्रश्न—१. प्रयोजन सहित काव्य का लक्षण और उदाहरण लिखकर वाचक, लक्षणलक्षणा, अभिधाश्रया व्यञ्जना, संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य, पूर्वरङ्ग इनके लक्षण लिखो। १०

उत्तर—देखो पृष्ठ २, ५, १२, २०, २२, ५१, ६४ पर।

प्रश्न—२. दुःश्रवत्व, अप्रतीतत्व, संदिग्धता, अधिकपदता, अक्रमता इन दोषों के लक्षण और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


ग्राम्यत्व, विरुद्धमतिकारिता, अहेतुता, प्रकृतिविपर्यय इन दोषों के उदाहरण लिखो— १०

उत्तर—देखो ९०, ९५, १०१, १०५, १०७, ९३, ११२, ९६, ११५, १२३ पृष्ठ पर।

प्रश्न—३. ओज गुण का लक्षण, प्रसाद का उदाहरण और वैदर्भी रीति का लक्षण और उदाहरण लिख कर, यमक, श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक इन अलङ्कारों के लक्षण और नीचे लिखे पद्यों में जो २ अलङ्कार हैं उनके नाम लिखो। १३

उत्तर—१२७, १२९, १३२, १३६, १३८, १४२, १४७, १५४ पृष्ठ पर।

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्॥

उत्तर—देखो १५८ पृष्ठ पर।

बृहात्सहायः कार्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति।
सम्भूयाम्भोधिमभ्येति महानद्या नगापगा॥

उत्तर—देखो १६१ पृष्ठ पर।

पादाऽऽहतं यदुत्थाय मूर्द्धानमधिरोहति।
स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद्वरं रजः॥

उत्तर—देखो १७३ पृष्ठ पर।

अपमेघोदयं वर्षमदृष्टकुसुमं फलम्।
अतर्कितोपपन्नं वा दर्शनं प्रतिभाति मे॥

उत्तर—देखो १८२ पृष्ठ पर।

## सन् १९३२

प्रश्न—१. लक्षणायाः स्वरूपं तद्विभागांश्च सोदाहरणान् विविच्य विभावअनुभावव्यभिचारिशब्दैः किमुच्यते? हास्यरसस्य च किमुदाहरणमिति साधु निरूपय। २

उत्तर—देखो पृष्ठ १६ से २० तक ३७, ४० पर।

प्रश्न—२. प्रयोगातिशयस्य लक्षणोदाहरणे, चम्पूलक्षणं गुणदोषालङ्काराणां सामान्यस्वरूपं च विलख्य च्युतसंस्कृतेः, विधेयाविमर्शस्य, माधुर्यगुणस्य चोदाहरणानि वर्णय। ११

उत्तर—देखो पृष्ठ ६९, ८५, १२५, ८६, १३४, ८८, ९७, १२६ पर।

प्रश्न—३. रूपकार्थान्तरन्यासापह्नुतिसंज्ञकानामलङ्काराणां लक्षणान्युदाहरणानि प्रदर्शय— ५

उत्तर—देखो पृष्ठ १४६, १६०, १६९ पर।

निम्नलिखितयोः पद्ययोः कावलङ्कारौ तत्सम्यक् प्रतिपादय ५

रत्नस्तम्भेषु संक्रान्तप्रतिमास्ते चकाशिरे।
एकाकिनोऽपि परितः पौरुषेयवृता इव॥ १॥

उत्तर—उत्प्रेक्षालङ्कारः, रत्नस्तम्भोक्त्या समृद्धिवर्णनादुदात्तश्च।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जाज्वल्यमाना जगतः शान्तये समुपेयुषी ।
व्यद्योतिष्ट सभावेद्यामसौ नरशिखित्रयी ॥ २ ॥

उत्तर—ज्वलनस्य मुख्यतया अग्नावेव संभवाद् रूपकम् ।

## सन् १९३३

प्रश्न—१–रसलक्षणं रसभेदान् तेषां स्थायिभावांश्च विवेचय । ८

उत्तर—देखो पृष्ठ ३७, ३९, ४८ पर ।

प्रश्न—२ रौद्ररसस्य, शान्तरसस्य चोदाहरणे अदर्श्य वाक्यगताऽविमृष्टविधेयांशस्य दोषस्य अधिकपदतायाश्च लक्षणोदाहणे प्रपञ्चय । ८

उत्तर—देखो पृष्ठ ४३, ४९, ९७, १०५ पर ।

प्रश्न—३–दृष्टान्तव्यतिरेकार्थान्तरन्यासाप्रस्तुतप्रशंसालङ्कारान् स्वस्वोदाहरणे संगमय । १०

उत्तर—देखो पृष्ठ १५९, १५४, १६०, १७३ पर ।

प्रश्न—४–(क) रीतिसामान्यस्य गौडीरीतेश्च लक्षणं निरूपय । ५

उत्तर—देखो पृष्ठ १३१, १३२ पर ।

(ख) निम्नलिखिते पद्येऽलङ्कारं निरूपय ... २

जितेन्द्रियत्वं विनयस्य कारणं गुणप्रकर्षो विनयादवाप्यते ।
गुणप्रकर्षेण जनोऽनुरज्यते, जनानुरागप्रभवा हि सम्पदः ॥

उत्तर—देखो पृष्ठ १९० पर ।

निर्दिष्टप्रश्नानामुत्तराणि यथारुचि सरलसंस्कृतभाषया हिन्दीभाषया वा लेख्यानि ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

# अकाराद्यनुक्रमेण श्लोकसूचिका


| पृष्ठम् | श्लोकः | विपयः |
|---|---|---|
| | अ | |
| ११९ | अकाण्डे प्रथनच्छेदः. | रसदोषाः |
| १५० | अकालजलदावली. | अतिशयोक्ति |
| ७६ | अंकान्ते सूचितः. | अङ्कावतार-ल. |
| १८५ | अजस्य गृह्णतो जन्म. | विरोध. |
| ५२ | अत्रासीत् फणिपाश. | गुणीभूतव्य. |
| १६५ | अथ कारकमेकम्. | कारक दी. ल. |
| ४२ | अदृष्टदुःखो धर्मा. | करुण. |
| २१३ | अद्भुतस्य पदार्थस्य. | भाविक ल. |
| १९७ | अधिकं पृथुलाधारा. | अधि. ल. |
| १२४ | अनुकरणञ्च सर्वेपाम्. | अदोपता. |
| ५२ | अनुत्तमे गुणीभूत. | गुणी. व्य. ल. |
| १३४ | अनुप्रासः शब्दसाम्यम्. | अनु. ल. |
| १८८ | अनृतां गिरं न गदसीति. | विपम. |
| २२ | अनेकार्थस्य शब्दस्य. | अभि. मू. व्य. ल. |
| ७७ | अन्तरैकार्थसम्बन्धः. | सन्धि. ल. |
| १५२ | अन्यदेवाङ्गलावण्यम्. | अतिश. |
| १० | अन्वितैकार्थबोधे | वाक्यस्वरूपं. |
| १८२ | अपमेघोदयं वर्षम्. | विभावना. |
| १७३ | अप्रस्तुतप्रशंसा | अप्रस्तुत. ल. |
| १६४ | अप्रस्तुतप्रस्तुतयोः. | दीपक. ल. |
| १५७ | अभवन्वस्तुसंबन्धः | निदर्शना. ल. |
| २२ | अभिधालक्षणामूला | शाब्दीव्यञ्ज. |
| १५८ | अभ्युन्नताङ्गुष्ठनख. | निदर्शना. |
| ९८ | अमुक्ता भवता नाथ !. | विधेयाविम. |
| १६६ | अयं मार्तण्डः किम् ?. | सन्देह. |
| १८८ | अयं रत्नाकरोऽम्भोधि. | विपम. |
| ८ | अयि कठोर ! यशः. | काव्य. |
| २०१ | अर्थानां यो विनिमयः | परिवृत्ति. ल. |

| पृष्ठम् | श्लोकः | विषयः |
|---|---|---|
| ३४ | अर्थान्तरं संक्रमिते. | अविवक्षितवा. |
| ८९ | अविमृष्टविधेयांश. | पदवाक्यदोष. |
| १३१ | अस्त्यनेको गिराम्. | रीतिस्व. |
| ११७ | अस्त्रज्वालाऽवलीढ. | पौनरुक्त्य. |
| १६७ | अस्याः सर्गविधौ. | संदेह. |
| २१७ | अहो ! केनेदृशी. | वक्रोक्ति. |
| १९० | अहो ! खलभुजङ्ग. | असंगति. |
| ५० | अहौ वा हारे वा. | शान्त. |
| | आ | |
| २१८ | आक्षेपः स्वयमुक्तस्य. | आक्षेप. |
| २८ | आच्छादिताऽऽयत. | अभिधामू. व्य. |
| ३९ | आदिमो हास्य. | रसभेदाः |
| १८८ | आनन्दममन्द. | विपम. |
| १०१ | आनन्दयति ते. | वाक्यदोप. |
| २१६ | आयान्तमालोक्य. | व्याजोक्ति. |
| ८१ | आयुष्मन् रथिनं. | नाट्योक्त. |
| १०१ | आशीःपरम्परां. | सन्दिग्धदोष. |
| ७० | आसादितप्रकट. | प्रवृत्तक. |
| १२६ | आह्लादकत्वं, | माधुर्यं. ल. |
| | इ | |
| ८३ | इतिहासकथोद्भूत. | नाट्योक्त. |
| १६२ | इत्थमाराध्यमानो. | अर्थान्तर. |
| १८ | इत्येवं सा द्विविधा. | लक्षणाविभा. |
| ७२ | इयं गेहे लक्ष्मीरिव. | पताकास्था. |
| | उ | |
| ७ | उग्गिण्णदब्भकवला. | काव्य. |
| ४६ | उत्कृत्योत्कृत्य कृत्तिम्. | बीभत्स. |
| १९१ | उत्तरोत्तरमुत्कर्षो. | सार. ल. |
| ९६ | उदारचरितो. | विरुद्धमति. दो. |


Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri




| पृष्ठम् | श्लोकः | विषयः |
|---|---|---|
| १५३ | उदेति पूर्वं कुसुमम्. | अतिशयो. |
| ६६ | उद्घात्यकं कथोद्घातः. | प्रस्तावनाभे. |
| १८ | उपकृतं बहु तत्र. | लक्षणा. |
| १५४ | उपमानाद् यदन्यस्य. | व्यतिरे. ल. |
| ८१ | उपाध्यायेति चाचार्यः. | नाट्यो. |
| १०४ | उर्व्यसावत्र तर्वाली. | श्रुतिदुःखा. |
| ५१ | उवाच धात्र्या प्रथ. | वत्सल. |
| | **ए** | |
| २०३ | एकं क्रमेणानेकस्मिन्. | पर्याय. |
| १३० | एषां शब्दगुणत्वं च. | शब्दगुण. |
| | **ओ** | |
| १२७ | ओजश्चित्तस्य विस्तारः. | ओजोल. |
| १३२ | ओजःप्रकाशकैर्वर्णैः. | गौडी. ल. |
| | **क** | |
| ५ | कथ्यते काव्यम्. | काव्यलक्षण. |
| १२६ | करुणे विप्रलम्भे तत्. | माधुर्य. ल. |
| २०० | कानने सरिदुद्देशे. | विशेष. |
| ३७ | कारणान्यथ कार्याणि. | रसनि. |
| १८९ | कार्यकारणयोर्भिन्न. | असंगति. ल. |
| ७० | कालं प्रवृत्तमा. | प्रवृत्तक. ल. |
| १३४ | काव्यशोभाकरान. | अलङ्का. ल. |
| ३२ | काव्यं ध्वनिर्गुणी. | काव्यभेद. |
| २ | काव्यं यशसेऽर्थकृते. | काव्यप्रयो. |
| ७९ | काव्यापकर्षका दोषाः. | काव्यदो. |
| १९९ | किमधिकमस्य. | अधिक. |
| २०७ | किमासेव्यं पुंसाम्. | परिसंख्या. |
| ११० | किमिति न पश्यसि. | सङ्कर. दो. |
| २०१ | किमित्यपास्या. | परिवृत्ति. |
| ७९ | किं ब्रवीष्येव. | नाट्यो. |
| २०७ | किं भूषणं सुदृढ. | परिसंख्या. |
| ९३ | किं रुपा शोणित. | ग्राम्यपददोष. |
| २८ | कुबेरगुप्तां दिश. | अभि. मू. व्य. |
| ५५ | कूजत्कुञ्जकुटीर. | शब्दचित्र. |
| ४३ | कृतमनुमतम्. | रौद्र. |
| ५१ | केचिच्चमत्कारितया. | वत्सल. |
| ३६ | कोऽप्यलक्ष्यक्रम. | ध्वनिभेद. |
| १५८ | क्व सूर्यप्रभवो वंशः. | निदर्शना. |
| १४३ | क्षणात्प्रबोधमायाति. | उपमा. |
| ९४ | क्षीरोदजावसति. | क्लिष्टत्वदो. |
| ४३ | क्षुद्राः सन्त्रासमेते. | वीर. |
| | **ख** | |
| ८४ | खण्डकाव्यं भवेत्. | खण्डका. ल. |
| १७९ | खलस्य कण्टकस्येव. | अर्थश्लेष. |
| | **ग** | |
| ८५ | गद्यपद्यमयं मिश्रं. | चम्पू. ल. |
| ८८ | गाण्डीवी कनकशिला. | च्युतसं. दो. |
| १८६ | गुणक्रिये वा यत्. | विषम. ल. |
| २१८ | गुरुपरतन्त्रतया बत !. | वक्रोक्ति. |
| २०० | गृहिणी सचिवः सखी. | विशेष. |
| १२९ | गृहिणी सचिवः सखी. | प्रसादगुण. |
| ११५ | गृहीतं येनासीः. | अहेतुता. दो. |
| २१९ | गृह्णन्तु सर्वे यदि वा. | आक्षेप. |
| १४१ | ग्रीवाभङ्गाभिरामम्. | स्वभा. |
| | **च** | |
| १२८ | चञ्चद्भुजभ्रमित. | ओज. |
| ६१ | चत्वारः पञ्च वा. | नाटक. ल. |
| १५५ | चन्द्रं गता पद्म. | व्यतिरेक. |
| १७३ | चातकस्त्रिचतुरान्. | समासोक्ति. |
| १२९ | चित्तं व्याप्नोति यः. | प्रसाद. ल. |
| ६५ | चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्यो. | प्रस्तावना. |
| | **ज** | |
| १८५ | जगद्योनिरयोनि. | विरोध. |
| २१० | जगाद वदनच्छद्म. | तद्गुण. |
| ८२ | जातिर्वृत्तमितिद्वेधा. | श्र. काव्य. ल. |


Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri




| पृष्ठम् | श्लोकः | विषयः |
|---|---|---|
| १९० | जितेन्द्रियत्वं विनयस्य. | कारणमा. |
| ९९ | जुगोपात्मानमत्रस्तः. | दोषाभाव. |
| | **त** | |
| ११८ | ततश्चचार समरे. | ख्यातिवि. दो. |
| ६४ | तत्र पूर्वं पूर्वरङ्गः. | नाटकाद्यपूर्वङ्ग. |
| ३० | तथाभूतां दृष्ट्वा. | न्यक्षमा. |
| २०१ | तदा भगवता तेन. | परिवृत्ति. |
| १२७ | तदिदं क्रिययाम्. | माधुर्य. |
| २०५ | तद्गेहं नतभित्ति. | पर्याय. |
| १४६ | तद्रूपकमेदो य. | रूपक. ल. |
| ९२ | तपस्विभिर्या. | अनुचित दो. |
| १९७ | तव प्रसादात्. | परिकर. |
| २०२ | तस्य च प्रवयसो. | परिवृत्ति. |
| ९३ | ताम्बूलभृतगल्लो. | ग्रा. वाक्यदो. |
| ११२ | ताम्रभृङ्गारतुल्यो. | ग्राम्य. अर्थदो. |
| ५६ | ते दृष्टिमात्रपतिता. | वाच्यचित्र. |
| १७५ | त्यक्त्वा राज्यं गिरमनु. | व्याजस्तु. |
| ४९ | त्रासश्चैव वितर्कश्च. | व्यभिचा. |
| ७९ | त्रिपताककरेणान्या. | नाट्योक्ति. |
| ३४ | त्वामस्मि वच्मि. | अर्थान्तरसंक्र. |
| | **द** | |
| १९३ | दण्डापूपिकया. | अर्थापत्ति. ल. |
| १०४ | दलिते उत्पले. | सन्धिदोष. |
| १७० | दशाननकिरीटेभ्यः | अपह्नुति. |
| २०० | दिवसम्प्युपयातानाम्. | विशेष. |
| १९५ | दिव्यानामपि कृत. | स्मरण. |
| १५५ | दिशि मन्दायते. | व्यतिरेक. |
| १११ | दुष्क्रमग्राम्य. | अर्थदोष. |
| ८९ | दुःश्रवानुचितार्थत्वे. | पदवाक्य. दो. |
| ५८ | दृश्य-तत्राभिनेयम्. | दृ. काव्य. ल. |
| ५८ | दृश्यं श्रव्यत्वभेदे. | काव्यभेद. |
| १५९ | दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य. | दृष्टान्त. ल. |
| १५१ | दृष्टिस्तृणीकृतजगत्. | अतिशयोक्ति. |
| ६४ | देवद्विजनृपादीनाम्. | नान्दी. |
| १०७ | द्वयं गतं सम्प्रति शोच. | अक्रम. दो. |
| ८३ | द्वाभ्यां तु युग्मकम्. | श्र. काव्यभे. |
| | **ध** | |
| १८३ | धनिनोऽपि निरुन्मादा. | विशेषोक्ति. |
| १५७ | धन्याऽसि वैदर्भि !. | प्रतिवस्तूप. |
| ९५ | धम्मिल्लस्य न. | वा. गतक्लिष्ट. दो. |
| | **न** | |
| ८३ | नगरार्णवशैलर्त्तु. | महाकाव्य. ल. |
| ६५ | नटी विदूषको वापि. | प्रस्तावना. ल. |
| १९३ | न तज्जलं यन्न. | एकावली. |
| ९८ | नवजलधरः सन्नद्धो. | नञोऽविधेय. |
| १३७ | नवपलाशपलाश. | यमक. |
| ४५ | नष्टं वर्षवरैः. | भयानक. |
| १६३ | नागेन्द्रहस्तास्त्वचि. | तुल्ययो. |
| ६० | नाटकं ख्यातवृत्तम्. | नाटक. ल. |
| ६३ | नानेकदिननिर्वर्त्य. | अङ्क. ल. |
| २१२ | नाभिप्ररूढाम्बुरुहा. | उदात्त. |
| ८७ | निरर्थकासमर्थत्वे. | पददोष. |
| ४८ | निर्वेदग्लानिशङ्का. | व्यभिचारि. |
| ४९ | निर्वेदस्थायिभावो. | शान्त. |
| १७० | नेदं नभोमण्डलमध्य. | अपह्नुति. |
| १६० | नैतल्लघ्वपि भूयस्या. | दृष्टान्त. |
| ९९ | न्यक्कारो ह्ययमेव. | अविमृष्टवि. दो. |
| | **प** | |
| ७२ | पताकास्थानकम्. | पताकाप्रयोग. |
| १३१ | पदसङ्घटना रीति. | रीति. ल. |
| ६६ | पदानि त्वगतार्थानि. | उद्घात्यक. |
| २० | परार्थमात्रे. | लक्षणलक्षणा. ल. |
| १६२ | पदार्थानां प्रस्तुतानाम्. | तुल्ययो. ल. |
| १९० | परं परं प्रति यदा. | कारणमा. ल. |


Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri




| पृष्ठम् | श्लोकः | विषयः |
|---|---|---|
| १११ | परापकारनिरतैः. | गर्भितदो. |
| १४६ | पर्यासपुष्पस्तवक. | रूपक. |
| २१५ | पर्यायोक्तं यदा भङ्ग्या. | पर्यायोक्त. ल. |
| १७३ | पादाहतं यदुत्थाय. | अप्रस्तुतप्र. |
| २१२ | पिदधानमन्वगुप्तगम्य. | सूक्ष्म. |
| १८० | पुरोपनीतं नृप रामणी. | सहोक्ति. |
| १५२ | पुष्पं प्रवालोपहितम्. | अतिशयोक्ति. |
| १९२ | पूर्वं पूर्वं प्रति विशे.. | एकावली. ल. |
| १३९ | पृथुकार्त्तस्वरपात्रम्. | श्लेष. |
| १६९ | प्रकृतं प्रतिषिध्यान्य. | अपह्नु. ल. |
| ६१ | प्रख्यातवंशो राजर्षि. | नाटक. ल. |
| १३८ | प्रतिकूलतामुपगते. | श्लेष. |
| १५६ | प्रतिवस्तूपमा सा. | प्रतिवस्तू. ल. |
| ६२ | प्रत्यक्षनेतृचरितः. | अङ्क. ल. |
| १४५ | प्रभामहत्या शिखयेव. | मालोप. |
| ७५ | प्रवेशकोनुदात्तोक्त्या. | प्रवेशक. ल. |
| २०६ | प्रश्नादप्रश्नतो वापि. | परिसंख्या. ल. |
| १७७ | प्रसिद्धस्योपमानस्य. | प्रतीप. ल. |
| १५१ | प्रस्तुतस्य यदन्यत्वम्. | अ. अति. ल. |
| १४२ | प्रस्फुटं सुन्दरम्. | उपमा. ल. |
| ११६ | प्राप्ताः श्रियः सकल. | अनवी. दो. |
| ७९ | प्रायेण ण्यन्तकः. | नाट्यो. |
| १०७ | प्रियं चेद्भरतस्यैः | कथितप. दो. |
| | **व** | |
| ९० | बन्धुभिः सादरं. | दुःश्रवपददो. |
| १६४ | बलावलेपादधुना. | दीपक. |
| १६१ | बृहत्सहायः कार्यान्तम्. | अर्थान्तर. |
| | **भ** | |
| २०८ | भक्तिर्भवे न विभवे. | परिसंख्या. |
| ८१ | भगवन्निति वक्तव्यः. | नाट्यो. |
| १०२ | भग्नप्रक्रमता ख्याति. | वाक्यदो. |
| ५८ | भवेदभिनयः. | अभिनय. ल. |
| ४० | भिक्षो मांसनिषेवणम्. | हास्य. |
| १६६ | भेदोक्तौ तदनुक्तौ च. | संदेहभेद. |
| ३२ | भेदो ध्वनेरपि | ध्वनिभेद. |
| | **म** | |
| २०५ | मधुरिमरुचिरम्. | पर्याय. |
| १५६ | मधुश्च ते मन्मथ !. | प्रतिवस्तु. |
| १४९ | मन्ये शङ्के ध्रुवं प्रायः | उत्प्रेक्षाश. |
| १६८ | महाराज ! श्रीमान् !. | भ्रान्ति. |
| १ | मातरं हृदये ध्यात्वा. | मङ्गल. |
| १३२ | माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैः. | वैदर्भी. |
| १२६ | माधुर्यौजः प्रसादा. | गुणविभाग. |
| ४७ | मानुषीभ्यः कथम्. | अद्भुत. |
| ६ | मानुषीभ्यः कथं नु. | काव्य. |
| १४५ | मालोपमा यदेकस्मिन्. | मालोप. ल. |
| २११ | मुक्ताः केलिविसूत्रहार. | उदात्त. |
| ७७ | मुखं प्रतिमुखम्. | नाटकभेद. |
| १७८ | मुखं यदि किमिन्दुना ?. | प्रतीप. |
| १६ | मुख्यार्थबाधे. | लक्षणा. ल. |
| २१४ | मुनिर्जयति योगीन्द्रः. | भाविक. |
| १२६ | मूर्द्धिन वर्गान्यवर्णेन. | माधुर्य. ल. |
| | **य** | |
| १६२ | यं सर्वशैलाः परिकल्प्य. | तुल्ययो. |
| १७७ | यत्त्वन्नेत्रसमानकान्ति. | प्रती. |
| ५१ | यत्र व्यङ्ग्यप्रतीतिस्तु. | संलक्ष्य. व्य. |
| ७१ | यत्रान्यस्मिन् समावेश्य. | अवलगित. |
| ७२ | यत्रार्थे चिन्तिते. | पताका. ल. |
| १७१ | यत्रोक्ताद् गम्यते. | समासोक्ति. ल. |
| ६९ | यदि प्रयोग एकस्मिन्. | प्रयोगा. ल. |
| ६४ | यन्नाट्यवस्तुनः. | पूर्वरङ्ग. ल. |
| १०८ | यशोऽधिगन्तुं सुख. | भग्नप्रक्रम. |
| ४२ | यस्य भृत्याश्च दासाश्च. | करुण. |
| १६१ | यावदर्थपदां वाच. | अर्थान्तर. |


Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0: In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


| पृष्ठम् | श्लोकः | विषयः |
| --- | --- | --- |
| १९८ | युगान्तकालप्रतिसंहृता. | अधिक |
| १७६ | युक्तं तवैतत्, | व्याजस्तु. |
| ६३ | युक्तो न बहुभिः. | अङ्क. ल. |
| १२५ | ये रसस्याङ्गिनो धर्माः. | गुण, ल. |
| | **र** | |
| ४८ | रतिर्हासश्च शोकश्च. | स्थायि. |
| ११९ | रसस्योक्तिः स्वशब्देन. | रसदोष. |
| ८० | राजर्षिभिर्वयस्येति. | नाट्यो. |
| १९१ | राज्ये सारं वसुधा. | सार. |
| १८१ | रे हस्त ! दक्षिण !. | काव्यलिङ्ग. |
| | **ल** | |
| २९ | लक्षणोपास्यते. | लक्षणा. व्यंजना. |
| १३५ | लताकुञ्जं गुञ्जन् मद. | अनुप्रास. |
| १४८ | लिम्पतीव तमोऽङ्गानि. | निगीर्ण. |
| २१० | लोकातिशयसम्पत्ति. | उदात्त. ल. |
| | **व** | |
| ३० | वक्तृबोद्धव्यवाक्यानाम्. | आ. व्य. |
| २१७ | वक्रोक्तिः श्लेषकाकुभ्या. | वक्रोक्ति. ल. |
| ६३ | वधयुद्धविवाहाद्यैः. | अङ्क. ल. |
| ९७ | वपुर्विरूपाक्षमलक्ष्य. | अविमृष्ट. |
| १२८ | वर्गस्याद्यतृतीयाभ्याम्. | ओजोवर्णाः. |
| १०२ | वर्णानां प्रतिकूलत्वम्. | वाक्यदो. |
| ३२ | वाच्यातिशायिनि. | ध्वनि. ल. |
| १२ | वाच्यादयस्तद. | अर्थविभाग. |
| ८२ | वाच्या प्रकृतिभी. | नाट्योक्त. |
| ८० | वाच्यौ नटीसूत्रधारा | नाट्योक्त. |
| १०४ | वासवाशामुखे. | सन्धिविश्लेषदो. |
| २१ | विरतास्वभिधा. | व्यञ्जना. ल. |
| २१५ | विनयेन विना का श्रीः. | विनोक्ति. |
| १६५ | विनिश्चेतुं शक्यो. | अन्य. दीपक. |
| २१५ | विनोक्तिश्चेद् विना. | विनोक्ति. ल. |
| १८२ | विभावना विनाहेतुम्. | विभावना. ल. |

| पृष्ठम् | श्लोकः | विषयः |
| --- | --- | --- |
| ३७ | विभावा अनुभावाश्च. | रसनिरूपण |
| १८४ | विरोधः सोऽविरोधेऽपि. | विरोध[illegible] |
| १९४ | विललाप स वाष्प. | अर्थाप[illegible] |
| ३५ | विवक्षितञ्चान्यपरम्. | विवक्षितान्य. |
| ४० | विवृण्वती शैल. | शृङ्गार. |
| १९९ | विशेषः ख्यातमाधारम्. | विशेष. ल. |
| १९६ | विशेषणैर्यत् साकूतैः. | परिकर. ल. |
| १४७ | विषयस्यानुपादेन. | निगीर्ण. ल. |
| २०४ | विसृष्टरागादधरा.. | पर्याय. |
| ८५ | वृत्तवन्धोज्झितम्. | गद्य. लक्ष. |
| ७४ | वृत्तवर्तिष्यमाणानाम्. | विष्कम्भ. ल. |
| ५४ | व्यङ्ग्यार्थहीनम्. | चित्रकाव्य. ल. |
| १७४ | व्याजस्तुतिर्मुखे. | व्याजस्तु. ल. |
| २१६ | व्याजोक्तिर्गोपनं | व्याजोक्ति. ल. |
| ४८ | व्रीडा चपलता हर्ष. | व्यभिचा. |
| | **श** | |
| १२८ | श ष रश्च पकारश्च. | ओजोवर्णाः. |
| ५४ | शब्दचित्रं वाच्य. | चित्रकाव्यभेद |
| १७९ | शब्दैःस्वभावादेकार्थैः. | अर्थश्लेष. ल. |
| ८१ | शिष्योऽनुजश्च वक्त. | नाट्यो. |
| ८२ | श्रव्यं श्रोतव्यमात्रम्. | श्र. का. ल. |
| १७२ | श्रुतिसुखभ्रमरस्वन. | समासोक्ति. |
| १३८ | श्लिष्टैः पदैरनेकार्था. | श्लेषः. ल. |
| | **स** | |
| २३ | संयोगो [illegible]गश्च. | संयोगा. |
| २१२ | संलक्षितस्तु सूक्ष्मोऽर्थः. | सूक्ष्म ल. |
| १८४ | स एकस्त्रीणि जयति. | विशेषोक्ति. |
| १८३ | सति हेतौ फलाभावे. | विशेषोक्ति. ल. |
| १३६ | सत्यर्थे पृथगर्थायाः | यमक. ल. |
| ११३ | सदा मध्ये यासा. | कष्टदोष. |
| १९५ | सदृशानुभवाद्. | स्मरण. ल. |
| १८० | सद्यः करस्पर्शमवाप्य. | विषम. |


Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri


| श्लोकः | विषयः |
|---|---|
| ११६ सन्देहः प्रकृतेऽन्यस्य. | सः |
| १४६ समेन समाक्रान्तम्. | अ |
| ८ सभयः स वर्त्तेत इवैव. | ग. |
| १४७ सम्भावनमथोत्प्रेक्षा. | उत्प्रेक्षा. ल. |
| १९२ सरो विकसिताम्भोज. | एकावली. |
| ८३ सर्गबन्धो महाकाव्य. | महाकाव्य. ल. |
| ८४ सर्गैरनतिविस्तीर्णैः. | महाकाव्य. ल. |
| ७८ सर्वश्राव्यं प्रकाशम्. | नाट्यो. |
| १२ साक्षात्संकेतितः. | वाचक. ल. |
| २३ सामर्थ्यमौचिती. | संयोगाद्याः. |
| १६० सामान्यं वा विशेषो. | अर्थान्त. ल. |
| १६८ साम्यादतस्मिन्. | भ्रान्तिमान्. ल. |
| १८० सा सहोक्तिः सहार्थस्य. | सहोक्ति. ल. |
| २१ साहित्यपाथोनिधि. | आक्षेप. |
| १४९ सिद्धत्वेऽध्यवसायस्या. | अतिशयो. ल. |
| ६१ सुखदुःखसमुद्भूति. | नाटक. ल. |
| १७४ सुखं जीवन्ति हरिण. | अप्रस्तुतप्र. |
| ४९ सुप्तं प्रबोधोऽमर्षः. | व्यभिचा. |

| पृष्ठम् | विषयः |
|---|---|
| ११ सुप्तिङन्तं पदम्. | पद. ल. |
| ६८ सूत्रधारस्य वाक्यम् कथोद्घात. | ल. |
| ८१ सूत्रधारो मारिषेति. | नाट्यो. |
| ९० सोऽधीष्ट वेदान्. | दुःश्रवाक्यदो. |
| २०९ सोऽर्थो यो निजहस्ते. | परिसंख्या. |
| २०९ स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु. | पर्याय. |
| १४४ स्नपयति हृदयेशम्. | उपमा. |
| ६९ स्नेहात्सभाजयितुं. | प्रयोगातिश. |
| २१६ स्पृष्टास्ता नन्दने शच्याः. | पर्यायोक्त. |
| १२ स्याद्वाचको लाक्षणिकः | शब्दवि. |
| १४१ स्वभावोक्तिरसौ चारु. | स्वभावो. ल. |
| २०९ स्वमुत्सृज्य गुणं योगा. | तद्गुण. ल. |
| १९ स्वसिद्धये पराक्षेपः. | उपादानल. ल. |
| ८० स्वेच्छया नामभिर्विप्रैः. | नाट्यो. |
| **ह** | |
| ११४ हरन्ति हृदयं यूनाम्. | व्याहतत्व. |
| १४४ हरस्तु किञ्चित् परि. | उपमा. |
| १८० हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे. | काव्यलिङ्ग. ल. |


Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi